परवर्ती गद्य-काव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन

(पंडितराज जगन्नाथ तक)

[A Critical Study Of Later Gaddya-Kavyas]

(Upto PANDITRAJ JAGANNATH)

लेखिका

श्रीमती मीना श्रीवास्तवा, एम० ए०

२०२३ विक्रमाब्द

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

भूमिका

संस्कृत भाषा यद्यपि अन्य भाषाओं की अपेक्षा अत्यन्त कठिन समझी जाती है परन्तु इस भाषा के अध्ययन में मुझे विशेष आनन्द मिलता है । अन्य भाषाओं के अध्ययन की अपेक्षा में इस भाषा के अध्ययन में अधिक समय व्यतीत करता था । एम०ए० की परीक्षा के उपरान्त अपने पूज्य पिता जी के आदेशानुसार मुझे एल०टी० में प्रवेश लेना पड़ा था किन्तु उस ओर मेरा मन न लगा । मैं चाहता था कि अपनी प्रिय संस्कृत भाषा में लिखे हुए काव्यों का अध्ययन करूँ । अत: दो ही तीन माह बाद मैंने एल०टी० करना छोड़ दिया । फिर अपने शोध-कार्य के सम्बन्ध में मैं अपने परम श्रद्धेय गुरु डा० आद्याप्रसाद जी मिश्र से मिला और उनसे संस्कृत-काव्यों के अध्ययन के विषय में अपनी उत्सुकता प्रकट की । उन्होंने मुझे `अर्वाचीन संस्कृत गद्य-काव्यों का एक समीक्षात्मक अध्ययन` करने का आदेश देकर मेरी इच्छा पूरी की ।

चूंकि गद्य-काव्यों में केवल सुबन्धु, बाण तथा दण्डी की ही रचनायें पूर्णत: या अंशत: हमारे सामने आयी थीं और अन्य गद्य-काव्य अपने लिए सर्वथा नवीन थे, अत: इनकी खोज करने की मुझे विशेष जिज्ञासा हुई । नये ग्रन्थों की खोज में तो फिर न जाने कितने गद्य-काव्य मिलने लग गए । उनकी संख्या की तो अधिकता है किन्तु उनमें से वैशिष्ट्य की अपेक्षाकृत न्यूनता देखकर डा० मिश्र जी ने हमारे शोध के विषय को पंडितराज जगन्नाथ तक सीमित करा दिया । वस्तुत: पंडितराज जगन्नाथ के बाद होने वाले कवियों में उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा के दर्शन बहुत कम होते हैं । स्वयं पंडितराज जगन्नाथ का `आसफ विलास` नामक केवल कुछ पंक्तियों का अत्यन्त लघुकाय गद्य-काव्य भी कुछ विशेष महत्व का नहीं है । इसमें केवल अनुप्रास एवं कुछ प्राकृतिक दृश्यों की छटा दर्शनीय है । उपमा तथा उत्प्रेक्षाओं के भी प्रयोग मिलते हैं । पर इसमें न कथा-विकास है, न रस-परिपाक और न ही लोक-चित्रण आदि । परवर्ती अनेक कवियों ने इससे प्रेरणा ग्रहण करके अपने काव्यों को अत्यन्त लघुकाय करना आरम्भ कर दिया जिनमें काव्य के उपर्युक्त गुणों के विकास के लिए उपयुक्त क्षेत्र न रह गया । फलत: ये काव्य हीन कोटि के होने लगे । साथ ही अधिकाधिक कवियों के द्वारा ऐसे सामान्य काव्यों

रचना के लिए प्रयास किये जाने पर छोटी-छोटी गद्य-कृतियों की भरमार हो गई । जैसे कार्यों के अध्ययन में परिश्रम भी ढेर सारा पड़ा, फल भी अत्यल्प था। अतः इसलिए अपने अनुसन्धान के विषय को पंडितराज के 'आसफविलास' तक ही सीमित कर देना पड़ा ।

मेरे अनुसन्धान के कार्य में मेरे परम श्रद्धेय एव पूज्य गुरु जी ने जो अपना बहुमूल्य समय एवं दिशापरामर्श देकर मुझे कृत-कृत्य किया है एवं सारे निबन्ध के दोषों का यथासम्भव परिहार करने में मुझे अतुल्य सहायता प्रदान किया, उनका ऋण कतिपय शब्दों द्वारा आभार प्रकट करके कैसे चुकाया जा सकता है । मैं उसे चुकाना चाहती भी नहीं, अपितु आजन्म उनके भार से दबी रहने में ही अपना कल्याण समझूंगी । इस निबन्ध में जो कुछ भी गुण अथवा अच्छाइयाँ हैं वह उनकी महती कृपा का फल है । इसमें जो दोष हैं और वे थोड़े नहीं शायद पर्याप्त मात्रा में हैं, वे मेरे अपने हैं जो गुरु जी से प्रायः दूर रहने के कारण उनका सतत पथ-प्रदर्शन न मिलने से अनिवार्यतः आ गए और अन्ततः उनके द्वारा दिखाये जाने पर भी उनका परिहार महान परिश्रम एवं समय के द्वारा साध्य होने के कारण न किया जा सका तथा भविष्य के लिए छोड़ दिया गया ।

प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के कर्मचारियों-- विशेषरूप से बी०के० त्रिवेदी के प्रति मैं अपना आभार प्रदर्शित करती हूं, जिन्होंने मेरे इस शोध के विषय में यथोचित रुचि लेकर मुझे यथासाध्य सहायता दी है

मैं पब्लिक लाइब्रेरी के मि० एस०एन० जैन तथा बी०के० वर्मा के प्रति भी अत्यन्त कृतज्ञ हूं जिन्होंने मुझे पुस्तकों की प्राप्ति में यथायोग्य सहयोग दिया ।

श्री रामहित त्रिपाठी जी ने हमारी विवशताओं को ध्यान में रख कर इस शोध प्रबन्ध को टाइप करने में जो त्वरा दिखाई है तथा उसमें अशुद्धियों का यथावसर परिहार किया है, उसके लिए मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देती हूं । उनके सहयोग के बिना यह कार्य दुष्कर ही था ।

अन्त में, मैं अपने पूज्य माता-पिता एवं अन्य पारिवारिक सदस्यों, जिनके सतत प्रोत्साहन से मैं सदा शोध-कार्य में संलग्न रह सकी, तथा संस्कृत-साहित्य के समस्त गुरुजन का स्मरण करती हुई उनके प्रति अपना आभार प्रकट करती हूं । उन्हीं सब की महती कृपा से मैं माँ भारती के चरणों में चढ़ाने के लिए अर्चना के ये कुछ 'पत्र-पुष्प' संजो सकी

मीना श्रीवास्तव
(मीना श्रीवास्तव)
११-४-६६

संस्कृत विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय
प्रयाग

प्रथम भाग

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

विषय-प्रवेश

(क) प्रस्तुत शोध का विषय

इस प्रकार से साहित्यिक लोगों में पद्य को गद्य की अपेक्षा महत्वपूर्ण दृष्टि से देखा गया है, इसी की रचनाएं अधिक हुई हैं। क्योंकि पद्य में छन्दों के कारण संगीत का तत्व आ जाता है और संगीत में आकृष्ट करने की अद्भुत क्षमता होती है। सहृदय पद्य के भाव को चाहे समझ न पाये लेकिन उसकी लय से ही वह आकृष्ट हो जाता है। अतः कवि अपने काव्य को सहृदय के बीच प्रशंसनीय बनाना चाहते हैं और इसके लिए उन्हें पद्य-रचना अधिक सरल पड़ती है। क्योंकि गद्य में सरसता लाने के लिए कवि को बहुत अधिक प्रयत्न करना पड़ता है, उसे गद्य का पूरा रूप सुव्यवस्थित और आकर्षक बनाना पड़ता है, इसके लिए कोई छन्द आदि जैसे नियम न होने के कारण उसकी गद्य-रचना में पूरी स्वतन्त्रता रहती है, काव्य-प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए स्वच्छन्द वातावरण रहता है अतः उसमें यदि कवि से त्रुटि हो जाती है तो वह किसी प्रकार भी क्षम्य नहीं होती है किन्तु पद्य-कवि से यदि कोई त्रुटि हो जाती है तो उसका दोष छन्दों पर डाल कर क्षम्य कर दिया जाता है। पद्य-कवि छन्द की शृंखलाओं से एक प्रकार से बंधा रहता है। पं० बलदेव उपाध्याय ने पद्य को गद्य का एक निश्चित और नियंत्रित प्रकार माना है। उन्होंने पद्य-कवि की उपमा पिंजर-बद्ध शुक से और गद्य-कवि की उपमा उन्मुक्तपक्षी से दी है।[1]

यद्यपि पद्य और गद्य दोनों ही सहृदय-हृदय को आह्लादित करने की क्षमता रखते हैं किन्तु लोगों ने अत्यधिक श्रम साध्य होने के कारण गद्य-रचना

१- काव्यानुशीलन - पं० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ २०४

अधिक प्रयत्न नहीं किया । यही कारण है कि पद्य-कवियों ने अपनी छन्दोबद्ध कृतियों से जनसाधारण लोगों पर ऐसा प्रभाव डाल दिया कि उनकी गद्य-कृतियां जीवित न रह गयीं ।

गद्य-रचना की क्लिष्टता के अतिरिक्त इसमें 'ओजस्' गुण को अपना प्राण तत्त्व मान लेने से भी समास- बहुलता के कारण इसका अर्थ समझना लोगों के लिए दुष्कर हो जाता था ।

गद्य-रचना की इस बहुलता के कारण विद्वानों ने इस विषय में खोज करने का भी प्रयत्न किया है । आर०वी० कृष्णमाचार्य ने अपनी वासवदत्ता की भूमिका में इस सम्बन्ध में विस्तृत विवेचना की है[1] ।

इस तरह से गद्य-रचनायें तो बहुत हुईं किन्तु जो हुईं थीं वो समयों से अधिकांश नष्टप्राय हुईं -- कुछ प्राकृतिक कोप के कारण और कुछ विदेशी आक्रमण के कारण । गद्य के सुरक्षित न रहने का कारण यह भी था कि पद्य को छन्दोबद्धता के कारण कण्ठस्थ किया जा सकता था किन्तु गद्य में यह सम्भव न था । अतः मुद्रणालय के अभाव में गद्य-रचनायें परिस्थितियों का सामना न कर सकीं । थोड़ी-सी ही कृतियां प्राचीन गद्य-साहित्य में बच पायीं । आजकल गद्य-रचना की ओर लोगों का अधिक रुझान हो गया है । कुछ शताब्दियों से गद्य-साहित्य का विस्तार देखा जा सकता है ।

गद्य-साहित्य के अन्दर वेद(यजुर्वेद गद्य में ही लिखा है),उपनिषद्, कथा-साहित्य (गुणाढ्य की बृहत्कथा, बृहत्कथामञ्जरी,कथासरित्सागर, वेतालपंचविंशति, हितोपदेश, शुकसप्तति, पंचतंत्र, सिंहासनद्वात्रिंशिका), चरित्रचित्रणात्मक गद्य-ग्रन्थ(मेरुतुंगाचार्य कृत प्रबन्धचिन्तामणि, महेश ठक्कुर प्रणीत सर्वदेशवृत्तान्तसंग्रह, सोमप्रभाचार्य रचित कुमारपालप्रतिबोध, जिनविजय मुनि विरचित कुमारपाल चरित संग्रह, आनंदगिरि का शंकर विजय, रामाराव विरचित शंकर जीवनाख्यानम्, अजितप्रभाचार्य का शान्ति नाथ चरित), कहानी(आधुनिक नाम है), संस्कृत गद्य काव्य के आधार पर लिखित छोटी

१- वासवदत्ता --पं०आर०वी० कृष्णमाचार्य (अभिनव प्रकाशन) पृ०२- ७

आकार बृहद् होता था, किसी भी विषय को लेकर विस्तार के साथ कवि वर्णन किया करते थे किन्तु पंडितराज जगन्नाथ ने सब वर्ण्य-विषय को संक्षिप्त कर दिया है । उन्होंने अपने इस काव्य में राजाओं का गुणानुवाद, प्रकृति-चित्रण एवं आदि सभी को स्थान दिया है । यह दूसरी बात है कि सभी विषयों को आवश्यकता से अधिक संक्षिप्त रूप दे देने के कारण उनके निर्वाह में वे सफल नहीं हो पाए हैं । चूंकि एक प्रकाण्ड विद्वान एवं संस्कृत आचार्य ने गद्य-काव्य लिखने का एक सरल मार्ग खोल दिया था अतः बाद के प्रायः सभी कवियों ने उसी प्रकार की रचना करना प्रारम्भ कर दी । उनके काव्यों में पंडितराज जगन्नाथ की संक्षिप्तता तो मिलती है किन्तु उनमें उनके काव्यगत गुण किंचितमात्र भी न आ पाए । एकाध कृतियां इस नियम की अपवाद स्वरूप हैं । इस काल की कृतियों में बहुत-सी कृतियां तो अन्य प्रान्तीय भाषाओं की कृतियों से अनुदित हैं । इसलिए उनमें शोध की बहुत कम सामग्री प्राप्त होती है । इस कारण प्रस्तुत विषय को पंडितराज जगन्नाथ की गद्य-कृतियों तक ही सीमित कर दिया गया है ।

पंडितराजजगन्नाथ का समय १७ वीं शताब्दी माना गया है । क्योंकि उन्होंने 'दिल्लीश्वर', 'दिल्ली नरपति', 'दिल्लीश्वरवल्लभ' के अतिरिक्त पांच आश्रयदाताओं के नामों का उल्लेख किया है --

१- जहांगीर -- १६०५- १६२७ ई०
२- शाहजहां -- १६२८- १६५८ ई०
३- आसफखां -- (नूरजहां का भाई) १६४१ में मरा
४- उदयपुर के जगतसिंह -- १६२८- १६५२ ई०
५- कानपुर के प्राणनारायण -- १६२०-१६६० ई०

पी०वी० काणे इनका समय १६२०-१६६० मानते हैं[१] ।

इस प्रकार प्रस्तुत अनुसंधान का काल १० वीं शताब्दी से १७ वीं शताब्दी तक निश्चित होता है । इतनी लम्बी अवधि में बहुत से गद्य-काव्य

१-हि० आफ सं० पोयटिक्स -- पी०वी० काणे पृष्ठ ३१२

लिखे गये होंगे, ऐसी सम्भावना की जाती है । उनमें से अधोलिखित गद्य-काव्यों का ही अध्ययन अगले अध्यायों में प्रस्तुत किया जा सका है, क्योंकि कुछ गद्य-काव्यों का नामतः उल्लेख साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों में मिलता है किन्तु या तो वे कृतियां[1] अनुपलब्ध हैं या उपलब्धि का पता लगाने पर भी इस शोध-निबन्ध के लेखक को दुर्भाग्यवश प्राप्त नहीं हो सकी हैं । जिन कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत शोध-निबन्ध में किया गया है वे ये हैं :-

(१) भोज की शृंगारमंजरी कथा —१०वीं शताब्दी
(२) धनपाल की तिलकमंजरी —१०वीं शताब्दी
(३) ओडयदेव की गद्यचिन्तामणि —११वीं शताब्दी
(४) वामनभट्टबाण का वेमभूपालचरितम् —१५वीं शताब्दी
(५) वासुदेव की रामकथा —१७वीं शताब्दी
(६) पंडितराज जगन्नाथ का आसफविलास और यमुना-वर्णन —१७वीं शताब्दी

(ख) काव्य- एवं उसकी सम्पत्तियां

पीछे बताये गये गद्य-काव्यों का अध्ययन करने के पूर्व काव्य का स्वरूप एवं उसकी विशेषताओं का संक्षेप में विचार कर लेना प्रस्तुत विषय के लिए न केवल असंगत नहीं होगा अपितु बहुत उपादेय सिद्ध होगा । किसी भी वस्तु का जितना मार्मिक चित्र काव्य खींच सकता है, नाटक को छोड़ कर और कोई साहित्य का अंग नहीं । कवियों ने देश के हित के लिए,

---

१- इन गद्य-कृतियों के समय का संकेतमात्र यहां किया गया है । आगे यथावसर इन पर विस्तृत विचार किया जायगा ।

अत्याचारों से रक्षा हेतु आदि महत्वपूर्ण कार्य काव्य के माध्यम से किए हैं । काव्य के वर्णन भावों से ओतप्रोत होने के कारण सीधे मर्म का स्पर्श करते हैं ।

काव्य मनुष्य को संकुचित घेरे से बाहर निकालता है । `वसुधैव-कुटुम्बकम्` के सिद्धान्तों को सब के समक्ष रखता है । शकुन्तला की विदा का दृश्य प्रत्येक गृहस्थ की कन्या के विदा का दृश्य बन जाता है । राम-सीता का प्रेम उन विशेष का न रहकर प्रेमी-प्रेमिका का बन जाता है ।

काव्य में अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन होता है उसका कारण कल्पना प्राचुर्य है और कल्पना-प्राचुर्य का कारण कवि की सौन्दर्य-प्रियता है । अपनी इस प्रिय वस्तु की रक्षा हेतु कवि ऐतिहासिक घटनाओं में भी परिवर्तन ला देता है । महाकवि कालिदास के `अभिज्ञान-शाकुन्तलम्` में नायक राजा दुष्यन्त के चरित्र की रक्षा हेतु दुर्वासा का शाप, दुष्यन्त द्वारा दी गयी अंगूठी का गिरना, और मछली का उसे निगलना -- सब कवि की ही कल्पना है, सत्य नहीं । किन्तु कवि की कल्पना इतिहास के सत्य में बाधा नहीं पहुंचाती है । क्योंकि कवि की स्वच्छन्दता वहीं तक वांछनीय है, जहां तक सत्य की हत्या नहीं होती है । यदि साहित्यकार राम को कोट पेण्ट में और हुमायूं को अकबर का बेटा बताये तो सत्य की हत्या करना हो जायगा[१] ।

सत्य को सुन्दर रूप में देखने के कारण ही आनन्दवर्द्धन ने कहा है कि कवि केवल इतिवृत्त का वर्णन करके सफल नहीं हो सकता है -- `न इति-वृत्तमात्रेण कविरात्मपदलाभः`[२] ।

कवि की कल्पना में सत्य की सत्ता अनिवार्य है । दोनों का घनिष्ट सम्बन्ध है । कवि की दृष्टि सौन्दर्य पर ही रहती है । वह सब वस्तुओं को सौन्दर्य से ही मण्डित करता है । जो सुन्दर वस्तु होती है उसके सौंदर्य

१- साहित्यिक निबन्ध -- डा० गणपति गुप्त पृष्ठ ४५

२- सा०द० प्र० परि०, पृष्ठ १८ से उद्धृत

को बढ़ा देता है और जो कुत्सित है उसके रूप-निर्माण में योग देता है। इसी कारण उसका सत्य ऐतिहासिक और वैज्ञानिक के सत्य से भिन्न होता है। वैज्ञानिक और ऐतिहासिक मानव-हृदय की भावनाओं की उपेक्षा करके ज्यों-की-त्यों बातों को सब के सम्मुख रख देता है, वह यह नहीं सोचता है कि पढ़ने वाले पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा। और कवि सत्य का प्रतिपादन तो करता है किन्तु उसे वैज्ञानिक और ऐतिहासिक के कटु सत्य की भांति अग्राह्य नहीं रहने देता है अपितु काव्य-कल्पना के मनोहर संयोग से उसे मधुर एवं ग्राह्य बना देता है। तात्पर्य यह है कि काव्य-सत्य वह सत्य है जिसका सौन्दर्य तत्व के साथ मणि-कांचन संयोग होता है। काव्य का यही सौन्दर्य तत्व काव्य-रस अथवा काव्यानन्द की आधारभूमि है, उसकी प्रतिष्ठा है। इस प्रकार काव्य का सत्य विज्ञान अथवा इतिहास के सत्य से बाह्याभिव्यक्ति में भिन्न हो सकता है परन्तु वह असत्य कदापि नहीं कहा जा सकता है, वह तो विश्वजनीन होने के कारण उत्कृष्टतर सत्य होता है। यदि उसमें मिथ्या तत्व होता, कोई उपदेश न होते और वह मानव के हितार्थ न होता तो कोई भी व्यक्ति उसका अध्ययन करने के लिए प्रयत्नशील न होता। काव्य के प्रयोजन हमारे जीवन से कितने अधिक सम्बन्धित हैं इसमें कोई भी सन्देह नहीं कर सकता है। अतः काव्य में मिथ्या तत्व मान कर उसकी अवहेलना करना कदापि उपयुक्त नहीं है।

कवि की विशेषता होती है कि जिस वस्तु को हम अपने सामान्य जीवन में छोड़ देते हैं, उसी को कवि अपनी प्रतिभा से अलौकिक रूप दे देता है। वही शब्द और वही अर्थ होते हैं जिनका लोग आपस में प्रयोग करते हैं, वही वस्तु होती है जो सर्वसाधारण की दृष्टि में तुच्छ प्रतीत होती है किन्तु वे ही सब वस्तुएं कवि के हाथ में पड़ कर निखर आती हैं।

काव्य का साधारणतया अर्थ 'कवेः कर्म काव्यम्' लिया जाता है। प्रजापति के बाह्य-जगत् के समान कवि भी अन्तः जगत् का निर्माण करता है जिसमें भावनाओं की प्रधानता होती है और जो काव्य-जगत् कहलाता है। इस जगत् का निर्माण भावोद्रेक के फलस्वरूप होता है। आदि कवि वाल्मीकि अपने काव्य की रचना तब तक न कर सके जब तक कि वह क्रौञ्च

पक्षी को बाण से बिद्ध देख कर भाव विह्वल न हो उठे । उनके शोक ने ही उन्हें काव्य- प्रणयन की प्रेरणा दी । तभी तो आनंदवर्धन ने `शोक: श्लोकत्वमागत:` कहा है[१] ।

इस प्रकार काव्य की जितनी अधिक उपयोगिता है एवं सुनने में जितना सरल प्रतीत होता है उतना ही उसका स्वरूप आचार्यों के मतभेद होने के कारण अस्पष्ट है । यद्यपि संस्कृत आचार्य प्रारम्भ से ही उसके स्वरूप विवेचन में प्रयत्नशील रहे हैं किन्तु उन आचार्यों ने काव्य-स्वरूप के जो लक्षण दिए हैं वे अत्यन्त संक्षिप्त होने के कारण व्याख्या-सापेक्ष्य हैं । यही कारण है कि परवर्ती काल में उनकी अनेक टीकाएं-उपटीकाएं हुईं किन्तु विभिन्न व्याख्याकारों ने अपनी रुचि से प्रभावित होकर अपनी-अपनी विशिष्ट व्याख्याएं देकर इन काव्य की परिभाषाओं को अत्यन्त विवादास्पद बना दिया है । आज उनके आधार पर काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में किसी ऐसे निश्चय पर पहुंचना, जिस पर सब का एक मत हो, असम्भव है । तथापि प्रस्तुत निबन्ध के विषयभूत परवर्ती गद्य-काव्य के साहित्य का काव्यात्मक अध्ययन एवं मूल्यांकन करने के लिए काव्याधायक न्यूनतम तत्व अथवा तत्वों का विचार कर लेना आवश्यक है ताकि उसी को कसौटी मान कर हम साहित्य को उस पर कस कर देख जा सके कि वास्तविक काव्य की दृष्टि से उनका क्या मूल्य है । यद्यपि काव्य-लक्षण प्रस्तुत करने वाले आचार्यों की संख्या बड़ी है किन्तु सब के लक्षणों को उद्धृत करके पूर्ण सूची तैयार करना कोई उद्देश्य नहीं है,अत: कुछ प्रमुख शास्त्रकारों के लक्षणों को देकर काव्य के विभिन्न आवश्यक तत्वों का संग्रह किया जायगा ।

काव्य का लक्षण प्रस्तुत करने वाले प्राचीन आचार्यों में आचार्य भरत ने काव्य-सामान्य का लक्षण न देकर काव्य के विशेष रूप `नाटक` का ही लक्षण प्रस्तुत किया है । सम्भवत: उनकी दृष्टि में नाट्य-काव्य

१- ध्वन्यालोक -- १।५

काव्य के समस्त प्रकारों में सर्वश्रेष्ठ प्रकार था । इसीलिए उन्होंने नाट्य काव्य का ही लक्षण प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है --

" मृदुललितपदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनं जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम् ।
बहुकृतरसमार्गं सन्धिसन्धानयुक्तं स भवति शुभकाव्यं नाटकप्रेक्षकाणाम्

(नाट्यशास्त्र १६।१२८)

इस लक्षण से यह स्पष्ट होता है कि उनकी दृष्टि में काव्य भी नाटक के समान सर्वजन सुलभ एवं बोध्य होना चाहिए । उसे केवल कान्तपदावली, क्लिष्ट शब्दार्थों से रहित एवं विभिन्न रसों से पूर्ण होना चाहिए ।

यद्यपि रस-चर्वणा कराना काव्य और नाटक दोनों का कार्य है, किन्तु दोनों एक नहीं हैं, दोनों की विशेषताएं पृथक्-पृथक् हैं । अतः भरत का उपर्युक्त लक्षण नाटक के लिए तो सर्वथा उपयुक्त है किन्तु काव्य के लिए नहीं । उसमें उनके काव्य-सम्बन्धी विचार बहुत स्पष्ट नहीं हैं ।

उनके पर्याप्त अनन्तर होने वाले प्रसिद्ध काव्य शास्त्रकार आचार्य भामह के समय में काव्य और नाटक एक नहीं समझे गए । भामह के पूर्व ही काव्यशास्त्रियों के दो दल बन गये थे -- एक दल 'सौशब्द्य' को काव्य मान चुका था और दूसरा अर्थ व्युत्पत्ति को । भामह ने इन सब का समन्वय 'शब्दार्थौ सहितौ' करके किया --

रूपकादिरलङ्कारस्तस्यान्यैर्बहुधोदितः ।
न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम् ॥
सुपां तिङां च व्युत्पत्तिं वाचां वाञ्छन्त्यलङ्कृतिम् ।
तदेतदाहुः सौशब्द्यं नार्थव्युत्पत्तिरीदृशी ।
शब्दाभिधेयालङ्कारभेदादिष्टं द्वयं तु नः ॥
शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् ॥

(काव्यालङ्कार १।१३-१६)

उनकी परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह काव्य की स्थिति शब्द या केवल अर्थ में नहीं अपितु शब्द और अर्थ दोनों ही में मानते हैं । 'सहितौ' शब्द को स्पष्ट करने की उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी । वैसे तो आपस के वार्तालाप में निकले हुए वाक्यों में भी शब्द और अर्थ का साहित्य रहता है अन्यथा समझने वाले के लिए वाक्य का कोई मूल्य ही न

रह जाय, वह किसी भी शब्द-समूह से कुछ भी अर्थ ग्रहण कर सकता है किन्तु उसे काव्य का नाम नहीं दिया जाता । क्यों नहीं दिया जाता ? -- इस प्रश्न का समाधान भामह ने नहीं किया । अन्य विद्वानों ने भामह की परिभाषा की इस कमी को 'वक्रता', 'रमणीयता' आदि शब्द रख कर दूर करने की चेष्टा की है । यद्यपि भामह का तात्पर्य 'सहितौ' का यही है किन्तु उन्होंने उसको स्पष्ट नहीं किया है । यही आलोचकों के आलोचना का विषय बन गया । डा० नगेन्द्र ने उनकी परिभाषा में अनिश्चित और अतिव्याप्ति दोष माना है । अनिश्चित दोष इसलिए है कि उनके 'साहित्य' का स्वरूप स्पष्ट नहीं है और अति-व्याप्ति दोष इसलिए है कि शब्द और अर्थ का सहभाव प्रत्येक शब्द में होता है किन्तु हर एक शब्द काव्य नहीं हो जाते[1] ।

उनकी परिभाषा के आवश्यकता से अधिक सूक्ष्म हो जाने के कारण काव्य का स्वरूप पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो पाता है । उन्होंने अपने काव्य में शब्दार्थ को काव्य का शरीर और अलंकार को उसका महत्वपूर्ण अंग बताया है ।

दण्डी ने भामह की भाँति काव्य को 'शब्दार्थ का साहित्य नहीं बताया है । उन्होंने काव्यत्व की कल्पना शब्द में ही की है --

तैः शरीरं च काव्यानामलङ्कारास्च दर्शिताः ।
शरीरं तावदिष्टार्थ-व्यवच्छिन्ना पदावली ॥

-- काव्यादर्श १।१०

उनकी परिभाषा का 'पदावली' शब्द का प्रयोग इसी ओर संकेत करता है । यद्यपि उन्होंने शब्द को प्रधानता दी है किन्तु वह अर्थ की सहकारिता को भुला नहीं सके --'इष्टार्थ' शब्द का प्रयोग इसीलिए किया गया है । जिन 'सहितौ' की व्याख्या भामह न कर सके उसकी व्याख्या दण्डी ने की है -- ऐसा सूक्ष्म निरीक्षण से ज्ञात होता है । कवि का इष्टार्थ -- मनोरम हृदयाह्लादक अर्थ -- होता है उससे युक्त

1- भा० का०शा० भू० -- डा० नगेन्द्र पृष्ठ २०२

भी अनुरूप का पदावली होनी चाहिए, ऐसी उनकी मान्यता है । ऐसा भी तभी सम्भव हो सकता है जब ऐसा मनोरम अर्थ देने में शब्द भी सहायक हो ।

वामन ने 'काव्यशब्दोऽयं गुणालङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते भक्त्या तु शब्दार्थमात्रवचनोऽत्र गृह्यते' (काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति १।१) कह कर काव्य में शब्द और अर्थ को समान महत्त्व दिया है । यद्यपि भामह की भांति 'सहित' शब्द का प्रयोग नहीं किया है किन्तु वह शब्दार्थ का साहित्य काव्य में आवश्यक मानते हैं । शब्दार्थ का यह साहित्य गुण और अलंकार से अलंकृत होना चाहिए । परिभाषा में अलंकार का अर्थ सौन्दर्य से है और यह सौन्दर्य दोष के त्याग और गुण के ग्रहण करने से आता है --

काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात् ।।१।। सौन्दर्यमलङ्कारः ।।२।।
स दोषगुणालङ्कारहानादानाभ्याम् ।।३।।
(काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति)

रुद्रट की काव्य-परिभाषा भामह जैसी है --
'शब्दार्थौ काव्यम्' । (काव्यालंकार २।१)

उन्होंने केवल 'सहितौ' शब्द का प्रयोग नहीं किया है और काव्य में रस को महत्वपूर्ण स्थान दिया है --

उज्ज्वलदुज्ज्वलवाक्प्रसरः सरसं कुर्वन्महाकविः काव्यम् ।
स्फुटमाकल्पमनल्पं प्रतनोति यशः परस्यापि ।।
(काव्यालंकार १।४)

आनन्दवर्धन की दृष्टि में भी काव्यत्व शब्द और अर्थ के साहित्य में है, इस कथन की पुष्टि उनके काव्य के विशिष्ट रूप ध्वनि-काव्य के लक्षण से हो जाती है --

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ।।
(ध्वन्यालोक १।१३)

इस कारिका के अतिरिक्त ध्वन्यालोक में आयी अन्य कारिकाओं से भी पुष्टि हो जाती है।[1]

अन्य आचार्यों की भांति उन्होंने भी रस के अतिरिक्त गुण और अलंकारों से अलंकृत काव्य का होना बताया है --

'काव्यस्य हि ललितोचितसन्निवेशचारुणः'

(१।२ की वृत्ति)।

आनंदवर्धन के 'ललित' शब्द से तात्पर्य गुणालंकार से ही है जैसा अभिनव गुप्त ने इस पद की वृत्ति में स्पष्ट किया है --

'ललितशब्देन गुणालङ्कारानुग्रहमाह' (१।२ की वृत्ति)

इस प्रकार आनंदवर्धन ने भी काव्य का शरीर शब्दार्थ माना किन्तु उसकी आत्मा सहृदय-हृदय-श्लाघ्य अर्थ बताया।

कुन्तक ने काव्य के सम्बन्ध में --

'शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी ॥

(वक्रोक्ति जीवित १।७)

कहकर काव्यत्व गुणालंकार से युक्त शब्द और अर्थ के सम्मिलित रूप में ही स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में यह शब्द और अर्थ का सम्बन्ध कभी अलग नहीं हो सकता है जैसे तिल से तेल का सम्बन्ध अलग नहीं हो सकता है --

'शब्दार्थौ काव्यम्, वाचको वाच्यश्चेति द्वौ सम्मिलितौ काव्यम्।
तस्माद् द्वयोरपि प्रतितिलमिव तैलं तद्विदाह्लादकारित्वं
वर्तते न पुनरेकस्मिन्।' (१।७ की व्याख्या)

१- 'सोऽर्थस्तद् व्यक्ति सामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन।
यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थौ महाकवेः ॥१।८
तत्परावेव शब्दार्थौ यत्र व्यङ्ग्यं प्रति स्थितौ।
ध्वनेः स एव विषयो मन्तव्यः सङ्करोज्झितः ॥१।१३
विविधवाच्यवाचकरचनाप्रपञ्चचारुणः
काव्यस्य स एवार्थः सारभूतः।१।५ की वृत्ति
'शब्दार्थशरीरं काव्यमिति यदुक्तं तत्र
शरीरग्रहणादेव केनचिदात्मना तदनुप्राणकेन भाव्यमेव।' १। अभिनव वृत्ति

उन्होंने कहा है कि यह साहित्य गुणालंकृत होना चाहिए और गुणालंकार का साहित्य मिश्रवद् होता है --

समसर्वंगुणौं सन्तौ सुहृदाविव सङ्गतौं ।
परस्परस्य शोभायै शब्दार्थौं भवतो यथा ।।

उन्होंने काव्य के शब्दार्थ का स्वरूप स्पष्ट किया है । उन्होंने कहा कि काव्य में अनेक पर्यायवाचक शब्दों के होते हुए भी उन सब की शोभा विलक्षण रूप से अर्थ को जो प्रकाशित कर सके वही शब्द और सहृदय को आनन्दित करने वाला स्वभाव से सुन्दर अर्थ का ग्राह्य है --

शब्दो विवक्षितार्थैकवाचकोऽन्येषु सत्स्वपि ।
अर्थ: सहृदयाह्लादकारिस्वस्पन्दसुन्दर: ।।१।९

शब्द और अर्थ दोनों को ही उत्कृष्ट होना चाहिए । भली प्रकार प्रकाशित करने में समर्थ शब्द के अभाव में उत्तम चमत्कारी अर्थ स्वरूपत: स्फुरित होने पर भी निर्जीव है और शब्द भी वाक्योपयोगी अर्थ के अभाव में भार स्वरूप है --

"तथा चार्थ: समर्थवाचकोऽसद्भावे स्वात्मना
स्फुरन्नपि मृतकल्प एवावतिष्ठते शब्दोऽपि
वाक्योपयोगि वाच्यासम्भवे वाच्यान्तरवाचक:
सन् वाक्यस्य व्याधिभूत: प्रतिभातीति ।"

(व०जी० पृ० ३६)

इस साहित्य में शब्द अर्थ-गौरव के अनुरूप होते हैं और अर्थ शब्द-सौन्दर्य के अनुरूप । दोनों के बीच न्यूनाधिक्य या तारतम्य नहीं रहता है । इससे साहित्य की अनिर्वचनीय मनोहारिणी स्थिति हो जाती है --

साहित्यमनयो: शोभाशालितां प्रति काप्यसौ ।
अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्यवस्थिति: ।।१।१७

(व०जी०).

यदि शब्दार्थ के साहित्य का महत्त्व न माना जाता तो उसकी व्याख्या में काव्यत्व का व्यभिचार होने लगता। कुन्तक की परिभाषा में साहित्य का भाव न स्पष्ट होने के कारण डा० नगेन्द्र ने इसकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से की है[1]।

मम्मट की दृष्टि से भी सहृदयाह्लादकारित्व अथवा रस-व्यंजकत्व शब्दार्थ-युगल में है, पृथक् रूप में नहीं। शब्दार्थ के साहित्य में काव्यत्व की कल्पना कोई नवीन विषय नहीं है जैसा कि अभी देखा जा चुका है। कुछ आचार्यों ने केवल शब्द को ही काव्य माना है-- यह भी देख चुके हैं, किन्तु अभी तक किसी ने इस विषय में वाद-विवाद नहीं उठाया। लेकिन मम्मट की काव्य-परिभाषा के 'शब्दार्थौ' को लेकर रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ ने मम्मट का विरोध किया। उनका कहना है कि शब्दार्थ-युगल-काव्य मानने का कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि 'काव्य पढ़ा जाता है,' 'काव्य सुना लेकिन अर्थ नहीं जाना', 'काव्य से अर्थ जाना जाता है'-- ऐसा लोग व्यवहार करते हैं[2]। अतः शब्द की प्रधानता होने के कारण शब्द काव्य है।

अपनी बात की पुष्टि के लिए जगन्नाथ ने शब्द और अर्थ दोनों को काव्य मानने वालों के विचारों को रख-रखकर के काटा है। यदि यह कहा जाए कि काव्य उसको कहना चाहिए जिससे रस-बोध हो, आह्लाद हो, और आह्लाद को देने की क्षमता शब्दार्थ दोनों में समान है-- तो उसका समाधान करते हुए जगन्नाथ कहते हैं कि यदि रस को उद्बुद्ध करने वाली जो भी चीज़ हो, उसको काव्य माना जायेगा तो राग भी काव्य हो जाएगा[3] और नाटक के जितने अंग-नृत्य, वाद्य, नेपथ्यादि हैं वे सभी काव्य हो जावेंगे।

शब्दार्थ-युगल को काव्य न मानने के लिए जगन्नाथ का कथन है कि किसी भी चीज़ में धर्म दो प्रकार से रहता है --

----

१- भा०का०शा० भू०-- डा० नगेन्द्र पृष्ठ २०२-३

२- रस गंगाधर -- 'चन्द्रिका' टीका पृष्ठ १४

३- ,, ,, ,, पृष्ठ १६

(१) व्यासज्य-वृत्ति से अर्थात् समूह में रहे, अलग-अलग न रहे ।
जैसे द्वित्व बहुत्व आदि । और
(२) प्रत्येक पर्याप्त धर्म से - समूह में रहे और अलग भी रहे ।
जैसे मनुष्यत्व ।

यदि व्यासज्य-वृत्ति से शब्दार्थ -युगल -काव्य माना जायगा तो किसी श्लोक के न समझने पर वह काव्य नहीं हो सकता किन्तु 'काव्यं श्रुतमर्थो नावगत:' यह लोकगत व्यवहार है और दुनिया भी इस दृष्टि से शब्द को काव्य मानती है और यदि प्रत्येक पर्याप्त-धर्म से काव्य माना जाय तो एक श्लोक में शब्दगत-काव्य और अर्थगत-काव्य-- दो तरह के काव्य हो जायेंगे, एक साथ काव्य न हो सकेगा[१] । नागेशभट्ट ने जगन्नाथ के इन विचारों को काटा है । उन्होंने बताया है कि लोकोत्तर आह्लाद शब्द से ही नहीं, अर्थ से भी होता है । जिस आह्लाद को जगन्नाथ ने 'रमणीयता' कहा है उसका कारण शब्द के अतिरिक्त अर्थ भी है ।
व्यासज्य वृत्ति से ही शब्दार्थ -युगल काव्य होगा -- ऐसा नागेश भट्ट ने माना है । नागेश ने जगन्नाथ की परिभाषा को लेकर शब्दार्थ युगल को काव्य होना सिद्ध कर दिया है । उनका कहना है कि पंडितराज जगन्नाथ ने जिस शब्द को काव्य माना है, उसमें उन्होंने रमणीयार्थ की कल्पना की है । अत: जगन्नाथ स्वयं काव्य में शब्दार्थ की सहकारिता को भुला नहीं सके हैं । जगन्नाथ की इस मान्यता को प्रमाण के अभाव में शब्दार्थ काव्य नहीं हो सकता है -- नागेश ने निरर्थक सिद्ध कर दिया । उन्होंने शब्द प्रमाण रूप में प्राचीन आचार्यों एवं मम्मट के विचारों को प्रस्तुत किया । यह दूसरी बात है कि जगन्नाथ इस शब्द-प्रमाण को नहीं मानते हैं । क्योंकि उनका कहना है कि शब्द प्रमाणमान्य है किन्तु वे आप्त के शब्द होने चाहिए न कि वादी के । मम्मट उनके वादी थे ।

जिस प्रकार जगन्नाथ ने 'काव्यम् उच्चै: पठ्यते', 'काव्यं श्रुतम् अर्थो न ज्ञात:' आदि के उदाहरण लोक-व्यवहार की दृष्टि से दिए जिसमें

१- रस गंगाधर --'चन्द्रिका' टीका पृष्ठ १७

शब्द की प्रधानता है इसी प्रकार नागेश ने भी लोक व्यवहार की दृष्टि से दोनों की प्रधानता बताई है --'आर्थ्यं तत्', शाब्दं कुरुम् ।' इसके अतिरिक्त इन्होंने वेद और 'व्याकरण' का उदाहरण दिया जिसमें शब्द और अर्थ दोनों को समान महत्व मिला है -- तदधीते तद्वेद' व्याकरणं वेत्ति अधीतेति वैयाकरण: ।

नागेश का यह कथन तर्कपूर्ण है और इसकी सत्यता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता है । क्योंकि केवल शब्द को काव्य नहीं माना जा सकता है । शब्द के साथ अर्थ का और अर्थ के साथ शब्द का सामञ्जस्य अलौकिक आनन्द देने में अथवा रसास्वादन कराने में अवर्णनीय योग देता है --

शब्दप्रमाणवेद्योऽर्थो व्यनक्त्यर्थान्तरं यत: ।
अर्थस्य व्यंजकत्वे तद् शब्दस्य सहकारिता ।।३।२३
तद् युक्तो व्यंजक: शब्दो यत् सोऽर्थान्तरयुक् तथा ।
अर्थोऽपि व्यंजकस्तत्र सहकारितया मत: ।।२।२०
(काव्य प्रकाश)

इस बात का समर्थन न केवल मम्मट ने ही अपितु प्रारम्भ से ही प्राचीन आचार्य करते आए हैं । जो आचार्य 'कवि-कर्म काव्यमिति' कह कर शब्द में ही काव्यत्व मानते हैं, उनमें भी कवि शब्द-विशेष से अर्थ-विशेष का प्रकाशन करता है । उदाहरणार्थ 'गङ्गायां घोष:' का 'घोष' शब्द व्यंग्यार्थ विशेष का प्रकाशन करता है । इस प्रकार कवि का कर्म 'अर्थ प्रकाशन' भी हो जाता है । अत: इस दृष्टि से जो आचार्य काव्यत्व शब्द में मानते हैं, वह केवल लाक्षणिक दृष्टि से है । वस्तुत: काव्यत्व शब्द और अर्थ के साहित्य में ही सम्भव है ।

इस प्रकार यह निश्चित हो जाता है कि काव्यत्व शब्द और अर्थ के मंजुल सामञ्जस्य में निहित है ।✓

इस मंजुल सामञ्जस्य को लाने वाली वस्तु कवि की ही उक्ति

होता है, जन साधारण का नहीं । क्योंकि कवि की उक्ति कलात्मक होने के कारण असाधारण होती है । उसमें सरसता रहती है, रमणीयता रहती है तथा आकर्षण की शक्ति रहती है । यह सामर्थ्य साधारण बातचीत में नहीं होता । अतः तो कुन्तक ने काव्य का प्राण-तत्त्व 'वक्रोक्ति' माना है । उनकी यह वक्रोक्ति सामान्य-कथन से भिन्न 'विचित्र अभिधा' होता है -- 'शास्त्रादिप्रसिद्धशब्दार्थोपनिबन्धव्यतिरेकि' 'प्रसिद्धप्रस्थानव्यतिरेकि ।' 'विचित्र अभिधा' से तात्पर्य विशिष्ट अभिधा अर्थात् कथन होता है । यद्यपि 'वक्रोक्ति' अलंकार होता है तथा अधिकांश विद्वानों ने इसी रूप में इसको ग्रहण भी किया है किन्तु कुन्तक का यहां तात्पर्य विशिष्ट अलंकार से न होकर 'वैदग्ध्य-भङ्गी-भणिति' से है जो शब्दार्थ को सजाने के कारण अलंकार के नाम को सार्थक करता है --

> उभावेतावलङ्कार्यौ तयोः पुनरलङ्कृतिः ।
> वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते ।।१।१०
>
> (व०जी०)

वैदग्ध्य- भङ्गी- भणिति को आचार्य कुन्तक ने स्वयं इस प्रकार स्पष्ट किया है --

> '... वैदग्ध्यं विदग्धभावः, कविकर्मकौशलं तस्य भङ्गी विच्छित्ति तया भणितिः ।'
>
> (१।१० की वृत्ति, व०जी०)

किन्तु इस 'भङ्गी-भणिति' का तात्पर्य उनका शब्द-क्रीड़ा अथवा अर्थक्रीड़ा से नहीं है । उसमें उन्होंने तीन वस्तुओं का होना परमावश्यक माना है --

(१) उक्ति वैचित्र्य

(२) कवि-कौशल

(३) सहृदयों के हृदय के प्रसादन की क्षमता ।

इस प्रकार उन्होंने 'वक्रोक्ति' में गुण आदि अन्य प्रवृत्तियों को स्थान नहीं दिया है। उन्होंने न केवल वक्रोक्ति का क्षेत्र ही सीमित नहीं रखा है अपितु छः प्रकार की वक्रता --

१- वर्णविन्यास की वक्रता

२- पद पूर्वार्द्ध की वक्रता

३- प्रत्यय की वक्रता

४- वाक्य की वक्रता

५- प्रकरण की वक्रता, और

६- प्रबन्ध की वक्रता

बताकर इस वक्रोक्ति में काव्य के सभी अंगों को ले लिया है। आनंदवर्द्धन ने जिस प्रकार काव्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म अवयव से लेकर व्यापक से व्यापक अवयव को ध्वनि के अन्दर रखके सुप्, तिङ्, लिङ्, वचन, कारक आदि में 'ध्वनि' का चमत्कार दिखाया है, उसी प्रकार कुन्तक ने काव्य के सभी अवयवों में 'वक्रता' का चमत्कार दिखाया है। उन्होंने अपनी 'वक्रता' की संभावना अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तीनों व्यापारों के अन्तर्गत दिखायी है। उनकी वक्रोक्ति ध्वनि को भी अपने में अन्तर्भूत करने वाला अर्थात् उससे अधिक व्यापक तत्त्व है।

यह 'वक्रता' कुन्तक की नवीन खोज की वस्तु नहीं है अपितु इसका महत्त्व प्रारम्भ से ही था। भामह ने अतिशयोक्ति द्वारा 'वक्रोक्ति' तत्त्व की ओर संकेत किया है और उसका सर्वत्र राज्य बताया है --

निमित्ततो वचो यत्तु लोकातिक्रान्तगोचरम् ।
मन्यतेऽतिशयोक्तिं तामलंकारतया मता ॥२।८१।

+ + +

सैषा सर्वत्र वक्रोक्ति .... ॥२।८५
कोऽयमलंकारोऽनया विना ॥२।८५

(काव्यालंकार)

दण्डी भी वक्रोक्ति की अवहेलना नहीं करते हैं। वामन की 'विशिष्टपदरचनारीतिः' (१।२।७ का०सू०.वृत्ति) भी कुन्तक के वक्रोक्ति-

जो किसी की भी विद्यमानता न होगी कि कथन का वक्र अर्थात् विशिष्ट का अनूठा प्रकार काव्य का प्रधान सौन्दर्याधायक तत्त्व महान आह्लादकारी तत्त्व है, और जिस काव्य में शब्दार्थ का यह वक्र प्रकार न होगा उसका काव्यत्व ही क्या होगा ।

जहाँ काव्य में शब्दार्थ का साहित्य तथा कवि का असाधारण कलापूर्ण शक्ति का होना आवश्यक माना गया है, वहाँ काव्य में दोषों का अभाव, गुणों का सद्भाव एवं अलंकारों का समुचित प्रयोग भी प्रायः सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है । काव्य में आए हुए दोष उसके सौन्दर्य को नष्ट कर देते हैं, गुण सौन्दर्य को लाते हैं और अलंकार उस सौन्दर्य में चार चाँद लगा देते हैं । दोष क्योंकि सौन्दर्य अथवा रस का अपकर्ष करने वाले हैं अतः उनका अभाव क्या देहवादी क्या आत्मवादी सभी को मान्य है ।

प्रारम्भ में दोष और गुण का स्वरूप स्पष्ट न था । कभी गुण को दोषों का विपर्यय माना जाता तो कभी दोष को गुणों का विपर्यय । भरत ने गुण का स्वरूप बताते हुए कहा है कि वे दोष के विपरीत होते हैं --

एते दोषास्तु विज्ञेयाः सूरिभिर्नाटकाश्रयाः ।
एत एव विपर्यस्ताः गुणाः काव्येषु कीर्तिताः ।।
(१७।९२)

'गुणविपर्ययादेषाम्' आदि से स्पष्ट है कि वे दोष को अभावात्मक और गुणों को भावात्मक स्थिति मानते हैं जिसकी आलोचना अग्निपुराण में की गयी है --

'न च वाच्यं गुणो दोषाभाव एव भविष्यति ।
गुणाः श्लेषादयो दोषा गूढार्थाद्याः पृथक्कृताः ।।
(१०।२)

वामन ने दोषों को गुणों का विपर्यय बताया --'गुणविपर्ययात्मानो दोषाः ।' (का०सू० वृ० २।१।१) किन्तु भरत और वामन के

भरत की भांति दण्डी भी दोष के प्रति सहिष्णु नहीं हैं । यही कारण है कि वे दोष का नित्य और अनित्य विभाजन नहीं करते हैं क्योंकि ऐसा करने से काव्य में कहीं-कहीं दोष की स्थिति भी सम्भव हो जाती है और दण्डी उसका भाग बिलकुल नहीं मानते । उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि अमुक अमुक दोष हैं और ये काव्य में वर्जनीय हैं -- "इति दोषा दशैवैते वर्ज्याः काव्येषु सूरिभिः ।" (काव्यादर्श ३।१।२६) मनुष्य में जैसे कानापन एवं अज्ञान दोष होता है वैसा काव्य में दोष उन्होंने नहीं स्वीकार किया है अपितु जैसे शरीर में कोढ़ उसके शरीर को विकृत कर देता है और मनुष्य तिरस्कृत हो जाता है तथा घृणा का विषय बन जाता है वैसे ही जिस काव्य में दोष होता है वह अग्राह्य हो जाता है --

तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथञ्चन ।
स्याद्वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम् ॥
(काव्यादर्श १।७।।)

उनका कहना है कि सत्प्रयुक्त वाणी कामधेनु की भांति मनोवांछित फल देने वाली होती है और दुष्प्रयुक्त वाणी अर्थात् दोषों से भरी वाणी कवि की मूर्खता की परिचायक होती है --

गौर्गौः कामदुघा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः ।
दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्वं प्रयोक्तुः सैव शंसति ॥
(काव्यादर्श १।६)

यद्यपि उन्होंने दोष की परिभाषा नहीं दी है किन्तु उन्हें उसके स्वरूप का ज्ञान था --

काव्ये दोषाः गुणाश्चैव विज्ञातव्या विचक्षणैः ।
दोषाः विपत्तये तत्र गुणाः संपत्तयेयथा ॥[१]

१- डा० नगेन्द्र ने इस श्लोक को दण्डीकृत माना है यद्यपि काव्यादर्श में यह श्लोक अप्राप्य है ।

वामन भी दोष को काव्य में स्थान देना बिल्कुल नहीं पसन्द करते हैं। क्योंकि उनकी दृष्टि में काव्य का ग्रहण अलंकार से है और अलंकार का अर्थ सौन्दर्य है और यह सौन्दर्य गुण के ग्रहण और दोष के त्याग से आता है --

"स दोष गुणालङ्कारहानादानाभ्याम् ।।३।।"

इस प्रकार उनके दोष काव्य-सौन्दर्य के बाधक हैं। इन्हीं के त्याग के लिए एक अलग से अधिकरण रक्खा है। जो वामन ने स्वयं स्वीकार किया है -- "काव्यशरीरे स्थापिते काव्यशोभाकराणां त्यागाय दोषा विज्ञातव्या इति दोषदर्शनं नामाधिकरणमारभ्यते।[1] १।१।१

(काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति)

उन्होंने दोष के स्थूल और सूक्ष्म भेद करके दोनों को ही काव्य में स्थान नहीं दिया है। उनकी दृष्टि में यद्यपि सूक्ष्म-दोष अधिक विघ्न नहीं पैदा करते हैं किन्तु उनका भी काव्य में निराकरण होना चाहिए। इसीलिए उन्होंने दोष के नित्य और अनित्य भेद भी नहीं किए।

किन्तु कुछ ऐसे भी आचार्य हैं जिन्होंने दोष के दो वर्ग -- नित्य और अनित्य करके उनके प्रति उदार और व्यापक दृष्टि रक्खी है। भामह ने बताया है कि कहीं - कहीं दोष गुण बन जाते हैं जैसे 'गच्छ गच्छ' में पुनरुक्त दोष है किन्तु यह भय, दुःख, ईर्ष्या की स्थिति के चित्रण में सहायक होता है। श्रुतिकटु दोष वीररस के रसास्वादन में सहृदय को चरम सीमा पर पहुंचाता है। उस समय ऐसा दोष उसी प्रकार शोभित होता है जैसे माला के बीच नीला पलाश या कान्ता के नेत्रों में लगा हुआ अञ्जन --

सन्निवेशविशेषात्तु दुरुक्तमपि शोभते।
नीलं पलाशमाबद्धमन्तराले स्रजामिव ।।१।५४।।
किञ्चिदाश्रयसौन्दर्याद् धत्ते शोभामसाध्वपि।
कान्ताविलोचनन्यस्तं मलीमसमिवाञ्जनम् ।।१।५५।।

१- सौकर्याय प्रपञ्चो विस्तरो दोषाणाम्। उद्दिष्टा लक्षिताश्च हि दोषाः सुज्ञाना परिहार्याः। २१ द्वितीय अधिकरण, प्रथम अध्याय, काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति
स्थूलाः पदपदार्थदोषास्तु ज्ञात्वा कविभिस्त्यक्तव्या इति तात्पर्यार्थः। २२ द्वितीय अधिकरण, प्रथम अध्याय, का०सू० वृ०।
* एते वाक्यवाक्यार्थदोषा दुष्टत्वं ज्ञातव्याः। २४, द्वि०अधि०प्र०अ०, का०सू०वृ०

किन्तु दोष के सम्बन्ध में भामह का विचार है जहाँ तक वे रस के घातक हैं, अन्यथा वे दोष में काव्य को निन्दनीय मानते हैं। उनकी दृष्टि में दुष्काव्य की रचना साक्षात् मृत्यु के समान है और वह कुपुत्र के समान लोगों की दृष्टि में निन्दनीय होता है --

> सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत् ।
> विलक्ष्मणा हि काव्येन दुःसुतेनेव निन्द्यते ।।
> नाकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा ।
> कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः ।।
>
> (काव्यालंकार १।११-१२)

ध्वनिवादी एवं रसवादी आचार्यों ने भी नित्य और अनित्य दो रूप माने हैं किन्तु उनके दोष का स्वरूप शब्द और अर्थ के आश्रित न होकर आत्मा 'रस' के आश्रित है। क्योंकि उनकी दृष्टि में काव्य का सौन्दर्य रस-चर्वणा में है। उनके दोष इसी का अपकर्ष करते हैं। भामह ने दोष के सम्बन्ध में जिस व्यापक तत्त्व की ओर संकेत किया है उसको पूर्ण रूप से निरूपित करने का श्रेय आचार्य महिम भट्ट को है जिनके पद-चिह्नों पर चलकर भोज मम्मटादि आचार्यों ने अपने दोष-स्वरूप की स्पष्ट विवेचना की है। दोष विषयक इस सूक्ष्म दृष्टिकोण को मम्मट ने मुख्यार्थहतिर्दोषः[1] इन शब्दों द्वारा स्पष्ट किया है। जितने भी प्रकार के दोष इन्होंने बताये हैं वे सब रस से सम्बन्धित हैं। रस के आश्रय से वाच्य भी मुख्य हो जाता है क्योंकि वाच्य (शब्द-बोध्य) रस के साहचर्य से चमत्कारी हो जाता है। इस प्रकार जहाँ रस है वहाँ दोष रस का अपकर्ष करते हैं और जहाँ रस नहीं है वहाँ चमत्कारी अर्थ की प्रतीति के विघातक बनते हैं। रस और वाच्य के उपयोगी शब्दादि होते हैं क्योंकि उन्हीं से रस की अभिव्यंजना होती है, विभावादि शब्दों में ही वर्णित होते हैं अतः शब्दादि में भी दोष होते हैं। 'आदि' से मम्मट का तात्पर्य वर्ण एवं रचना से है।

१- मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद्वाच्यः ।
उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि सः ।।
-- का० प्र० ७।४९

`हति` का अर्थ अनुत्पत्ति अथवा नाश है न लिया जाय इसलिए मम्मट ने अपकर्ष का कर स्पष्ट कर दिया है --`हतिरपकर्षः।` क्योंकि अनुत्पत्ति अथवा नाश अर्थ लेने से जहां अनित्य दोष गुण का काम करते हैं वहां रसानुभव असंभव हो जायगा। रस के अपकर्ष से तात्पर्य है रस की अविलम्ब एवं उत्कट प्रतीति में विघ्न का उपस्थित होना और चित्रकाव्य में अर्थ की अविलम्ब एवं चमत्कारपूर्ण प्रतीति में विघ्न का उपस्थित होना। लौकिक अपकर्ष का उदाहरण-- "[illegible]ऽकाणो [illegible]:" बताया गया है।

यह विघात दो प्रकार से होता है --

१- साक्षात् रूप से -- जैसे रस-दोषों में स्वशब्द वाच्यत्व एवं रसापकर्ष होना,

२- परम्परया रूप से जैसे शब्द, अर्थ, वर्ण, रचना आदि के दोष-- इनमें कुछ की अर्थ प्रतीति नहीं हो पाती है, कुछ की विलम्ब से होती है, कुछ का वाक्यार्थ बोध नहीं हो पाता है, कुछ सहृदय को वैमुख्य एवं उद्विग्न करने वाले होते हैं, कुछ विरोध उपस्थित करते हैं, कुछ आनन्द का विघात कर देते हैं।[1]

मम्मट का यह दोष-लक्षण प्रायः सभी आचार्यों को मान्य हुआ।

पूर्वोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि इन आचार्यों की दृष्टि में दोष रस से सम्बन्धित होते हैं। अतः यदि दोष रस का उपकार करते हैं तो वे दोष न रह कर गुण बन जाते हैं। ऐसे दोषों को `अनित्य` कहा गया है।

इन आचार्यों की दृष्टि में रस दोष अधिक हैं। इन लोगों ने कवियों को इस दोष से बचने के लिए सावधान किया है।[2] ये दोष निम्नलिखित प्रकार के हैं :--

---

१- का० प्र०--झलकीकर की टीका सं०उ० पृ० २६५
२- ध्वन्यालोक ३।१८-२०, काव्यप्रकाश ७।६०-६२, साहित्य दर्पण ७।१२-१५

इस प्रकार रसवादी एवं ध्वनिवादी आचार्यों ने काव्य में नित्य और अनित्य दोष की विवेचना करके नित्य दोषों का सर्वथा अभाव बताया है क्योंकि वे सर्वदा रसास्वादन में विघातक बनते हैं । इसके विपरीत उन्होंने अनित्य दोषों को काव्य में स्थान दिया है क्योंकि वे कहीं-कहीं पर दोष न रह कर गुण भी बन जाते हैं । अतः यदि मम्मट ने अपने काव्य-लक्षण में `अदोषौ` शब्द का प्रयोग कर दिया तो कोई अनुचित नहीं किया जो उनकी परिभाषा कटु आलोचना का विषय बन गया ।

साहित्य दर्पणकार ने भी मम्मट की पूरी परिभाषा को दोषग्रस्त बताया । उन्होंने `अदोषौ` शब्द पर आक्षेप करते हुए कई तर्क रखे हैं --

१- उनका कहना है कि इस शब्द से उनकी परिभाषा `अव्याप्ति` दोष से ग्रस्त है । क्योंकि लक्षण सर्वव्यापी होना चाहिए किन्तु मम्मट का काव्य-लक्षण इस शब्द के प्रयोग से ` न्यक्कारो ह्ययमेव` जैसे ध्वनि-प्रधान उत्तम काव्य में घटित न होगा । अतः वह काव्य नहीं कहलायेगा । किन्तु यह बात नहीं है । इसे स्वयं मम्मट ने स्वीकार किया है ।

२- `अ` का अर्थ दर्पणकार ने `नहीं` से लिया है । उनका कहना है कि यदि ऐसे स्थलों के सम्बन्ध में (उपर्युक्त श्लोक में) यह कहा जाय कि जिस अंश में दोष है वह अंश काव्य का नहीं है और बाकी में उत्तम काव्य है तो यह बात ठीक नहीं । क्योंकि दोष सम्पूर्ण काव्य को दूषित करते हैं ।

३- सर्वथा निर्दोष काव्य असम्भव अथवा विरल होते हैं ।

४- यदि `न` का अर्थ `ईषत्` से लिया जायगा तो अर्थ होगा कि काव्य में थोड़े से दोष होना आवश्यक है । यदि किसी निपुण कवि में दोष न हुए तो उसकी रचना काव्य नहीं कहलायेगी ।

५- `सति संभवे ईषद् दोषौ` अर्थात् दोष की सम्भावना होने पर पर थोड़े-से दोष हो सकते हैं तो उसके सम्बन्ध में भी उपर्युक्त विचार ही होंगे ।

रस गंगाधरकार ने भी विश्वनाथ की भांति `अ` का अर्थ `रहित` से लिया है । उनका कहना है कि मम्मट की दृष्टि में दुष्ट काव्य हो

नहीं रहता है किन्तु 'दुष्ट काव्य है' -- इस प्रकार का लोक व्यवहार होता है -- इस तरह काव्य का प्रयोग दोष के साथ भी होता है। यदि कहा जाय कि यहां काव्यत्व का व्यवहार गौण रूप से हुआ है तो उसमें लक्षणा का कोई भी हेतु विद्यमान नहीं है जिससे गौण कहा जा सके --

'दुष्टं काव्यमिति व्यवहारस्य बाधकं विना लाक्षणिकत्वयोगात्'।[1]

'काव्यतत्त्व समीक्षा' में एन०एन० चौधरी ने भी मम्मट के इस शब्द के प्रयोग पर आक्षेप किया। उनका कहना है कि यद्यपि मम्मट का दोष से तात्पर्य रसापकर्षक है किन्तु उसे स्वरूपाधायक तत्त्व नहीं माना जा सकता है[2]।

मम्मट के दोष के सम्बन्ध में आचार्यों एवं आलोचकों ने गलत धारणाएं बना ली हैं। मम्मट 'अदोषौ' का अर्थ 'अभाव' से लेते हैं किन्तु उन्हीं दोषों का अभाव बताते हैं जो रस की प्रतीति में नित्य रूप से विघ्न उपस्थित करते हैं। और यह सर्वथा ठीक भी है क्योंकि यदि काव्य की आत्मा रस है और यदि दोष रस के विघातक हैं तो निश्चय ही नित्य रूप से रस का विघात करने वाले दोषों से काव्य का सर्वथा शून्य होना आवश्यक है या अनिवार्य रूप से वांछनीय है। क्योंकि काव्य के आत्मभूत रस का विघात हो ही जायगा तो वहां काव्यत्व किस प्रकार से रह सकेगा, यह सर्वं संवेद्य है।

जैसा अभी देख चुके हैं कि कहीं-कहीं दोष गुण भी बन जाते हैं। इस गुण का स्वरूप क्या है? दोष की भांति यह भी प्रारम्भ में अस्पष्ट रहा। यह बात न थी कि उन लोगों को उसके स्वरूप का ज्ञान ही न रहा हो। जहां दोषाभाव आवश्यक समझा गया वहां गुण की संगति की परमावश्यकता समझी गयी। दोष-परिहार ही गुण की महत्ता का सूचक है। इस तत्त्व की स्वीकृति में किसी भी आचार्य को विवाद नहीं है। मतभेद है तो उसके स्वरूप में। इसका कारण है

१- रसगंगाधर --'चन्द्रिका' टीका, पृष्ठ २१

२- काव्य तत्त्व समीक्षा पृष्ठ ३२

अध्वनिवादियों एवं ध्वनिवादियों की काव्य-विषयक-धारणा की भिन्नता । पूर्वध्वनिवादी आचार्यों की धारणा बाह्य थी । अतः उन्होंने गुणों को भी बाह्य तत्त्व से सम्बन्धित रक्खा । गुण को बाह्य शब्दार्थ-शरीर का शोभादायक धर्म एवं चारुत्व का हेतु स्वीकार किया । दण्डी ने --

काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते ।
ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते, कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति ।।२।२
काश्चिन्मार्गविभागार्थमुक्ताः प्रागप्यलंक्रियाः
साधारणमलंकारजातमन्यत् प्रदर्श्यते ।।२।३(काव्यादर्श)

कहकर गुणों को भी अलंकार जैसा काम करने वाला बताया । अतः उनकी दृष्टि में दोनों में कोई अन्तर नहीं है । गुण भी अलंकार की भाँति सीधे काव्य का उपकार करते हैं ।

वामन यद्यपि आत्म-तत्त्व की ओर पहुँच चुके थे किन्तु उन्होंने भी गुण को शोभा की उत्पत्ति का हेतु माना -- काव्यशोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः ।' किन्तु दण्डी की भाँति गुण और अलंकार को एक न कर के उन्होंने दोनों में अन्तर देखा । गुणों का कार्य केवल काव्य-सौन्दर्य पैदा करना है । यह कार्य अलंकार नहीं पैदा कर पाता है वह तो केवल उत्पन्न सौन्दर्य की वृद्धि करता है --

'ये खलु शब्दार्थयोर्धर्माः काव्यशोभां कुर्वन्ति ते गुणाः । ते ओजः प्रसादादयः । न यमकोपमादयः । कैवल्येन तेषामकाव्यशोभाकरत्वात्। ओजः प्रसादादीनां तु केवलानामस्ति काव्यशोभाकरत्वमिति ।'

इसी दृष्टि से उन्होंने गुण को नित्य कहा है --'पूर्वे नित्याः' (का०सू०वृ०३।१।३) और उन्हें शब्दार्थ का धर्म बताया है ।

उद्भट ने गुण को चारुत्व हेतु मान कर संघटनाश्रित बताया है --
'चारुत्वहेतुत्वेऽपि गुणालंकाराणां... संघटनाश्रया गुणाः'[१] ।

१- प्रतापरुद्र--यशोभूषणम् --रत्नापण टीका पृष्ठ ३३७
(भा०का०शा० पर०-- डा० नगेन्द्र से उद्धृत)

"उद्भटादिभिस्तु गुणालंकाराणां प्रायशः साम्यमेव सूचितम् । विषयमात्रेण भेदप्रतिपादनात् । संघटनाधर्मत्वेन चेष्टेः[1] ।

किन्तु आनंदवर्धन एवं उनके अनुयायियों ने उसे न संघटना धर्म माना न शब्दार्थ का धर्म बताया ।

वामन ने गुण को रीति से सम्बन्धित करके--

विशिष्टा पदरचना रीतिः ।१।२।७

विशेषो गुणात्मा ।१।२।८

जो उसे संघटनाधर्म माना था तथा एक प्रकार से गुण और रीति को अभिन्न सिद्ध किया था उसकी कटु आलोचना आनंदवर्धन ने की है । उन्होंने गुण और रीति के सम्बन्ध में तीन विकल्प रखे हैं --

(१)क्या रीति और गुण अभिन्न हैं? -- वामन मानते हैं ।

(२) या गुण रीति के आश्रित हैं ? -- उद्भट मानते हैं ।

(३)क्या रीति गुणाश्रित है ?-- आनंदवर्धन मानते हैं ।

आनंदवर्धन और अभिनव गुप्त का कहना है कि संघटना(रीति) और गुण को एक अथवा गुण को रीति के आश्रित मानने से गुणों का अनियत विषय हो जाएगा[2] । क्योंकि शृंगार में माधुर्य गुण अवश्य रहता है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उसमें दीर्घ समास न हो । अतः रीति तो अनियत है और गुण-नियत है ।

उनकी दृष्टि में गुण रस के केवल धर्म हैं । रस आत्मा है, उसी को अंगी भी कहा गया है --

"तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः ।"

१- अलंकारसर्वस्व --रुय्यक पृष्ठ ६

२-"यदि गुणाः संघटना चेत्येकं तत्त्वं, संघटनाश्रया वा गुणाः , तदा संघटनाया इव गुणानामनियतविषयत्वप्रसंगः ।गुणानां हि माधुर्यप्रसाद-प्रकर्षः करुणविप्रलम्भशृंगारविषय एव । रौद्राद्भुतादि विषयमोजः । माधुर्यप्रसादौ रसभावतदाभासविषयावेव । इति विषयनियमो व्यवस्थितः । संघटनायास्तु स विघटते । तथाहि शृंगारेऽपि दीर्घ-समासा दृश्यते, रौद्रादिष्वसमासा चेति ।"

--ध्वन्यालोक टीका ३ उद्योत कारिका ६

किन्तु वे गुण को संघटना का धर्म न मानकर संघटना को गुण के आश्रित बताते हैं । रीति रस को अभिव्यक्त करती है चार गुण रीति के आन्तरिक तत्व हैं तथा समासादि रीति के बाह्य तत्व हैं -- जैसा आनंदवर्धन ने कहा है --

"गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ती माधुर्यादीन् व्यनक्ति सा । रसान् ।"
-कारिका ६ ध्वन्यालोक ३ उद्योत

इस प्रकार इन आचार्यों ने गुणों को शब्दार्थ के स्थान पर रस से सम्बद्ध किया अर्थात् रसों में गुणों का स्थान निर्धारित किया --

<u>गुण</u>	<u>रस</u>
माधुर्य गुण -	शृंगार, विप्रलम्भ और करुण में उत्तरोत्तर अधिक--आनंदवर्धन और अभिनवगुप्त ।
	शृंगार, करुण, विप्रलम्भ और शान्त --मम्मट
	संभोग, करुण, विप्रलम्भ और शान्त --पं० विश्वनाथ
	संभोग, करुण, विप्रलम्भ और शान्त --पंडितराज जगन्नाथ

इस गुण में मम्मट, विश्वनाथ और जगन्नाथ ने रसों की स्थिति एक सी रक्खी है किन्तु इन सब आचार्यों की रस-स्थिति आनंदवर्धन और अभिनव गुप्त की रस-स्थिति से भिन्न हो गई है । उन दोनों ने करुण रस को माधुर्य गुण का चरमोत्कर्ष स्थान बताया और मम्मट आदि ने शान्त रस को । उन दोनों ने माधुर्य गुण का स्थान तीन रसों में माना है और मम्मट आदि आचार्यों ने चार रसों में ।

<u>ओजो गुण</u>--

रौद्र और वीर में उत्तरोत्तर अधिक--	आनंदवर्धन और अभिनवगुप्त
वीर, बीभत्स और रौद्र ,, ,,--	मम्मट
वीर, बीभत्स और रौद्र ,, ,,--	पं० विश्वनाथ
वीर, बीभत्स और रौद्र ,, ,,--	पंडितराज जगन्नाथ

इस गुण में भी मम्मट आदि आचार्यों का विरोध आनंदवर्धन और अभिनव गुप्त से ही है । उन दोनों ने वीर रस में इस गुण का प्रकर्ष बताया है और मम्मट आदि आचार्यों ने रौद्र रस में । उन दोनों ने इसे

रस में ओजो गुण की सत्ता बताते हैं और इन सभी आचार्यों ने तीन रसों में सत्ता बताया है।

<u>प्रसाद गुण--</u>

आनंदवर्धन ने "सर्वसाधारणक्रिय:" मम्मट ने "सर्वत्रविहितस्थिति:", विश्वनाथ ने "सर्वत्रेषु रसेषु रचनासु च" तथा पंडितराज जगन्नाथ ने "सर्वेषु रसेषु सर्वासु रचनासु च साधारण:" कह कर सब रसों में इसकी स्थिति बताई है। अत: इसमें प्रकर्ष का कोई प्रश्न ही नहीं है।

गुण को रस से सम्बन्धित करने का श्रेय आनंदवर्धन को भरत के "नाट्यशास्त्र" से मिल चुका था। क्योंकि भरत ने दोष, गुण और अलंकार सभी को रस से सम्बन्धित किया था[1]।

किन्तु नाटक और काव्य को एक मानने के कारण भरत के गुण रस के साथ आनंदवर्धन की भांति साक्षात् सम्बन्ध न रखकर परम्परया सम्बन्ध रखते हैं। क्योंकि उनके गुण वाचिकाभिनय के आश्रित हैं और वाचिकाभिनय रस का परिपोष करते हैं[2]।

रस के साक्षात् रूप से सम्बन्धित होने के कारण ध्वनिवादियों एवं रसवादियों की दृष्टि में गुण रस के ही समान व्यंग्य है। गुण को शब्दार्थ का धर्म उपचार से ही माना जा सकता है[3]।

इसीलिए गुणों को आत्मा का धर्म स्वीकार किया गया है। देह(शरीर) का नहीं। क्योंकि मोटा-ताजा व्यक्ति दुर्बल भी हो सकता है और दुबला-पतला व्यक्ति भी शूर हो सकता है। अत: जिस प्रकार शूरता आदि गुण शरीर के नहीं होते हैं अपितु आत्मा के होते हैं उसी प्रकार माधुर्यादि गुण शब्दार्थ के धर्म नहीं होते हैं, आत्मा के होते हैं अत: वे अचल होते हैं और रस का उपकार करने वाले होते हैं[4]।

१- एवमेते ह्यलंकारा गुणा दोषाश्च कीर्तिता: ।
प्रयोगमेषां च पुन: वक्ष्यामि रसाश्रयम् ।।७।१०८

२- भा०का०शा०भू०-- डा० नगेन्द्र पृष्ठ २७

३- ध्वन्यालोक २।७,२।६,२।१०, का०प्र० ८।७१,सा०द० ८।८-९

४- "ये रसस्याङ्गिनो धर्मा: शौर्यादय इवात्मन: ।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणा: ।।
(--का०प्र० ८।६६)

इस प्रकार ये आचार्य गुणों को शोभादायक धर्म न मान कर उसे रसोत्कर्षक धर्म मानते हैं। मम्मट ने रीतिकार वामन के गुण लक्षण की आलोचना की है[२]। उन्होंने इस सम्बन्ध में दो प्रश्न उठाये हैं --

(१) यदि काव्य शोभा के हेतु गुण हैं तो क्या सब गुण मिलकर काव्य में शोभा उत्पन्न करते हैं? अथवा

(२) कुछ गुण मिलकर काव्य शोभा उत्पन्न करते हैं?

यदि समस्त गुण मिलकर काव्य की शोभा को उत्पन्न करते हैं तो 'रीति' को काव्य की आत्मा नहीं माना जा सकता है क्योंकि वैदर्भी को छोड़कर गौडी पांचाली में सब गुण विद्यमान नहीं रहते हैं।

यदि कोई अथवा कुछ गुण काव्य शोभा के प्रयोजक हैं तो कुछ ऐसे भी स्थल होते हैं, जहां गुण तो रहता है किन्तु काव्यत्व का व्यवहार नहीं होता है। जैसे 'अद्रावत्र प्रज्वलत्यग्निरुच्चैः प्राज्यः प्रोद्यन्नुल्लसत्येष धूमः' में ओजगुण की सत्ता तो है ही किन्तु काव्य की सत्ता के विषय में यही बात नहीं कही जा सकती।

पण्डितराज जगन्नाथ भी गुण को रस का धर्म नहीं स्वीकार करते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में आत्मा निर्गुण है और रस काव्य की आत्मा है अतः माधुर्यादि गुण शौर्यादि की भांति काव्य के आत्मभूत रस के धर्म नहीं हो सकते --

'शौर्यादिवदात्मधर्माणां गुणानां हारादिवदुपकारकाणामलंकाराणां च शरीरगतत्वानुपपत्तेश्च।'

'किंचात्मनो निर्गुणतयाऽऽत्मभूतरसगुणत्वं माधुर्यादीनामनुपपन्नम्। एवं तदुपाधिरत्यादिगुणत्वमपि, मानाभावात्परोक्तया गुणे गुणान्तरस्यानौचित्याच्च। + + + + + +

१- यदप्युक्तम् 'काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः' इति तदपि न युक्तम् यतः किं समस्तैर्गुणैः काव्यव्यवहारः, उत कतिपयैः। यदि समस्तैः तत्कथमसमस्तगुणा गौडी पांचाली च रीतिः काव्यस्यात्मा। अथ कतिपयैः ततः-- अद्रावत्र प्रज्वलत्यग्निरुच्चैः प्राज्यः प्रोद्यन्नुल्लसत्येष धूमः - इत्यादावोजः प्रभृतिषु गुणेषु सत्सु काव्यव्यवहारप्राप्तिः।'
--का०प्र०८उ०

प्रयोजकत्वं माद्दृष्टादिविलक्षणं शब्दार्थरसरचनागतमेव ग्राह्यमतो न व्यवहारानिप्रुपत्तिः । तथा च शब्दार्थयोरपि माधुर्यादेरौपचारिकत्वात्-दुपचारो न कल्प्यः इति माहुशाः[१] ।

लेकिन जगन्नाथ के इस गुण के सम्बन्ध में इस प्रकार के विचार बहुत अधिक समीचीन नहीं प्रतीत होते क्योंकि आत्मा के निर्गुण होने की बात वेदान्तियों की है और मम्मट आत्मा के सम्बन्ध में वेदान्तियों की ही कल्पना को मानते थे इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है । न्याय, वैशेषिक इत्यादि दर्शन शास्त्र तो आत्मा को सगुण ही मानते हैं । ये वेदान्ती भी व्यावहारिक आत्मा (जीवात्मा) को सगुण ही मानते हैं । ऐसी स्थिति में मम्मट के रस विषयक उपर्युक्त कथन की पंडितराजकृत-- आलोचना अप्रासंगिक और असंगत ही कही जायगी ।

इसलिए काव्य की आत्मा में गुण की सत्ता के विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता है । अत: जैसा कि इसी अध्याय के अन्तिम भाग में स्पष्ट किया जायगा, काव्य की आत्मा रस है अर्थात् काव्य में रसीलता अथवा प्राणवत्ता रस के कारण आती है और उस रस के साक्षात्पोषक गुण होते हैं । जिस काव्य में रस के साक्षात् पोषक ये गुण नहीं रहेंगे उसमें रस की क्या सबल अभिव्यक्ति होगी और जिस काव्य में रस की सबल अभिव्यक्ति नहीं है -- जो काव्य-रस की सुदृढ़ अभिव्यक्ति से हीन है वह काव्य निष्प्राण और निस्तेज ही होगा ।

इसीलिए मम्मट ने अपनी काव्य-परिभाषा में `सगुणौ' शब्द का प्रयोग किया है गुण और रस का अन्वय-व्यतिरेकि सम्बन्ध मानने के कारण ही विश्वनाथ ने उनके विशेषण की आलोचना करके `रसवन्तौ' या `सरसौ' शब्द के प्रयोग को उचित बताया । किन्तु विश्वनाथ के इस विशेषण को अपनाने में मम्मट का काव्य-लक्षण केवल उत्तम-काव्य के लिए ही ठीक हो सकता है, मध्यम और अधम काव्य के लिए नहीं ।

१- रसगंगाधर --रस चन्द्रिका टीका --चौखम्भा संस्कृत सिरीज़ पृष्ठ २०६

जिस प्रकार गुण के स्वरूप में आचार्यों का मत-भेद रहा है उसी प्रकार गुणों की संख्या के विषय में भी बहुत वाद-विवाद रहा । प्राचीन आचार्यों ने गुणों को शब्द और अर्थ का धर्म मान कर प्रत्येक के दस-दस गुण माने । इस प्रकार उन्होंने गुणों की संख्या बीस मानी । किन्तु जब यह सिद्ध कर दिया गया कि काव्य की आत्मा रस है और रस के धर्म गुण हैं तो आचार्यों ने रसास्वादन में चित्त की तीन प्रकार की अवस्थाएं-- द्रुति, विस्तार एवं व्याप्तकत्व -- मान कर गुणों की संख्या क्रमशः माधुर्य, ओज और प्रसाद -- तीन निर्धारित कर दी । क्योंकि माधुर्य गुण शृंगारादि रस के आस्वादन में सहृदय के हृदय में द्रुति पैदा करता है । उस समय एक अलौकिक कोमलता आ जाती है । उसका स्वरूप आह्लादक होता है । ओजोगुण रौद्रादि के रसास्वादन में सहृदय के हृदय में दीप्ति पैदा करता है, जिससे कि चित्त उद्दीप्त हो जाता है और प्रसाद गुण सभी रसों के आस्वादन में सहृदय के हृदय में व्याप्तकत्व लाता है, अर्थात् मन को प्रसन्न कर देता है ।

चूंकि गुण रस से सम्बन्धित होने के कारण व्यंग्य हैं अतः उनके अभिव्यंजक वर्ण भी निश्चित हैं । माधुर्य गुण में वर्णों में माधुर्य- व्यंजक वर्ण और समासों में असमास अथवा मध्यम समास को स्थान दिया गया है, ओजो गुण में उद्धत- पदसंघटना तथा दीर्घ समासों को स्थान दिया गया है तथा प्रसाद गुण में उन सभी सुकुमार तथा विकट शब्दों को स्थान दिया गया है जिनके सुनने से अर्थ प्रतीति हो जाए तथा उन समासों को स्थान दिया गया है जो सुनने में तुरन्त स्पष्ट हो जाय ।

इन रसवादियों ने इस प्रकार तीन गुणों का स्वरूप निश्चित करके वामन आदि आचार्यों द्वारा बताए गए शब्द तथा अर्थ गत सभी दस गुणों में से कुछ को इन तीन गुणों के अन्दर, कुछ गुणों को दोषाभाव मात्र कहकर, कुछ गुणों को दोष बताकर तथा कुछ गुणों को अलंकार के अन्दर करके गुणों की संख्या तीन ही निर्धारित कर दी है । इन आचार्यों का इस प्रकार करना उचित भी था । क्योंकि शब्द-गुण के 'श्लेष', 'समाधि', 'उदारता', 'प्रसाद' और 'ओज' गुण का जो स्वरूप बताया गया है वह रसवादी आचार्यों की दृष्टि में ओजो गुण के अन्दर किया जा सकता है ।

है कि कुन्तक गुण तीन मार्गों --'सौकुमार्य', 'वैचित्र्य' तथा 'मध्यम' -- में रखते हैं । सामान्य गुणों के लिए बताया है कि मार्ग-भेद से उनके स्वरूप में कोई भेद नहीं आता है किन्तु विशेष गुणों में स्वरूप-भेद हो जाता है । इस प्रकार उनकी दृष्टि में तीनों मार्गों में गुणों की संख्या अलग-अलग रहती है ।

किन्तु गुणों की यह संख्या किसी को भी मान्य नहीं हुई । गुण का रस से सम्बन्ध मानने के कारण सहृदय की चित्तावस्था से सम्बन्ध रख कर गुणों की तीन संख्या मानना ही सर्वथा समुचित होगा । इसी का अनुसरण काव्य के गुणों के विवेचन में किया गया है ।

काव्य के विभिन्न लक्षणों का विवेचन करते समय यह सामान्य सिद्धान्त प्रतिष्ठित हो चुका है कि काव्य शब्दार्थ युगल में ही होता है किसी एक में नहीं, तथा काव्य में प्रयुक्त ये शब्द और अर्थ अनिवार्य रूप से दोष रहित और गुण समन्वित होने चाहिए एवं यथासम्भव अलंकार से भी सुशोभित होने चाहिए । शब्द और अर्थ के साहित्य रूप काव्य में अलंकार की वांछनीयता का एक बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण भी है ।

अलंकार की रुचि न केवल चेतन-जगत् में अपितु अचेतन-जगत् में भी परिलक्षित होती है । जिस प्रकार प्राणी प्रत्येक वस्तु को सुन्दर, सुव्यवस्थित एवं सुसज्जित विधि से रख कर अपने नेत्रों को तृप्त करता है एवं उसके सम्पर्क में आने वाले लोगों के नेत्रों के लिए आकर्षण का विषय बनता है, जिस प्रकार प्रकृति अपनी रमणीयता से नीरस, निर्दयी व्यक्ति को भी बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है उसी प्रकार कवि भी अपने काव्य को अलंकृत करके सहृदय को आकृष्ट करता है । कवि की प्रवृत्ति सर्वदा कुरूप वस्तु को भी सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करने की होती है । यही कारण है कि साधारण व्यक्ति जिस वस्तु को उपेक्षा की दृष्टि से एवं कुरूप समझ कर अवहेलना की दृष्टि से तिरस्कृत कर देता है उसे ही कवि अपनी काव्य-प्रतिभा से अलंकारों की समुचित योजना करके सुन्दर बना देता है ।

अलंकार कवि की भावनाओं को पुष्टि करने में सहायक होते हैं । अर्थात् जब कवि अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करने में असमर्थ अपने को

जाता है तब वह केवल अलंकारों का ही सहारा लेता है । किसी नायिका के अतिशय सौन्दर्य को केवल साधारण शब्दों से वर्णन करने में कवि उसके रूप का तिरस्कार करना समझता है अत: वह अलंकार का आश्रय लेकर कभी मुख चन्द्रमा है(रूपक), कभी चन्द्रमा के सदृश है(उपमा), कभी दूसरा चाँद है (अतिशयोक्ति), कभी मुख है या चन्द्रमा (संदेह), कभी मुख नहीं चन्द्रमा है (अपह्नुति), और कभी चन्द्रमा मुख के समान है (प्रतीप) आदि कहकर ही संतोष का अनुभव करता है । क्योंकि ऐसा वर्णन करने से उसमें अतिशय सौन्दर्य आ जाता है । यही कारण है कि काव्य की भाषा में वही बोल चाल के शब्द एवं वर्ण होते हैं किन्तु फिर भी काव्य भाषा और बोल चाल की भाषा में भिन्नता आ ही जाती है । इसीलिए अलंकारों को `अभिधान प्रकार विशेष` कहा गया है ।

कवि सहृदय और कलाकार दोनों होता है अत: उसके काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष का होना स्वाभाविक है । भावपक्ष उसकी सहृदयता को उद्दीप्त करता है और कलापक्ष उन भावों को अलंकृत करने के लिए कवि को प्रेरित करता है ।

अलंकार के मूल में वैचित्र्य ही रहता है इसी को `चमत्कार`, `विच्छित्ति`, `चारुता`, `अतिशयोक्ति` अथवा वक्रोक्ति` कहा गया है । जैसा कि अभी देख चुके हैं कि कुन्तक की वक्रोक्ति और कुछ नहीं, केवल वैदग्ध्य- भङ्गी भणिति` है और इसका अर्थ कवि-प्रतिभोत्थित है ।

वैचित्र्य लाने के लिए ही कवि की वाणी में अतिरंजना होती है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है । इसी दृष्टि से आचार्यों ने अलंकारों का प्राण अथवा मूल`अतिशयोक्ति` को बताया । भामह की दृष्टि में `अतिशयोक्ति` और `वक्रोक्ति` पर्याय है --

सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलङ्कारोऽनया विना ।।[१]

१- भामहकृत काव्या० श्लो० २।८५

दण्डी ने दो प्रकार के अलंकार बताये -- १- सामान्य और २- विशेष । उनकी दृष्टि में 'सामान्य' अलंकार का [illegible] (शब्दार्थ का) सौन्दर्य होता है और 'विशेष' अलंकार का शैलीगत (गुण, रीति आदि) सौन्दर्य होता है । इस प्रकार उनकी दृष्टि में अलंकार का अर्थ केवल सौन्दर्य माना है -- 'शोभाकरान्धर्मानलंकारान् प्रचक्षते ।' अर्थात् जो भी सौन्दर्य लाने वाले अलंकार हैं । यही कारण है कि उनकी दृष्टि में सौन्दर्य लाने के कारण गुण भी अलंकार हैं ।

दण्डी ने गुण और अलंकार को एक माना किन्तु वामन और उद्भट ने इन दोनों को एक नहीं मान लिया ।

वामन ने भी अलंकार के दो प्रकार माने हैं किन्तु दण्डी की भाँति सामान्य और विशेष न मान कर 'भावव्युत्पत्ति' से अलंकृतिरलंकारः - अलंकृति परक अर्थ सौन्दर्य और करण व्युत्पत्ति से अलंक्रियतेऽनेन इति अलंकारः -- उपमादि अलंकार के रूप में लेते हैं । उन्होंने अलंकार के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण संकुचित नहीं रखा है । करण व्युत्पत्ति से किए गए अलंकार के सम्बन्ध में बताया है कि वे शोभातिशायी हैं और भावव्युत्पत्ति से किए गए अलंकार के स्वरूप के सम्बन्ध में बताया है कि इन अलंकारों के बिना काव्य का ग्रहण नहीं हो सकता । अतः अलंकार का अर्थ सौन्दर्य है और यह सौन्दर्य गुण-ग्रहण और दोष के त्याग से आता है ।

इसी आधार पर वह गुण और अलंकार में भेद मानते हैं । दण्डी की भाँति दोनों को एक नहीं मानते हैं । इस दृष्टि से उनका काव्य-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने इस क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन का काम किया । जहाँ वामन ने गुण और अलंकार का भेद बताया है वहाँ उनका अलंकार से तात्पर्य उपमादि से है । उनकी दृष्टि में स्वरूप सौन्दर्य तो गुण है और आहार्य सौन्दर्य अलंकार । अतः गुण उनकी दृष्टि में प्रथम प्रकार का (भावव्युत्पत्तिपरक) अलंकार है । और आहार्य अलंकार तो (करण व्युत्पत्ति-परक) शोभातिशयजनक होते हैं । वामन ने गुण के लिए बताया कि वे नित्य हो

१- का०सू० वृ० ३।१।१, ३।१।२

और अलंकार अनित्य । काव्य में गुण के रहने पर भी अलंकार की आकांक्षा है । अतः गुण के अनन्तर अलंकार की वांछनीयता स्वीकार करना ही तात्पर्य वामन का द्वितीय प्रकार के अलंकार से है जिसके अन्तर्गत उपमादि आते हैं । उन्होंने उदाहरण देते हुए बताया है कि जिस प्रकार सुन्दर स्त्री के आभूषण उसके सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं उसी प्रकार गुण युक्त काव्य की सौन्दर्य वृद्धि अलंकार करते हैं, जिस प्रकार कुरूप स्त्री के लिए आभूषण निरर्थक होते हैं वैसे ही निर्गुण काव्य के लिए अलंकार निरर्थक होते हैं ।

इस प्रकार यद्यपि गुण और अलंकार का सामान्य कार्य काव्य का सौन्दर्य बढ़ाना है किन्तु दोनों एक किसी भी प्रकार से नहीं हो सकते हैं ।

उद्भट ने भी गुण और अलंकार को चारुत्व हेतु और उनमें भेद माना है किन्तु वामन की भांति गुण को शोभादायक और अलंकार को शोभातिशय हेतु मान कर भेद नहीं किया अपितु आश्रय-भेद से दोनों में अन्तर दिखाया है । उन्होंने संघटना या 'रीति' के आश्रय से रहने वाले शोभाजनक धर्मों को गुण और शब्द-अर्थ का आश्रय लेने वाले शोभाजनक धर्म को अलंकार कहा है[2] । उद्भट ने इस दृष्टि से गुण और अलंकार में भेद अवश्य किया है किन्तु काव्य में दोनों की सत्ता आवश्यक माना है । वह वामन की भांति अलंकार की वांछनीयता के पक्षपाती नहीं हैं । लौकिक जगत् के लिए भी कहते हैं कि गुण का होना आवश्यक है और अलंकार (आभूषण) का नहीं किन्तु काव्य में ऐसा नहीं कहा जा सकता है । अतः उनकी दृष्टि में लौकिक जगत् में शरीर के साथ गुण का समवाय सम्बन्ध है और अलंकार का संयोग सम्बन्ध है किन्तु काव्य-शरीर के साथ दोनों का समवाय सम्बन्ध होगा । अतः इन दोनों की काव्य-शरीर से पृथक् सम्भावना नहीं की जा

१- का० सू० वृ० ३।१।२ वृत्ति का अन्तः श्लोक

२- प्रतापरुद्रयशोभूषणम् --रत्नापण टीका पृष्ठ ३३७

अलंकार सर्वस्व रूय्यक पृष्ठ ६

नित्यता तथा आश्रय की दृष्टि से देखा गया था, एक को शोभा की उत्पत्ति का हेतु और दूसरे को शोभातिशय का हेतु समझा गया था। गुण के अभाव में अलंकार की स्थिति नहीं मानी गयी थी और न काव्य में सहज-सौन्दर्य की कल्पना की जा सकती थी। किन्तु रसवादी आचार्यों की दृष्टि में गुण और अलंकार का पूर्णरूप से स्वरूप बदल गया। उन लोगों ने गुण को शब्दार्थ का धर्म न मान कर काव्य की आत्मा 'रस' का माना, जो रस का साक्षात् उपकार करते हैं और अलंकार को शब्दार्थ का धर्म माना जो रस का परम्परया उपकार करते हैं। क्योंकि शब्दार्थ गुणों के अभिव्यंजक होते हैं अतः अलंकार शब्दार्थ का उपकार करते हुए गुणों का उपकार करते हैं और गुणों का उपकार करके रस का उपकार करते हैं। इस प्रकार रस का धर्म होने से गुण रस की ही भांति व्यंग्य होते हैं और अलंकार शब्दार्थ के धर्म होने के नाते वाच्य होते हैं। उनकी दृष्टि में रस अङ्गी है और अङ्ग शब्दार्थ। अतः गुण अङ्गी के धर्म हैं और अलंकार अङ्ग के धर्म हैं।

इन आचार्यों ने भी गुण को नित्य और अलंकार को अनित्य माना है किन्तु पूर्ववर्ती आचार्यों एवं इन आचार्यों में आकाश-पाताल का अन्तर है। इन आचार्यों ने पूर्ववर्ती आचार्यों की भांति दोनों के भेद में 'शोभाहेतु' को आधार न मान कर धर्म-धर्मी अथवा अलंकार-अलंकार्य अथवा अङ्ग-अङ्गी के भाव को लिया है जिसमें धर्म धर्मी का, अलंकार अलंकार्य का और अङ्ग अङ्गी का उपकार करता है। धर्मी, अलंकार्य और अङ्गी रस ही है।

अतः गुण की सार्थकता गुणी का उपकार करने में और अलंकार की सार्थकता अलंकार्य के उपकार करने में है। इस प्रकार इन आचार्यों ने रस के साथ गुण और अलंकार दोनों का उपकार्य-उपकारक भाव सम्बन्ध माना और गुण तथा अलंकार का शब्दार्थ के साथ क्रमशः व्यंग्य-व्यंजक[1] एवं वाच्य वाचक[2] माना है।

१- का०प्र० ८।७३, सा०द० ८।३,८।६,८।८,८।१०

२- ध्वन्यालोक लोचन २।६ की वृत्ति, ध्वन्यालोक प्र०उ० वृत्त: श्लोक का पृ० व०उ०, काव्यानुशासन--हेमचन्द्र १।१३

गुण के बिना रस की स्थिति की कल्पना न करने के कारण गुण और रस के बीच अन्वय-व्यतिरेकि सम्बन्ध माना गया है। इसीलिए मम्मट ने गुण को 'अचल स्थिति' कहा है और अलंकारों का रस के साथ गुण की भांति समवाय सम्बन्ध न होने से अलंकारों की नियत रूप से उपस्थिति न होने के कारण उन्हें 'जातुचित्' कहा है।

प्रायः सभी आचार्यों ने अलंकार के अतिचार का प्रबल विरोध किया। उनकी सार्थकता आस्वाद्यमान रस के उत्कर्ष करने में ही है। आनंदवर्धन ने बताया है कि यद्यपि अलंकार चारुत्व हेतु हैं किन्तु उनका प्रयोग रस की अपेक्षा से ही होना चाहिए --

रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत् ।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलङ्कारो ध्वनौ मतः ।।२।१६
विवक्षा तत्परत्वेन नाङ्गित्वेन कदाचन ।
काले च ग्रहणत्यागौ नातिनिर्वहणैषिता ।।२।१८

(ध्वन्यालोक)

अतः कवि को आदि से अन्त तक उनके निर्वहण की इच्छा नहीं होनी चाहिए और न उनके लिए प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है अपितु अलकार प्रतिभावान कवि के पास मानो अहमहमिका पूर्वक स्वयं चले आते हैं।

मम्मट ने भी रस के अभाव में अलंकारों के प्रयोग को वैचित्र्य-प्रदर्शन कह कर उनके अनावश्यक प्रयोग के प्रति कवि को सावधान किया है। उन्होंने अलंकारों के तीन प्रकार के कार्य बताये हैं --

(१) रस के रहने पर उपकार करते हैं।

(२) रस के रहने पर भी उपकार नहीं करते हैं।

(३) जहां रस नहीं वहां अलंकार वैचित्र्य मात्र रहते हैं।

(रस नहीं से तात्पर्य है -- रसों की नगण्यता अथवा उपेक्षा)

मम्मट के अलंकार-विषयक उदार दृष्टिकोण से भिन्न होकर जयदेव ने जो उनके 'अनलंकृती पुनः क्वापि' शब्द की कटु आलोचना--

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती ।।(चन्द्रालोक १।८)

स्वीकार करता है उसमें केवल उनका अलंकार विषयक अनावश्यक मोह ही परिलक्षित होता है ।

किन्तु इसका यह तात्पर्य न लेना चाहिए कि इन आचार्यों ने काव्य में अलंकारों को महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया है अपितु जैसा कि देख चुके हैं क्या अलंकारवादी और क्या रसवादी आचार्यों ने उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है । काव्य में गुण और अलंकारों से अलंकृत शब्दार्थ का साहित्य ही अभीष्ट होता है क्योंकि यही विशेषता सामान्य शब्द और अर्थ से भिन्नता लाती है । किन्तु काव्यों में अलंकारों का दुरुपयोग कदापि नहीं होना चाहिए । दुर्पयोग से तात्पर्य रस-तत्व की अवहेलना करके केवल वैचित्र्य मात्र के प्रदर्शन से है । ऐसा काव्य कभी भी उत्तम कोटि का नहीं हो सकता ।

जैसा कि देखा जा चुका है कि काव्य में जहाँ शब्दार्थ के साहित्य, वचन की चतुरी भंगिमा, दोषों का अभाव, गुणों एवं अलंकारों की सत्ता की आवश्यकता होती है वहाँ रस की भी होती है । किन्तु रस की सत्ता अन्य काव्य के तत्वों की सत्ता से बिल्कुल भिन्न होती है । पुरुष में जो सत्ता आत्मा की होती है जिससे कि वह जीवित अथवा मृतप्राय होता है वही सत्ता काव्य-पुरुष में 'रस' की होती है । उसी के आधार पर काव्य की सजीवता अथवा निर्जीवता निर्धारित होती है । इसीलिए उसे काव्य-पुरुष का प्राण माना गया है । यदि कवि उस प्राण-तत्व की अवहेलना कर जाता है तो उसका काव्य सहृदय के बीच कैसे अनुप्राणित रह सकता है यह सर्वसंवेद्य है । जिस प्रकार मनुष्य के जीवित रहने पर ही उसके अंगों, गुणों एवं आभूषणों की सार्थकता रहती है, उसी प्रकार काव्य में भी रस के रहने पर ही तदनुकूल शब्दार्थ संघटना अथवा रीति, गुण एवं अलंकारों की सार्थकता रहती है अन्यथा वे भार स्वरूप हो जाते हैं --

"तथापि केवलं शरीरं कुण्डलाद्युपेतमपि न भाति रसहीनार्थं [illegible]
[illegible] रसात्मकमूर्ति: प्रगुणशोभना ना । निर्व्यूढ[illegible]
[illegible] निष्कान्तभावे वपुषा वदना ।।"[2]

क्योंकि इस काव्य-पुरुष में शब्दार्थ का स्थान शरीर की भांति रस का स्थान आत्मा की भांति, अलंकारों का स्थान कुण्डलादि आभूषणों की भांति और रीतियों का स्थान शरीरावयवों की भांति होता है।[3]

जिन आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा के रूप में नहीं भी ग्रहण किया है वे भी इसके महत्त्व के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह नहीं करते। अलंकारवादी आचार्य यद्यपि काव्य का प्राण अलंकार मानते हैं किन्तु वे भी रस को परमावश्यक तत्त्व मानते हैं। ध्वनिवादी आचार्य काव्य का आत्मा ध्वनि बताते हैं ~~१-ध्वनिवदक~~ किन्तु ध्वनि के तीन भेद रसध्वनि, वस्तु ध्वनि और अलंकार ध्वनि करके वस्तु और अलंकार ध्वनि को रसध्वनि के अन्दर करके अन्ततोगत्वा रसध्वनि को ही काव्य का आत्मा बताते हैं। आचार्य क्षेमेन्द्र का सारा औचित्य सिद्धान्त रस पर ही आधारित है अत: वे भी रस को काव्य की आत्मा मानने में कोई मतभेद नहीं रखते हैं। मम्मट एवं विश्वनाथ ने क्रमश: "रसगुणौ" एवं "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" कहकर स्पष्ट शब्दों में रस को काव्य की आत्मा बताया। मम्मट का कथन है कि जहां शब्दों अथवा अर्थों का केवल वैचित्र्य ही रहता है वहां पर भी आत्मभूत होने के कारण रस की सत्ता रहती है। उन्होंने इस सम्बन्ध में शब्दालंकारगत तथा अर्थालंकारगत वैचित्र्य का उदाहरण देकर अपने कथन की पुष्टि की है, और विश्वनाथ ने प्रबन्ध के अन्दर आए नीरस अंश का पूरे प्रबन्ध के अन्दर आए रस से

१- ध्वन्यालोक लोचन
२- शिवलीलार्णव १।३
३- साहित्यदर्पण प्र० परि० पृष्ठ २२

में आ होता है । अतः 'गौश्चलति' 'मृगो धावति' में काव्यत्व मानने का प्रश्न ही नहीं उठता है ।

काव्य की आत्मा रस है इस प्रकार इसके निष्कर्ष ४ को जाने पर उसका स्वरूप से परिचय प्राप्त कर लेना भी आवश्यक हो जाता है । भरत के रस सम्बन्धी -- 'विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद् रस निष्पत्तिः' -- सूत्र काव्य-शास्त्र में आचार्यों के बीच विवाद का विषय बन गया । भट्ट लोल्लट ने निष्पत्ति का अर्थ 'उत्पत्ति' लेकर अपने उत्पत्तिवाद सिद्धान्त को जन्म दिया । इसमें उन्होंने विभाव का सम्बन्ध उत्पाद्य-उत्पादक, अनुभाव का सम्बन्ध गम्य-गमक तथा व्यभिचारी भाव का सम्बन्ध पोष्य-पोषक माना । उन्होंने रस की स्थिति सहृदय में न मान कर मूल राम में माना । उन्होंने लौकिक सामग्री से ही रामादि में रसोत्पत्ति मानी ।

इस उत्पत्ति सिद्धान्त में सहृदय की उपेक्षा की गई जब कि सहृदय दूसरे की रति आदि स्थायिभावों से रस का अनुभव नहीं कर सकता । लोल्लट ने रसानुभूति के मूल तत्व सहानुभूति की ओर संकेत किया क्योंकि सहृदय नट में उत्पन्न रस का आरोप सहानुभूति के कारण करता है किन्तु उन्होंने रसानुभूति पर बल नहीं दिया ।

आचार्य शंकुक ने उत्पत्ति का अर्थ 'अनुमिति' से लिया है यह सिद्धान्त भट्ट लोल्लट के उत्पत्तिवाद के सिद्धान्त का विकसित रूप है । इसमें रस की स्थिति अनुकार्य में न मानी जाकर सहृदय में मानी गई है । सहृदय अनुमान करके ही आनंदित होता है । 'चित्रतुरग-न्याय' से शंकुक ने लौकिक अनुमान और काव्य-गत अनुमान प्रणाली में भिन्नता लाने की चेष्टा की है क्योंकि उस समय नट में जो राम का ज्ञान होता है वह सम्यक्, मिथ्या, संशय और सादृश्य की प्रतीति से भिन्न होता है । इसीलिए सहृदय नट को राम समझ लेता है ।

चूंकि नट भी अभिनय कला की शिक्षा एवं पुनः पुनः अभ्यास के कारण राम की भूमिका उपस्थित करता है अतः उसकी चेष्टाएं कृत्रिम होते

हुए भी सहृदय उसको कृत्रिम नहीं समझता । शंकुक की दृष्टि में जिस प्रकार लौकिक जगत में राम के हृदय में रति का अनुमान राम का साक्षात्कार करने वालों ने राम के रति भाव के कारण, कार्य एवं सहकारी भावों से किया होगा उसी प्रकार काव्य में सहृदय विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों से नट के स्थायिभाव का अनुमान करता है । अतः उन्होंने विभाव और स्थायिभाव का सम्बन्ध 'गम्यगमक' अथवा 'अनुमाप्य अनुमापक' माना ।

नट की चेष्टाओं की भाँति उसका स्थायिभाव वस्तुतः उसका न होकर अभिनेय राम का होता है किन्तु वह स्थायिभाव नट में ही कल्पित किया जाता है और सामाजिक अपनी वासना से उस स्थायिभाव की चर्वणा (अनुमान) करता है जो अनुमेय रूप होता है । अर्थात् उनके विभावादि से अनुमित होता हुआ स्थायिभाव रस कहलाता है ।

इस वाद में भी कई दोष हैं । मौलिक दोष यही है कि केवल प्रत्यक्ष ज्ञान ही चमत्कार या आनन्ददायक होता है अनुमान कभी नहीं होता है -- इस लोकानुभूति के विरुद्ध यहाँ अनुमान को आनंद का कारण बताया गया है । प्रदीपकार के शब्दों में -- "तदप्ययुक्तम् प्रतीतिसिद्धत्वात् । यतः प्रत्यक्षमेव ज्ञानं सचमत्कारम्, न अनुमित्यादिरिति लोकप्रसिद्धिमबुध्यान्यथा कल्पने मानाभावः[१] ।"

शंकुक की दृष्टि में नट में स्थायिभाव न होते हुए भी सहृदय उसे राम समझ कर उसमें राम की रति का अनुमान करता है । इस प्रकार भट्ट लोल्लट की भाँति यह भी रस की वस्तुतः स्थिति अनुकार्य राम में ही मानते हैं तदुपरान्त नट में सामाजिक उसका अनुमान कर लेता है और इसी से वह आनंदित होता है किन्तु प्रत्यक्ष की अपेक्षा अनुमान में विशेष आनन्द नहीं होता है । भट्ट लोल्लट से भिन्नता केवल इतनी ही है कि शंकुक सहृदय में रस-स्थिति का सर्वथा अभाव नहीं मानते हैं ।

१- काव्य प्रदीप, चतुर्थ उल्लास पृष्ठ ६५

भट्ट नायक उत्पत्तिवाद अनुमितिवाद और अभिव्यक्तिवाद को न मान कर भुक्तिवाद की स्थापना करते हैं जिसमें भोज्य-भोजक सम्बन्ध माना गया है। उन्होंने अभिधा के साथ दो और व्यापारों -- भावकत्व और भोग की कल्पना की है। इन तीनों व्यापारों का अलग-अलग सम्बन्ध उन्होंने माना है। अभिधा का काव्यार्थ से, भावकत्व का रस से और भोग का सहृदय से सम्बन्ध बताया है। अभिधा व्यापार काव्य या नाटक के अर्थ का बोध कराता है, भावकत्व व्यापार विभावादि को साधारणीकृत कर देता है अर्थात् सीतादि विभाव अपनी वैयक्तिकता से रहित होकर सर्वसाधारण स्त्री के रूप में एवं आश्रय के अनुभाव एवं संचारी भाव आश्रय विशेष के न होकर सर्वसाधारण के हो जाते हैं और इधर सहृदय का भी रत्यादिभाव उसके सम्बन्ध से रहित होकर साधारण मानव के भाव के रूप में हो जाते हैं। इस प्रकार सहृदय का हृदय लोक साधारण का हृदय हो जाता है।

इस प्रकार दोनों ओर के भावों के साधारणीकृत हो जाने पर 'भोग' नाम की शक्ति से उस साधारणीकृत स्थायिभाव का भोग होता है। यह 'भोग' या 'भुक्ति' सहृदय के रजोगुण और तमोगुण को तिरस्कृत करके सत्व से उत्पन्न तथा प्रकाशमय आनन्दमयी चेतना होती है।

इस प्रकार सहृदय की रति का आत्मा की स्वरूपभूत आनंदात्मक चेतना से प्रकाशित होकर रस बनती है।

जैसे अभिनवगुप्त ने साधारणीकृत रति को आस्वाद्य बताया है वैसे ही भट्ट नायक ने बताया है। दोनों में अन्तर व्यापार के सम्बन्ध में है। अभिनव ने व्यंजना-व्यापार से ही साधारणीकरण और अभिव्यक्ति होना इन दोनों कार्यों की कल्पना की है और भट्टनायक ने दोनों कार्यों के लिए अलग-अलग व्यापार माने हैं।

किन्तु भट्टनायक के 'भावकत्व' नामक नये व्यापार[1] की कल्पना अप्रामाणिक है -- 'तादृशव्यापारकल्पने प्रमाणाभावः'।

१- का० प्र० -- मम्मट- झलकीकर पृष्ठ ६१

अभिनव ने इस मत की आलोचना करते हुए कहा है कि दो शक्ति को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उन दोनों व्यापारों का कार्य व्यंजना व्यापार ही कर देता है[१]।

भट्ट नायक ने भी अभिनवगुप्त के समान ही साधारणीकरण का होना परमावश्यक माना है। इस प्रकार यदि देखा जाय तो भट्टनायक का भुक्तिवाद और अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद प्रायः एक-सा ही है। भट्टनायक ने जहां एक ओर उत्पत्तिवाद और अनुमितिवाद को खण्डित किया वहां दूसरी ओर अभिव्यक्तिवाद को बढ़ावा दिया[२]।

जहां लोल्लट ने उत्पाद्य-उत्पादक सम्बन्ध, शंकुक ने अनुमाप्यानुमा सम्बन्ध और भट्टनायक ने भोज्य-भोजक सम्बन्ध माना है वहां अभिनव ने व्यंग्य-व्यंजक सम्बन्ध माना है। आनन्दवर्द्धन ने रस के सम्बन्ध में विशद चर्चा नहीं की थी। उन्होंने रस को व्यंग्य और अवाच्य तथा सहृदय-हृदय संवेद्य ही बताया था। अभिनवगुप्त ने उसकी सुस्पष्ट व्याख्या की है। उन्हों जन्मजन्मान्तर की अनुभूतियों एवं वासनाओं को संस्कार कहा है। ये ही संस्कार साहित्यिक पदावली में स्थायी-भाव कहलाते हैं। जो इन संस्कार से संस्कृत है वही काव्य की दृष्टि से सहृदय है। प्रत्येक व्यक्ति में प्रेम, शोक, क्रोध आदि भाव सुप्तावस्था में रहते हैं या यों कहना चाहिए कि अचेतन मन

१-ध्वन्यालोक लोचन द्वितीय उद्योत १।४ की व्याख्या, पृष्ठ १८८
"तस्मात् व्यंजकत्वाख्येन व्यापारेण गुणालंकारौचित्यादिकयेति कर्तव्यतया काव्यं भावकं रसान् भावयति- इति त्र्यंशायामपि भावनायां करणांशे ध्वननमेव निपतति। भोगोऽपि न काव्यशब्देन क्रियते अपितु घनमोहान्ध्यसंकट तानि वृत्तिद्वारेण आस्वादापरनाम्नि अलौकिके द्रुतिविस्तरविकासात्मनि भोगे कर्तव्ये लोकोत्तरे ध्वननव्यापार एव मूर्धाभिषिक्तः। तच्चेदं भोगकृत्वं रसस्य ध्वननीयत्वे सिद्धे दैवसिद्धम्।

२- का० प्र० — डा० सत्यव्रत सिंह पृष्ठ ७९

में रहते हैं, वे ही उद्बुद्ध होकर शुद्ध आनन्दमयी चेतना हो जाते हैं अर्थात् चेतन रूप में बदल जाते हैं। अतः जिसे लोक का अपना भाव का अथवा अन्य किसी भाव का लौकिक जगत् में अन्यान्य व्यापार से अनुभव नहीं हुआ है, जिससे कि उसके हृदय में वे संस्कार रूप से विद्यमान होते, उसे रसास्वाद कभी भी नहीं हो पाता है और वे सहृदय की पदवी पर भूषित नहीं हो पाते हैं। काव्य जगत् में वे नीरस व्यक्ति कहलाते हैं।

अतः अभिनवगुप्त ने रसास्वादन के लिए सहृदय का लौकिक जगत् की वासनाओं से संयुक्त होना आवश्यक ~~x~~ माना है, क्योंकि उनकी दृष्टि में सहृदय का स्थायी-भाव ही रस है जिससे उसे आनंद मिलता है। किन्तु इस स्थायी-भाव का स्वरूप कुछ और ही होता है। लौकिक जगत् के कारण, कार्य और सहकारी भाव काव्य-जगत् में आकर विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव बन जाते हैं और ये तीनों सहृदय के रत्यादि स्थायीभाव के प्रति कारण बन जाते हैं और उनका कार्य क्रमशः 'विभावन', 'अनुभावन' और संचारण हो जाता है।

यद्यपि सहृदय को रत्यादि अपना ही होता है किन्तु उसे अपना समझ कर वह उसका रसास्वादन कभी नहीं ले सकता क्योंकि उसे अपनी रति का खुले आम प्रदर्शन देखकर लज्जा होने लगेगी। यदि यह कहा जाए कि सहृदय उसे अपना न समझ कर अपने शत्रु की या जिससे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है ऐसे तटस्थ व्यक्ति की समझ ले तो यह भी सम्भव नहीं हो सकता। क्योंकि शत्रु के समझने पर ईर्ष्यादि भाव जागरित होंगे और तटस्थ के समझने पर उससे कोई सम्बन्ध न होने के कारण उसे आनन्द नहीं मिल पाएगा। सहृदय रत्यादि के सम्बन्ध में यह भी नहीं सोच सकता कि ये भाव किसी के नहीं हैं अन्यथा उनकी सत्ता ही नहीं रह जाएगी। अतः सहृदय रत्यादि के विशिष्ट रूप से रहित हो जाने पर ही अर्थात् उनके साधारणीकृत हो जाने पर ही उनका रसास्वादन कर पाता है। इसी प्रकार से रत्यादि के विभावादि भी साधारणीकृत हो जाते हैं। जहाँ सामाजिक अपने को साधारणरूप में ग्रहण करता है वहाँ रंगमंच के पात्र

एवं उनके अनुभाव आदि भी साधारणीकरण रूप में ही आते हैं ।

तात्त्विक अर्थ यह है विभावादि के साधारणीकृत हो जाने पर स्थायी-भाव स्वगत सहृदयों का विषय बन जाता है । यही कारण है कि सभी सहृदय रत्यादिभाव का आस्वादन करके एक-सा ही आनन्द अनुभव करते हैं ।

अभिनवगुप्त ने रस का स्वरूप बताते हुए कहा है कि यह विभावादि की स्थिति-काल तक स्थित रहता है । रस-स्थिति में विभावादि का क्रम रहता है किन्तु उसकी शीघ्रता से रस की अभिव्यक्ति होती है कि उसमें क्रम नहीं दिखायी देता है । उसका आस्वाद अलौकिक होता है । उस समय उस अनुभूति के अतिरिक्त अन्य किसी की अनुभूति नहीं होती है । उस समय तटस्थ-व्यक्ति भी सहृदय को देखकर समझ लेता है कि वह रस-विभोर हो गया है, क्योंकि उसके अंग-अंग से रसानन्द परिलक्षित होता है । उस समय वासना की स्थिति होने के कारण उस आनन्द को 'ब्रह्मानन्द' तो नहीं कहा जा सकता है किन्तु प्रायः वह आनन्द उसी प्रकार का होता है इसलिए उस आनन्द को 'ब्रह्मानन्द-सहोदर' कहा गया है । लौकिक जीवन में जो आनन्द नहीं मिल पाता है वह आनन्द काव्य में मिल जाता है । विभावादि को हेतु मान कर उसे कार्य भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि कार्य निमित्त कारण के नाश होने पर भी रहता है और रस विभावादि के बिना नहीं रह सकता है । आस्वादनक्रिया होने के नाते ही उसे कार्य कहा जा सकता है ।

इसी तरह जैसे दीपक घट को प्रकाशित करके ज्ञाप्य बना देता है वैसे विभावादि रस को ज्ञाप्य नहीं बनाते हैं क्योंकि रस का स्वरूप सिद्धरूप नहीं है अपितु विभावादि उसे अभिव्यक्त करते हैं । लोकातीत अनुभूति होने के कारण मात्र से ही उसे ज्ञाप्य कहा जा सकता है ।

यह ज्ञान न तो निर्विकल्पक-समाधि-सिद्धयोगियों के ज्ञान के सदृश है क्योंकि इसमें विभावादि का परामर्श रहता है और न सविकल्पक-समाधि सिद्ध-योगियों के ज्ञान के सदृश है क्योंकि उस समय अलौकिक आनन्द के

शाब्दिक और दुःख विद्यमान नहीं रहता है । अतः यह ज्ञान इन दोनों से विलक्षण होता है[१] ।

इसमें न प्रमाण व्यापार न कारक व्यापार बताया है और न इसे प्रामाण्याभाव कहा है क्योंकि यह स्वसंवेद्य होता है[२] ।

पण्डितराज जगन्नाथ का दृष्टिकोण अभिनवगुप्त से भिन्न है । यद्यपि इनकी दृष्टि में रस व्यंग्य है किन्तु उसके स्वरूप में भिन्नता है । अभिनवगुप्त स्थायिभाव को रस मानते हैं और जगन्नाथ चैतन्यात्मक ज्ञान को रस मानते हैं । यह चैतन्य आवरण मुक्त शुद्ध चैतन्य होता है -- रत्याद्यवच्छिन्नाभग्नावरणा चिदेवरसा[३] ।"

उनकी दृष्टि में रस-निष्पत्ति इस प्रकार होती है --

"काव्य में कवि के द्वारा और नाटक में नट के द्वारा जब विभावादि प्रकाशित कर दिए जाते हैं तब हमें व्यंजना वृत्ति द्वारा दुष्यन्त आदि के विषय में जो रति होती है उसका ज्ञान होता है । तदनन्तर सहृदयता के कारण एक प्रकार की भावना पैदा हो जाती है जो कि एक प्रकार का दोष है । इस दोष से हमारी अन्तरात्मा कल्पित दुष्यन्त से आच्छादित हो जाती है, अर्थात् हम मन ही मन अपने को दुष्यन्त समझने लगते हैं । तब जैसे हमारे अज्ञान से ढके हुए सीप के टुकड़े में चांदी का टुकड़ा उत्पन्न हो जाता है, हमें सीप के स्थान में चांदी की प्रतीति होने लगती है ठीक उसी तरह पूर्वोक्त दोष के कारण कल्पित दुष्यन्तत्व से आच्छादित अपनी आत्मा में शकुन्तला आदि के विषय में, अनिर्वचनीय सद्-असद् से विलक्षण रति आदि चित्तवृत्तियां उत्पन्न हो जाती हैं -- अर्थात् शकुन्तला आदि के

१- का०प्र० चतुर्थ उल्लास

२- अभि० भा० पृष्ठ २८६ (का०प्र० - डा० सत्यव्रत सिंह - से उद्धृत पृ० ८९)

"सा च रसना नप्रमाणव्यापारो न कारकव्यापारः । स्वयं तु ना-प्रामाणिकी स्वसंवेदनसिद्धत्वात् ।"

३- रसगंगाधर -- "रसचन्द्रिका -- टीका पृष्ठ ८८

भाग व्यवधान: बिल्कुल कटे प्रेम आदि उत्पन्न हो जाते हैं और वे चित्तवृत्तियां आत्म चैतन्य के द्वारा प्रकाशित होती हैं[1]। इन्हीं विशेष चित्तवृत्तियों का नाम रस है --

'भग्नावरणचिद्विशिष्टो रत्यादि* स्थायीभावो रसः[2]।'

इस प्रकार जगन्नाथ भावों की विशेषता से उन्हें निवृत करने के लिए दोष की कल्पना करके उसके नाश सहृदय की आत्मा का सम्बन्ध मानते हैं। अर्थात् उनकी दृष्टि में साधारणीकरण का कार्य 'भावना-विशेष' करती है जो कि विचारणीय है। क्योंकि 'दोष' रूप भावना की कल्पना भावों की विशिष्टता को दूर करने में समर्थ नहीं है। दूसरे उन्होंने भरत-सूत्र के 'निष्पत्तिः' शब्द का अर्थ 'उत्पत्ति' से लिया है जिसके मानने में कई दोष हैं।

अन्य ध्वनिवादी आचार्यों ने रस को असंलक्ष्यक्रम बताया है किन्तु जगन्नाथ ने उसे संलक्ष्यक्रम और असंलक्ष्यक्रम दोनों बताया है। 'असंलक्ष्य क्रम' से उनका तात्पर्य है जहां प्रकरण स्पष्ट हो वहां विभावादि की प्रतीति शीघ्र हो जाती है और सहृदय को पूर्वापर का ज्ञान नहीं रहता है[3]।

१- रसगंगाधर -'चन्द्रिका' टीका पृष्ठ ७०

'समुचित-ललित-सन्निवेशचारुणा काव्येन समर्पितैः, सहृदयहृदयं प्रविष्टैः, तदीयसहृदयतासहकृतेन, भावनाविशेषमहिम्ना विगलितदुष्यन्तरमणीत्वादि-भिरलौकिकविभावानुभावव्यभिचारिशब्दव्यपदेश्यैः, शकुन्तलादिभिरालम्बनकारणैः चन्द्रिकादिभिरुद्दीपनकारणैः, अश्रुपातादिभिः कार्यैः, चिन्तादिभिः सहकारिभिश्च सम्भूयप्रादुर्भावितेनालौकिकेन व्यापारेण, तत्कालनिवर्तितानन्दांशावरणाज्ञानेनात एव प्रमुष्टपरिमितप्रमातृत्वादिनिजधर्मेण प्रमात्रा, स्वप्रकाशतया वास्तवेन, निजस्वरूपानन्देन सह गोचरीक्रियमाणः प्राग्विनिविष्टवासनारूपो रत्यादिरेव रस

२- रस गंगाधर-- चन्द्रिका टीका पृष्ठ ८८

३- ,, ,, पृष्ठ ३६१

'संदिग्धत्व' से इसका तात्पर्य है --जहां प्रकरण स्पष्ट न हो अथवा प्रकरण हो स्पष्ट हो किन्तु विभावादि का तर्क करना पड़े वहां रस की संदिग्धता रहती है।[१]

इस प्रकार देखा जा सकता है कि चाहे उत्पत्तिवाद हो या अनुमितिवाद हो या भुक्तिवाद हो अथवा अभिव्यक्तिवाद हो सब में विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का होना आवश्यक है। बिना इन तीनों के सम्मिलित रूप से 'रस-निष्पत्ति' नहीं हो सकती है। क्योंकि व्याघ्रादि विभाव रौद्र, भय, अद्भुत आदि रस की प्रतीति कराते हैं। अश्रुपातादि शृंगार, भय, शोक आदि में भी हो सकता है। अतः तीनों में अकेला कोई भी 'रस-निष्पत्ति' नहीं करा सकता है। एक या दो के रहने पर क्रमशः दोनों अथवा एक का आक्षेप करना पड़ता है। मम्मट का कहना है कि यदि इन तीनों को अलग-अलग रस माना जायेगा तो अनैकान्तिक दोष आ जायगा क्योंकि जो व्याघ्रादि भीरु व्यक्ति में भय पैदा करेंगे, वही वीर पुरुष में उत्साह पैदा कर देंगे। इसी प्रकार भयानक रस के अश्रुपातादि अनुभाव शृंगार और करुण रस में देखे जा सकते हैं। और भयानक रस के चिन्तादि व्यभिचारी भाव शृंगार, वीर और करुण रस में भी परिलक्षित होते हैं। अतः इस दोष से बचने के लिए ही इन तीनों की आवश्यकता है।[२]

संस्कृत आचार्यों का विवेचन करने के पश्चात अन्त में निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि रस सहृदयगत वस्तु होने के कारण उसकी उत्पत्ति और अनुमिति तो कदापि नहीं हो सकती है, उसकी अभिव्यक्ति होती है। किन्तु यह अभिव्यक्ति उस प्रकार की अभिव्यक्ति नहीं है जिस प्रकार दीपक से घट की अभिव्यक्ति होती है। यह अभिव्यक्ति भट्टनायक

१- रस गंगाधर चन्द्रिका टीका पृष्ठ ३६१

२- का० प्र० चतुर्थ उल्लास

की पुष्टि से भी विरोध नहीं रखते हैं । क्योंकि जैसा पीछे दिया जा चुका है कि दोनों का स्वरूप रस से केवल भट्टनायक के व्यापार, (भावना और भोग)-- की कल्पना का है । रस रूप की अभिव्यक्ति में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव तीनों का सम्मिलित रूप होना चाहिए । बिना इसके सहृदय रस का आस्वादन ले ही नहीं सकता है । इसीलिए जो भी वास्तविक रसवान् काव्य है उसमें इन तीनों का सम्यक् विवेचन रहता है । रस-सिद्ध कवि इस बात को जानते हैं कि काव्य में रस की निष्पत्ति उक्त तीनों भावों के सम्मिलित रूप में चित्रित होने से ही होती है । प्रस्तुत निबन्ध के अध्ययन के विषयभूत काव्य-ग्रन्थों के रस-निरूपण का विवेचन करते समय इस तथ्य की विशद व्याख्या की जायेगी ।

(ग) श्रव्य-काव्य का स्वरूप और उसके भेद

संस्कृत आचार्यों ने काव्य की रचना न केवल संस्कृत भाषा में अपितु प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाची, मिश्र और ग्राम्य भाषा में भी मानी है अतः वे काव्य-भेद का एक आधार 'भाषा' भी मानते हैं । कैसे सामान्यतः आचार्यों ने काव्य का भेद-दृश्य और श्रव्य किया है । दृश्य-काव्यों का सम्बन्ध नेत्रेन्द्रिय तथा श्रव्य काव्यों का सम्बन्ध श्रवणेन्द्रिय से होता है । दृश्य काव्य के अन्दर केवल नाटक ही नहीं, अपितु दशरूपक[1] -- १ नाटक, २- प्रकरण, ३- भाण, ४- व्यायोग, ५- समवकार, ६- डिम, ७- ईहामृग, ८- अंक, ९- वीथी और १०- प्रहसन, उपरूपक[2] -- १- नाटिका, २- त्रोटक, ३- गोष्ठी ४- सट्टक, ५- नाट्य-रासक, ६- प्रस्थानक, ७- उल्लाप्य, ८- काव्य, ९- प्रेङ्खणक, १०- रासक, ११- संलापक, १२- श्रीगदित, १३- शिल्पक, १४- विलासिका, १५- दुर्मल्लिका, १६- प्रकरणिका, १७- हल्लीश और १८- भाणिका, एवं गेय-काव्य[3] भी आ जाते हैं ।

दृश्य काव्य की अपेक्षा श्रव्य काव्य की रचना करना अति दुष्कर होता है क्योंकि इसमें कवि के पास नाटककार की भांति रंगमंच जैसी कोई वस्तु नहीं होती जिसपर वह वर्णनीय दृश्य एवं पात्रों को साक्षात् उपस्थित कर सके । इसके लिए उसे कल्पना का ही आश्रय लेना पड़ता है । पाठक को इसमें सहृदय का कार्य दर्शक की भांति देखना न होकर वर्णनीय विषय का रसास्वादन लेने के लिए कवि की कल्पना में सहयोग देना होता है । अर्थात्

१- सा० द० ष० परि०

२- ,, ,,

३- हेमचन्द्र ने दृश्य के रूपक, उपरूपक भेद न करके पाठ्य और गेय किया है । पाठ्य में विश्वनाथ के दशरूपक तो हैं ही साथ ही उपरूपक के नाटिका, उत्सृष्टिका और सट्टकादि भी हैं । गेय में उन्होंने डोम्बिका, भाण, प्रस्थान, शिंगक, भाणिका, प्रेरण, रामाक्रीड, हल्लीसक, रासक, गोष्ठी, श्रीगदित और काव्य बताये हैं। (हेमचन्द्र कृत काव्यानुशासन, आठवां अध्याय पृ०४३२-४५) इन भेदों में से कुछ विश्वनाथ के उपरूपक हैं । धनञ्जय ने इसे गेय न मानकर नृत्य का भेद बताया है--

> डोम्बी श्रीगदितं भाणो भाणी प्रस्थानरासकाः ।
> काव्यं च सप्त नृत्यस्य भेदाः स्युऽपि भाणवत् ।।

जिस रूप में भी कवि-कल्पना के बल से वस्तु का वर्णन करता है, उसी रूप में सहृदय भी उस वस्तु की कल्पना करे । अतः श्रव्य-काव्य में प्रत्यक्ष तत्त्व(नाटक के) के स्थान पर कल्पना-तत्त्व की प्रधानता रहती है । कवि को इस रचना में बहुत सावधानी रखनी पड़ती है ।

छन्द की दृष्टि से इस श्रव्य-काव्य के तीन भेद होते हैं -- पद्य, गद्य और चम्पू । पद्य को छन्दोबद्ध, गद्य को छन्दों से रहित तथा चम्पू अथवा मिश्र को गद्य-पद्य का मिश्रित रूप बताया गया है । पद्य-काव्य के भेद कई दृष्टि से हुए हैं ।

छन्द की संख्या की दृष्टि से मुक्तक, कुलक, कोश, संघात, सन्दानितक, विशेषक और कलापक भेद किए गए हैं ।

काव्य-कृतियों के आकार की दृष्टि से पद्य-काव्य के दो भेद मुक्तक और प्रबन्ध किये गये हैं । राजशेखर ने इन दोनों काव्यों के भी शुद्ध[१], चित्र, कथोत्थ, संविधानकभू तथा आख्यानकवान -- पांच भेद किए गए हैं । किन्तु इन भेदों का आधार व्यापक न होने के कारण ये भेद उन्हीं तक सीमित रहे, बाद के किसी अन्य आचार्यों को ग्राह्य नहीं हुए ।

सामान्यतः मुक्तक के दो रूप -- लौकिक और धार्मिक देखने को मिलते हैं । लौकिक मुक्तक लोक के नाना प्रकार के विषयों से सम्बन्धित होते हैं और धार्मिक मुक्तक देवताओं की स्तुति से सम्बन्धित होते हैं । इन्हें दूसरे शब्दों में स्तोत्र-साहित्य भी कहा जा सकता है ।

भामह ने 'मुक्तक' के अन्दर गाथा, श्लोक आदि को भी बताया है[२] ।

प्रबन्धात्मक पद्य-काव्य के दो प्रमुख भेद हैं --

(१) खण्ड काव्य और (२) महाकाव्य ।

१- काव्य मीमांसा -- राजशेखर, नवम अध्याय पृष्ठ ११४-११५

२- भामहकृत काव्यालंकार १।३०

महाकाव्य में किसी महत्त्वपूर्ण घटना का सविस्तार वर्णन रहता है । खण्ड-काव्य महाकाव्य का संक्षिप्त रूप होता है किन्तु विषय की दृष्टि से पूर्ण होता है । आकार में लघु होने के कारण युद्ध आदि का वर्णन नहीं रहता है । कथानक छोटा और प्रकृति वर्णन संक्षिप्त होता है तथा स्थान-स्थान में कवि के नैतिक विचार भी व्यक्त रहते हैं ।

रुद्रट ने खण्ड काव्य की गणना लघुकाव्य के अन्तर्गत की है । क्योंकि उन्होंने 'प्रबन्ध' के दो भेद करके उनको उत्पाद्य, अनुत्पाद्य, महत् और लघु में बांटा है । 'महत्' भेद को महाकाव्य और 'लघु' भेद जिसको क्षुद्र भेद भी कहा है, खण्ड-काव्य कहा गया है ।

उन्होंने खण्ड काव्य की विशेषता बताते हुए कहा है कि इसमें नायक सुख विपत्ति रहित, अभ्युदित होता है। रस की दृष्टि से करुण या विप्रलम्भ शृंगार या प्रेमानुराग दिखाया जाता है और अन्त में नायक का अभ्युदय बताया जाता है[१] ।

काव्य अपने बृहदाकार होने से ही महाकाव्य की पदवी से विभूषित नहीं होने लगता है अपितु उसके अपने कुछ विशेष गुण होते हैं । वे गुण हैं -- सर्ग, कथावस्तु, नायक, रस एवं प्रकृति चित्रण ।

महाकाव्य का सर्ग ही उसे अन्य काव्यांगों से पृथक् करता है, क्योंकि शेष अन्य तत्व अन्य काव्यांगों में मिल सकते हैं किन्तु सर्ग बन्धता केवल संस्कृत महाकाव्यों को छोड़कर अन्यत्र नहीं उपलब्ध होती है । नाटकादि के परिच्छेद अंक कहलाते हैं, कथा काव्य के लम्बक तथा आख्यायिका - काव्य के उच्छ्वास कहलाते हैं, सर्ग नहीं ।

इसका दूसरा प्रमुख तत्व कथानक होता है जो किसी सामान्य घटना पर आश्रित न होकर ऐतिहासिक होता है । क्योंकि उसमें किसी आदर्श की स्थापना की जाती है । इसीलिए कवि अधिकांशतः महाभारत

१- रुद्रटकृत काव्या० १।३३-३४

तथा रामायण से कथा वस्तु का ग्रहण करते हैं क्योंकि ये दोनों महाकाव्य हमारी भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं राष्ट्रीय गौरव के प्रतीक हैं । इसलिए पुराणों से भी कथावस्तु ली जाती है ।

कथावस्तु के अनुकूल ही महाकाव्य में नायक होता है अर्थात् नायक का आदर्श सामने रखा जाता है । कौशिक विट, धूर्त आदि नायक न होकर देवता, क्षत्रिय या ब्राह्मण होते हैं जो धीरोदात्त, सर्वगुण सम्पन्न, कुलीन रूपक एवं चतुर्वर्ग में से वर्णित एक फल का भोक्ता होता है । प्रतिनायक के द्वारा नायक का उत्कर्ष दिखाया जाता है । यह प्रतिनायक भी गुणों में नायक से किसी प्रकार कम नहीं होता है । अन्त में नायक उसका वध करके धर्म की रक्षा करता है ।

महाकाव्य में यद्यपि सभी रसों का निरूपण होता है किन्तु शृंगार, वीर और शांत रस में से कोई एक रस कथावस्तु के अनुकूल अंगी बनता है और अन्य सब रस गौण रूप में वर्णित होते हैं ।

इन तत्वों के अतिरिक्त महाकाव्यों में प्रकृति-वर्णन अधिक मात्रा में पाया जाता है । कथावस्तु तो थोड़ी रहती है किन्तु उसका विस्तार नगर, राजधानी, प्रासादों, राज्य, मृगया, युद्ध, स्कन्धावार और वहां के विविध मनोरंजनों, उद्यानों, सरोवरों, ऋतुओं, सूर्योदय, चंद्रोदय, रात्रि, प्रातःकाल, आश्रम, जलविहार, जलक्रीड़ा आदि से होता है । इन प्राकृत दृश्यों का वर्णन कभी स्वतंत्र रूप में -- जिसको आलम्बनरूप भी कहा जा सकता है, कभी उद्दीपन रूप में और कभी मानवीय-करण रूप में मिलता है ।

पद्य-काव्य के इन भेदाधारों के अतिरिक्त आचार्यों ने व्यंग्य के आधार पर भी उसके भेद किए हैं । आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट एवं अन्य ध्वनिवादी तथा रसवादी आचार्यों ने ही यह आधार स्वीकार किया है । इस दृष्टि से उन्होंने उत्तम, गुणीभूत व्यंग्य मध्यम और अधम -- चार प्रकार के काव्य माने हैं । उत्तम काव्य को व्यंग्य अथवा ध्वनि की प्रधानता होने के कारण ध्वनि-काव्य भी कहा गया है । पंडितराज

जगन्नाथ ने इसे ही उत्तमोत्तम काव्य कहा है । इस ध्वनि काव्य के मुख्य भेद निम्न प्रकार हैं जो अधोलिखित तालिका से स्पष्ट है --
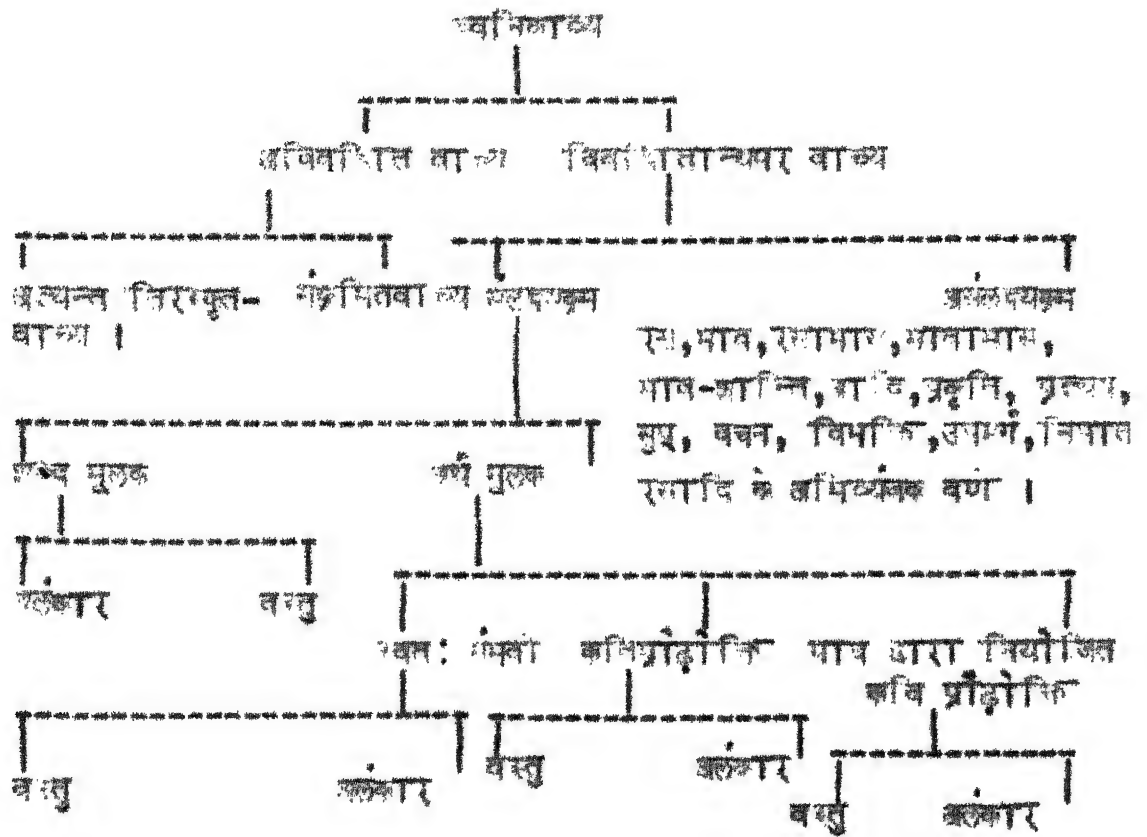
गुणीभूत व्यंग्य-काव्य में यद्यपि व्यंग्य गौण रहता है किन्तु ध्वनि काव्य से किसी प्रकार कम नहीं होता है । जगन्नाथ ने इस भेद का नाम उत्तम दिया है । मम्मट ने यद्यपि काव्य का दूसरा भेद गुणीभूत व्यंग्य के आधार पर किया है किन्तु आनन्दवर्धन की भाँति इसे उत्तम काव्य के समकक्ष नहीं बताया अपितु इसे मध्यम काव्य कहा जो उत्तम काव्य से हीन और चित्र-काव्य से श्रेष्ठ होता है । क्योंकि इस काव्य में व्यंग्य और वाच्य दोनों ही की सत्ता रहती है किन्तु वहाँ व्यंग्य प्रधान न होकर वाच्य प्रधान होता है ।

मम्मट के गुणीभूत व्यंग्य काव्य के आठ भेद[1] अधोलिखित हैं --

१- का० प्र० पंचम उल्लास

१- अगूढ़ व्यंग्य

२- अपरांग व्यंग्य

३- वाच्य सिद्ध्यंग व्यंग्य

४- अस्फुट व्यंग्य

५- सन्दिग्ध प्रधान व्यंग्य

६- तुल्य प्रधान व्यंग्य

७- काक्वाक्षिप्त व्यंग्य और

८- असुन्दर व्यंग्य

हेमचन्द्र ने इसी काव्य के -- १- अगूढ़, २- संदिग्ध और ३-तुल्य-प्रधान की दृष्टि से तीन भेद किए[1]। इनमें कान्त के पुनः चार भेद किए[2] --

१- वाच्य से अनुरणन में व्यंग्य की प्रधानता न हो जाए।

२- व्यंग्य किसी का अंग बन जाए।

३- जहाँ पर अस्फुट होने के कारण व्यंग्य की प्रधानता न हो।

४- जहाँ पर अत्यधिक स्फुट हो जाने से व्यंग्य एक प्रकार से नहीं के बराबर हो।

अधम-काव्य को ही चित्र-काव्य और अवर-काव्य कहा गया है। इसके दो भेद -- शब्द वैचित्र्य और अर्थ वैचित्र्य -- माने गए हैं। किन्तु जगन्नाथ केवल उस शब्द के चमत्कार को अधम काव्य कहते हैं जिसमें अर्थ का चमत्कार शब्द के चमत्कार को शोभित करता है -- 'यत्रार्थचमत्कृत्युप-स्कृता शब्दचमत्कृतिः प्रधानम्।' उनकी दृष्टि में अर्थ का चमत्कार नहीं है और शब्द का चमत्कार है तो वहां काव्य नहीं होगा[3]। अतः मम्मट के 'अर्थ चित्र' काव्य को उन्होंने मध्यम काव्य के अन्तर्गत किया है।

छन्द में होने अथवा न होने की दृष्टि से जो श्रव्य-काव्य के तीन भेद दिखाए जा चुके हैं उनमें से जो छन्दोबद्ध नहीं होता उसे गद्य-काव्य कहा जाता है। 'अपादः पदसन्तानो गद्यम्' (काव्यादर्श), 'अपादः पदसन्तानो गद्यं तदपि कथ्यते' (अग्निपुराण) छन्दोनिबद्धमच्छन्द इति तद्वाङ्मयं द्विधा। पद्यमाद्यं तदन्यच्च गद्यं मिश्रं च तद् द्वयम्॥ (वाग्भटालंकार २।४-वाग्भट)

१-हेमचन्द्रकृत काव्यानुशासन, द्वितीय अध्याय, [illegible] ५७ वीं कारिका-पृष्ठ १५२

३-जगन्नाथ -- रसगंगाधर- पृष्ठ ७४

२-हेम चन्द्रकृत -- काव्यानुशासन, द्वितीय अध्याय, वही कारिका पृष्ठ १५२-५५

'[illegible]: [illegible] [illegible] [illegible] वाक्यंदर्भ:' ([illegible]नुशासन [illegible] [illegible]-
वाग्भट्ट [illegible]) आदि संस्कृत आचार्यों की परिभाषायें [illegible] गद्य का
[illegible] निर्धारण न करके विशिष्ट गद्य का [illegible] ही सिद्ध गद्य-काव्यों के नाम से
अभिहित किया जाता है । प्राय: सभी संस्कृत विद्वानों की दृष्टि में यह भेद
भी पद्य भेद के समान महत्त्वपूर्ण है । इसका कारण यही है कि उन्होंने काव्य
के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण उदार रक्खा है । केवल छन्दोबद्धता को ही
'काव्यों' का पहचान से विभूषित नहीं किया है अपितु जिस रचना पर उन्होंने
काव्य की कसौटियां --रस, गुण, अलंकार तथा [illegible]-- देखीं उसी
को काव्य नाम से सुशोभित किया । यही कारण है कि उनकी दृष्टि में नाटक
भी काव्य है । इसी प्रकार यदि गद्य में रसात्मकता, भावुकता, पदलालित्य, अलंकारों
का समुचित प्रयोग, वर्णन की मधुर छटा, कल्पना का विशाल वैभव, प्रकृति के
सूक्ष्म निरीक्षण की शक्ति आदि गुण परिलक्षित होते हैं तो वह गद्य, काव्य
हो जाता है । बाण ने श्रेष्ठ गद्य-काव्य के लिए विषय की नवीनता, श्रेष्ठ
स्वभावोक्ति, अर्थों को स्पष्ट करने में समर्थ श्लिष्ट शैली, स्फुट रूप से
प्रतिभासित रस एवं विकट शब्द योजना का होना परमावश्यक बताया है[1] ।
उनकी दृष्टि में सरल अर्थ वाले शब्दों एवं ललित पदों से सुशोभित गद्य-काव्य
स्वर्णिम पायों से निर्मित पलंग के समान आकर्षक होता है[2] ।

बाण ने गद्य-काव्य में अश्लिष्ट श्लेष को स्थान दिया था परन्तु
उनके पूर्ववर्ती सुबन्धु ने श्लिष्ट श्लेष को स्थान देना अधिक पसन्द किया था--

प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिं प्रबन्धम् ।
सरस्वती दत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धु: सुजनैकबन्धु: ।। (वासवदत्ता)

बाण के बाद भी गद्य-कवियों ने श्लिष्ट शैली को गद्य-काव्य की
विशेषता के रूप में स्वीकार किया है । इस श्लिष्ट शैली ने न केवल गद्य-

---

१- नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्ट: स्फुटो रस: ।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ।। ८।। (हर्षचरित)

२- सुखप्रबोधललिता सुवर्णघटनोज्ज्वलै: ।
शब्दैराख्यायिका भाति शय्येव प्रतिपादुकै: ।।२१।। (हर्षचरित)

विचार बदल दिए । उन्होंने बताया कि भारतीय गद्य-काव्यों में कथा का रूप मौलिक है और वहीं पर उसका विकास हुआ है । ग्रीक-गद्य-काव्यों में कथा भारतीय गद्य-काव्यों से ली गया है । ए०बी० कीथ को यह मान्य नहीं है । उनका कहना है कि ग्रीक भी कथा कहने के प्रेमी थे, उनकी कथाओं में मौलिकता है तथा उनमें कथा के सरल एवं विस्तृत दोनों रूप मिलते हैं[1] । यहाँ हम विवाद में अधिक चर्चा नहीं करते क्योंकि एक तो बृहत्कथा वास्तविक रूप में नहीं उपलब्ध है और दूसरे जिस आधार पर भारतीय गद्य-काव्य से ग्रीक गद्य-काव्य प्रभावित माना गया है वह वासवदत्ता (सुबन्धुकृत) है और यह रचना ग्रीक-गद्य-काव्य के बहुत बाद की है अतः भारतीय गद्य-काव्य से ग्रीक गद्य-काव्य के प्रभावित होने का प्रश्न ही नहीं उठता है[2] ।

उनकी दृष्टि में यदि ग्रीक गद्य-काव्य भारतीय गद्य-काव्य से प्रभावित होता तो भारतीय गद्य-काव्यों की भाँति दृश्यों एवं विविध उपकथाओं का भी उसमें वर्णन होता जब कि उसके लिए वहाँ पर्याप्त अवसर है[3] ।

इससे यह तात्पर्य न लेना चाहिए कि कीथ दोनों में समानता नहीं स्वीकार करते । अपितु वे उनको एक-दूसरे से प्रभावित होने का कारण नहीं मानते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में दोनों की रचना एवं साहित्यिक रूप में पर्याप्त अन्तर है ।[4]

ए०बी० कीथ की भाँति एल०एच० ग्रे ने भी भारतीय और ग्रीक गद्य-काव्य दोनों में समानता देख कर भी एक-दूसरे को प्रभावित करने वाला नहीं बताया है । उन्होंने दोनों में पर्याप्त अन्तर मानते हुए कहा है कि

१- हि० आफ सं०लिट०---ए०बी० कीथ पृष्ठ ३६८-६९

२- ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ३६८

३- ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ३६७

४- क्ला० सं० लिट० -- ,, ,, पृष्ठ ८०

संस्कृत-गद्य-काव्य में कथावस्तु गौण, प्रकृति एवं पात्रों के मानसिक भावों, मानसिक, नैतिक, तथा शारीरिक गुण आदि का वर्णन अधिक होता है, अर्थात् वर्णन की प्रधानता होती है जब कि ग्रीक गद्य-काव्य में कथावस्तु का महत्व होता है, घटनाओं को भी प्रधानता रहती है और वर्णन का गौण रहता है[1]।

डिडो ने भी दोनों में आकार और महत्व की दृष्टि से भेद किया है[2]।

एस०के० डे ने भी भी दृष्टि से दोनों में अन्तर बताया है। उनकी दृष्टि में संस्कृत गद्य-काव्य को ग्रीक गद्य-काव्य से प्रभावित मानना केवल भ्रम की बातें होंगी। क्योंकि संस्कृत गद्य-काव्यकारों ने काव्य से प्रेरणा ली है। चूंकि वे काव्य लक्षणाकार हैं अतः गद्य-काव्य भी लक्षणाकार हैं। अतः उसमें विदेशी प्रभाव पड़ने का भी कोई प्रश्न नहीं उठता है, फिर उसमें गद्य-काव्य की भांति कहानी कहना उद्देश्य नहीं रहता है। संस्कृत गद्य-काव्यों में भावों एवं अन्य वस्तुओं का अलंकारिक वर्णन रहता है जब कि ग्रीक-कथाओं में स्पष्टवादिता रहती है[3]।

हंसराज अग्रवाल ने इस मत के मानने वाले सभी विद्वानों के विचारों का सार लेकर गद्य-काव्य का वैशिष्ट्य निर्धारण अधोलिखित पंक्तियों में किया है --

> "संस्कृतगद्यकाव्ये हि अवान्तरस्य वर्णनं न ग्रीकगद्यकाव्ये तु कथायाः एव प्राधान्यं वरीदृश्यते। तस्मात् एव एव भिन्नतां च एव एव साहित्यिकसम्प्रदायांश्च लक्षीकृत्य भारतीयग्रीक-गद्य-काव्ययोः परस्परनिरपेक्षं स्वतन्त्रैव खलु उत्पत्तिः अभूत् इति सिद्धान्तः एव साधीयान् प्रतिभाति"[4]।

१- ए हिस्ट्री आफ सं० लिट्०--ए०बी० कीथ, पृष्ठ ३६६-७०
२- हिस्ट्री आफ क्ला० सं० लिट्०--एम०कृष्णमाचार्य, पृ० ४४०
३- हिस्ट्री आफ सं० लिट्०-- एस०एन०दास गुप्त और एस०के० डे,पृष्ठ२०२
४- संस्कृतसाहित्येतिहासः द्वितीयो भागः--हंसराज अग्रवाल पृष्ठ ११

इस प्रकार संस्कृत गद्य-कवियों की वर्णना शक्ति है। विशेष रूप से अपना पृथक्-पृथक् स्थान रखती है। इस वर्णना शक्ति के लिए कवियों को कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है। इन कवियों की कल्पना के समान अन्य भाषाओं के कवियों की कल्पना नहीं टिकती है। यद्यपि गद्य-कवि अपने इस कल्पना-वैभव से वर्णन-विस्तार को अत्यन्त विस्तृत कर देते हैं जो कभी-कभी पाठकों को उकताने वाले भी हो जाते हैं किन्तु यदि उनकी वर्णनाओं को साहित्यिक दृष्टि से देखा जाय तो वे कला के उत्कृष्ट नमूने ही प्रमाणित होंगे। कीथ का कहना है कि उनकी तुलना के लिए ग्रीक और रोमन के पास कुछ भी नहीं है[२]।

कल्पना के कारण ही गद्य-कवियों में अधिकांशतः पौराणिक नायकों का उल्लेख करने की अधिक प्रवृत्ति होती है अपेक्षाकृत ऐतिहासिक राजाओं के। जो कवि ऐतिहासिक कथावस्तु लेते भी हैं तो उसे न वे ऐतिहासिक रूप देते हैं और न उस प्रकार का रूप देना उनका उद्देश्य ही रहता है। यह दूसरी बात है कि इनकी कृतियों में वर्णित सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि स्थितियां कुछ इतिहास का परिचय दे दें, क्योंकि कवि अपने वातावरण से अधिक प्रभावित रहता है।

लेकिन गद्य-कवि कल्पना की उड़ान में बहक नहीं जाते हैं। रसों के सम्यक् निरूपण में असावधानी नहीं दिखाते हैं और अपने काव्य को स्वाभाविकता एवं वास्तविकता से रहित नहीं करते हैं। इसीलिए सहृदय-पाठक उनमें पहुंच कर अलौकिक संसार में विचरण करता है। इसके लिए गद्य-कवि भावोत्कर्ष में सहायक अलंकारों का ही प्रयोग करते हैं। अतः गद्य-काव्यों में अधिकांशतः मुख्य-मुख्य अलंकारों का ही प्रयोग होता है। यही कारण है कि प्रायः सभी गद्य-काव्यों में एक से ही अलंकार

२- ए०हि० आफ सं० लिट्० -- ए०बी० कीथ, हिन्दी अनुवाद पृष्ठ४१२

१- हि० आफ सं० लिट्०. -- एस० एन० दास गुप्त और एस०के० दे, पृष्ठ२०६

अलंकृत होते हैं । जैसे परिसंख्या, विरोधाभास, विभावना, उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, श्लेष आदि ।

वैसे तो गद्य-काव्यों में सभी रसों का निरूपण रहता है किन्तु कुछ गद्य-काव्य को छोड़कर प्रायः सभी गद्य-काव्य शृंगार-रस प्रधान होते हैं यही कारण है कि इनमें भी पद्य-कवियों की भांति स्त्रियों के सौंदर्य वर्णन की अधिकता रहती है और नायक के अन्य रूपों के अतिरिक्त उसके प्रेमी रूप का भी वर्णन रहता है, स्त्रियों के सौंदर्य वर्णन की अधिकता रहती है । इसका कारण भी है । चूंकि साहित्य में विशेषतया मानवीय प्रवृत्तियों और स्वभावों का चित्रण होता है, और समस्त मानवीय व्यापारों में प्रेम-व्यापार की प्रधानता होती है, इसीलिए काव्यों में शृंगारिक चित्रण की प्रधानता होती है । इसकी सफल अभिव्यंजना के लिए ही संस्कृत आचार्यों ने कवियों के लिए कामशास्त्र में निष्णात होना परमावश्यक बताया है ।

इन वर्ण्य-विषयों के अतिरिक्त राजा का वैभव, राजधानी की समृद्धता, महिषियों, दासियों, पुत्र-जन्म, शिक्षा, मृगया, युद्ध, विजय, ऋतु, तड़ाग, उपवन, सूर्यास्त, चन्द्रोदय आदि वर्णन तथा पशु-पक्षियों एवं वृक्षों की गणना की प्रवृत्ति भी मिलती है । बाण ने शुकसारिका का वर्णन अध्ययन और अध्यापन के सम्बन्ध में कई बार किया है । कादम्बरी की भूमिका में आया है कि पिंजड़ों में बैठी हुई शुक सारिकायें अशुद्ध पढ़ने पर विद्यार्थियों को डांटती थीं[१] कादम्बरी की कथा सकल शास्त्रों में निष्णात वैशम्पायन तोते से कहलाई गई है । सुबन्धु की वासवदत्ता में भी कुसुमपुर के वर्णन में तोते के मुख से बृहत्कथा के सुनने का उल्लेख है[२] । धनपाल की तिलकमंजरी में, महोदर यक्ष से अभिशप्त गन्धर्वक शुक रूप धारण करके हरिवाहन का सन्देश कमलगुप्त के पास पहुंचाता है और वहां का सन्देश हरिवाहन के पास ले जाता है[३] ।

१- कादम्बरी श्लो० सं० १२

२- वासवदत्ता पृष्ठ १२२

३- तिलकमंजरी पृष्ठ १६३-६५

इस प्रकार गद्य-काव्य के वर्ण्य-विषय पद्य-काव्य की ही भाँति होते हैं किन्तु दोनों स्वच्छन्दता एवं गद्य-पद्य की दृष्टि से बिलकुल भिन्न हैं । गद्य-काव्य का तो स्थान एक प्रकार से दिया ही नहीं जाता है, क्योंकि पद्य का दूसरा भेद है --गद्य-काव्य । इसका कवि गद्य-कवि कहलाता है और पद्य का पद्य-कवि । दोनों ही काव्य की रचना करते हैं किन्तु दोनों की कार्य-पद्धति में बहुत अन्तर रहता है । पद्य-कवि को उतनी कठिनाई का अनुभव नहीं करना पड़ता है जितना गद्य-कवि को । क्योंकि पद्य-कवि छन्दों के नियमों की शृंखला से बंधा रहता है अतः पंगु हो जाने के कारण इधर-उधर जा नहीं पाता है उसके काव्य में शब्दों, भावों अथवा दोनों की ही थोड़ी-बहुत शिथिलता इत्यादि होने पर भी छन्द का महान प्रतिबन्ध होने के कारण पाठकों तथा समालोचकों द्वारा शिथिलता आदि नहीं माना जाता है । किन्तु इसके ठीक विपरीत गद्य-कवि होता है, उसके सम्मुख उन्मुक्त वातावरण रहता है, जिधर दृष्टि डालना चाहे स्वतन्त्रतापूर्वक डाल अथवा जा सकता है, उसके लिए कोई बन्धन नहीं रहता है, उसे काव्य-कौशल दिखाने के लिए पर्याप्त स्थान रहता है । अतः इसमें किसी प्रकार की भी शिथिलता आने पर कवि का अपराध किसी प्रकार भी क्षम्य नहीं होता है और न गद्य-कवि के पास इस दोष से बचने का कोई उपाय होता है । इसमें पद्य-कवि की भाँति शब्दों के तोड़-मरोड़ करने की स्वतन्त्रता नहीं रहती है अपितु प्रत्येक शब्द के चयन में सावधानी रखनी पड़ती है, विषय-विन्यास और शब्दों का सामन्जस्य देना पड़ता है ।

पं० अम्बिकादत्त व्यास ने पद्य-कवि की उपमा चौपड़ खेलने वाले से तथा गद्य-कवि की उपमा शतरंज खेलने वाले से दी है --

"पद्यकर्ता यह भी नहीं कह सकता कि पदान्त के कारण हमारी कविता में माधुर्य घट गया । यहां तो कुछ भी मधुरता की घटी हो

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रस पूर्ण वाक्यों से गठित गद्य-काव्य की रचना करने का सामर्थ्य सभी कवियों में नहीं होता है अपितु वे ही विरले कवि होते हैं जो वस्तुत: प्रतिभा-सम्पन्न हुआ करते हैं । प्राचीन ही कवियों की प्रतिभा के परखने की कसौटी बताया गया है -- "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति ।" वामन ने प्राचीन काव्य के भेदों में सर्वप्रथम स्थान गद्य को दिया है । उन्होंने इस बात को स्पष्ट रूप से निर्देश भी कर दिया है -- गद्यस्य पूर्वनिर्देशो दुर्लक्ष्यविशेषत्वेन दुर्बन्धत्वात्[11] । (का० सू० वृ० १।३।२)

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि गद्य-काव्य में पद्यों का स्थान बिल्कुल ही नहीं होता है । यद्यपि आचार्यों ने काव्य के तीन भेद इसी दृष्टि से किए हैं । उन्होंने पद्य में केवल पद्य, गद्य में केवल गद्य और चम्पू में गद्य-पद्य दोनों की रचना बताया है, किन्तु उन्हीं आचार्यों ने गद्य-काव्य के अन्दर पद्यों की स्थिति भी निर्धारित कर दी है और 'चम्पू' से भिन्नता रखने के लिए पद्यों का स्वरूप भी निश्चित कर दिया है । क्योंकि 'चम्पू' के वर्णन के समय गद्य-पद्य दोनों का संतुलन रहता है, कथावस्तु में दोनों ही सहायक होते हैं, उसमें छन्दों के प्रकारों का निश्चय नहीं रहता है, किन्तु गद्य-काव्य में गद्य की प्रधानता और पद्य की गौणता रहती है, पद्य कथावस्तु में भी सहायक नहीं होते हैं तथा आर्या, वक्त्र, और अपवक्त्र को छोड़कर और कोई पद्य उसमें प्रयुक्त नहीं हो सकते हैं । यद्यपि इस विषय में पं० अम्बिकादत्त व्यास का बहुत वाद विवाद है । उनका कथन है कि उसमें वे सभी पद्य प्रयुक्त हो सकते हैं जो गद्य का-सा आनन्द देते हों । इस प्रकार उनकी दृष्टि में आर्या, अनुष्टुप, सार, चर्चरी, त्रिभंगी, पादाकुलक, रोला, उल्लाला आदि छन्द गद्य-काव्य में निर्दोष हैं ।[12]

11- गद्य-काव्य के अभाव के कारणों में से एक यह भी संभवत: कारण है । इसकी विवेचना यथावसर करेंगे ।

12- ग० का० मी० -- पं० अम्बिकादत्त व्यास, पृष्ठ १६

इन्होंने गद्य-काव्य को उपन्यास बताया है किन्तु उनकी दृष्टि में उपन्यास का स्वरूप 'उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्' (अमरकोष) तथा 'उपन्यासः प्रसंगेन भवेत्कार्यस्यकीर्तनम्' (साहित्य दर्पण) से न होकर उस विधान से है जिसमें रस लोकोक्ति और आलोचना के रूप में हो अथवा जहां पात्र हों ने कोई बात पद्य ही में कही है उसका पद्य ही में दिखाना अधिक उपयुक्त होता है । ये पद्य स्वभावोक्तिपूर्ण, प्रसादगुण युक्त, छोटे तथा गद्य काव्य सा आनन्द देने वाले होते हैं । मंगलाचरण, अपने कुल के निरूपण अथवा सत्कार करने वाले राजा आदि के वर्णन तथा प्रसंगानुकूल किसी भी वर्णन में प्रयुक्त श्लोक, आदि में अथवा अन्त में आ सकते हैं । उनकी दृष्टि में ये सब चीजें काव्य के अवयव नहीं हैं अपितु काव्य के उपकारी तत्त्व हैं । भूमिका अथवा उपसंहार में जो श्लोक से कहना पड़ता है उसे यदि गद्य में कह दिया जाय तो उनकी दृष्टि में कुछ हानि नहीं होती है । कहानी उत्तम पात्रों और घटनाओं से मनोहर होती है । उसमें कृत्रिमता का अभाव पात्रों के अनुकूल वार्तालाप की योजना, उत्कण्ठा की प्रधानता, एक कथा का विच्छेद और दूसरे परिच्छेद की कल्पना तथा परिच्छेद का नाम 'उच्छ्वास', 'भाग', 'विराम' (निःश्वास, प्रश्वास) इत्यादि होते हैं । परिच्छेद हो या न हो किन्तु उसमें चमत्कार होना चाहिए । एक भाग के और भी प्रभाग किए जा सकते हैं । (जैसे इन्होंने अपने गद्य-काव्य 'शिवराजविजय' में 'विरामक' संज्ञक तीन भाग किए हैं और फिर प्रत्येक 'विरामक' के चार चार निःश्वास किए हैं ।) इन परिच्छेदों के आरम्भ में अपने बनाए अथवा दूसरों के भी (यद्यपि यह प्रवृत्ति बाद के ही गद्य-कवियों में दीख पड़ती है) पूरे अथवा किंचित् पद्य कहे जाते हैं अथवा अन्योक्ति की भांति उनके द्वारा उस भाग के विषय में सूचना दे दी जाती है । इस भाग, परिच्छेद के आरम्भ में देश, काल आदि का वर्णन, उसके अन्त में अद्भुत आदि और मध्य में प्रधान विषय का माधुर्यमय रक्खा जाता है । (इसका उदाहरण वीरेन्द्र वीर के आरम्भ में ही पक्षी के स्वभाव, अंधेरी रात और बाग का वर्णन, फिर प्रधान विषय और अन्त में अद्भुत रस के साथ रौद्र रस झलका कर परिच्छेद समाप्त हो जाता है

फिर दूसरे में आरम्भ में शुक का वर्णन, मध्य में प्रधान विषय और अन्त में शुक के देह का अचानक मिलना फिर खो जाना, फिर मिलना-- इसमें अद्भुत रस का प्रदर्शन करके कथा इसके बाद करुण और भयानक रस दिखाकर परिच्छेद को समाप्त कर दिया है । [1]उनकी दृष्टि में एक परिच्छेद के अन्दर आश्रय दो पुरुषों का वर्णन और एक पात्र के स्वभाव में निष्कारण भेद दिखाना अभीष्ट नहीं है ।

इन विशेषताओं से अतिरिक्त गद्य-काव्यों में एक कथावस्तु विविध कथाओं से जुड़ी रहती है जो कि प्रायः गन्धर्वों विद्याधरों आदि से अधिक सम्बन्धित रहती हैं । इससे कहानी दुरूह हो जाता है । कादम्बरी में तीन जन्म की कथा का वर्णन उलझा हुआ है । तिलकमंजरी में भी कई कहानियां एक कथावस्तु से उलझी हैं । दशकुमारचरित में यद्यपि दस राजकुमारों के चरित हैं किन्तु उलझे हुए नहीं हैं, अलग अलग हैं । अतः दशकुमार चरित को छोड़कर प्रायः सभी गद्य-काव्य इसी प्रकार के ही हैं ।

संस्कृत गद्य-काव्यों में भाग्य एवं चमत्कार में विश्वसनीयता, नायक-नायिका के जन्म में से किसी एक के जन्म में देवता की कृपा, अपने से पूर्ववर्ती कवियों और लेखकों की प्रशंसा की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होता है । इसीलिए प्रायः सभी गद्य-काव्यों का एक-सा रूप मिलता है ।

गद्य-काव्य के भेद

इस गद्य-काव्य के भी कई भेद संस्कृत आचार्यों ने किए हैं जिनमें प्रमुख भेद कथा और आख्यायिका का है । कुछ विद्वान तो इस भेद को मानते नहीं हैं और कुछ विद्वान् इन दोनों के बीच बताई गई विशेषताओं को स्वीकार भी नहीं करते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में कथा की विशेषताएं आख्यायिका में पाई जाती हैं और आख्यायिका की विशेषताएं कथा में ।

१- ग० का० मी०-- पं० अम्बिकादत्त व्यास, पृ० श्लोक सं०४-१३

इसके अतिरिक्त कुछ आचार्यों की दृष्टि में जो विशेषता कथा की है वह दूसरे आचार्यों की दृष्टि में आख्यायिका की हो जाती है ।

लेकिन अधिकांश आचार्यों ने इस भेद को स्वीकार किया है और कथा तथा आख्यायिका की विशेषता बताते हुए कई प्रकार से दोनों में अन्तर भी दिखाया है ।

भामह, रुद्रट और हेमचन्द्र की दृष्टि में कथा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों में हो सकती है[1] और आख्यायिका केवल संस्कृत में होती है । भामह तथा हेमचन्द्र ने इसे स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है[2] ।

शैली की दृष्टि से भामह और रुद्रट के काव्यालंकार, अग्निपुराण तथा हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में दोनों में यह अन्तर बताया गया है कि कथा गद्य-पद्य दोनों में हो सकती है किन्तु आख्यायिका केवल गद्य में होगी[3] ।

संस्कृत आचार्यों ने कथा और आख्यायिका में परिच्छेद के पृथक्-पृथक् नाम तथा अलग-अलग छन्द माने हैं । भामह[4], रुद्रट[5] और अभिनव गुप्त[6] ने आख्यायिका के परिच्छेद का नाम 'उच्छ्वास' बताया है । अग्निपुराण[7] में इस सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है । उसमें आख्यायिका के परिच्छेद का

१- 'संस्कृताऽसंस्कृता चेष्टा कथा अपभ्रंश भाक्तथा । भामहकृत काव्या० १।२८
'इति संस्कृते न कुर्यात्कथामगद्येन चान्येन । रुद्रट-काव्या० १६।२३
'सर्वभाषा कथा -- हेमचन्द्र कृत काव्यानुशासन
२- 'संस्कृतानाकुलश्रव्यशब्दार्थपदवृत्तिना ।... ।।' भामहकृत काव्या० १।२५
'संस्कृता गद्ययुक्ताख्यायिका ।' हेमचन्द्र कृत काव्यानुशासन
३- 'गद्येन युक्तोदात्तार्था ... ।।' भामहकृत काव्या० १।२५
'यत्र गद्येन विस्तरात् ।' अग्नि०
'गद्ययुक्ताख्यायिका' हेमचन्द्र कृत काव्यानुशासन
'इति संस्कृतेन कुर्यात्कथामगद्येन चान्येन । रुद्रटकृत काव्या० १६।२३
'अथ तेन कथैव यथा रचनीयाख्यायिकापि गद्येन
निजवंश स्व चात्मानमभिदध्यात्पूर्वमत्रापि ।।' रुद्रटकृत काव्या० १६।२६
४-सोच्छ्वासाऽऽख्यायिका मता -- भामह कृत काव्यालंकार, १।२५
५- 'कुर्यादत्रोच्छ्वासान्सर्गवदेषां ... ।' रुद्रट कृत काव्या० १६।२७
६- 'आख्यायिकोच्छ्वासादिना ... ।' लोचन
७- 'उच्छ्वासैश्च परिच्छेदो यत्र ... ।' अग्निका का०शा०भा० १।१४
परिच्छेदो न यत्र स्यात्भवेद्वा लम्बकैः क्वचित् ।.... १।१६

नाम 'उच्छ्वास' तथा कथा के परिच्छेद का नाम 'लम्भक' बताया गया है । साथ ही उसमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कथा में परिच्छेद का होना आवश्यक नहीं है । विश्वनाथ आख्यायिका के परिच्छेद का नाम 'उच्छ्वास' न देकर 'आश्वास' देते हैं[१]।

संस्कृत आचार्यों के अतिरिक्त गद्य-काव्य का सुव्यवस्थित रूप देने वाले बाण ने आख्यायिका के परिच्छेद का नाम 'आश्वास' न देकर 'उच्छ्वास' ही दिया है[२]।

इस प्रकार इन आचार्यों ने आख्यायिका के परिच्छेद का नाम 'उच्छ्वास' तथा 'आश्वास' और कथा के परिच्छेद का नाम 'लम्भक' बताया ।

छन्दों के सम्बन्ध में भामह ने कथा में वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्द की सत्ता का निषेध किया है और आख्यायिका के अन्तर्गत उन्हें स्वीकार किया है । इन छन्दों के विषय में बताया कि इन्हें भाव्यार्थशंसी होना चाहिए[३]।

रुद्रट ने इन छन्दों के अतिरिक्त आख्यायिका में पुष्पिताग्रा और मालिनी का प्रयोग होना भी बताया है[४]। उनकी दृष्टि में आख्यायिका में प्रथम उच्छ्वास को छोड़ कर दो-दो आर्यायें श्लिष्ट अथवा सामान्यार्थ रूप में प्रत्येक उच्छ्वास के अन्दर आती हैं[५]।

अग्निपुराण में आख्यायिका में वक्त्र अपरवक्त्र के अतिरिक्त 'कुसुमितोत्तरा' को भी स्थान मिला है[६]।

विश्वनाथ ने आर्या, वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का होना कथा और आख्यायिका दोनों में बताया है किन्तु दोनों में अन्तर यह है

१- कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते । सा०द० षष्ठपरि० श्लोक ३३३

२- उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वती ।
कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्याः कवीश्वराः ।। हर्षचरित-

३- 'न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छ्वासवत्यपि ।'
'सोच्छ्वासाख्यायिका मता,
वक्त्रं चापरवक्त्रं च काले भाव्यार्थशंसि च ।।' भामहकृत काव्या० १।२५-२६

४- तत्रच्छन्दः कुर्यादार्यापरवक्त्रपुष्पिताग्राणाम् ।
अन्यतमं वस्तुवशादथवान्यान्मालिनी प्रायम् ।। (रुद्रटकृत काव्या० १६।३०)

५- कुर्यादत्रोच्छ्वासान्तरेषु मुखेषु च ।
द्वे द्वे आर्ये श्लिष्टे सामान्यार्थे सद्‌वृत्ते ।। रुद्रट-काव्या० १६।२७

कि कथा में वक्त्र-अपवक्त्र छन्द प्रयुक्त होते हैं और आख्यायिका में इन छन्दों के द्वारा अन्योक्ति-रूप में परिच्छेद के आरम्भ में कथा की सूचना दे दी जाती है[1]।

किन्तु छन्दों के प्रयोग में पं० अम्बिकादत्त व्यास का प्रबल प्रतिवाद है। उन्होंने साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ के इससे सम्बन्धित विचारधारा की आलोचना करते हुए बताया है कि जब आर्या, वक्त्र, अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग हो सकता है तो अन्य वे सभी छन्द प्रयुक्त हो सकते हैं जो गद्य का-सा आनन्द देते हैं जैसे अनुष्टुप, सार, चर्चरी, त्रिभंगी, पादाकुलक, रोला, उल्लाला आदि[2]।

प्राचीन गद्य-काव्यों के आधार पर यदि ये छन्द अग्राह्य हैं तो व्यास जी ने प्राचीन आचार्यों द्वारा बताए छन्दों को भी निरर्थक बताया है। उन्हीं के शब्दों में -- "यदि कहो कि प्राचीन वासवदत्ता आदि काव्य ऐसे ही हैं इसलिए महाकवि के उदाहरणानुसार महापात्र ने लिखा और उसी का लेख हमें शिरोधार्य है तो यह भी भूल है क्योंकि यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि संस्कृत में गद्य-काव्य का केवल आरम्भमात्र हुआ उन्नति न होने पाई इस कारण पुस्तकालय दरिद्र है। तो क्या गद्य-काव्य के विषय में अनिष्णात आरम्भ-कर्त्ताओं की ही सब नकल करते जायं। फिर वासवदत्ताकार ने तो कुछ नियमबद्ध होकर के भी नहीं लिखा है। उन्होंने तो बड़े-बड़े श्लोकों से लच्छे भर दिए हैं[3]।

ए०बी० कीथ ने इस विषय में प्रतिवाद नहीं किया किन्तु बाण के हर्षचरित को लेकर बताया है कि उसमें अन्य छन्दों के भी प्रयोग हुए हैं।

१- "क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके ...।" ६।३३१ सा० द०
"आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित्।
अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम्॥ सा० द०
२- गद्य-काव्य मीमांसा --पं० अम्बिकादत्त व्यास १६-१६
३- गद्य-काव्य - मीमांसा -- ,, ,, पृष्ठ १६

इसके प्रथम उच्छ्वास में कविता पर एक अवतरणिका दी हुई है । दूसरे में दो-दो पद्य हैं परन्तु न तो वे दोनों आर्याएं हैं या एक श्लोक और एक आर्या, तृतीय उच्छ्वास में आर्या और स्रग्धरा के दो दो पद्य, चतुर्थ उच्छ्वास में दो पद्य वक्त्र अपरवक्त्र के और एक स्वतंत्र पद्य है आर्या प्रयुक्त हुई है । पंचम में एक श्लोक और एक अपरवक्त्र, छठे में एक आर्या और अन्तिम में दो के मध्य में कोई भी पद्य नहीं है । ए०बी० कीथ का कहना है कि बाण का वक्त्र छन्द ग्रन्थों में दिया हुआ श्लोक नहीं है । वह ऐसा श्लोक है जिसमें द्वितीय चतुर्थ पादों के अन्त में दो गुरु हैं[1] ।

कथा और आख्यायिका के इस भेदाधार के अतिरिक्त आख्यायिका को आत्मकथा बताया गया है । नायक स्वयं अपनी कहानी कहता है । कथा का नायक कुलीन होता है अतः वह अपने चरित का वर्णन स्वयं नहीं करता है अपितु उसकी कथा दूसरों द्वारा वर्णित होती है[2] । हेमचन्द्र ने इसका कारण क्रमशः कथा के नायक का धीरप्रशान्त तथा आख्यायिका के नायक का धीरोदात्तादि होना बताया है[3] । विश्वनाथ कथा और आख्यायिका के इस भेद को नहीं स्वीकार करते हैं । अपने मत के समर्थन में उन्होंने आचार्य दण्डी के मत को उद्धृत किया है[4] ।

१- हि० आफ सं० लिट्० -- ए०बी० कीथ, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ३६०

२- 'वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम् ।।'
'अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते ।
स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः ।।'

--भामहकृत काव्या० १।२६, २९ ।

३- 'धीरशान्तस्य गाम्भीर्यगुणोत्कर्षात्स्वयं स्वगुणोपवर्णनं न संभवतीत्यर्थः यस्यां धीरोदात्तादिना नायकेन स्वकीयं वृत्तं सदाचार रूपं चेष्टितं .... व्याख्यायते ।'

-- हेमचन्द्रकृत काव्यानुशासन पृष्ठ ४६२

४- 'अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्' इति दण्ड्याचार्यवचनात्केचित् 'आख्यायिका नायकेनैव निबद्धव्या' इत्याहुः तदयुक्तम् ।' सा०द०पृ० २२७

इसके अतिरिक्त वर्ण्य-विषय की दृष्टि से आख्यायिका की कथावस्तु ऐतिहासिक[1] और कथा की काल्पनिक होती है। आख्यायिका में कवि अपने अभिप्राय को कहने के लिए कोई चिह्न बना लेता है[2] तथा उसमें कन्याहरण, संग्राम, एवं विप्रलम्भ का वर्णन रहता है[3]। रुद्रट ने कन्याहरण आदि की विशेषता आख्यायिका में न मानकर कथा में माना है क्योंकि उसमें कन्या-प्राप्ति मुख्य फल होने के कारण शृंगार रस का विशेष रूप से निरूपण रहता है[4]। कथा और आख्यायिका दोनों के प्रारम्भ में इष्ट देव और गुरु को नमस्कार, निजकुल का वर्णन, काव्य-रचना की प्रेरणा का उल्लेख रहता है किन्तु कथा में ये सब बातें श्लोक में संक्षेप के साथ बतायी जाती हैं और आख्यायिका में गद्य में विस्तार के साथ बताई जाती हैं[5]। रुद्रट ने बताया कि आख्यायिका की रचना के कारणों--राजाज्ञा, राजभक्ति, पर-प्रशंसा अथवा रुचि आदि -- में से कोई कारण कवि को बताना पड़ता है[6]। उन्होंने कविवंशपरिचय देने के

१- "वृत्तमाख्यायते" भामहकृत काव्या० १।२६
"नायकाख्यातवृत्ता... गद्ययुक्ताख्यायिका।" हेमचन्द्रकृत काव्या०पृ०४६२

२- "कवेरभिप्राय कृतैः कथनैः कैश्चिदङ्कितः।" भामहकृत काव्या०१।२७

३- "कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयान्विता।।" भामहकृत काव्या० १।२७
"कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भविपत्तयः।।" अग्नि०का का० शा०भा०१।१३
"कन्याहरणसंग्रामसमागमाभ्युदयभूषितं मित्रादि वा व्याख्यायते..।"
--हेमचन्द्रकृत काव्यानुशासन पृ०४६२

४- "कन्यालाभफलां वा सम्यग्विन्यस्य सकलशृंगाराम्।" रुद्रटकृत काव्या० १६।२३

५- "श्लोकैर्महाकथायामिष्टान्देवान्गुरून्नमस्कृत्य।
संक्षेपान्निजकुलमभि दध्यात् तं च कर्तृक तया।।
पूर्ववदेव नमस्कृत्य तथैव गुरूँस्ततो [illegible]।
काव्यं कर्तुमिति कवी न्योदार व्यायिकायां तु।।" रुद्रटकृत काव्या०१६।२०
२४।

"कर्तृवंशप्रशंसा स्यादत्र गद्येन विस्तरात्।
+ + + यत्र आख्यायिका स्मृता।।
कथा श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात् कविरत्र प्रशंसति।
+ + + मध्येन कथान्तरम्।।अग्नि०का० [illegible] का०शा०भा०
१।१३,१५

६- तदनु नृपे वा भक्तिः परगुणसंकीर्तनेऽथवा व्यसनम्।
अन्यद्वा तत्करणे कारणमात्मनोऽभिदध्यात्।।रुद्रटकृत काव्या०१६।२४

इसके कथा में श्लोक का प्रयोग और आख्यायिका में पद्य का प्रयोग होना बताया है[1]। विश्वनाथ ने कथा के प्रारम्भ में पद्यमय नमस्कार और दुष्टों का चरित्र निबद्ध होना और आख्यायिका में कविवंश वर्णन तथा अन्य कवियों के वृत्तान्त एवं यत्र-तत्र पद्यों का होना बताया है। कैसे सरस वस्तु का निर्देश गद्य के माध्यम से ही होना दोनों रूपों में बताया है[2]।

इस प्रकार वर्ण्य-विषय की दृष्टि से केवल इष्ट देव के नमस्कार आदि की विशेषता ही दोनों में मिलती है और कोई नहीं। कथा में नमस्क्रिया के पश्चात् कथान्तर के द्वारा सम्पूर्ण कथा का परिचय दे दिया जाता है[3]। रुद्रट ने इस कथान्तर को प्रबन्ध के भेद 'लघु-काव्य' से सम्बद्ध बताया है, जिसका स्वरूप अधोलिखित है --

ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गात् ।

असमग्रानेकरसा ये च समग्रैकरसयुक्ताः ॥ (काव्या० १६।६)

कुछ काव्य-ग्रन्थों[4] में कथान्तर का प्रयोग सम्पूर्ण कथा के परिचय के लिए न बताकर प्रधान उद्देश्य की साधना के लिए बताया गया है।

प्रासंगिक कथा के अतिरिक्त कथा में अनुप्रास को विशेष महत्व प्राप्त रहता है[5]। इसी आधार पर आनन्दवर्धन ने कथा और आख्यायिका के भेद

१- श्लोकैर्महाकथायामिष्टान्देवान्गुरून्नमस्कृत्य ।
   संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात् स्वं च कर्तृतया ॥
   तद्वेन कथेव सकला रचनीयाख्यायिकापि गद्येन ।
   निजवंशं स्वं चास्यामभिदध्यान्न त्वगर्भेन ॥
   --रुद्रटकृत काव्या० १६।२०,२५

२- कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम् ॥ ६।३३२
   \+ \+ \+
   आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम् ॥ ३३३
   आख्यायिका कथावत्स्यात् कवेर्वंशानुकीर्तनम् ।
   अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित्क्वचित् ॥सा०द० ३३४

३- आदौ कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत्प्रपंचितं सम्यक् ।
   लघुतावत् तत्संधानं प्रकान्तकथावताराय ॥रुद्रट काव्या० १६।२२

४- मुख्यार्थस्योपकाराय यत्र तत् कथान्तरम् ॥ अभिनव का०शा०भा० १।१५

५- सानुप्रासेन ततो भूयो लघ्वक्षरेण गद्येन
   रचयेत्कथाशरीरं पुरेव पुरवर्णकप्रभृतीनि ॥रुद्रटकृत काव्या० १६।२१

बताते हुए ओज, गुण और समास को उसका प्राण बताया है[1]।

दण्डी की दृष्टि में यह आवश्यक नहीं है कि गद्य-काव्य का नायक चरित्रवान्, उदात्त एवं कुलीन हो। इसीलिए उन्होंने अपने 'गद्य-काव्य' 'दशकुमार चरित' के नायकों को महान् नहीं रखा है। इसके नायक चोर, जुआरी, धोखेबाज, छिनाल, धूर्त, परपुरुषगामिनी नारी आदि हैं।

यद्यपि दण्डी के विचारों को उनके परवर्ती आचार्यों ने नहीं स्वीकार किया है और भामह के मत का ही अनुसरण किया है। यदि छन्द, वक्ता आदि की दृष्टि से दोनों की पृथक्-पृथक् विशेषताएं न भी मानी जाय तो भी यह मानने में किसी को भी प्रतिवाद नहीं हो सकता है कि आख्यायिका ऐतिहासिक होती है और कथा काल्पनिक होती है। यह आधार दण्डी को भी मान्य है क्योंकि उन्होंने भामह के सब आधारों को तो निरर्थक सिद्ध किया है किन्तु 'वृत्तमाख्यायते' (काव्यालंकार १।२८) के विधान को नहीं काटा है। इस आधार को अमरकोष, हेमचन्द्र और अमृतानन्द योगी सभी ने स्वीकार किया है। अमरकोष में तो केवल यही आधार अथवा दोनों की विशेषता मानी गई है। पाश्चात्य विद्वानों में ए०बी०कीथ भी इस आधार को अधिक उपयुक्त समझते हैं[2]।

इस प्रकार कथा और आख्यायिका को पृथक्-पृथक् सत्ता स्वीकार करके कथा के भी उपभेद किए गए हैं। अग्निपुराण में खण्डकथा, परिकथा और कथानिका तीन उपभेद बताए गए हैं। खण्डकथा में चतुष्पदी होती है, परिकथा में कथा और आख्यायिका का मिश्रण होता है तथा कथानिका के आदि में भयानक रस किन्तु उसका अन्त सुखमय, मध्य में करुणा और [illegible] के अन्त में सब को छोड़कर अद्भुत रस होता है। इसमें उदात्त प्रवृत्ति नहीं होती है। यद्यपि खण्डकथा और परिकथा में राजमंत्री-कुल का अथवा ब्राह्मण नायक होता है, करुण रस रहता है, चार प्रकार का विरह रहता है

१- 'ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्।' १, ८०

२- क्ला० सं० लि० -- ए०बी० कीथ पृष्ठ ६८

चूर्ण अनाविद्ध और ललित पदों से युक्त होता है -- 'अनाविद्धललित-पदं चूर्णम्' । (१,३,२४) इसका उदाहरण -- 'अभ्यासो हि कर्मणां कौशलमावहति । न हि सकृन्निपातमात्रेणोदबिन्दुरपि ग्रावणि निम्नतामादधाति ।'

उत्कलिकाप्राय चूर्णात्मक गद्य के साथ विपरीत होता है -- 'विपरीतमुत्कलिकाप्रायम् ।' (१, ३, २५) जैसे -- 'कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमत्तमातङ्गकुम्भस्थलगलन्मदच्छटाच्छुरितचारुकेसरभारभासुरमुखे केसरिणि ।

अग्निपुराण में इन्हीं भेदों को स्वीकार किया गया है[1] । विश्वनाथ ने इन भेदों के अतिरिक्त इनका एक और भेद 'मुक्तक' बताया है जिसमें समास नहीं रहता है[2] । विश्वनाथ का 'चूर्णक' भेद वामन का 'चूर्ण' ही है ।

किन्तु पं० अम्बिकादत्त व्यास गद्य-काव्य के वृत्तगन्धि भेद को गद्य-काव्य का भेद न मानकर उसे उसका प्रविभाग बताते हैं । इस सम्बन्ध में साहित्यदर्पणकार के विचार को लेकर कहते हैं कि ... प्रथम के तीन गद्यों में तो सरस्वती का सारा गद्य-भण्डार हो भर जाता है फिर कौन सा स्थान शेष रह जाता है जहां वृत्तगन्धि गद्य विहार करे । जहां वृत्तगन्धि गद्य जब होगा तब उन तीन में से कोई सा होगा इसलिए इसे प्रविभाग कहें

१- अग्नि० का० का० शा० भा० ३।६-११

२- वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च ।
भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं तथा चतुर्विधम् ।।
आद्यं समासरहितं वृत्तभागयुतं परम् ।।
अन्यद्दीर्घसमासाढ्यं तुर्यं चाल्पसमासकम् ।।
-- सा० द० ६।३३०-३१

संकीर्ण -- में सभी भेदों के लक्षण परिलक्षित होते हैं किन्तु उसके सौंदर्य में किसी प्रकार की कमी नहीं रहती है।

इन छह भेदों के पुन: भेद भी व्यास जी ने किये हैं।

पं० अम्बिकादत्त व्यास ने संस्कृत आचार्यों द्वारा मान्य-कथा, आख्यान आख्यायिका, खण्डकथा, परिकथा भेदों को मान्यता न देकर काव्य शास्त्र में नई धारा के बहाने का प्रयत्न किया था किन्तु उनके इन भेदों तथा इनके द्वारा अन्य भेदों के स्वरूप में कोई सार परिलक्षित नहीं होता है। उन्होंने सम्भवत: अपने इस ग्रन्थ की रचना साहित्य दर्पणकार के मत को काटने के लिए ही की थी और उपर्युक्त भेद बताकर अपने नए विचार प्रकट करने की चेष्टा की है।

१- गद्य काव्य मीमांसा -- पं० अम्बिकादत्त व्यास श्लोक सं० ५८

(द) गद्य-काव्य का चम्पू-काव्य से भेद

काव्य का तीसरा भेद 'मिश्र' कहलाता है जिसके अन्तर्गत गद्य और पद्य का मिश्रण रहता है। इसी दृष्टि से नाटक तथा चम्पू-साहित्य 'मिश्र' काव्य कहलाते हैं। ये दोनों स्वरूप तथा शैली की दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न हैं। क्योंकि नाटक में गद्य और पद्य का एक ही समान रूप से मिश्रण नहीं रहता है और दूसरे उसमें नान्दी, प्ररोचना, वीथिकाएं, नाट्य-अवस्थाएँ, नाट्य प्रवृत्तियां एवं पांच संधियां होती हैं किन्तु चम्पू में पद्यों का स्थान किसी विषय के लिए निश्चित नहीं रहता है। उसमें गद्य और पद्य दोनों का समान स्थान रहता है। उसमें किसी विशेष विचार या अलंकारिक वर्णन अथवा प्रभावपूर्ण वक्तव्य या नैतिकता को सूचित करने अथवा भावावेश वर्णन करने के लिए ही श्लोकों की रचना नहीं होती है, अपितु साधारणतौर पर भी उसमें श्लोक होते हैं। उसमें गद्य के समान ही पद्य को भी स्थान मिलता है[1]। कवि जिस उत्साह से गद्य में किसी विषय का वर्णन करता है उसी उत्साह से पद्य में करता है। इस प्रकार चम्पू में दोनों के उत्कृष्ट रूप का आस्वादन किया जा सकता है। उसमें एक ही प्रकार की शैली में लिखित काव्य के पढ़ने से उत्पन्न होने वाली विरसता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। क्योंकि वहां पर नीरसता कभी पद्य द्वारा और कभी गद्य द्वारा दूर हो जाती है अर्थात् इस काव्य में अन्य दो काव्यों -- गद्य-काव्य और पद्य-काव्य -- दोनों का सौन्दर्य सरलतापूर्वक देखा जा सकता है। एक प्रकार से चम्पू-काव्य का गद्य-काव्य से घनिष्ट सम्बन्ध भी है। इसे गद्य-काव्य का ही विकसित रूप माना गया है[2]।

१- हि० क्ला० सं० लिट० -- एस०एन० दास गुप्त और एस०के० डे पृ० ४३३-३४
२- ,, ,, -- ,, ,, ,, पृ० ४३०

क्योंकि प्रारम्भ में गद्य-काव्यों में पद्यों का बाहुल्य नहीं होता था । इसका कारण था कि गद्य-काव्य के लक्षण में निर्धारित पद्यों का ही उनमें प्रयोग हो सकता था, अन्य किसी का नहीं । धनपाल की तिलकमंजरी को छोड़ कर बाद के गद्य-काव्यों का भी प्रायः इसी प्रकार का स्वरूप है । एस०के० डे ने तिलकमंजरी के आधार पर ही अर्वाचीन गद्य-काव्य की विशेषता पद-'बाहुल्य' बताया है[1] और इसी आधार पर 'उदयसुन्दरी कथा' को भी गद्य-काव्य बताया है[2] ।

बाद के गद्य-काव्यों में पद्यों की बहुलता का कारण सम्भवतः गद्य-कवियों की असमर्थता रही हो क्योंकि गद्य की रचना पद्य की रचना से दुष्कर होती थी और जो इस रचना में सफल होता था वही प्रतिभावान एवं कविश्रेष्ठ समझा जाता था । अतः कुछ कवियों ने प्रतिभावान एवं कविश्रेष्ठ बनने की इच्छा से गद्य-काव्य की रचना करना शुरू तो कर दिया किन्तु उनमें उन्हें केवल गद्य को अपनाने में असफलता प्रतीत हुई अतः गद्य के साथ-साथ पद्यों का भी प्रयोग करने लग गए । इसके बाद तो कवि स्वच्छन्द रूप से कभी गद्य में तो कभी पद्य में विषय का वर्णन करने लग गए । उनकी दृष्टि में गद्य-काव्य में पद्य-प्रयोग से सम्बन्धित बनाए गए नियमों का कोई भी महत्त्व नहीं रहा । उन्होंने अपनी सुविधानुसार सभी स्थलों में दोनों-- गद्य और पद्य-- का प्रयोग करना शुरू कर दिया । इस प्रकार उन्होंने एक नई शैली को जन्म दिया जिसका नाम चम्पू शैली रखा गया[3] ।

१- हि० आफ सं० लिट०--दास०एन०दास गुप्त और एस०के० डे पृष्ठ ४३१

२- इसका खण्डन 'उदयसुन्दरी कथा चम्पू काव्य है अथवा गद्य-काव्य' शीर्षक परिशिष्ट में अवलोकनीय है ।

३- संस्कृत कवि दर्शन -- डा० भोलाशंकर व्यास पृष्ठ ५१६
'गद्य के फलक पर बाण जैसी प्रवाहमय शैली को बनाये रखना और वैसी वर्णन पटुता का परिचय देना बाण के बाद के गद्य-कवियों से सम्भव न था । फलतः उन्होंने गद्य के बीच-बीच में पद्य की छौंक डाल-डाल कर एक नई शैली को जन्म दिया । पद्य के छोटे-से 'कन्धों' पर शैली को निभा लेना फिर भी सम्भव था और धीरे-धीरे गद्य-काव्यों में पद्यों की छौंक बढ़ती गई और बाद के चम्पू-काव्यों में तो पद्यों का कलेवर गद्य-भाग से भी अधिक हो गया, जिसका रूप हम 'चम्पू भारत' जैसी बाद की चम्पू कृतियों में देख सकते हैं ।

इसी कारण है कि गद्य-काव्य और चम्पू-काव्य में शैली और विषय की दृष्टि से प्रमुख समानता है । गद्य-काव्य की भाँति इसमें भी बड़े समासान्त लम्बे वाक्य अलंकारों से बोझिल, कल्पना की मधुरच्छटा, भावुकता, रसिकता, पाण्डित्य प्रदर्शन, समासबहुला-अनुप्रास- समास-विहीन गद्यात्मक शैली, कृत्रिमता का बाहुल्य आदि परिलक्षित होता है । इसी प्रकार विषय की दृष्टि से इसका भी कथा शरीर संकुचित होता है, कथावस्तु पौराणिक,धार्मिक महाकाव्यों से गृहीत होता है, वर्णन की प्रधानता, देवस्तुति, सूक्तियों की प्रशंसा, नायक-नायिका में किसी के जन्म में देवता की कृपा, पशु-पक्षी, अद्भुत घटनायें एवं प्रेम की प्रमुखता आदि रहती है । इस प्रकार की दोनों में समानता का कारण गद्य-काव्यकार और चम्पू काव्यकार का बाण से प्रभावित होना है ।

इतना अधिक समानता होने पर भी चम्पू-काव्य गद्य-काव्य से भिन्नता पद्य की ही दृष्टि से रखता है । क्योंकि गद्य-कवि अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय गद्य के माध्यम से देता है और चम्पू-कवि गद्य और पद्य दोनों के माध्यम से । अतः चम्पू में दोनों ही -- गद्य और पद्य-- कथावस्तु के विकास में सहायक होते हैं । एक-दूसरे के अभाव में कथानक का क्रम टूट जाता है और उसका समझना दुष्कर हो जाता है । उदाहरणार्थ--

कष्टेन तासां लब्धे कष्टे त्यजसि विलोकि च ।
विशेषे मयि काकुत्स्थ विशेषे वितरामि ते ॥३७॥

ततो गृहीतविद्यस्य दाशरथेः प्रदेशमेकं प्रदर्श्य भगवानित्थमकथयत् ।

अस्मिन् पुरा पुरभिदः परमेश्वरस्य
कालान्तरालगनव्यथने मनोभुः ।
स्वः प्रापद अङ्गमत्यजदनुग्रहदङ्गां
तस्मादमुं जनपदं विदुरङ्गसंज्ञम् ॥३८॥

तदनु मानसरः प्रभूतां सरयूमतिक्रम्य पुत्रवधप्रवृद्धदुःखस्य पङ्क्तिकण्ठकलत्र—
मलीमसकलङ्कसनाथजनीजानयोः पीठिकम् कृतसवनो वशिरधयोः पुनरप्येवमब्रवीत् ।[1]

१- चम्पूरामायणम्-- भोज पृ० ३५-३६ बालकाण्ड

द्वितीय अध्याय

उत्तरकालीन गद्य-कवियों के जीवन चरित का

सामान्य परिचय

पहले देखा जा चुका है कि गद्य-कवियों की कृतियां बहुत ही अल्प हैं। सुबन्धु, बाण तथा दण्डी ने इस प्रकार की रचना की प्रवृत्ति की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित तो किया किन्तु दण्डी को छोड़ कर सुबन्धु और बाण ने (इन दोनों में विशेषकर बाण ने) अपने गद्य-काव्य का स्तर बहुत ऊंचा रक्खा जिससे वे इस प्रवृत्ति का उन्मीलन कराने में अपना योग न दे सके। क्योंकि कवि इन दोनों कवियों से प्रभावित होकर वैसे ही काव्य की रचना करना तो चाहते थे पर वे कर नहीं पाते थे। अत: बहुत से कवि तो ऐसी रचना करने का साहस ही नहीं रखते थे। यही कारण है कि दण्डी (७वीं सदी) के बाद से धनपाल (१० वीं सदी) के बीच तक की कृतियां नहीं उपलब्ध होती हैं। यह नहीं कहा जा सकता है कि इस बीच गद्य-काव्य लिखे ही नहीं गये होंगे। लिखे अवश्य गये होंगे किन्तु बाण से चमत्कृत लोगों की दृष्टि में उस समय के वे नगण्य से प्रतीत हुए होंगे अत: उन कृतियों की अवहेलना हुई होगी। किन्तु कई सदी बीत जाने पर भी जब कोई कवि बाण के टक्कर की रचना न कर सका तो उस समय बाण का अनुकरण करके जैसी भी रचना की गयी उसी को उत्तम समझ कर विद्वानों ने उन कृतियों की रक्षा की। यही कारण है कि १० वीं सदी से पुन: गद्य-कवियों की रचना करने की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गई। अब भी गद्य-काव्य लिखे जा रहे हैं किन्तु इन गद्य-काव्यों का स्वरूप देखने से स्पष्ट है कि प्रारम्भिक गद्य-काव्य और आजकल के गद्य-काव्य के स्वरूप में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया है। जहां पहले गद्य-काव्यों में वर्णन की प्रधानता होती थी वहां अब कहानी की प्रधानता हो गयी। वर्ण्य विषयों का वृत्ताकार रूप संक्षिप्त हो गया। इस प्रकार काव्य को संक्षिप्त रूप देने की प्रेरणा इन कवियों को जम्नाथ से मिली।

इसके अतिरिक्त काव्य की शैली में अन्तर हो गया। वहां की दीर्घ समासाक्रान्त विशेषण विशिष्ट वाक्य इन काव्यों में बहुत कम है। सम्भवत: इस प्रकार की शैली का जन्म उस शैली की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। लोग उस अलंकार एवं कृत्रिम भाषा से ऊब चुके थे। वे ऐसी भाषा चाहते थे

जो सरल और सादी हों तथा आसानी से समझी जा सकती हों । कथावस्तु कोई भी हो, इस विषय में कोई प्रश्न नहीं उठता था । शंकर सुब्रह्मण्यम शास्त्री ने `श्रीवत्सचरितम्` में पात्रों के नाम रोमन रखे हैं तथा रोम का वर्णन है । इसके अतिरिक्त गद्य-कवियों को विभिन्न साहित्य से अनुवाद करने में भी कोई संकोच नहीं रहा । श्री शैल दीक्षित उपनाम तिरुमलाचार्य ने अपनी `भारती विलास` कृति में शेक्सपियर के Comedy of errors का अनुवर्तन किया है, हरिचरण भट्टाचार्य ने अपनी `कपाल कुण्डला` को बंकिमचन्द्र की कपालकुण्डला के संस्कृत-अनुवाद के रूप में प्रस्तुत किया है । इसी प्रकार अप्पाशास्त्री ने बंकिमचन्द्र के लावण्यमयी नामक बंगाली उपन्यास का रूपान्तर किया । कुछ संस्कृत-नाटकों की कथावस्तु को संक्षेप रूप में करके, गद्य-काव्य में स्थान दिया गया जैसे अनन्त शर्मा का मुद्राराक्षस अपूर्व संकथानक । कुछ गद्य-काव्यों में उपदेशात्मक प्रवृत्ति को स्थान मिला है । जैसे कृष्णमाचार्य की `पातिव्रत्य` और `पाणिग्रहण` दोनों रचनाओं में पतिव्रत और पाणिग्रहण के महत्व की चर्चा है । `सुशीला` कृति में आचार सदा को उज्ज्वल बनाने की शिक्षा दी गयी है । विधि की विडम्बना (विधि विलास) , पौराणिक कथा (उदयनकथा -वे० वेंकटरामशर्मा, उदयनचरितम्- अनन्ताचार्य, `मन्मथोन्मथनम्`, `रतिविलाप`), रामकृष्ण सम्बन्धी कथा (श्रीरामोदन्त`-पी० शंकरसुब्रह्मण्यम शास्त्री, `श्रीकृष्णलीलायित` तथा श्रीशैल ताता का श्रीकृष्णाभ्युदय`) को बाद के गद्य-कवियों ने अधिकांशतः अपने काव्य का विषय बनाया ।

इस प्रकार इन कवियों में अधिकांशतः कथावस्तु के चयन में न कोई मौलिकता है और न उनके काव्य में ऐसा स्थल प्राप्त होता है जहां कवि को अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय कराने का अवसर हो । क्योंकि इन कवियों ने प्रकृति से अपना सम्बन्ध रखने की कोई आवश्यकता न समझी । सूर्योदय , सूर्यास्त,चन्द्रोदय, चन्द्रास्त, ऋतु वर्णन, पशु-पक्षी, वृक्ष, उपवन आदि के वर्णनों से जो पहले गद्य-काव्य भरा रहता था जिसमें कवि तरह-तरह की कल्पनाएं करके काव्य-प्रतिभा का परिचय देता था उन्हीं से इन कवियों ने गद्य-काव्यों को विमुक्त कर दिया । फलतः ये कवि अपनी काव्य प्रतिभा को दिखा कर काव्य में नवीनता न ला सके ।

किन्तु प्राचीन एवं [illegible] के गद्य-कवियों के बीच कुछ गद्य-कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने बाण से प्रभावित होकर उनका अनुकरण सब दृष्टि से करने की चेष्टा की । यह दूसरी बात है कि वे पूर्णरूप से सफल नहीं हो पाए हैं । धनपाल की तिलक मंजरी, भोज की शृंगार मंजरी कथा, ओड्यदेव की गद्य-चिन्तामणि, वामन भट्ट बाण के वेमभूपालचरितम् के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि हम बाण की रचना पढ़ रहे हैं । इन काव्यों में भी राजाओं, उनकी महिषियों, राजधानियों, पुत्राभाव की व्याकुलता, पुत्रोत्सव की धूमधाम पुत्र-शिक्षा, दिग्विजय-प्रस्थान, वन, हाथियों का वर्णन, नख शिख वर्णन, विविध रसों की चर्वणा, नायक-नायिका के जन्म में दैवी कृपा, प्रकृति के सौम्य भयावह, आलम्बन एवं उद्दीपन रूप आदि के वर्णन मिलते हैं । इन प्रतिपाद्य विषयों की दृष्टि से इन गद्य-कवियों की कृतियां प्राचीन गद्य-काव्यों से कथमपि कम नहीं हैं । वेम भूपाल चरितम् के रचयिता वामन भट्ट बाण ने बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम् की किंवदन्ती को काटने के लिए ही अपने को बाण का अवतार माना है[1] ।

संस्कृत आचार्यों द्वारा प्रतिपादित गद्य-काव्य की समस्त विशेषताओं का पालन प्राचीन कवियों की भांति इन कवियों ने भी किया है उन्होंने अपने काव्य का नायक उच्चवंशी आदर्श गुण सम्पन्न वीर राजाओं को बनाया । नायक के अनुकूल नायिका को भी काव्य में स्थान दिया । इस विषय में भोजराज को छोड़कर दण्डी का अनुकरण और किसी ने नहीं किया । भोजराज ने अपने काव्य में वेश्याओं, विटों, भुजंगों, वेश्याओं की माताओं एवं उनकी कूट चालों का ही सविस्तार वर्णन किया है ।

इन कवियों ने बाण का अनुकरण वर्ण्य-विषयों की दृष्टि से तो किया ही है साथ ही बाण की शैली ने उन्हें अंधा बना दिया है । दीर्घ समासाच्छन्न शैली को अपना कर अपने काव्य को दुरूह बनाने में इन कवियों ने अपने काव्य का उत्कर्ष देखा । बाण की भांति पांच छः पृष्ठों तक वाक्यों

१- वेम भूपाल चरितम् श्लोक ६

का स्थापित नहीं होता है । रामानुजाचार्य के पट्ट शिष्य १३ वीं शताब्दी के आचार्य वेदान्त देशिक, जो रामानुज वेदान्त के बडकलै सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे, का रघुवीरगद्य नामक एक छोटा-सा गद्य-काव्य प्राप्त होता है जो पूरे का पूरा एक ही वाक्य में है । यह वाक्य भी भगवान राम के संबोधन पदों से ही परिपूर्ण है । इस काव्य में अनुप्रासात्मक दीर्घवाक्य युक्त संबोधन हैं[1] किन्तु इन संबोधनों में राम की कथा क्रम से नहीं है ।

इन कवियों के इस प्रकार की शैली अपनाने से उनके काव्यों में नीरसता आ गई है । बाण के दीर्घ वाक्यों में पाठक उसकी सरसता एवं काव्य प्रतिभा से चमत्कृत होता रहता है । कादम्बरी में द्रविड धार्मिक का प्रसंग आवश्यकता से अधिक विस्तृत हो जाने के कारण अवश्य नीरसता से आक्रान्त हो गया है किन्तु वैसे सरसता का साम्राज्य है । बाण की शैली की यह विशेषता है कि वर्णन प्रधान स्थलों का प्रारम्भ दीर्घकाय समासाच्छन्न शैली से होकर मध्यम समासाच्छन्न शैली में होता हुआ लघुकाय वाक्यों में समाप्त हो जाता है किन्तु इन कवियों ने इस ओर ध्यान न देकर अपनी इच्छानुसार शैली रखी है । कहीं-कहीं पर गद्य का पूरा अनुच्छेद दीर्घकाय समासाच्छन्न वाक्यों में रहता है तो कहीं पर लघु रहता है । लेकिन प्रधानता प्रथम शैली की ही है । बाण की शैली का सफलतापूर्वक निर्वाह नहीं कर सकने के कारण इन कवियों ने पद्यों का भी मनमाना प्रयोग किया है । ये पद्य भावपूर्ण स्थलों में अधिक प्रयुक्त हुए हैं एक प्रकार से बाद में गद्य-कवियों ने गद्य-काव्य की विशेषता के रूप में इसे स्वीकार कर लिया ।

दुःख का विषय यह है कि इन कवियों के विषय में अधिक परिचय उपलब्ध नहीं हो सका है । अधिकांश कवियों के विषय में वाद-विवाद है और

१- "दूषणजलनिधिशोषणतोषितऋषिगणघोषितविजयघोषण, खरतर-खरतरखण्डनचण्डपवन, द्विरसप्रहारशमितजनस्थानविलोकमहारम्भ, ... विक्रमयशो-लाभविक्रीतजीवितगृध्रराजदेहदिधक्षालक्षितभक्तजनदाक्षिण्य, कल्पितविबुधभाव-कबन्धाभिनन्दित, अवन्ध्यमहिममुनिजनभजनमुषितहृदयकलुषशबरीमोक्षसाक्षिभूत, ... प्रतिभयभूमिकाभूषितपयोधिपुलिनप्रत्यर्पितशिवपक्षविविधविशिखशोषित-कूपारवारिपूर, ...' ।" 'रघुवीरगद्य'

कुछ कवियों के नाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं मालूम हो पाता है । कुछ रचनाओं के नाम मिलते हैं किन्तु वे प्राप्य नहीं हैं । उदाहरणार्थ [illegible] के कवि वरदेशिक(१५ वीं शताब्दी) के गद्यरामायण, देवविजय गणी (१६ वीं सदी) के रामचरित, तथा अगस्त्य (१४ वीं सदी) के कृष्ण चरित्र का उल्लेख संस्कृत साहित्य में आया है किन्तु न इन कवियों के विषय में और न उनकी कृतियों के विषय में विशेष परिचय मिल पाता है ।

देवविजय गणी के विषय में केवल इतना ही ज्ञात हो सका है कि उन्होंने अपने काव्य की रचना अकबर के शासन-काल में मारवाड़ प्रदेश में १५९६ ई० में की था जिसमें हेमचन्द्र के रामायण का अनुकरण किया गया है । यह तपागच्छ के राजविजय सूरि के शिष्य थे । इसमें कवि ने संस्कृत और प्राकृत का भी यत्र तत्र प्रयोग किया है[१] ।

'कृष्ण चरित्र' के रचयिता ओरंगल के राजा प्रतापरुद्र के दरबारी कवि बताए गए हैं । उत्कृष्ट विद्वान होने के कारण उन्हें विद्यानाथ भी कहा गया है । सम्भवत: लोगों की दृष्टि में यह 'प्रतापरुद्रीयम्' की रचना करने वाले विद्यानाथ और अगस्त्य एक हैं । इनका समय १३२० बताया गया है[२] । वी० वरदाचार्य ने बालभारत के रचयिता और कृष्ण चरित के रचयिता को एक बताया है[३] । एम० कृष्णमाचार्य ने इनके गद्य को आकर्षक बताया है[४] । इसकी हस्तलिपि तंजौर की सरस्वती महल लाइब्रेरी[५] तथा पैलेस की लाइब्रेरी[६] में है किन्तु बहुत प्रयास करने के पश्चात् भी प्राप्त नहीं हो सकी है ।

१- हि० आफ क्ला० सं० लि०-- एम० कृष्णमाचार्य, पृष्ठ ४८०
२- सं० लि० के० चन्द्रशेखर और सुब्रह्मण्यशास्त्री, पृष्ठ १२२
३- ए हि० आफ सं० लि०-- वी० वरदाचार्य पृष्ठ १२७
४- हि० आफ क्ला० सं० लि०-- एम० कृष्णमाचार्य पृष्ठ ४१८
५- A Descriptive Catalogue of the Sanskrit Manuscript in the Tanj Maharaja Sarfogi's Saraswati Mahal Library, Tanjore. Publish by the Administrative Committee with Grant-in-aid Sanc -d by the Government of Madras. 23556.

६- Catalogue of Manuscripts in the Palace Librar Tanjore, by P. P. S. Sastri Vol II 2994.

राजा भोज

यह मालवा के परमार वंश राजा थे। इस वंश को पवार भी कहा गया है। डा० रमाशंकर त्रिपाठी[1] तथा कवि धनपाल[2] ने एक अनुश्रुति का उल्लेख किया है जिसमें आया है कि वशिष्ठ ने अपनी गाय नन्दिनी को विश्वामित्र से रक्षा करने के लिए आबू पर्वत के अग्निकुण्ड से इस वंश को उत्पन्न किया। डा० त्रिपाठी ने इस जनश्रुति से यह तात्पर्य निकाला है कि अग्नि से उत्पन्न होने के कारण इस वंश के पुरुष राजपूत आदि की भांति विदेशी थे जो अग्नि संस्कार के बाद हिन्दू वर्ण-व्यवस्था में प्रविष्ट हो गए[3]। अहमदाबाद जिले से प्राप्त अभिलेख के आधार पर ये राष्ट्रकूट जाति के बताए गए हैं। वे मूल में दक्कन के निवासी थे जो राष्ट्रकूट सम्राटों का मूल आवास रह चुका था[4]।

इस कुल का पहला शक्तिशाली राजा सीयक हुआ जिसका समय वि० सं० १००५ अर्थात् ९४९ ई० तथा वि०सं० १०२९ अर्थात् ९७२ ई० माना गया है[5]। इसके बाद उनका यशस्वी पुत्र मुन्ज उस गद्दी पर बैठा। इसके उपनाम वाक्पति, उत्पलराज, श्रीवल्लभ, अमोघवर्ष थे। इनका समय ९७४ई० बताया गया है[6]।

१- प्राचीन भारत का इतिहास -- रमाशंकर त्रिपाठी पृष्ठ २८२

२- अस्त्याश्चर्यनिधानमर्बुद इति ख्यातो गिरि: शैवरै:

कुल्याऽलङ्कृतदिग्वधूकदम्बशिरग्रामोऽग्रिम: क्ष्माभृताम्।

मैनाकेन महार्णवे हसतो सत्या प्रवेशे कृते

येनैकेन हिमाचल: शिखरिणां पुत्रीति लब्धोऽभवत् ॥३८॥

वासिष्ठै: स्म कृतस्मयो वरशतैरस्त्यग्निकुण्डोद्भवो

भूपाल: परमार इत्यभिख्यया ख्यातो महीमण्डले।

अद्याप्युद्गतहर्षगद्गदगिरो गायन्ति यस्यार्बुदे

विश्वामित्रजयोज्झितस्य भुजयोर्विस्फूर्जितं गुर्जरा: ॥३९॥

३- प्राचीन भारत का इतिहास --रमाशंकर त्रिपाठी, पृष्ठ २८२

४- ,, ,, -- ,, पृष्ठ २८२

५- ,, ,, -- ,, पृष्ठ २८३

६- ,, ,, -- ,, पृष्ठ २८३

इसने चालुक्य तैलप द्वितीय को कम से कम छ: बार पराजित किया था । मेरुतुंगाचार्य के अनुसार जब वह सातवीं बार मंत्रियों की मंत्रणा की अवहेलना करके गोदावरी पार करके चालुक्य प्रदेशों में घुसा तो उसे मार डाला गया । इसका प्रतिशोध भोज ने चालुक्यों को हरा कर किया[1] ।

इसके बाद कौन राजा हुआ-- इस विषय में वाद-विवाद है । प्रबन्ध चिन्तामणि जैसे जैन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि मुञ्ज की गद्दी का उत्तराधिकारी भोज हुआ[2] । किन्तु डा० रमाशंकर त्रिपाठी ने अभिलेखों के आधार पर बताया है कि उसकी गद्दी का अधिकारी मुञ्ज का छोटा भाई सिन्धुल हुआ । इसे सिन्धुराज और नवसाहसांक भी कहा गया है । इसने कुछ ही साल शासन किया था । इसके बाद इसी का पुत्र भोज उस गद्दी का उत्तराधिकारी हो गया[3] ।

इसके विपरीत बल्लालसेन विरचित भोजप्रबन्ध में आता है कि सिन्धुल मुञ्ज का बड़ा भाई था । उसको वृद्धावस्था में भोज हुए । उसने अपना राज्य मुञ्ज को देकर अपने पंचवर्षीय बालक भोज को सौंप दिया । भोज को वह बहुत चाहता था किन्तु ज्योतिषियों की भविष्यवाणी --

पंचाशत्पंचवर्षाणि सप्तमासदिनत्रयम् ।
भोजराजेन भोक्तव्य: सगौडो दक्षिणापथ: ।।६।।

१- प्राचीन भारत का इतिहास -- रमाशंकर त्रिपाठी, पृष्ठ २८३
२- "अथ मालवमण्डले तद् वृत्तान्तवेदिभि: सचिवैस्तद् भ्रातृव्यो भोजनामा
(अ) राज्येऽभ्यषिच्यत । (प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ २५)
(ब) तिलक मंजरी धनपाल --
तस्योदग्रयश: समस्तसुभटग्रामाग्रगामी सुत:
सिंहो दुर्धरसिन्धुरस्तत: श्रीसिन्धुराजोऽभवत् ।
एकाधिज्य धनुर्जिताखिलधराचक्रोन्नभूयस्य स
श्रीमद्वाक्पतिराजदेवनृपतिर्वीराग्रणीरग्रज: ।।४२।।
आकीर्णाङ्घ्रितल: सरोजकलशच्छत्रादिभिर्लाञ्छनै -
स्तस्याजायत मांसलायतभुज: श्रीभोज इत्यात्मज: ।
प्रीत्यायोग्य इति प्रतापवसति: ख्यातेन मुञ्जाख्यया
य: स्वे वाक्पतिराजभूमिपतिना राज्येऽभिषिक्त: स्वयम् ।।४३
३- प्राचीन भारत का इतिहास -- डा० रमाशंकर त्रिपाठी, पृष्ठ २८४

सुनकर एवं राजमद से उन्मत्त होकर उसे मार डालने का प्रयत्न किया । उसके मंत्रियों ने उसे बहुत रोका किन्तु मुंज ने किसी की बात को नहीं स्वीकार किया । वत्सराज अमात्य ने भोज का कृत्रिम सिर ला कर मुंज को दे दिया। उसे देख कर उसे बहुत ही पश्चात्ताप हुआ । वत्सराज ने योगी का वेष धारण कर मुंज को सांत्वना देकर श्मशान में कृत्रिम योगिक क्रिया से भोज को बुलाकर उसे मुंज के हाथ सौंप दिया । मुंज ने हर्षित होकर अपना सारा राज्य भोज को दे दिया और स्वयं तपस्या करने चला गया[१] ।

किन्तु भोज प्रबन्ध को ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं माना जा सकता । क्योंकि कवि ने इस ओर ध्यान देने की चेष्टा नहीं की है । अपने पूर्ववर्ती सभी कवियों को एक साथ भोज की विद्वन्मण्डली में लाकर उपस्थित कर दिया है । वररुचि, बाण, मयूर, रैफण, हरिशंकर, कलिंग, कर्पूर विनायक, मदन, विद्याविनोद तथा तारेन्द्र आदि निरन्तर ही उनकी सभा को अलंकृत करते रहते थे[२] । इसके अतिरिक्त भी दूर-दूर के कवि उसके दरबार में आते थे । द्रविड़ देश के लक्ष्मीधर[३], बाण[४], क्रीडानन्द, पं० रामेश्वर[५], कविमित्रो सीता[६], विलोचन[७], शुक्लदेव[८], वासुदेव[९], कश्मीर देश के मुचुकुन्द[१०], कुण्डिननगर का गोपाल[११], वाराणसी के भवभूति[१२], गुर्जरदेश के माघ[१३], दक्षिण देश के मल्लिनाथ[१४], कविशेखर[१५] तथा कालिदास आदि कवि सब एक

१- भोज प्रबन्ध --बल्लालसेन पृष्ठ १-११
२- ,, ,, पृष्ठ १६
३- ,, ,, पृष्ठ २१
४- ,, ,, पृष्ठ २२
५- ,, ,, पृष्ठ २६
६- ,, ,, पृष्ठ २७
७- ,, ,, पृष्ठ ४०
८- ,, ,, पृष्ठ ४७
९- ,, ,, पृष्ठ ४८
१०- ,, ,, पृष्ठ ५१
११- ,, ,, पृष्ठ ५२
१२- ,, ,, पृष्ठ ५६
१३- ,, ,, पृष्ठ ६७
१४- ,, ,, पृष्ठ ७६
१५- ,, ,, पृष्ठ ७६

साथ भोज के दरबारी कवि बताए गए हैं । इन कवियों में कालिदास भोज का सर्वप्रिय पात्र बताया गया है । इसमें कालिदास को भारती का अवतार बताया गया है[१]।

यह कालिदास रघुवंश आदि के रचयिता कालिदास से भिन्न है । यह भोज के पिता सिन्धुराज और भोज दोनों के प्रिय पात्र परिमल थे । उन्हीं का उपनाम कालिदास था ।

अलबेरुनीकृत इण्डिया में भोज के शासन काल का समय १030 ई० बताया गया है[२]। कल्हण ने राजतरंगिणी में भोज को कलशराज का समकालिक बताया है जिसके राज्याभिषेक का समय १०६२ ई० माना गया है । इसी आधार पर ब्यूहलर (Buhler) ने भोज का समय १०६२ मान लिया किन्तु भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह का ताम्रपत्र (Copper Plate मिला है जिसका समय १०५५ ई० है[४]। इस प्रकार भोज के समय के निर्धारण की सीमा १०५५ मानने में सन्देह नहीं किया जा सकता है[५]।

इतिहास में आया है कि इसने चालुक्य जयसिंह तृतीय से लड़ाई १०१९ और १०१९ई में की थी । इसी आधार पर एस०के० डे ने इनका समय १०१० ई० से १०५५ ई० तक माना है[६]।

डा० कल्पलता मुंशी भी भोज के इसी समय का समर्थन करती है[७] किन्तु पं० बलदेव इस समय के मत का समर्थन न करके ब्यूहलर के मत का समर्थन करते हुए १०५६ ई० मानते हैं[८]।

१- भोजप्रबन्ध बल्लालसेन , पृष्ठ २८
२- संस्कृत पोयटिक्स, एस० के० डे पृष्ठ १३५
३- ,, ,, ,, पृष्ठ १३६
४- ,, ,, ,, पृष्ठ १३६
५- ,, ,, ,, पृष्ठ १३६
६- ,, ,, ,, पृष्ठ १३६
७- शृंगारमंजरी कथा -- भूमिका डा०कल्पलता मुंशी , पृष्ठ ६
८- सं०सा० का इतिहास -- पं० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ५१४

राजनीतिक दक्षता और सामरिक कुशलता से भोज सुदूर प्रदेशों पर अधिकार करके 'सार्वभौम' की उपाधि से विभूषित हुए थे। वह वीर योद्धा होने के साथ-साथ काव्य मर्मज्ञ थे। एक अभिलेख में उन्हें 'कविराज' पद से अलंकृत किया गया है। उन्हें लगभग दो दर्जन ग्रन्थों का रचयिता माना गया है। उनकी रचना के विषय चिकित्सा, ज्योतिष, धर्म, व्याकरण, वास्तु अलंकार, कोष, कला आदि हैं। उनमें से कुछ ग्रन्थों के नाम-- 'आयुर्वेद-सर्वस्व', 'राजमृगांक' (१०४२ई०), 'व्यवहार-समुच्चय', 'शब्दानुशासन', 'समरांगणसूत्रधार', 'सरस्वतीकण्ठाभरण' (१०४०), 'नाममालिका', 'युक्ति-कल्पतरु', 'शृंगार प्रकाश बताये गये हैं[1]। उन्होंने शृंगारमंजरी कथा नामक एक गद्य-काव्य भी लिखा है। जिसकी शैली में बाण का अनुकरण और कथावस्तु के ग्रहण में कवि की निजी मौलिकता है।

उनकी इतनी अधिक रचना को देखकर लोगों को आश्चर्य होता है कि निरन्तर युद्ध में व्यस्त रहने वाले भोज को इतनी अधिक रचना करने का अवकाश कहाँ मिलता होगा। कुछ विद्वानों का कथन है कि कुछ कवियों ने राजा को प्रसन्न करने के लिए एवं उससे धन प्राप्त करने के लिए स्वयं उनके नाम से रचना की होगी। किन्तु उन विद्वानों के पास भी इस मत को प्रमाणित करने का कोई उपयुक्त प्रमाण नहीं है।

अन्य काव्य-कृतियों के रचयिता के सम्बन्ध में चाहे वाद-विवाद हो किन्तु 'शृंगार प्रकाश' सरस्वती कण्ठाभरण तथा 'शृंगारमञ्जरीकथा' इन्हीं की कृतियां हैं -- इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता है। 'शृंगारमंजरी कथा' के सम्बन्ध में तो कई अन्तः प्रमाण भी मिलते हैं।

प्रत्येक कहानी के अन्त में परमारवंशी महाराजाधिराज भोज का उल्लेख है --'इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचितायां शृंगारमंजरी-कथायां ..... समाप्ता[2]।'

१- प्राचीन भारत का इतिहास--डा० रमाशंकर त्रिपाठी, पृष्ठ२८४

२- शृंगारमंजरीकथा पृष्ठ१६,२६,२८,३०,३५,४०,४८,५६,६६,७२,७७,८१,८४,८६

काव्य के अन्त में गाये हुए श्लोक से भी इसका परमारवंशी राजा की यह रचना प्रतीत होती है --

"...........(व) सराणां [illegible]: ।
कृतेयं भोजराजेन कथा (शृंगारमंजरी)[1]।

कथा के बीच में भी यह परमारवंशी राजा की रचना बतायी गयी है --" [illegible]कारमिव विराजितपरमारावनीपकंजम्[2]।"

कथा के सम्बन्ध में भोज ने अपने जो विचार रखे हैं[3] उसे कोई अन्य व्यक्ति भोज के नाम पर नहीं रख सकता है[4]।

जिस प्रकार "शृंगारमंजरीकथा" की कहानियों के अन्त में भोज का नाम आया है उसी प्रकार सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश के क्रमश: "परिच्छेद" और "प्रकाश" में आया है[5]। सरस्वतीकण्ठाभरण में भोज ने प्रथम तथा तृतीय परिच्छेद में अपना नाम दिया है।

साहित्य के प्रेमी होने के साथ-साथ वह उसके महान् रक्षक भी थे। उन्होंने धारा में ~~एक संस्कृत~~ विश्वविद्यालय खुलवाया जहां पर दूर-दूर से विद्यार्थी आकर अपनी बौद्धिक-पीपासा को शान्त करते थे। उसमें सभी विद्याओं को सुव्यवस्थित रूप मिला था। इस विद्यालय को "भोजशाला" भी कहा गया है जहां पर अब नवाबों ने मस्जिद बनवा दी है[6]।

१- शृंगारमंजरी कथा पृष्ठ ८६
२- ,, ,, पृष्ठ ७६
३- किन्तु कथा हि कीर्त्यमाना नगरादिवर्णनपुर:सरा सौन्दर्यमावहति ।
 न चैतस्या: पुरोतोऽन्या [illegible] काचिदव्यस्तीति प्रथममेव वर्णनीया-
 भवति ।" -- शृंगारमंजरी पृष्ठ १
४- शृंगारमंजरीकथा--भूमिका --डा०कल्पलतामुंशी, पृष्ठ ८
५- इति श्रीमहाराजाधिराजभोजदेवेन विरचिते सरस्वतीकण्ठाभरणनाम्नि
(अ)अलङ्कारशास्त्रे गुणविवेचनंनामप्रथम: परिच्छेद: । इति श्रीमहाराजाधिराज-
 श्रीमद्भोजराजविरचिते सरस्वतीकण्ठाभरण नाम्न्यऽलंकारशास्त्रेऽर्थालङ्कार-
 स्तृतीय:परिच्छेद: ।" --सरस्वतीकण्ठाभरण, पृष्ठ १३३,३८६ ।
(ब) "इति श्रीमहाराजाधिराज श्रीभोज देवविरचिते शृंगारप्रकाशे सापेक्षशब्दशक्ति-
 प्रकाशो नाम अष्टमप्रकाश: समाप्त: ।" पृष्ठ ३०४(शृंगारप्रकाश पृ०३७,८४,
 १२५,१६०,१६०,२२२,२६७ में भी दृष्टव्य)
६- प्राचीन भारत का इतिहास--डा० रमाशंकर त्रिपाठी , पृष्ठ २८६

प्रभाकर चरित से पता चलता है कि जब सिद्धराज जयसिंह विजय करके उज्जैनी में घुसा तो वहां उसने देखा कि सभी विद्यार्थी भोज के व्याकरण का अध्ययन कर रहे थे और साहित्य भोज की रचनाओं से भरा था[१]।

भोज के समय विद्वानों की स्थिति --

अद्यधारा सदाधारा सदालम्बा सरस्वती ।

पण्डिता मण्डिता: सर्वे भोजराजे भुवं गते ।।"

-- भोजप्रबन्ध श्लोक २६५

तथा भोज के अभाव में विद्वानों की स्थिति --

"अद्यधारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती ।

पण्डिता खण्डिता: सर्वे भोजराजे दिवंगते ।।

-- भोजप्रबन्ध श्लोक २६४

बताई गई है ।

यद्यपि "भोजप्रबन्ध" का ऐतिहासिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं है किन्तु भोज की साहित्यिक संरक्षता तथा उनकी विद्वता के सम्बन्ध में कोई भी सन्देह नहीं कर सकता है । कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में उनकी दानशीलता एवं विद्वता के सम्बन्ध में अधोलिखित श्लोक कहा है --

स भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेण विश्रुतौ ।

सूरी तस्मिन् क्षणे तुल्यौ द्वावस्तां कविबान्धवौ ।।७।२५९

-- राजतरंगिणी

धनपाल--

धनपाल ने बाण की कादम्बरी के आधार पर अपना "तिलकमंजरी" नामक गद्य-काव्य लिखा है जो काव्य की दृष्टि से सफल रचना कही जा सकती है । किन्तु उसके कवि के विषय में अधिक बातें ज्ञातव्य नहीं हो पाई हैं । मेरुतुंगाचार्य ने अपनी "प्रबन्धचिन्तामणि" नामक कृति में कई

१- प्राचीन भारत का इतिहास-- डा० रमाशंकर त्रिपाठी, पृष्ठ २८६

कवियों की जीवनियों का संकलन किया है उसमें धनपाल का जीवन चरित्र इस प्रकार का बताया गया है कि उनके पिता सर्वदेव संकाश्य गोत्रीय ब्राह्मण थे और विशाला(उज्जयिनी) में रहते थे । जैन धर्म को मानने वाले थे । उनके दो पुत्र-- शोभन और धनपाल थे । एक बार वर्द्धमान सूरि उनके यहां आए सर्वदेव ने उनका यथेष्ट सत्कार किया और उनसे लुप्त हो जाने वाली पूर्वजों की निधि के बारे में पूछा । वर्द्धमान सूरि ने वचन-चातुरी से पुत्रों का आधा हिस्सा मांग लिया । संकेत बताने पर निधि मिल गई । जब सर्वदेव आधा भाग देने लगे तो सूरि ने दोनों पुत्रों में से आधा हिस्सा मांग लिया । धनपाल इससे असन्तुष्ट हो गये और जैन मार्ग की निन्दा करने लग गये । शोभन पितृभक्त था अत: उसने पिता की प्रतिज्ञा पालन करने के लिए जैन-दीक्षाव्रत ग्रहण कर स्वयं गुरु का अनुसरण किया । धनपाल समस्त विद्याओं का अध्ययन करके भोज के पंडित मण्डलों में प्रतिष्ठित हुए और उन्होंने भाई को ईर्ष्यावश बारह वर्ष तक अपने देश में जैन दर्शनियों का आगमन निषिद्ध कराया । शोभन नामक तपोधन एक बार धारा में आया । धनपाल उस समय राजा के साथ भ्रमण में जा रहे थे, उसे न पहचान कर उपहास के साथ कहा --' गर्दभदन्तभदन्त, तुम्हें नमस्कार है' इस पर उसने' कपि के वृषण के समान मुंह वाले मित्र, तुम्हें सुख हो --' उत्तर दिया । इस उत्तर में धनपाल को दु:ख हुआ । उसने सोचा कि मैंने तो मज़ाक किया किन्तु इसने उसे आशीर्वाद दिया । धनपाल ने उसे भोजन के लिए आमंत्रित किया किन्तु अनुद्दिष्ट आहार भोजी होने के कारण उसने(शोभन ने) भोजन करना स्वीकार नहीं किया । धनपाल उसके चरित्र एवं शुभोपदेशों से बहुत अधिक आकृष्ट हुए और उन्होंने जैन धर्म को स्वीकार कर लिया । इस प्रकार दोनों भाई पुन: मिल गए[१] ।

प्रबन्ध चिन्तामणि के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस घटना के बाद धनपाल जैन धर्म के पक्के अनुयायी हो गये । उन्होंने अपने आश्रयदाता भोज को भी इस धर्म की ओर प्रवृत्त करने का प्रयत्न किया था । इसके लिए उन्होंने

१- प्रबन्ध चिन्तामणि--मेरुतुंगाचार्य,अनुवाद-हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ४५-४६

ब्राह्मण धर्म की अत्यधिक निन्दा की है । उन्होंने ब्राह्मण धर्म में होने वाली बलिप्रथा,[1] गौ की वंदना,[2] शिव की वंदना[3] एवं अन्य विविध देवताओं की वंदना[4] तथा महाभारत की हंसी[5] उड़ायी है ।

प्रबन्ध चिन्तामणि के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वह पादपुराण में परम प्रवीण थे । समुद्र पर स्थित शिव की मन्दिर की दीवारों पर कुछ श्लोक थे जिनकी नीम से छाप लेने पर अंकित निम्नलिखित श्लोक को पूरा करने के लिए राजा ने विद्वानों के सम्मुख रखा --

'अपि खलु विषम: पुराकृतानां भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाक: ।

१- नाहं स्वर्गफलोपभोगतृषितो नाभ्यर्थितस्त्वं मया संतुष्टस्तृणभक्षणेन सततं साधो न युक्तं तव ।
स्वर्गं यान्ति यदि त्वया विनिहिता यज्ञे ध्रुवं प्राणिनो यज्ञं किं न करोषि-मातृपितृभि: पुत्रैस्तथा बांधवै: ।।(प्रबन्धचिन्तामणि-मेरुतुंगाचार्य पृ०३८)

२- पय: प्रदानसामर्थ्याद्वन्द्या वैन्याहिषी न किम् ।
विशेषो दृश्यते नान्यो महिषीतो मनागपि ।।(प्रबन्धचिंतामणि पृ०३८)

३- विन्द्यस्योत्सादङ्गं वृथा पुण्यकाले ललाटं विनाशो कथं पद्बन्ध: ।
अकर्णे त्वनेत्रे क्वं गीतनृत्ये अपादस्य पादे कथं मे प्रणाम: ।।

(प्रबन्धचिन्तामणि पृष्ठ ३८)

४- विष्णुपार्श्वे स्वकान्तकलत्राद्भयाभावाद, रुद्रादंगे पार्वतीयद्भयावाद,ब्रह्मणो ध्यानमग्नेन शापादिभयाद, विनायक(क)स्य व्यालिभूतमोदकाशने स्पर्शनं संभवद्, चण्डिकायास्त्रिशूलहेतिस्त्रस्तमहिषमत्स्यमुखागमत्रासाद, हनुमत: कोपाटोपप्रसंवदस्य चपेटाभयाद कुत्राप्यवसरो नाभूत् ।

(प्रबन्धचिन्तामणि पृष्ठ ३८)

५-'कनीयस्य मुने: स्वबान्धववधूवैधव्यविध्वंसिनो
नेतार: किल पंच गोकुलभुज: कुण्डा: स्वयं पाण्डवा: ।
तेऽस्मिन्पंच समानजातय इति व्याता स्तदुत्कीर्तनं
पुण्यं स्वस्त्ययनं भवेदिह नृणां पापस्य कान्या गति: ।।

--प्रबन्धचिन्तामणि पृष्ठ ४२

कोई भी विद्वान इसे पूरा न कर सका तो धनपाल ने इसे इस प्रकार पूरा किया --

'हर शिरसि शिरांसि यानि रेजुर्हर हर तानि लुण्ठन्ति गृध्रपादः' ।

विद्वानों के कहने पर पुनः उस श्लोक की जाँच की गई और धनपाल की पंक्ति सही निकली ।

प्रकाण्ड विद्वान् होने के कारण कोई भी वादी उनके सम्मुख खड़ा नहीं हो सकता था । मेरुतुंगाचार्य की 'प्रबन्धचिन्तामणि' में आया है कि राजा भोज की सभा में आया हुआ 'धर्म' नामक वादी धनपाल का आगमन सुनकर ही भाग गया ।

इसमें सन्देह नहीं है कि प्रबन्धचिन्तामणि में अतिशयोक्तिपूर्ण बातें कही गयी हैं किन्तु इस सत्य में तो किसी का प्रतिवाद नहीं है कि यह सर्वदेव के पुत्र थे और परमारवंशी राजाओं में से किसी-न-किसी के सभा कवि थे । धनपाल ने अपने काव्य में अपने पिता का नाम 'सर्वदेव' ही बताया है --

आसीद्द्विजन्माखिलमध्यदेशे प्रकाशसांकाश्यनिवेशजन्मा (?) ।
अलब्ध देवर्षिरिति प्रसिद्धिं यो दानवर्षित्वविभूषितोऽपि ।।५१
शास्त्रेष्वधीती कुशलः कलासु बन्धे च बोधे च गिरां प्रकृष्टः ।
तस्यात्मजन्मा समभून्महात्मा देवः स्वयंभूरिव सर्वदेवः ।।५२।।
तज्जन्मा जनकाङ्घ्रिपङ्कजरजः सेवाप्तविद्यालवो
विप्रः श्रीधनपाल इत्यविशदामेतामबध्नात्कथाम् ।
+ + (तिलकमंजरी) + ।।५३।।

ए०बी० कीथ[1] तथा एम० कृष्णमाचार्य[2] ने कवि धनपाल को सीयक और वाक्पति मुंज का दरबारी कवि माना है । एम० कृष्णमाचार्य इन्हें भट्टहलायुध, पद्मगुप्त, धनञ्जय, धनिक और देवभद्र के समकालिक मानते हैं[3] ।

१- हि० आफ सं० लि०-- ए०बी० कीथ हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ३६१
२- हि०आफ क्ला०सं० लि०--एम०कृष्णमाचार्य, पृष्ठ ४७४-४७५
३- ,, ,, ,, पृष्ठ ४७४-४७५

ए०बी० कीथ ने तिलकमंजरी की रचना वाक्पतिमुञ्जराज के आश्रय में बताकर उनका समय ९७० ई० माना है[1]।

किन्तु इन बाह्य प्रमाणों की अपेक्षा कवि की कृति की ओर यदि दृष्टि डाली जाय तो इस अंधकार में बहुत प्रकाश मिल सकता है। धनपाल ने स्वयं भी अपने आश्रयदाता की पूर्ण वंशावली दी है[2] और अपने आश्रयदाता भोज की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है[3]। उन्होंने अपने काव्य में बताया है कि राजा भोज की आज्ञा से ही उन्होंने अपने काव्य की रचना की है -

निःशेषवाङ्मयविदोऽपि जिनागमोक्ताः

श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य ।

तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतो

राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम् ॥

-- तिलकमंजरी ॥५०॥

काव्य में यह भी पाया है कि मुञ्ज ने उसे सरस्वती शब्द से विभूषित किया था --"श्री मुञ्जेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृतः ॥५३॥"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि धनपाल का कुछ समय राजा मुञ्ज के पास व्यतीत हुआ और अधिकांश जीवन उनके पुत्र भोज के आश्रय में व्यतीत हुआ। काव्य में भोज का सविस्तर वर्णन होने के कारण भी इस कवि के आश्रयदाता मुख्य रूप से भोज ही कहलायेंगे।

प्रबन्ध चिन्तामणि में तिलकमंजरी नामक काव्य के शीर्षक के सम्बन्ध में किंवदन्ती आयी है कि एक बार राजा ने सेवा में ढीलढाल होने का कारण पूछा तो उन्होंने इसका कारण अपनी काव्य-रचना बताई

१-हि०आफ सं०लिट०--एस०एन०दास गुप्त और ए०बी० कीथ पृष्ठ ४३१
२-तिलकमंजरी श्लोक ३८-५०
३- ,, ,, ४३-५०

आकस्मात् एक रात्रि के अंतिम प्रहर में राजा को कोई अन्य विनोद नहीं मिला तो धनपाल को बुलाकर उनकी यही रचना पढ़ने लग गए और धनपाल उसकी व्याख्या करने लग गये । उस अद्भुत काव्य से चमत्कृत होकर राजा ने कहा --" यदि तुम इस काव्य का कथा नायक बनाओ और विनीता के स्थान पर अवन्ती का नाम रखो तथा शक्रावतारनार्ग की जगह महाकाल को उल्लेखित करो तो जो मांगो वह तुम्हें दूंगा -- इस पर धनपाल ने सदोत दूगी में अरणी - मेरु में, कांच-कांचन में तथा धतूरे- कल्प-वृक्ष में महद् अन्तर बताते हुए काव्य के नायक और राजा भोज में अन्तर बताया । यह सुनकर राजा रुष्ट हो गया और उसकी कृति को आग में डाल दिया । इस घटना से दु:खित होकर धनपाल मकान के पिछले भाग के मंच पर लेट कर सो गए किसी प्रकार उसकी लड़की तिलकमंजरी ने उसे स्नान,पान और भोजन कराया । उसने पिता की अनभिज्ञता में प्रथम प्रति के लेखन का स्मरण कर आधा ग्रन्थ लिख दिया और धनपाल ने उत्तरार्द्ध लिखकर पूरा कर दिया । धनपाल ने अपनी पुत्री की विद्वता से प्रसन्न होकर अपने काव्य का शीर्षक उसी के नाम पर कर दिया[1] ।

किन्तु राजा के इस प्रकार के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर वह नाणागांव चले गये । राजा ने पुन: उन्हें आदर के साथ बुलाया किन्तु फिर उन्होंने कोई काव्य-रचना नहीं की । राजा के पूछने पर कि क्या कोई और ग्रन्थ लिखा जा रहा है कवि ने कटाक्ष करते हुए कहा --" गले में उतरने वाली गरम कांजी से, जल जाने की आशंका के कारण सरस्वती मेरे मुंह से निकल कर चली गयी है । आखिर बैरियों के लक्ष्मी के केश पकड़ने में व्यग्र हाथ वाले महाराज । मेरे पास अब कवित्व नहीं रहा[2] ।

इस प्रकार तिलकमंजरी इनकी अन्तिम रचना थी । इनकी दो और कृति बताई जाती हैं पाइयलच्छीनाममाला नामक प्राकृत कोष तथा ऋषभपंचाशिका । द्वितीय कृति जैन धर्म स्वीकार कर लेने के पश्चात् लिखी

१-प्रबन्ध चिन्तामणि, पृष्ठ ४१
२- ,, ,, पृष्ठ ४२

गई तथा ऋषभ देव की प्रशंसा हेतु उसमें ५० श्लोकों का संग्रह किया गया है।[१]

यद्यपि प्रबन्धचिन्तामणि में धनपाल ब्राह्मण धर्म का उपहास करने वाले कहे गये हैं किन्तु तिलक मंजरी के अध्ययन से धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण मिलता है यह अवश्य है कि उनका जैनधर्म के प्रति विशेष पक्षपात है। प्रारम्भ में जहां उन्होंने 'जिन' देवता की आराधना की है वहां ब्रह्मा एवं सरस्वती की भी की है[२] पुत्रप्राप्ति के हेतु अयोध्या-नरेश मेघवाहन द्वारा लक्ष्मी की आराधना करवाई है[३]। विद्याधर राज्य की प्राप्ति के हेतु विद्या-देवियों की उपासना करवाई है[४]।

विविध हिन्दू देवताओं को उपमान के रूप में काव्य में स्थान दिया है। नृसिंह, शेषनाग, विष्णु, अच्युत, इन्द्र, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, आदिवराह, कंसद्विष कृष्ण आदि का उल्लेख कई बार आया है। 'अर्हद्दर्शनानीरिव नैगमव्यवहारा-दिप्रलोका:'[५], 'बौद्ध इवसर्वत: शून्यदर्शी'[६], 'वैष्णवानां कृष्णवर्त्मनि प्रवेश:'[७] 'वैशेषिक मते द्रव्यस्य कूटस्थनित्यता'[८], अभिप्रेतसाधकै: शैवैरिव प्रधानशकुनै: पदे पदे कृतनिवृत्ति: शर्वरीमनयद्[९] आदि उद्धरण उनके विविध धर्म विषयक ज्ञान के सूचक हैं।

जहां धनपाल विविध दर्शनों के ज्ञाता थे वहां वे संगीत के प्रेमी भी थे। वाद्य-वादन में वीणा से उनको विशेष रुचि थी एवं वीणा की मूर्च्छना, गमक, स्वर विशेष, ग्राम, तान, आदि से परिचित थे।[१०]

१- हि०आफ सं०लि० -- कीथ हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ३६१ (स)
-- संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास--सुधीरकुमार गुप्त पृष्ठ १७१ (बा)
२- तिलकमंजरी श्लोक संख्या ३,५
३- तिलकमंजरी, पृष्ठ ३०
४- ,, पृष्ठ ३९८-४००
५- ,, पृष्ठ ४१
६- ,, पृष्ठ २८
७- ,, पृष्ठ १२
८- ,, पृष्ठ १२
९- ,, पृष्ठ १६६
१०- ,, पृष्ठ १८६-३६१

एक स्थल में गणित से उपमा (शास्त्राणि नानियतानुक्तपदार्थान्) [1] देने से उनके गणितविषयक ज्ञान का पता चलता है ।

राजा भोज के वर्णन से उनके सामुद्रिक ज्ञान का पता लगता है --

अखोर्णाङ्गिश्रुत: सरोजकलशच्छत्रादिचिह्नाङ्कितै-

स्तत्राजायत मांसलायतभुज: श्रीभोज इत्यात्मज: ..।४।

धनपाल को अपनी काव्य-रचना पर गर्व था --

वचनं धनपालस्य चन्दनं मलयस्य च । [2]

सरसं हृदि विन्यस्य कोऽभून्नाम न निर्वृत: [3] ।।

काव्य के विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में धनपाल की कुछ अपनी विशिष्ट मान्यताएं हैं जिनमें से कुछ अधोलिखित हैं । उन्होंने रस वृत्तियों में कौशिकी वृत्ति को, छन्दों में उपजाति को, रीतियों में वैदर्भी को, काव्य-गुणसम्पत्तियों में प्रसत्ति को, गीतियों में पंचम श्रुति को तथा भणिति में रसोक्ति को श्रेष्ठ माना है [3] । रस को काव्य में महत्वपूर्ण स्थान देने के कारण वे यह माधुर्य गुण को प्रशंसनीय मानते हैं । उस गुण के सम्बन्ध में उनका कहना है कि जो कवि इस गुण का आश्रय लेकर सहृदय हृदय को मदमत्त नहीं कर सकता है तो वह कवि नहीं है [4] । इस गुण के अतिरिक्त यह समाधि गुण को भी काव्य में स्थान देना पसन्द करते हैं । इस दृष्टि से उन्होंने यायावर कवि की प्रशंसा की है [5] । वह श्लेष की अधिकता को काव्य में श्रेष्ठ नहीं मानते हैं [6] किन्तु सुन्दर ढंग से प्रयुक्त श्लेषों को काव्य में स्थान देना पसन्द करते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में ऐसे श्लेष सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं [7] । कवि ने स्पष्ट, गंभीर अर्थ वाली तथा रसमयी कथा को प्रशंसनीय बताया है [8] । इसलिए संस्कृत की तरंगवती कथा तथा प्राकृत प्रबन्धों में जीवदेव के वचनों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है [9] । उन्होंने भावों एवं रसों की स्पष्टता के साथ विचित्र पदन्यासों का होना भी काव्य में आवश्यक बताया है [10] ।

१- तिलकमंजरी पृष्ठ २४
२- प्रस्तावना,,--भवदत्तशास्त्री पृष्ठ ६
३- तिलकमंजरी पृष्ठ १५६
४- ,, ११वां श्लोक
५- ,, ३४वां श्लोक
६- तिलकमंजरी १६वां श्लोक
७- ,, ३५ ,,
८- ,, २३,२४ ,,
९- ,, २४ वां श्लोक
१०- ,, ३० ,,

इस प्रकार धनपाल ने अपने पूर्ववर्ती कवियों की विशेषताओं से आकृष्ट होकर उनको काव्य में स्थान देकर अपनी काव्य विषयक धारणा प्रस्तुत की । इन कवियों के अतिरिक्त उन्होंने वाल्मीकि, व्यास, प्रवरसेन, कालिदास, माघ, वाक्पतिराज, भद्रकीर्ति, महेन्द्रसूरि तथा कर्दमराज का भी स्मरण किया । बाण के लिए तो कुछ कहना ही नहीं है । उनसे तो वे सबसे अधिक प्रभावित हैं --

केवलोऽपि स्फुरन्बाण: करोति विमदान्कवीन् ।
किं पुन: क्लृप्तसंधानपुलिन्ध्रकृतसंनिधि: ।। २६।।
कादम्बरीसहोदर्या सुधया वैबुधे हृदि ।
हर्षाख्यायिकया ख्यातिं बाणोऽब्धिरिव लब्धवान ।।२७।।

एक श्लोक में उन्होंने श्रेष्ठ कवि तथा श्रेष्ठ आलोचक के सम्बन्ध में अपने विचार रखे हैं । उन्होंने बताया है कि कवि को काव्य-मर्म तथा गुण-दोष को भली भांति जानना चाहिए तथा आलोचक को इन गुणों के अतिरिक्त पक्षपात रहित होना चाहिए --

वन्द्यास्ते कवय: काव्यपरमार्थविशारदा: ।
विचारयन्ति ये दोषान्गुणांश्च गतमत्सरा: ।।८।।

धनपाल ने जहां एक ओर कवि-हृदय पाया था वहां दूसरी ओर संसार के गूढ़ तत्वों को समझने की क्षमता भी पायी थी । अत: वह कवि होने के साथ-साथ एक बड़े दार्शनिक के रूप में भी हमारे सामने आते हैं । उनके काव्य में सुख-दु:ख, भाग्य-विडम्बना, कर्म की प्रधानता, पुनर्जन्म जैसे गूढ़ विषयों की विशद व्याख्या उपलब्ध होती है । उनका कहना है कि संसार मिथ्या है उसके वैभव क्षणभंगुर हैं, उनमें केवल भाग्य और कर्म की प्रधानता होती है अत: मनुष्य को सांसारिक मोह में नहीं पड़ना चाहिए किन्तु माया बड़ी ठगिनी गयी है वह सांसारिक रहस्यवेत्ताओं को भी मोह के जाल में फंसा लेती है । लेकिन मनुष्य को उससे सावधान रहने का निरन्तर प्रयत्न

१- तिलक मंजरी पृष्ठ २५४

करना चाहिए । मनुष्य के जीवन का सार धार्मिक कर्म ही है -- 'सारभूतमिव धर्मतत्त्वमिव'। इसी तरह से अपने जीवन को सफल बनाया जा सकता है । इसी से दु:खों का निवारण होता है । बड़े-बड़े ऋषि मुनियों के पास इसीलिए कष्ट नहीं आ पाते क्योंकि चिरकाल से संचित पुण्य कर्म सच्चे सेवक की भांति उनकी रक्षा किया करते हैं लेकिन ऐसे मनुष्यों को भी निश्चिन्त होकर बैठ न जाना चाहिए अपितु आगे के जीवन को भी सुखमय बनाने के लिए निरन्तर नीति के मार्ग का अनुसरण कर करना चाहिए[1] । क्योंकि कर्म की गति बड़ी विचित्र होती है उसी के अनुरूप ही मानव-जीवन के साथ सुख-दु:ख हैं । उन कर्मों की कोई भी उपेक्षा नहीं कर सकता[2] । उसी के अनुरूप मनुष्य को विविध योनियों में जन्म लेना पड़ता है[3] । यह सुख-दु:ख का नियम न केवल मनुष्यों के लिए है अपितु देवताओं के साथ भी है क्योंकि ये पहले पुण्यों का भोग करके तत्पश्चात् दु:ख को प्राप्त करते हैं[4] । किन्तु मनुष्य को इससे व्याकुल नहीं हो जाना चाहिए क्योंकि दु:खों व्यथित सुख को भी प्राप्त कराता है --

> छिन्नोऽपि रोहति तरु: क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्र: ।
> इति विमृशन्त: सन्त: संतप्यन्ते न विधुरेषु ।।[5]

इसीलिए संसार में निर्धन, सुखी, दु:खी, दास, स्वामी, कुरूप, सुन्दर, सर्वज्ञ, ब्राह्मण, नीच जाति, पुरुषार्थ तथा पुरुषार्थविहीन व्यक्ति का व्यतिक्रम दिखायी पड़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं है[6] । अप्राप्य वस्तु का प्राप्य होना, लभ्य वस्तु का खो जाना, स्वस्थ व्यक्ति की मृत्यु आदि पूर्व संचित कर्मों का फल है[7] । इसी को भाग्य कहते हैं । इसकी विधि को

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ६०
२- ,, पृष्ठ २०
३- ,, पृष्ठ २४६
४- ,, पृष्ठ ३४६
५- ,, पृष्ठ ४०२
६- ,, पृष्ठ ४०६
७- ,, पृष्ठ ३४६

न कोई जान सका है, न वह किसी से बाधित हो सकी है और न उसका किसी प्रकार प्रतिकार हो सका है[1]। यही भाग्य विविध चमत्कार दिखाता है।

जैसा कि अभी देखा जा चुका है कि धनपाल भाग्यवादी होते हुए भी कर्म-पक्ष पर बल देते हैं। उनकी दृष्टि में इन्द्रियों को वश में रखना चाहिए। बिना सोचे-समझे कार्य करने में विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। जलकेतु बिना कुछ सोचे समझे, बिना कुछ आगे-पीछे देखे समुद्र में उत्पन्न ध्वनि का अनुसरण करने लग तो जाता है किन्तु आगे भयंकर रूप देखकर विचलित होता है और अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप करता है[2]।

इस प्रकार धनपाल पाठक के सम्मुख जहां एक ओर कवि के रूप में आते हैं वहां दूसरी ओर एक बड़े दार्शनिक के रूप में भी आते हैं।

ओडयदेव--

धनपाल के बाद दूसरे जैन कवि ओडयदेव हैं जिन्होंने 'गद्यचिन्तामणि नामक गद्य-काव्य लिखा है। इनका उपनाम वादीभसिंह था। इसी नाम से वे अधिक प्रसिद्ध हुए --

श्रीमद्वादीभसिंहेन गद्यचिन्तामणिकृत: ।
स्थेयादोडयदेवेन चिरायस्थानभूषण: ।।
स्थेयादोडयदेवेन वादीभहरिणाकृत: ।
गद्यचिन्तामणिर्लोके चिन्तामणिरिवापर: ।।

इस नाम एवं उपाधि से वे दाक्षिणात्य प्रतीत होते हैं। एम० कृष्णमाचार्य ने उन्हें मद्रास का निवासी बताया है[3]। यह दिगम्बर जैनी थे।

१- तिलकमंजरी पृष्ठ २४६

२- ,, पृष्ठ १४६

३- हि० आफ क्ला०सं०लिट०-- एम० कृष्णमाचार्य पृष्ठ ४७६

उनके गुरु का नाम पुष्पसेन था[१]। उन्होंने अपने काव्य की कथावस्तु उत्तरपुराण से ली है[२]। उन्होंने ही जीवंधर की कथा नहीं लिखी है अपितु कई जैनी कवियों ने लिखी है[३]। कथावस्तु की प्राचीनता को स्वयं उन्होंने भी स्वीकार किया है[४]।

`क्षत्र चूडामणि` भी उन्हीं की कृति बताई गई है, क्योंकि जिस प्रकार `गद्य-चिन्तामणि` के प्रत्येक लम्ब के अन्त में `इति श्रीमद्वादीभसिंह-सूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ.... ।` पंक्ति आती है उसी प्रकार `क्षत्र-चूडामणि` में भी `इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ.... लम्भो नाम.... लम्ब:` पंक्ति आती है।

ए०एन० उपाध्याय इस आधार को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। उनका कहना है कि वादीभसिंह की उपाधि केवल उन्हीं को नहीं अपितु कई जैन कवियों को मिली थी[५]।

क्षत्र चूडामणि उनकी कृति नहीं है इसके लिए उनका कहना है कि कवि ने इस काव्य में न अपने नाम का और न अपने गुरु पुष्पसेन के नाम का उल्लेख किया है[६]।

किन्तु उनका यह तर्क बहुत अधिक समीचीन नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि सम्भवत: ओडयदेव की प्रथम कृति गद्य-चिन्तामणि थी जिसमें उन्होंने अपना पर्याप्त परिचय दे दिया था और उनकी दूसरी रचना क्षत्र-चूडामणि थी जिसमें उन्होंने पुन: अपना परिचय देने की आवश्यकता न समझी। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि बाण की शैली से प्रभावित होकर उन्होंने गद्यचिन्तामणि नामक गद्य-काव्य की रचना तो की किन्तु

१- ए हि०आफ सं०लि० -- ए०बी० कीथ, हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ३६१

२-(अ) हि० आफ सं०लि०---एस०एन०दास गुप्त और एस०के०डे, पृष्ठ४३३
(ब) हि०आफ क्ला० सं०लि०---एम० कृष्णमाचार्य पृष्ठ ४७६

३- हरिश्चन्द्र का `जीवंधर चम्पू` तथा तिरुत्तक्कदेव का `जीवकचिन्तामणि`
(क्षत्रचूडामणि---नोट्स, टी०एस०कुप्पु स्वामी अय्यर से उद्धृत पृष्ठ१)

४- गद्यचिन्तामणि--- १५ वां श्लोक(प्रारम्भिक)

५- जीवंधर चम्पू---हरिश्चन्द्र सं०हि०टी०सहित,संपादक-ए०एन०उपाध्याय पृष्ठ१५

६- ,, ,, ,, ,, पृष्ठ १५

उन्हें उसमें आत्मसंतोष न मिला और अपने को गद्य में भावों की अभिव्यंजना करने में असमर्थ पाया । अत: उन्होंने उसी कथावस्तु को लेकर पद्य में निबद्ध कर दिया । उदाहरणार्थ गद्यचिन्तामणि में स्वप्न की सत्यता को देखकर और अपने विनाश को सोचकर सत्यंधर केवल भवितव्यता का आश्रय लेता है , पश्चाताप नहीं करता है कि मैंने अमात्यों के वचनों को ठुकराया । किन्तु क्षत्र चूडामणि में पश्चाताप भी वर्णित है--

मन्त्रिणां लङ्घितं वाक्यममात्येन मया मुधा ।
विपाके हि सतां वाक्यं विश्वसन्त्यविवेकिन: ।।

-- प्र० लम्ब० ३५

इसी प्रकार के कई स्थल मिलेंगे । इसके अतिरिक्त दोनों काव्यों में बहुत अधिक समानता है । कथावस्तु एक-सी तो है ही साथ ही कहीं-कहीं पर दोनों काव्यों में एक से ही श्लोक आदि भी आ गए हैं । उदाहरणार्थ काष्ठांगार से ठगे हुए सत्यंधर को वैराग्य हो गया । गद्यचिन्तामणि में वैराग्य युक्त भाव जो पद्य में कहा गया है वही पद्य क्षत्रचूडामणि में भी आया है --

विषयाङ्गदोषदोऽयं स्वयैव विषयीकृत: ।
सांप्रतं वा विषप्रख्ये मुंचात्मन्विषये स्पृहाम्[१] ।।

नवजात शिशु जीवंधर को पा कर खुश होने वाले गन्धोत्कट की की उपमा दोनों काव्य में प्राय: एक सी है --

'स्वान्वेषिणादृष्ट: किं वा न प्रीतये मणि: ।।६६।।

(क्षत्र चूडामणि)

'स कुंत इव दुर्लभं धनं धरापतितमालोक्य हर्षकण्टकिताभ्यां कराभ्यामत्यादरमादत्त ।' (ग० चि० पृष्ठ ३०)

क्षत्र चूडामणि में गद्य-चिन्तामणि की ही भांति जीवंधर के लोकपाल को भोजन खिलाने का उल्लेख एक सा है[२] ।

१- ग०चि० पृ०२७ क्षत्र चूडामणि प्र०लं० श्लो०६६
२- ,, पृ०३८ ,, द्वि०लं० ,, १८-२१

संसारनिन्दा भी प्राय: दोनों में एक सी है।[1] शरीर की नश्वरता एवं तत्वचिंतनता का वर्णन दोनों में है किन्तु अन्तर केवल इतना ही है कि क्षत्र चूडामणि में नारी शरीर को लेकर कहा गया है और गद्य चिन्तामणि में सामान्य शरीर को लेकर[2]।

पूरे काव्य का सारांश दोनों काव्यों में एक सा है --

मन्त्री वानरालोऽयं काष्ठांगाराऽकले हरि: ।
राज्यं फलाकले तस्मान्नयैव त्याज्यमेव तत् ।।२८।।

(क्षत्र चूडामणि एकादश लं०)

सर्वथा काष्ठांगाराके करशाखाभ्रष्टफल: शाखामृग:। जन्मको ढूनमा च्छोटितमल्फल: स मनपाल: । फलं तु निर्मेन भोगानको ।

(ग० चि० पृष्ठ १५८)

इस प्रकार दोनों में पर्याप्त मात्रा में समानता मिलती है, भिन्नता कुछ ही स्थलों पर है[3]। किन्तु यह भिन्नता दोनों काव्यों के रचयिता

१- ग०चि० पृ० ११०-११ क्षत्र चूडामणि ग०लं० श्लो०५७,५६
२- ,, १०६ ,, प्र०लं० ,, ७३
३- क्षत्रचूडामणि में काष्ठांगार से युद्ध करने को प्रस्तुत राजा सत्यंधर को देखकर मूर्छित होने के पश्चात चेतित रानी विजया को समझाते हुए सत्यंधर कहते हैं --

संयुक्तानां वियोगश्च भविता हि नियोगत: ।
किमन्यैरंगतोऽप्यंगी नि:संगो हि निवर्तते ।।६०।।

(क्षत्रचूडामणि, प्र०लं०)

गद्यचिन्तामणि में यह पद्मा अपनी माता के सम्मुख जीवंधर द्वारा कहे गए संदेश को बताती है जो इस प्रकार है -- प्रियेपत्य भर्तृवियोगेऽपि पुनस्तत्संयोगसंभुष्णुतया विरहसहिष्णु मिमाय । (गद्यचिन्तामणि पृ०६८ षष्ठ लम्ब

गद्यचिन्तामणि में आचार्य नन्दी धीरता के साथ उपदेश देते हैं। जीवंधर को देखकर तथा उन्हें शान्त करके जीवंधर के पाण्डित्य पर गर्व करते हैं किन्तु क्षत्रचूडामणि में गुरु भी उत्तेजित हो जाते हैं। जीवंधर को क्रोधित देख कर यद्यपि गुरु दक्षिणा मांग कर गुरु उन्हें शान्त तो कर देते हैं किन्तु वह क्रोध पर अच्छा खासा उपदेश दे देते हैं। (द्वितीय लम्ब)

गद्यचिन्तामणि के षष्ठ लम्ब में पद्मा के वियोग से दु:खित होने प उसकी माँ के द्वारा पिछला वृत्तान्त पूछना तथा पद्मा का चकवा चकवी के वृत्तान्त का कहना वर्णित है जो क्षत्रचूडामणि में नहीं है।

का पृथक होना सिद्ध नहीं करता है ।

वैसे भी गद्य-चिन्तामणि की समानता जीवंधर चम्पू से है किन्तु उनके रचयिता हरिश्चन्द्र बताए गए हैं । इस विषय में किसी प्रकार का प्रतिवाद नहीं है । यह कवि ओडयदेव के बाद हुआ है[१] ।

इनकी एक और गद्य रचना क्षेत्र चूडामणि बताई गई है जो तामिल भाषा के 'जीवक चिन्तामणि' का संस्कृत अनुवाद था[२] । यह अभी तक ग्रन्थ प्राप्त नहीं हो सका है अतः उसके रचयिता के विषय में कुछ भी निश्चय मत नहीं दिया जा सकता है ।

गद्य-चिन्तामणि का शीर्षक कुछ अजीब-सा लगता है । लेकिन तामिल क्षेत्र में बाहर तामिल साहित्य 'चिन्तामणि' के नाम से ही जाना जाता था । तामिल क्षेत्र में उसका अध्ययन प्रत्येक घर में होता था क्योंकि उसमें धर्म,अर्थ, काम और मोक्ष की विवेचना रहती थी । ओडयदेव ने उसी चिन्तामणि को लेकर संस्कृत में सुबन्धु और बाण की शैली को अपना कर अलंकारों से अलंकृत रचना की[३] ।

यह सब होते हुए भी इनके समय के सम्बन्ध में निश्चय नहीं हो सका है । 'जीवंधर चम्पू' के सम्पादक ए०एन० उपाध्याय ने 'आदिपुराण' में जिनसेन द्वारा उल्लिखित 'वादिसिंह' तथा वादिराज द्वारा (१०२५) अपने काव्य 'पार्श्वनाथ चरित' में उल्लिखित 'वादिसिंह' को उद्धृत किया है किन्तु वह वादीभसिंह और वादिसिंह दोनों को एक मानने के लिए तैयार नहीं हैं[४] । इस सम्बन्ध में उन्होंने 'श्रुतसागर' को उद्धृत किया है जिसमें वादिराज और वादीभसिंह सोमदेव के शिष्य बताए गए हैं[५] । उन्होंने 'स्याद्वादसिद्धि' के रचयिता को भी नाम वादीभसिंह बताया है । उनका

१-जीवंधर चम्पू--हरिश्चन्द्र--भूमिका-- के०के० हैन्डीक

२-सं०भा० का इति०--वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ ६३४

३- जीवंधर चम्पू--हरिश्चन्द्र, सं०हि० टीका सहित, सं०-ए०एन०उपाध्याय पृ०१६

४- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०१५

५- ,, ,, ,, पृष्ठ १५

कहना है कि वादीभसिंह नाम नहीं है अपितु कवियों की उपाधि है[1]।

इन विजय का नाम ओडयदेव बताया गया है किन्तु गद्यचिन्तामणि के यही रचयिता थे -- प्रमाणित नहीं हो सका है[2]।

टी०एस०कुप्पु स्वामी हरिचन्द्र और वादीभसिंह को प्राचीन कवियों की कोटि में रखते हैं और इसका कारण उनका काव्य-प्रौढ़त्व बताते हैं --

किन्तु हरिचन्द्रो वादीभसिंहश्चेत्युभावपि स्वस्य कवित्वप्रौढ्या प्राचीनकविकक्षामारोहत इति मादृशः वक्तुं प्रभवति रसना[3]।

इन्होंने ओडयदेव को कालिदास, बाण आदि के अनन्तर का माना है। उनका कहना है कि बाण ने अपने पूर्ववर्ती गद्य-काव्यकारों में सुबन्धु और हरिश्चन्द्र का ही नाम लिया है और किसी का नहीं, अतः ओडयदेव उनके बाद हुए होंगे। इस दृष्टि से श्री कुप्पुस्वामी ने उनका समय ६५० ई० माना है --"अतो वादिभसिंह सूरिः (६५०)पंचाशदुत्तरषट्शताब्दात्पर-मेवासीदिति निश्चेतुं पार्यते[4]।

किन्तु एक स्थल पर वह गद्यचिन्तामणि से ही लेकर अपना दूसरा समय निर्धारित करते हैं। उनका कहना है कि बल्लालैन विरचित "भोजप्रबन्ध" में भोज की मृत्यु के पश्चात् जो कालिदास की

अद्यधारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती ।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजेदिवंगते ।।

उक्ति बताई गई है वह थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ गद्यचिन्तामणि में भी काष्ठांगार के बुरे व्यवहार से दुःखी तथा सत्यंधर की मृत्यु हो जाने के पश्चात्

१-जीवंधरचम्पू, सं०हि०टीका सहित पृष्ठ १५
२- ,, ,, ,, पृष्ठ १५-१६
३-गद्यचिन्तामणि,भूमिका--टी०एस० कुप्पुस्वामी पृ० ३
४- ,, ,, ,, ,, पृ०४-५

शोक करती हुई प्रजा के वचनों में मिलता है --

'अद्य निराधारा धरा, निरालम्बा सरस्वती, निष्फलं लोकलोचन-विधानम्, निःसारः संसारः, नीरसा रसिकता, निराश्रया वीरता।'[1]

इससे यह ज्ञात हो जाता है कि यह कवि भोज के बाद हुआ है। भोज का समय १०१८-१०५३ अर्थात् दसवीं का अन्त और ग्यारहवीं का आरम्भ माना गया है। अतः यदि ओड्यदेव का समय बहुत पहले न रखा जाय तो उनका ग्यारहवीं का उत्तरार्द्ध ही होगा।

पं० बलदेव उपाध्याय ने अवश्य इनका १० वीं शताब्दी माना है[2]। एम०कृष्णमाचार्य ने इनका समय बारहवीं शताब्दी माना है[3]।

धनपाल की भांति ओड्यदेव भी वीणा के प्रेमी थे। उन्होंने अपने काव्य में इसका कई बार उल्लेख किया है। सप्तस्वर, ग्रामविशेष और मूर्च्छना का उल्लेख करके वीणा विषयक अपने ज्ञान का परिचय दिया है[4]।

नवजात शिशु जीवंधर के वर्णन में कवि ने अपने ज्योतिष ज्ञान का परिचय दिया है[5]। कवि का इस शास्त्र पर अटूट विश्वास भी था। कवि ने नायक जीवंधर के विवाहों के सम्बन्ध में कोई-न-कोई ज्योतिषज्ञों से भविष्य-वाणी करवाई है और उनकी वाणी को सत्य करवाया है।

यह कट्टर जैनी थे। इनके काव्य गद्य-चिन्तामणि से ज्ञात होता है कि अन्य धर्मों के सम्बन्ध में उनकी दृष्टि बहुत उदार और सहिष्णु नहीं थी[6]। उनकी दृष्टि में जैन धर्म ही समस्त सुख को देने वाला है --

'जिनदीक्षाविधिमिवापीतिशास्त्रिणीस्वर्गापवर्गनिर्वाणानन्दहेतुतया ततोऽप्यभिनन्दनीयम्।'[7]

१-गद्यचिन्तामणि पृष्ठ ८६-८७
२- सं०सा० का इतिहास --पं०बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३६६
३- हि०आफ क्ला० सं० लिट०--एम०कृष्णमाचार्य पृष्ठ ४६७
४- गद्यचिन्तामणि पृष्ठ ६४,६७,६८
५- ,, ,, पृष्ठ २६
६- इसका विशेष विवेचन 'सांस्कृतिक अध्ययन' नामक अध्याय में किया जायगा।
७- गद्यचिन्तामणि पृष्ठ २३३

यद्यपि उन्होंने विविध धर्मों की निन्दा की है किन्तु उन्होंने हिन्दू देवताओं को आदर की दृष्टि से देखा है। नायक के चरित उत्कर्ष तथा अन्य स्थलों में पद्मनाभ, अच्युत, चक्रपाणि,[1] शार्ङ्गिण,[2] त्रिपुरदाहक[3] तपस्या करते हुए शम्बूक का वध करने वाले राम[4] आदि देवताओं को उपमान रूप में स्थान दिया है।

कवि भवितव्यता और पूर्वजन्म में विश्वास करता है उसकी दृष्टि में कोई भी पुरुषार्थ भवितव्यता को रोकने में समर्थ नहीं है क्योंकि भावी गति बलवान होने के कारण कुछ का कुछ हो जाता है[5]। यह भवितव्यता पूर्वार्जित कर्मों के अनुसार होती है। ये कर्म मनुष्य के जीवन पर बिना प्रभाव डाले नहीं रहते। तपादि से थोड़े बहुत क्षीण अवश्य हो जाते हैं किन्तु पूर्णतया नष्ट नहीं होते[6]।

कर्मों के अनुरूप जीवन की चार योनियां होती हैं, ऐसा कवि का विचार परिलक्षित होता है --

(१) अत्यन्त नीच कर्म के कारण जीव नरक योनियों में जन्म लेता है

(२) पाप की प्रवृत्ति होती है [illegible] जैसा तीव्र न होने के कारण पक्षियोनि में जीव जन्म लेता है।

(३) पाप और पुण्य दोनों कर्म करने वाला जीव मनुष्य योनि में जाता है।

(४) पुण्य करने वाला देव योनि में जाता है।

हिंसक, झूठा, चोर, कामी, क्रूर, अधर्मी, धर्मद्रोही, नरक के कष्टों को झेलते हैं।

१- गद्यचिन्तामणि पृष्ठ १४०-४१
२- ,, पृष्ठ १५
३- ,, पृष्ठ १४३
४- ,, पृष्ठ १४३
५- ,, पृष्ठ ५८
६- ,, लोकपाल वृत्तान्त, पृष्ठ ३७
७- ,, पृष्ठ १६१-६३

उनके मत से किसी भी योनि में जीव सुखी नहीं रहता है । नरकवासियों को तो कष्ट होता ही है, मनुष्य और पशु योनि में भी लोग ताड़न, अभीष्ट-वियोग, अनिष्टप्राप्ति, भूख, तृष्णा, रोग, शोक आदि से खिन्न रहते हैं । सुकृत के कारण देव योनि को प्राप्त देवगण कर्म-नाश से दुःखी रहते हैं कि कर्म के नाश होने पर पुनः हमें संसार में कहीं आना न पड़े । इस प्रकार उनके लिए वह सुख भी दुःख बन जाता है[1] ।

अतः इस प्रकार उनकी दृष्टि में यह सुख दुःख का नियम सब के साथ है किसी भी व्यक्ति को भावी विपत्ति से दुःखी एवं भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है । दुःखी होने से दुःख क्षय होने की अपेक्षा बढ़ता है । दुःख में दुःख को स्वीकार करना अपने को अग्नि में डालना होता है । अतः बुद्धिमान इस चक्कर में नहीं पड़ते हैं[2] ।

मनुष्य योनि के सम्बन्ध में ओडय देव ने बताया कि यह योनि बड़ी कठिनता से मिलती है । समुद्र में जिस प्रकार मणि की प्राप्ति दुष्कर होती है वैसे ही इस योनि की भवसागर में प्राप्ति होती है[3] । अतः मनुष्य को धर्म आदि से अपने जीवन को सफल बनाना चाहिए क्योंकि धर्म निःश्रेय की सिद्धि करने वाला है उसका रूप सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र से युक्त होता है[4] । किन्तु इस शरीर में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए । क्योंकि यह हाड़-मांस का शरीर सब के देखते ही नष्ट हो जाता है । रागान्ध मनुष्य इन्द्रियों के रहते हुए भी उससे काम न लेने के कारण महान अन्धा होता है । कुछ पुरुष ही विवेकी पुरुष होते हैं[5] ।

पंच नमस्कार मंत्र पर कवि को पूर्ण विश्वास है कि आपत्तिकाल में इसका उच्चारण करने से कष्ट दूर हो जाता है । कवि ने सीमंधर के मुंह

१-गद्यचिन्तामणि पृष्ठ १६१-६३

२- ,, पृष्ठ १६, ५७

३- ,, पृष्ठ १४३

४- ,, पृष्ठ १६०

५- ,, पृष्ठ १०६-११०

इसे/कारण वह ब्राह्मण द्वारा पीड़ित कुत्ते के कष्ट को दूर कराया[1]। पंच नमस्कार मंत्र इस प्रकार है --

ओं णमो अरिहन्ताणम्
ओं णमो सिद्धाणम्
ओं णमो आइरियाणम्
ओं णमो उवज्झायाणम्
ओं णमो लोए सव्वसाहूणम्।

इस प्रकार कवि ने अपने इस गद्य-काव्य में जैन धर्म का विशेषरूप से प्रतिपादन किया है और इस काव्य का प्रयोजन मोक्षप्राप्ति रक्खा गया है। अन्तिम लम्ब का नाम इसीलिए 'मुक्ति-श्रीलम्भो नामैकादशो लम्ब:' रक्खा गया है। इसमें मुक्ति को एक कन्या के रूप में चित्रित किया गया है।

धनपाल और ओडयदेव दोनों ही जैन कवि हैं अत: दोनों के दार्शनिक दृष्टिकोण एक से हैं।

वामन भट्ट बाण

संस्कृत-साहित्य के अन्तिम श्रेष्ठ गद्य-कवि वामन भट्ट कोमटियज्वा के पुत्र थे। वह अपने को कादम्बरी एवं हर्षचरित के रचयिता बाणभट्ट का अवतार मानते हैं, इसलिए उन्हें अभिनव भट्ट बाण भी कहा जाता है। उन्होंने बाण के बढ़ते हुए यश एवं 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वं' की उक्ति को निर्मूल सिद्ध करने के लिए ही उन्हीं की रचनाओं के समान 'वेमभूपालचरितम्' नामक गद्य-काव्य लिखा[2]। इसमें रेड्डि के राजा वेमभूपाल का, जिसे वीर-नारायण भी कहा गया है, चरित्र-चित्रण होने के कारण इनका समय पन्द्रहवीं शताब्दी माना जायगा, क्योंकि वीर नारायण का समय १४०३-१४२० माना गया है[3]।

१-गद्यचिन्तामणि पृष्ठ ७५
२-बाणादन्ये कवय:, काणा: खलु सरसगद्यसरणीषु।
इति जगति रूढमयशो, वामनबाणोऽपमाष्टि वत्सकुल:।।६।।वेमभूपाल०
३-(अ) हि०आफ सं०लि०--एम०एन०दासगुप्त और एस०के० दे पृ०४३३
(ब) हि०आफ क्ला० सं०लि०--एम०कृष्णमाचार्य पृष्ठ ४८०
(स) ए० हि०आफ सं०लि०--ए०बी०कीथ,हिन्दी अनुवाद पृष्ठ३७३

कवि को अपनी कृति की सफलता पर अटूट विश्वास था[1]। उन्होंने अपने को अन्य कवियों से श्रेष्ठ, कविता रूपी वृक्षों के नीचे विहार करने वाला मयूर एवं सहृदयों का सुबन्धु बताया है[2]।

यद्यपि यह मधुर गद्य सरणी, आलापमय वाक्यविन्यास, श्लाघनीय वर्णन-कुशलता तथा हृदयावर्जक उत्प्रेक्षा से कवि बाण भट्ट का अतिक्रमण करना चाहते थे किन्तु काव्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उन्होंने अन्ततोगत्वा बाण का ही अनुकरण किया है ।

जिस प्रकार बाण भट्ट ने अपने आश्रयदाता हर्ष के विषय में हर्षचरित लिखा है उसी प्रकार वामन भट्ट बाण ने अपने आश्रयदाता वेम के विषय में 'वेमभूपाल चरितम्' लिखा है ।

वामन भट्ट बाण नारायणोपासक थे । इन्होंने अपने काव्य में उन्हें तथा उनके विविध रूपों को किसी-न-किसी रूप में स्थान देकर उन देवताओं के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है । नारायण को तो न जाने कितनी बार काव्य में कवि ने स्थान दिया है ।

जहाँ हर्षचरित में बाण भट्ट ने भवानीपति के परमभक्त चित्रभानु का पुत्र अपने को घोषित किया है वहाँ वामन ने अपने इस काव्य के प्रारम्भ में लक्ष्मीपति का स्मरण किया है तथा अपने आश्रयदाता की वंशावली का गुणगान करते समय उसकी उत्पत्ति भगवान विष्णु से बताई है --'श्रीमतश्चरण कमलादवतीर्णो वर्णश्चतुर्थः इति[3]।'

१- कविरभिनवबाणः काव्यमस्युदमतार्यं
भुवनमहितभूमा नायको वेमभूपः ।
त्रिभुवनमहनीयश्चातिमानेषयोगः
प्रकटयति न केषां पण्डितानां प्रहर्षम् ।।७।।वेमभूपाल०

२- प्रतिकविभेदनबाणः कवितातरुगहनविहरणमयूरः ।
सहृदयलोकः सुबन्धुर्जयति श्रीभट्टबाणकविराजः।।८।।वेमभूपाल०

३- वेमभूपालचरितम् पृष्ठ ३

इसी प्रकार जहां बाण शंकर की विभूति, जटा आदि का स्मरण करते हैं वहां वामन भट्ट बाण वट-वृक्ष पर सोये हुए स्वं आने ही पैर से निकली हुई गंगा का रसास्वादन लेने के लिए अवतार लेने वाले वासुदेव का स्मरण करते हैं। जहां कवि बाण महाश्वेता के शंकर व्रत के वर्णन में डूब जाता है वहां अभिनवबाण वासुदेव के ध्यान में लीन हो जाता है।

इन दोनों के ईश्वर के स्वरूप में अन्तर दिखाते हुए आर० कृष्णमाचार्य का वक्तव्य अवलोकनीय है --

"अलघुस्फाटिकशिलाघटितलिङ्गमशेषत्रिभुवनवन्दितचरणं चराचरगुरुं चतुर्मुखं भगवन्तं त्र्यम्बकमित्यादिभक्तिपरवशो गायति प्राचीनो बाण:। साक्षान्नारायण इव सकललोकवन्द्ये, दूरग्राहगृहीतगजपतित्राणविचक्षणाविर्भूतस्य गरुडध्वजस्येव सर्वलोकशरणस्य, विग्रहमिव नारायणमूर्ति:, इत्याद्यात्मनो भक्तिसुधाप्रवाहेणाविष्करोति अभिनवबाणकिथा समलंकृतोऽयं वामनाचार्य:[१]।"

किन्तु नारायण के अनन्य भक्त होते हुए भी वह शिव को आदर की दृष्टि से देखते हैं। वह जिस उत्साह के साथ विष्णु की स्तुति करते हैं उसी उत्साह के साथ शिव की भी। उन्होंने शंकर के मन्दिर, नान्दीबैल का सविस्तार वर्णन किया है[२]।

देवियों में चण्डिका देवी का कवि ने विस्तार के साथ वर्णन किया है[३] जिससे कवि की उन देवी के प्रति भक्ति परिलक्षित होती है।

कवि की रुचि रामायण, महाभारत एवं पौराणिक कथाओं के प्रति भी परिलक्षित होती है। काव्य में इन्द्र के वज्र द्वारा हुए वज्रासुरादिति के गर्भ के नाश[४], विलोमपुत्र के वध[५], ग्राह से पकड़े गज के उद्धार[६], तथा शकुनि से

१- वेमभूपाल चरित--भूमिका--आर० कृष्णमाचार्य पृष्ठ ३

२- ,, पृष्ठ १४७-४८

३- ,, पृष्ठ १८२-८४

४- ,, पृष्ठ १११

५- ,, पृष्ठ १११

६- ,, पृष्ठ ५०

शैचित कौरव को कथा[1] में सम्बन्धित कहानियां तो आयो हा हैं, साथ हो दिलीप, उत्तानपाद, गांधर्व, विश्वामित्र, भीमसेन, धुन्धुमार, हरिश्चन्द्र, भगीरथ, मान्धाता, इक्ष्वाकु आदि पुरुष पात्रों का तथा स्त्री-पात्रों में द्रौपदी, रुक्मिणी, रम्भा, मन्दोदरी, सुदक्षिणा, सुभद्रा, लोपमुद्रा, सीता आदि का उपमान रूप में ग्रहण करना कवि का उनसे सम्बन्धित कथाओं से परिचित होना सिद्ध करता है ।

चार्वाक दर्शन के प्रति भी कवि ने `चार्वाकमतानुसारिण इव न बध्नाति परलोकबुद्धिं`[2], `चार्वाकपुनिरिवजातिभेदानपेक्षिणी`[3] तथा `प्राकृत्येव आत्मानुरक्तानां सोपानदायिनी`[4] आदि पंक्तियां कहकर अपने विचार प्रकट किए हैं ।

इन शास्त्रों के अतिरिक्त वे संगीतशास्त्र और छन्दशास्त्र से भी परिचय रखते हैं । एक स्थल पर संगीत के श्रुति स्वरमण्डल आदि का उल्लेख किया है (गान्धर्वमिव कुर्वाणं श्रुतिस्वरमण्डलमिव[5]) ।

वेश्याओं के नख-शिख वर्णन में छन्दों का उल्लेख कर छन्दविषयक ज्ञान का परिचय दिया है --

`केशेषु स्रग्धरा, विलासेषु ललिता, वीक्षणेषु हरिणी, वचसि मंजुभाषिणी, रूपे रुचिरा, स्वरे मत्तकोकिला, नितम्बबिम्बे पृथिवी चेवं संदर्शितानेकवृत्तापि वृत्तावलम्बिनी ।`[6]

छः भाषाओं में अधिकार होने के कारण उन्हें षड्भाषा-वल्लभ की उपाधि मिली हुई थी । इसके अतिरिक्त कवि-श्रेष्ठ होने के

१-वेमभूपालचरितम् पृष्ठ १३६
२- ,, पृष्ठ १३२
३- ,, पृष्ठ २००
४- ,, पृष्ठ २००
५- ,, पृष्ठ १३
६- ,, पृष्ठ ११८

कारण कविसार्वभौम की उपाधि भी मिली थी[1]।

'वेमभूपाल चरित्र' के अतिरिक्त उनकी रचनायें --पार्वती परिणय नामक नाटक, श्रृंगारभूषण नामक भाण, रघुनाथ चरित, नलाभ्युदय, हंसदूत, कनकलेखा, शब्द चन्द्रिका और शब्द-रत्नाकर बताई गई है।

पार्वती परिणय में शिव - पार्वती की पौराणिक कथा को नाटकीय रूप दिया गया है। यह 'श्रीरंगम्' के वाणी विलास प्रेस से प्रकाशित है। इस रचना के रचयिता के सम्बन्ध में बहुत वाद-विवाद है। पी०वी० काणे इस रचना को वामनभट्ट बाण को न बताकर प्राचीन कवि बाण को बताते हैं। इस सम्बन्ध में वह पार्वती परिणय के प्रारम्भिक श्लोक को उद्धृत करते हैं जिसमें वह वत्सगोत्री बाण की रचना बताई गई है --

अस्ति कविसार्वभौमो वत्सान्वय जलधिसम्भवो बाण: ।
नृत्यति यद्रसनायां वेधोमुखलासिका वाणी ।।श्लो० अं०१,

पी०वी० काणे ने बताया है कि कादम्बरी का कवि रचयिता भी वत्सगोत्री ब्राह्मण था। वह यह स्वीकार करते हैं कि यद्यपि यह नाटक अत्युत्कृष्ट नहीं है, किन्तु इस आधार पर उसे बाण की रचना न बताना ठीक नहीं है। उन्होंने ऐसे लोगों के विचारों को भी निर्मूल सिद्ध कर दिया है जो यह कहते हैं कि इस नाटक का विषय कुमारसंभव का है और बहुत से विचारों एवं पदों ह को मानता है तथा बाण ने किसी का अनुकरण नहीं किया है। इस सम्बन्ध में पी०वी० काणे का कहना है कि उनके काव्य में ऐसी समता मिल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है[2] क्योंकि बाण ने स्वयं ही अपने को महाकवि कालिदास से अत्यधिक प्रभावित होना माना है --

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मंजरीष्विव जायते ।। हर्ष चरित

१- सं०सा० का इतिहास --पं० बलदेवउपाध्याय पृष्ठ ४१६
२- कादम्बरी, पी०वी० काणे, तृतीय संस्करण पृष्ठ१८-१९

इसके अतिरिक्त पी०वी० काणे इसे बाण की रचना बताने में एक तर्क यह भी देते हैं कि इस नाटक के गद्य, विचारों एवं अभिव्यक्ति में कादम्बरी और हर्षचरित से समता है[1]।

ए०बी० कीथ पी०वी० काणे के विचारों का समर्थन न करके इसे रचना को पन्द्रहवीं शताब्दी में होने वाले वामनभट्ट बाण की रचना बताते हैं। इन्होंने इसका कारण इस कृति की शैलीगत तथा रचनागत दुर्बलता बताई है[2]।

एम० कृष्णमाचार्य भी इस कृति को वामन भट्ट बाण की रचना बताते हैं और वे इस विषय में तीन कारण देते हैं --

(१) किसी अलंकारशास्त्रियों एवं नाटककारों ने पार्वती परिणय से पद्य नहीं उद्धृत किए हैं।

(२) कादम्बरी की तरह संवादशैली एवं काव्य प्रतिभा का सुन्दर रूप नहीं है।

(३) वेमभूपाल चरित से काफी समानता है[3]।

इस विषय में अभी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है किन्तु अधिकांश भारतीय विद्वान् इसे स्वभावत: प्रतिभासम्पन्न बाण की रचना न मानकर अभिनव भट्ट बाण की रचना मानने के पक्षपाती हैं।

नलाभ्युदय नलविषयक अपूर्ण काव्य है,[4] रघुनाथ चरित ३० सर्गों का अप्रकाशित महाकाव्य है, शब्द-चन्द्रिका और शब्द-रत्नाकर नामक दो कोष ग्रन्थ अप्रकाशित है[5]। शृंगारभूषण निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित है[6]।

१- कादम्बरी, पी०वी० काणे, तृतीय संस्करण पृष्ठ १८

२- ए० हि०आफ सं०लि०-- ए०बी० कीथ पृष्ठ ३१५

३- कादम्बरी --पी०वी० काणे पृष्ठ ११८

४- अनन्तशयन ग्रन्थमाला, नं०३

५-सं०सा० का इति०--पं० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ४१६-१७

६- " " " " " " " ४१६-१७

वासुदेव--

रामकथा के रचयिता वासुदेव के विषय में अभी विशेष परिचय नहीं मिल सका है । रामकथा के अन्त में आए कुछ पद्यों से उनके पिता का नाम नारायण और माता का नाम उमा पता चलता है --

निशाचर नमोऽहिनकादुन्मेष उतये ।
.... तेजसां निधये..... ।।
यं वासुदेवमनुरूपमवाप पुत्रं
नारायणो विमलबुद्धिरुमा समाम्बा[१] ।

कुछ विद्वान रामकथा के वासुदेव को तथा युधिष्ठिर विजय के रचयिता वासुदेव को एक मानते हैं किन्तु युधिष्ठिर विजय के रचयिता वासुदेव को कुलशेखर के समकालिक बताया गया है । इसे युधिष्ठिरविजय के रचयिता ने स्वयं स्वीकार किया है --

तस्य च वसुधामवतः काले कुलशेखरस्य वसुधामवतः ।
वेदानामध्यायी भारतगुरुरभवदाघनामध्यायी ।।
समजनि कश्चित्तस्य प्रवणः शिष्योऽनुवर्तकश्चिक्तस्य ।
काव्यानामालोके पटुमनसो वासुदेव नामा लोके[२] ।।

और रामकथा के रचयिता वासुदेव के समय कोई भी कुलशेखर नहीं हुआ था, अपितु वह आदित्यवर्मा का समकालिक था । कवि ने अपने काव्य के प्रारम्भ तथा अन्त में इसे स्पष्ट कर दिया है --

सतां परित्राणपरः सुमेधा
पितारिव स्वकीतया महीयान्
विभ्राजते विश्रुतविक्रमश्री--
रादित्यवर्मा नरलोकवीरः ।।२।।

\+ + +

१- रामकथा पृष्ठ ६२
२- ,, भूमिका, श्रीशंकररामशास्त्री पृष्ठ ३

प्राणायि तेन मनुवंशजतो: कवीयम्
आदित्यवर्मनृपते: कृतिनी निदेशात्[१] ।।

डॉ० सी० शंकररामशास्त्री ने ट्रैवनकोर के इतिहास के आधार पर आदित्यवर्मा नामक चार राजाओं का उल्लेख किया है --

(१) आदित्यवर्मा तिरुवादी (Tiruvādi) का समय १३३३ई था ।

(२) आदित्यवर्मा ने १४७१-७८ई तक शासन किया था जिसके बाद रविवर्मा ने १४७८-१५०४ ई० तक शासन किया था ।

(३) आदित्यवर्मा ने १५५३-१५६७ तक शासन किया था ।

(४) आदित्यवर्मा का समय १६६१-१६६७ था[२] ।

इस काव्य के आदित्य वर्मा के लिए 'नरलोकवीर' शब्द का प्रयोग किया गया है-- '..... रादित्यवर्मा नरलोकवीर:[३] ।'

इन राजाओं को 'नरलोकवीर' उपाधि नहीं मिली थी किन्तु 'भूतलवीर' की उपाधि मिली थी । इस उपाधि को सर्वप्रथम ट्रैवनकोर के राजा वीर उदय मार्तण्ड वर्मन् ने १४६४-१५३५ के बीच तिन्नवेल्ली (Tinnevelly) जिले को जीत कर पाई थी । इस आधार पर सी० शंकररामशास्त्री ने प्रथम दो राजाओं को इस काव्य के रचयिता वासुदेव कवि का आश्रयदाता नहीं माना है[४] ।

अन्तिम दो राजाओं में से इस कवि का आश्रयदाता निश्चित करने के लिए उन्होंने दो और काव्य -- संक्षेपभारत और संक्षेपरामायण के रचयिता का नाम भी वासुदेव बताया है । उनका कहना है कि आन्तरिक प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि इन दोनों काव्यों के तथा रामकथा के रचयिता एक ही हैं । इस सम्बन्ध में वे तीनों काव्यों की पंक्तियां उद्धृत करते हैं[५]

१- रामकथा पृष्ठ ५२
२- ,, भूमिका पृष्ठ ८
३- ,, श्लोक सं० २
४- ,, भूमिका पृष्ठ ६
५- ,, ,, पृष्ठ ६-१०

संक्षेपभारत में --

> जगदानन्दान् गोभि: क्षतांमार्ग जनाश्रयः ।
> प्रकाशः श्रीकरो राजा रविवर्मा विराजते ।।
> गिरां देवी रमा चोभे यं समग्रगुणोज्ज्वलम् ।
> आश्रित्य स्वप्रियौ देवौ रमतो न कदाचन ।।
> तस्याज्ञया सुमनसः गार्यानां चरितं शुभम् ।
> शुभः संक्षिप्य सुतरां प्रसीदन्त्विह देशिकाः ।।
>
> + + +
>
> यदेतदकृतेनेतेषां पाण्डवानां महात्मनाम् ।
> सैषेतादृशी कापि वासुदेवस्य निर्मितिः ।।

संक्षेपरामायणमें --

> रामस्य चरितं पुण्यं संक्षिप्य वदतो मम ।
> वाल्मीकिमुख्या गुरवः प्रसीदन्तु दयालवः ।।

रामकथा में --

> "गुरवः प्राचेतसाद्यास्सदा ।"

उनकी दृष्टि में तीनों काव्यों की अन्तिम पंक्तियां प्रायः एक-सी होने के कारण उन सब का रचयिता एक है -- ऐसा निश्चित करती हैं ।[१]

जैसा कि उपर्युक्त काव्यों की पंक्तियों से स्पष्ट है कि संक्षेप-भारत की रचना रविवर्मा की आज्ञा से हुई है और रामकथा को रचना आदित्यवर्मन की आज्ञा से । अतः यदि तीनों काव्यों के रचयिता एक हैं तो इन वासुदेव को रविवर्मा और आदित्यवर्मा दोनों के बीच का होना चाहिए । इसलिए सी० शंकररामशास्त्री ने अन्तिम आदित्यवर्मा (१५५३-१५६७) को इस कवि का आश्रयदाता बताया है । उन्होंने इतिहास का आश्रय लेते हुए बताया कि आदित्यवर्मा की गद्दी पर उमयम्मा रानी (Umayamma Ranee) बैठी थी जिसका समय १६७८-१६८३ ई० माना गया है । और उनके स्थान पर

१- रामकथा भूमिका -- सी० शंकररामशास्त्री पृष्ठ १०

रविवर्मन् बैठे थे । इनका समय १६८४-१७१८ ई० माना गया है । इस प्रकार इन्होंने इस काव्य के रचयिता का समय सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध बताया है[1]।

विद्वानों ने युधिष्ठिर विजय की भांति 'धातुकाव्य' जिस काव्य के आधार पर लिखा गया है उस काव्य के रचयिता को रामकथा के रचयिता वासुदेव ही बताया है जो कि वस्तुतः इनकी रचना नहीं है[2]।

त्रिपुरदहन तथा शौरिकथा के रचयिता का नाम वासुदेव देखकर इन कृतियों को भी इन वासुदेव की रचना बताई गई है किन्तु रामकथा के संपादक डॉ० शंकरराम शास्त्री ने ऐसा नहीं माना है । इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि त्रिपुरदहन के टीकाकार नीलकण्ठ ने काव्य में आए 'रविभुवः' की व्याख्या करते हुए कहा है -- रविनामान्य कवेः पिता तेन वासुदेवेन[3]। जिससे स्पष्ट है कि इस कवि के पिता का नाम रवि था जब कि रामकथा के रचयिता के पिता का नाम नारायण था[4]।

इस प्रकार इनकी रचना संक्षेपभारत, संक्षेपरामायण और रामकथा ही बताई गई है ।

इन्होंने अन्य कवियों की भांति काव्य के विषय में अपने दृष्टिकोण अपने काव्य 'रामकथा' में नहीं रखे हैं किन्तु इनके काव्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि वे काव्य में न अलंकारों को बहुत अधिक स्थान देते हैं और न वर्णन की दीर्घता को । वह सरल सीधी सादी भाषा में अपनी कथा का विकास करते हैं ।

१- रामकथा भूमिका--डॉ० शंकररामशास्त्री पृष्ठ १०

~~२- ,, ,, ,, ,, पृष्ठ १०~~

२- ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ६

३- ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ८

४- ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ८

पंडितराज जगन्नाथ--

जगन्नाथ संस्कृत काव्यशास्त्र को मौलिक रूप देने वाले अंतिम आचार्य हैं । पं० बलदेव उपाध्याय ने उन्हें आन्ध्र ब्राह्मण बताया है[1] किन्तु पंडितराज जगन्नाथ ने स्वयं अपने को भामिनीविलास में माथुर कुलीन एवं तैलंगकुलीन माना है--"माथुरकुलसमुद्रेन्दुना", "तैलंगकुलावतंसेन"[2] । "भामिनीविलास" के संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी[3] तथा एस०के० डे[4] इन्हें तैलंग निवासी मानते हैं और अपने मत के समर्थन में जगन्नाथ द्वारा रचित "प्राणाभरण" नामक काव्य से उनके श्लोक को उद्धृत करते हैं --

तैलंगान्वयमंगलालयमहालक्ष्मीदयालालित: ।
श्रीमत्पेरमभट्टसूनुरनिशं विद्वल्ललाटंतप: ।
संतुष्ट: कमताधिपस्य कविताभाकर्ण्य तद्वर्णनं
श्रीमत्पंडितराजपंडितजगन्नाथो व्यधासीदिदम् ।।

(प्राणाभरण)

उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट है कि उनके पिता का नाम पेरमभट्ट था । महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उनके पिता का नाम पेठि भट्ट तथा पेरमभट्ट दोनों का उल्लेख किया है[5] । इसी प्रकार आचार्यबद्रीनाथ झा तथा मदनमोहन झा ने पेरुभट्ट और पेरम भट्ट बताया[6] और पं० बलदेव उपाध्याय जी ने पेद्द भट्ट बताया[7] । ये नामान्तर संभवत: पेरमभट्ट के ही हैं । उनकी माता का नाम लक्ष्मी था ।

उन्होंने समस्तशास्त्रों का अध्ययन अपने पिता के साथ रह कर किया । उन्होंने वेदान्त की शिक्षा ज्ञानेन्द्र भिक्षु से, न्यायवैशेषिक की

१- सं०सा०का इति०--पं० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३१६
२- पं०का०सं० -- डा०वीरेन्द्र शर्मा, भामिनीविलास पृष्ठ ८५
३- भामिनीविलास--सं० महावीरप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ ८
४- सं० पोयटिक्स-- एस०के०डे पृष्ठ २३२
५- भामिनीविलास-- सं०-महावीरप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ ६
६- रसगंगाधर--चन्द्रिका टीका, चौखम्भा पृष्ठ ३६
७- सं०सा० का इति०-- पं० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३१६

महेन्द्र मिश्र से, पूर्व-मीमांसा को खण्डदेव से, तथा महाभाष्य को शेष वीरेश्वर से प्राप्त की थी। यह शेष वीरेश्वर उनके पिता के भी गुरु थे।[1]

महावीरप्रसाद द्विवेदी का कहना है कि समस्त शास्त्रों की शिक्षा ग्रहण करके जगन्नाथ 'तंजाउर' नामक संस्थान में जीविकार्जन के लिए चले गए किन्तु वहां उनको अनादर मिला। उसके प्रमाण में द्विवेदी जी 'रसकपाटी' काव्य के अधोलिखित श्लोक को प्रस्तुत करते हैं --

> तंजाप्तिनोधिमति गंजाऽपरोऽपि बत तंजाम्ततेऽत्र धनद:
> तंजापटोति गुणगुंजाभिलन्य न तु गुंजाभितं च कनकम् ।
> किं जाग्रतो ऽपि किं जानता स्वामिनि किंजानतुगुरपदे
> तैजो पुरेऽपि नवकंजाक्षि साधु तदिदं जातु या भिमु शिवे ।।
>
> (तंजोर)

द्विवेदी जी का कहना है कि वहां से जगन्नाथ कई संस्थानों से होते हुए दिल्ली आए।[2]

पंडितराज जगन्नाथ की शाहजहां से मिलने के सम्बन्ध में कई प्रकार की किंवदन्तियां हैं। पं० बलदेव उपाध्याय का कहना है कि शाहजहां ने अपने पुत्र दाराशिकोह को संस्कृत पढ़ाने के लिए उनको सादर आमंत्रित किया।[3] इस सम्बन्ध में यह भी जनश्रुति है कि अध्ययन करने के पश्चात जगन्नाथ जयपुर गए वहां किसी काजी से वाद-विवाद हुआ और काजी परास्त हो गया। काजी ने जाकर बादशाह से इनकी प्रशंसा की और बादशाह ने इनको बुला लिया।[4] दूसरी जनश्रुति यह है कि काजी के कारण जयपुर के राजा जयसिंह द्वारा इनकी भेंट बादशाह से हुई। क्योंकि मुल्ला लोग जयपुर नरेश को दो प्रकार से परेशान करते थे --

---

१- सं० पोयटिक्स -- एस०के० दे पृष्ठ २३२
२- ~~सं० सा० का इति० -- पं० बलदेव~~ भामिनीविलास--सं०महावीरप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ ६
३- सं०सा० का इति०-- पं० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३१६
४- रस गंगाधर-- चन्द्रिकाटीका, चौखम्भा पृष्ठ ३६

(१) वे वास्तविक क्षत्रिय नहीं हैं क्योंकि परशुराम ने जब इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्रीय कर दिया तब उनके पूर्वज कैसे बच गए ? और वह क्षत्रिय हुए । और

(२) अरबी भाषा संस्कृत भाषा से प्राचीन है ।

मुल्ला के इन दोनों प्रश्नों का कोई उत्तर दे नहीं पाता था । जगन्नाथ ने इन दोनों समस्याओं को यह कहकर सुलझा दिया कि 'परशुराम ने पृथ्वी को इक्कीस बार निःक्षत्रिय किया' -- इस लोकोक्ति का तात्पर्य यह नहीं है कि कोई क्षत्रिय ही नहीं बचा, अन्यथा इक्कीस बार वाली बात मिथ्या हो जावेगी । मुल्लाओं के दूसरे प्रश्न का यह उत्तर दिया कि उनकी 'हदीस' नामक पुस्तक में आता है कि मुसलमानों को हिन्दुओं से सर्वथा विपरीत आचरण करना चाहिए यही उनका धर्म है । इस वाक्य से जगन्नाथ ने यह सिद्ध किया कि इस ग्रन्थ के निर्माण के पूर्व हिन्दुओं का कोई धर्म रहा होगा और धर्म बिना भाषा के रह नहीं सकता है अतः उस समय हिन्दुओं की धर्म भाषा संस्कृत थी[१] ।

जगन्नाथ की इस विद्वत्ता से प्रसन्न होकर सम्भवतः जयसिंह ने शाहजहां से उनकी चर्चा की हो और शाहजहां ने उन्हें बुला लिया हो ।

इनके विषय में यह भी किंवदन्ती मिलती है कि बादशाह की अतुल सम्पत्ति पाकर वह मदान्ध हो गए और वहां पर सम्राट् शाहजहां की किसी क्षत्रिय रानी से उत्पन्न लवंगी नामक रूपवती कन्या पर मोहित हो गए[२] । उसकी मृत्यु से खिन्न होकर वह काशी आए और वहां पर उन्हें अपमान मिला, जातिच्युत कर दिया गया, अप्पय्यदीक्षित ने उनसे मिलने से इन्कार कर दिया । इन सब घटनाओं से वे विचलित हो उठे और जीवन से ऊब कर उन्होंने गंगा लहरी का पाठ करते हुए गंगा में प्राणोत्सर्ग कर दिया[३] ।

१- रस गंगाधर--चन्द्रिका टीका, चौखम्भा पृष्ठ ३७

२- पं० का० सं० --डा० वीरेन्द्र शर्मा, लवंगीप्रशंसा, श्लो०५८२-८८

३- ,, ,, , ,, पृष्ठ १०

इसके विपरीत एक और किंवदन्ती मिलती है कि काशी में पर्याप्त अनादर मिलने से इन्हें वैराग्य हो गया तो अपने को पवित्र करने के लिए गंगा के तट पर बैठकर उन्होंने गंगा लहरी की रचना की ।

इस किंवदन्ती में कुछ तथ्य भी परिलक्षित होता है । क्योंकि प्राणोत्सर्ग कर लेने पर गंगालहरी की रचना कैसे हो सकती है । इस दृष्टि से गंगालहरी उनकी अंतिम रचना प्रतीत होती है ।

इन दोनों किंवदन्ती से मालूम पड़ता है कि कवि का अन्तिम समय काशी में व्यतीत हुआ । भामिनि-विलास में एक श्लोक आया है जिसमें बताया गया है कि कवि की युवावस्था बादशाह के दरबार में तथा वृद्धावस्था मथुरा में व्यतीत हुई --

> शास्त्राण्याकलितानि नित्यविधय: सर्वेऽपि संभाविता:
> दिल्लीवल्लभाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वय: ।।
> सम्प्रत्युज्झितवासनं,मधुपुरीमध्ये हरि: सेव्यते,
> सर्वं पण्डितराजराजितिलकेनाकारि लोकाधिकम्।।
>
> (शान्तविलास श्लो० ४५)

'भामिनीविलास' उन्हीं की रचना होने के कारण इसकी सत्यता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता । किन्तु उनके जीवन के सम्बन्ध में प्रचलित जनश्रुतियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अपनी प्रेमिका की मृत्यु से खिन्न होकर एकाएक उनकी ईश्वर के भगवद् भजन की ओर इच्छा हुई हो और वह वहां से मथुरा चले आए हों तत्पश्चात् वहां से काशी जाकर अपने जीवन के अन्तिम क्षण वहां व्यतीत किए हों ।

डा० आर्येन्द्र शर्मा ने उनका अन्तिम समय मथुरा में न बताकर काशी में व्यतीत होना बताया है । इस विषय में उन्होंने अधोलिखित तर्क दिये हैं[१] --

१- आगरा की स्थिति शाहजहां के बाद ठीक नहीं हो पाई । अत: कवि ने उधर जाना पसन्द न किया होगा ।

१- पं० का० सं०--डा० आर्येन्द्र शर्मा पृष्ठ १०

२- पिता बनारस में रहते थे । बचपन वहीं बीता था । अतः नवीन स्थान जाने की अपेक्षा उन्होंने काशी जाना अधिक पसन्द किया होगा ।

३- 'मनोरमाकुचमर्दन' और 'शब्द-कौस्तुभ-शाणोत्तेजना' जो बीच की व्याकरण संबंधी रचना है । मथुरा या आगरा की अपेक्षा बनारस में व्याकरण लिखने का अधिक वातावरण है ।

डा० आर्येन्द्र शर्मा के अन्तिम दो तर्क बहुत अधिक समीचीन प्रतीत नहीं होते हैं क्योंकि अधिकांश विद्वान उनका जन्म तैलंग में मानते हैं तथा मनोरमाकुचमर्दन की रचना कवि की उस समय की बताई गई है जब भट्टोजी दीक्षित ने उनके गुरु द्वारा रचित 'प्रक्रिया-कौमुदी' की टीका 'प्रक्रिया प्रकाश' का खण्डन अपनी 'मनोरमा' में किया । पं० बलदेव उपाध्याय ने इस सम्बन्ध में जगन्नाथकृत अधोलिखित पंक्तियों को उद्धृत किया है[१] --

नाम नामं घनश्यामं धामतामरसेक्षणम्
पण्डितेन्द्रो जगन्नाथः ज्ञातिगर्वं गुरुद्रुहाम् ।'

यदि लवंगी की घटना सत्य है तो उस समय 'मनोरमाकुचमर्दन' तथा 'शब्द कौस्तुभ -शाणोत्तेजना' जैसी गम्भीर व्याकरण सम्बन्धी रचना कवि के लिए दुष्कर होगी ।

उनकी अतिशय प्रतिभा के विषय में तो कोई किसी प्रकार सन्देह कर ही नहीं सकता है । रस गंगाधर में विभिन्न आचार्यों के मतों को काट कर जिस विद्वत्ता से अपने मत को स्थिर किया है वह प्रशंसनीय है । उन्हें अपने पांडित्य पर गर्व भी था --

'अपारकल्लोलिनिस्तारविस्तारितमहोकारपरम्पराधनिमानसेन प्रतिदिनमुदनवधदुधधपधारीकवानेकविधाविधोतितान्तः करणैः कविभिरुपाल्य-मानेन... कुमतितृणजालसमाच्छादित वेदवनमार्ग विलोकनाय समुदीपितसकलदहन-ज्वाला जालेन ... पण्डितजगन्नाथेन[२] ।'

१- सं०सा०का इति०--पं० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३१७

२- पं० का०सं० --डा० आर्येन्द्र शर्मा, आसफविलास पृष्ठ ८५

रसगंगाधर में की हुई अपनी इस प्रतिज्ञा को इस रचना में जितने भी उदाहरण होंगे वे स्वत: निर्मित होंगे--पूर्णरूप से निभाया है।[1]

इनकी विद्वत्ता से ही आकृष्ट होकर शाहजहां ने इन्हें 'पण्डितराज' एवं 'राय' पदवी से विभूषित किया था -- 'श्रीमत्सार्वभौमशाहिजहानप्रसादाधिगतपण्डितराजपदवीविराजितेन तैलंगकुलावतंसेन'[2]।

इस कवि के चार आश्रयदाता थे -- जहांगीर(१६०५-१६२७ई०), शाहजहां (१६२८-१६५८), आसफखां (१६४१ ई० में मरा),उदयपुर के जगत्सिंह (१६२८-१६५२ ई०) और कामरूप के (आसाम के) राजा प्राणनारायण (१६३३-६६) थे। शाहजहां का आश्रय ग्रहण करने के पहले कवि ने जगत्सिंह का आश्रय लिया था अत: वहां 'जगदाभरण' नामक काव्य की रचना की, शाहजहां के दरबार में 'आसफविलास' ,'रसगंगाधर' और 'चित्रमीमांसा' की रचना की, प्राणनारायण का आश्रय लेकर 'प्राणाभरण' नामक काव्य की रचना की।

आसफविलास में शाहजहां और उसके बहनोई आसफखां का वर्णन है। पी०वी० काणे[3] तथा एस०एन० दास गुप्त[4] इस रचना को आसफ खां की मृत्यु पर लिखी हुई बताते हैं।

यह गद्य-कृति है। इस कृति को रचकर वह गद्य-रचना के क्षेत्र में नवीनता ले आए हैं।

इनका 'यमुना वर्णन' भी गद्य-काव्य बताया गया है किन्तु वह अभी प्राप्य नहीं है। इसके कतिपय अंश ही रसगंगाधर में उपलब्ध होते हैं।

इन रचनाओं के अतिरिक्त इनकी रचनायें यमुना वर्णन चम्पू, रतिमन्मथ नाटक, वसुमती-परिणय नाटक, पीयूष-लहरी, अमृत लहरी,

---

१- रसगंगाधर--चन्द्रिका टीका, चौखम्भा० पृष्ठ ६
२- पं०का०सं० डा० आर्येन्द्रशर्मा आसफविलास पृष्ठ ८५
३- ,, ,, ,, पृष्ठ ४
४- हि० आफ सं० लि०--एस०एन०दास गुप्त और एस०के० डे पृष्ठ५६६

सुधा लहरी, करुणा लहरी, लक्ष्मीलहरी, भामिनीविलास (जिसके अन्दर चार विलास हैं -- प्रास्ताविक विलास, शृंगारविलास, करुणविलास और शान्त विलास), अश्वधाटीकाव्य, (काव्यमाला नामक मुंबई की मासिक पुस्तक में छपाई गई है[1]) यमुनावर्णन चम्पू, रतिकान्मथ नाटक तथा मधुमती परिणय नाटक काव्य ग्रन्थ अभी अप्राप्य हैं।

इनके आश्रयदाताओं का समय १७ वीं शताब्दी है अतः इनका भी समय सत्रहवीं शताब्दी माना जायगा। आर्येन्द्र शर्मा का कथन है कि जगन्नाथ ने कुछ वर्ष आगरा के जहांगीर के यहां व्यतीत किए। उनकी मृत्यु के पश्चात् ये उदयपुर के राजा जगत्सिंह के यहां चले गए और वहां उनके गुण गाए। जब आगरे की व्यवस्था ठीक हो गई और शाहजहां राजा हुआ तो पुनः वापस आ गए और उनकी मृत्यु पर्यन्त वहीं रहे। १६५८ ई० के लगभग प्राणनारायण के दरबार में गए। प्राणनारायण के भूटान भाग जाने पर जगन्नाथ को वहां का भी दरबार छोड़ना पड़ा[2]।

इन सब आधारों पर डा० आर्येन्द्र शर्मा इनका समय १५६०-१६७० तक बताते हैं[3]।

इतिहास में शाहजहां का समय निश्चित होने के कारण इनके सत्रहवीं शताब्दी के होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता है।

-0-

१- भामिनीविलास --सं० हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ १३

२- पं० का० सं० डा० आर्येन्द्र शर्मा पृष्ठ ६-१०

३- ,, ,, ,, पृष्ठ १०

द्वितीय- भाग

प्रथम अध्याय

उत्तरकालीन गद्य-काव्यों में कथावस्तु का स्वरूप

उत्तरकालीन गद्य-काव्यों में कथावस्तु का स्वरूप

प्राचीन गद्य-काव्य का कथावस्तु या तो ऐतिहासिक होता था या काल्पनिक होता था । उसमें शृंगार-रस की प्रधानता होती थी, नायक उच्च कुलीन या राजवंशी होता था, नायिका भी वैसी ही होती थी । अर्वाचीन गद्य-काव्यों में कोई इस प्रकार के नियम का पालन करना आवश्यक न था । तिलकमंजरी, गद्य-चिन्तामणि, वेमभूपालचरित, रामकथा और आश्चर्यचिकास नामक गद्य-काव्यों के नायक यद्यपि राजवंशी हैं किन्तु तिलकमंजरी, वेमभूपालचरित तथा रामकथा को छोड़कर उनकी नायिका ऐसे वंश से सम्बन्धित नहीं है । गद्य-चिन्तामणि में कवि ने नायक के आठ विवाह कराए हैं उनमें से कुछ कन्याएं राजाओं की, कुछ गोप की और कुछ वैश्य की हैं । भोज की `शृंगारमंजरी कथा` की नायिका वेश्या है । `आश्चर्यचिकास` में कोई नायिका है ही नहीं । अत: कवि के इस दृष्टिकोण के बदलने से इन गद्य-कवियों के काव्यों की कथावस्तु में पर्याप्त अन्तर आ गया ।

प्राचीन गद्य-काव्यों में किसी धर्म के प्रति विशेष पक्षपात नहीं दिखायी देता है किन्तु `तिलकमंजरी` तथा `गद्यचिन्तामणि` में सर्वत्र जैन धर्म की छाप परिलक्षित होती है । संसार की नि:सारता, सुख-दु:ख, कर्म-बन्ध, त्रिरत्न, तपस्याओं की निन्दा आदि का सविस्तर विवेचन इन दोनों काव्यों में मिलेगा । इस प्रकार इन दोनों गद्य-काव्यों में कवियों ने अपने धर्म की प्रशंसा की है ।

`तिलकमंजरी` में जैन धर्म का विशिष्ट वर्णन होते हुए भी यह बाण की कादम्बरी के अधिक समीप है । इसकी कहानियां विद्याधरों से सम्बन्धित हैं ।

`गद्य चिन्तामणि` केवल शैली की दृष्टि से बाण से समानता रखती है । उसमें एक-दो कहानियां ही विद्याधर से सम्बन्धित हैं ।

`वेमभूपालचरित` की रचना वामनभट्ट बाण ने कवि बाण के बढ़ते हुए यश को कम करने के लिए की थी । उन्होंने अपने को बाण का अवतार माना है । अत: कथावस्तु के प्रस्तुत करने का ढंग यदि बाण से काफी मिलता है

तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है । इन्होंने इसमें राजा प्रोत्ल और अनन्ता की कहानी तथा उनसे उत्पन्न हुए वेम-वंश का वर्णन किया है । वेमभूप को नायक बनाकर उसकी दिग्विजय का वर्णन किया है जो कलापूर्ण है ।

शृंगार-रस की दृष्टि से बाण तथा इनमें पर्याप्त अन्तर हो गया है । बाण ने नायक-नायिका (चन्द्रापीड और कादम्बरी) तथा उपनायक-उपनायिका (पुण्डरीक और महाश्वेता) दोनों के ही प्रेम का वर्णन किया है किन्तु वामन भट्ट बाण ने केवल उपनायक और उपनायिका के बीच ही प्रेम व्यापारों का चित्रण किया है जब कि नायक की वीरता और तेजस्विता का वर्णन करके वीर-रस का ही चित्रण किया है ।

भोज की `शृंगारमंजरी कथा` की कथा बिलकुल ही भिन्न है । इस काव्य में वेश्या-वृत्ति का सजीव चित्र खींचकर सामाजिक स्थिति पर विशेष प्रकाश डाला गया है । यद्यपि `दशकुमार चरित` में भी रागमंजरी और काममंजरी नामक दो वेश्याओं, उनकी मां का वर्णन एवं उन सब की कुटिल चालों का विशद वर्णन किया गया है किन्तु `दशकुमारचरित` तथा शृंगारमंजरी दोनों की कथावस्तु उद्देश्य-भिन्न होने से पृथक्-पृथक् हो जाती है । `दशकुमार-चरित` में सभी राजकुमार अपनी आप बीती सुनाते हैं, उनमें से एक राजकुमार वेश्याओं की चालों तथा अपने द्वारा ठीक मार्ग पर ले आने के उपायों का वर्णन करता है । इसी सिलसिले में कुछ धूर्तों, धूर्ताओं, दूतियों तथा कुट्टिनियों का भी उल्लेख है । इस प्रकार वहां वर्णन अंग रूप में आया है । `शृंगारमंजरी कथा` में इस वर्णन को प्रमुख स्थान दिया गया है । उसमें इन्हीं का सविस्तर और रोचक वर्णन किया गया है ।

`आसफविलास` बाण के `हर्षचरित` की भांति अपने आश्रयदाता आसफखां की प्रशंसा में लिखा हुआ काव्य है । उसमें कथावस्तु सम्बन्धी पुरानी मान्यताओं--नायक के जन्म में दैवी-कृपा, शिक्षा, दिग्विजय यात्रा, यात्रा के बीच किसी वन में पहुंचकर कन्या को देखना और उस पर आसक्त होना, विरहावस्था आदि का वर्णन तथा सूर्यास्त, सूर्योदय आदि का वर्णन करना -- को स्थान नहीं दिया गया है । आश्चर्य की बात है कि मुगल राजाओं का युग विलास का युग था किन्तु कवि ने अपने काव्य में कोई भी

नायिका नहीं रखा और उसमें कवि ने शृंगार-रस को प्रमुख स्थान देना पसन्द नहीं किया ।

`रामचरित` की कथावस्तु रामायण से ली गयी है । `रामचरित` की कथावस्तु के प्रस्तुत करने का ढंग आकर्षक नहीं है । कहीं-कहीं पर काव्य प्रतिभा का परिचय होता है । यत्र तत्र उसमें कवि ने कथावस्तु में परिवर्तन भी किया है ।

काल्पनिक कथाओं को ऐतिहासिक रूप देकर चित्रित करने की पद्धति इन कवियों की अपनी थी । `तिलकमंजरी` की कथा बिलकुल काल्पनिक है किन्तु उसमें मेघवाहन अयोध्या का राजा बताया गया है जिसका पुत्र हरिवाहन हुआ , सिंहलद्वीप की रंगशाला नामक नगरी के राजा चन्द्रकेतु का पुत्र समरकेतु बताया गया है और कांची नरेश कुसुमशेखर की पुत्री मलयसुन्दरी बताई गई है । इसमें अयोध्या-नरेश और कांची नरेश के युद्ध का भी वर्णन है । `गद्य चिन्तामणि` में हेमांगद नामक जनपद (जम्बूद्वीप के दक्षिण में) की राजधानी राजपुरी का राजा सत्यंधर था जिसका पुत्र जीवंधर हुआ । `शृंगारमंजरी कथा` का नायक स्वयं भोज है जो सब कहानी विषमशीला के मुख से कहलाता है ।

इस प्रकार अर्वाचीन गद्य-काव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक,काल्पनिक तथा विविध धर्मों,वेश्याओं तथा रामायण से सम्बन्धित है ।

शृंगार मंजरी कथा की कथावस्तु

`शृंगारमंजरी कथा` नामक गद्य-काव्य की कथावस्तु सब गद्य-काव्यों की कथावस्तु से भिन्न है । इसमें वेश्याओं के चरित्र का सविस्तर वर्णन है । इसकी नायिका भी वेश्याओं में अग्रणी विषमशीला की पुत्री शृंगारमंजरी है । उसकी माँ अपनी वृत्ति के अनुकूल उसे शिक्षा देती है । पुरुषों का व्यक्तित्व कितने प्रकार का होता है ? उनसे कैसे सावधान रहना चाहिए ? राग(प्रेम) कितने प्रकार का होता है ? यह पुरुषों की मनोवृत्ति समझने में किस प्रकार सहायक होता है? आदि को कहानी द्वारा आकर्षक बनाकर उनको विशद

व्याख्या की है । अतः उस काव्य की छोटी-छोटी सभी कहानियों में प्रेम की चर्चा है ।

रविदत्त की कथा में कुण्डिनपुर नगर निवासी रविदत्त पिता के द्वारा काम विकारों से सावधान किये जाने पर भी विनयवती नामक वेश्या पर मोहित हो जाता है किन्तु अधीर नहीं होता । विनयवती की सखी संग्रामिका उसके प्रेम के प्रस्ताव को रविदत्त के सम्मुख रखती है और रविदत्त पहले अपने पिता की शिक्षाओं का स्मरण करता है किन्तु अन्त में उसे सहर्ष स्वीकार कर लेता है । वेश्या होने के कारण विनयवती कृत्रिम प्रेम दिखा कर उसके सारे धन का अपहरण कर लेती है और अन्त में उसका तिरस्कार करने लगती है किन्तु रविदत्त के ऊपर कुछ भी असर नहीं होता है[१] ।

विक्रमसिंह की कथा में ताम्रलिप्ति नगर का विक्रमसिंह नामक राजपुत्र वहाँ की निवासिनी दंष्ट्रा नामक वेश्या की पुत्री मालतिका पर मोहित होता है और उसके पास अपना प्रेम-प्रस्ताव प्रकट करने के लिए अनुचर को भेजता है । अनुचर से यह मालूम हो जाने पर भी कि उसे मालतिका से मिलने के लिए कुछ दिन प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, वह प्रतीक्षा करता है । मालतिका भी उसका सारा धन लूट कर तिरस्कार करती है किन्तु वह निरन्तर उसके पास जाता रहता है[२] ।

माधव की कथा में सिंहलद्वीप का माधव नामक व्यापारी विदिशा में आ कर भुजंग वागुरा नामक वेश्या की पुत्री कुवलयावली पर आसक्त होता है और उसके यहाँ जाने लगता है । अपना सारा धन लुटता हुआ देखकर वह वहां से जाने की सोचता है । कुवलयावली उसके वियोग की असह्यता बताकर

१- प्रथमकथानिका

२- द्वितीय कथानिका

उसके सन्मुख रोने का अभिनय करती है किन्तु इससे माधव विचलित नहीं होता है। अन्त में उसे कुछ दूर छोड़ने के लिए भुजंगवागुरा तथा कुवलयावली दोनों जाती हैं। भुजंगवागुरा माधव से स्मृति-चिह्न के रूप में उसका परिधान मांगती है। माधव उसको एकान्त स्थल में देने का आश्वासन देकर उस स्थल पर ले जाकर उसकी नाक,कान काट देता है[1]।

सुर धर्म की कथा में हस्तिग्राम नामक बस्ती का निवासी सुरधर्म नामक ब्राह्मण अपनी दरिद्रता से ऊब कर समुद्र की उपासना करके उससे दिव्य-रत्न प्राप्त करता है। उस दिव्य-रत्न को अपनी जांघ में रख कर पागल का सा अभिनय करने लगता है। वहां की वेश्या देवदत्ता उसके भाव को समझ जाती है और प्रेम-पाश में बांधने का प्रयत्न करती है। सुरधर्म वहां भी पागल बना रहता है। कुछ दिनों बाद देवदत्ता उसे घर जाने की अनुमति देकर उसे फांसने के लिए कपट-मृत्यु की चाल चलती है, जिसमें देवदत्ता की मृत्यु का कारण सुरधर्म को बताया जाता है। जब यह सूचना मार्ग में जाते हुए सुरधर्म को देवदत्ता की सखियों से मिलती है तो वह देवदत्ता के शोक से व्याकुल होकर तुरन्त लौट पड़ता है और अपना दिव्य रत्न मृत (जो वास्तव में मरी नहीं है) देवदत्ता के माता-पिता को सौंप देता है। दिव्य रत्न पाते ही वह उठ बैठती है। कुछ दिन उसके साथ रह कर वह उसे निकाल देती है[2]।

लावण्यसुन्दरी कथा में अहिच्छत्र नामक नगर का राजा वज्रमुकुट लावण्यसुन्दरी के सौंदर्य पर मुग्ध होकर उसके पति तिलक चूड़ाक को परेशान करने के लिए बहुत बड़ा दण्ड देता है। पति को उस दण्ड से मुक्त करने के लिए लावण्यसुन्दरी वेश्या-वृत्ति अपना कर उज्जैनी के राजा विक्रमसिंह पर अपना प्रेम-पाश फेंकती है। राजा उस पर मोहित हो जाता है। उसका मंत्री भट्टमातृगुप्त उसे उस प्रेम-जाल में न फंसने के लिए सावधान करता है और राजा स्वयं उसके कथनानुसार लावण्यसुन्दरी की कई प्रकार से प्रेम-परीक्षा लेता है। लावण्य-सुन्दरी प्रेम-परीक्षाओं से ऊब कर आत्महत्या

१- तृतीय कथानिका

२- चौथी कथा।

कर लेती है । राजा उसके शरीर को [illegible] के मंदिर में ले जाकर स्वयं मरने को उद्यत होता है किन्तु देवी उसे इस कार्य से रोक कर लावण्यसुन्दरी को भी जीवित कर देती है । अन्त में लावण्यसुन्दरी विक्रमसिंह को अत्यधिक प्रसन्न देख कर अपना सारा रहस्य खोल देती है और उससे हाथी आदि लेकर अपने पति को दण्ड-विधान से मुक्त करती है[1] ।

कुट्टनीवंचन की कथा में विन्ध्याटवी पार करते समय मार्ग में मिली कपोतिका को खाने से सोमदत्त धनवान और मिले कपोत को खाने से उसका भाई मगध का राजा बन जाता है । सोमदत्त कांची पहुंचकर मकरदंष्ट्रा की पुत्री कर्पूरिका पर आसक्त हो जाता है । उसके अपार धन को देखकर मां-बेटी उसके मूल स्रोत के पता लगाने का प्रयत्न करती हैं । कर्पूरिका के बहुत अनुरोध करने पर सोमदत्त उस धन का सारा रहस्य खोल देता है । कर्पूरिका की मां उसके भोजन में वमनीय पदार्थ मिला कर उसके मुंह से निकली कपोतिका को स्वयं ग्रहण कर लेती है और उसको अपने घर से निकाल देती है । अन्त में सोमदत्त भाई का आश्रय लेकर कृत्रिम सिद्धि का बहाना करके कर्पूरिका और उसकी मां को धोखा देकर अपनी खोई तथा उन दोनों के द्वारा स्वार्जित की हुई धन-राशि को पाकर उन्हें समुचित दण्ड देता है[2] ।

स्वयमनुराग की कथा में पुण्ड्रवर्द्धन नामक नगर का निवासी रत्नदत्त नामक व्यापारी मान्यखेट के राजा की सेवा में करने की इच्छा से अपने अनुचर के साथ चल देता है । उसके विदिशा नगरी में पहुंचने पर वहां की वेश्या लावण्यसुन्दरी उसके सौंदर्य पर मुग्ध हो जाती है और अपनी सखी चतुरिका को भेजकर उसे अपने पास बुलाती है और वेश्या-वृत्ति के प्रतिकूल सच्चे प्रेम का परिचय देती है । वह रत्नदत्त के साथ आगे भी जाती है । इन दोनों का अनुसरण लावण्यसुन्दरी की मां 'ढोण्ढा' भी करती है । किन्तु 'पूर्णपथक'

१- छठीं कथा०

२- सातवीं कथा०

नामक नगर के राजा धूरधर्म के पास आ कर रत्नदत्त पर कन्या के भगाये जाने का झूठा आरोप लगाता है। राजा अपने मन्त्री आदि को भेज कर तथा स्वयं उस स्थल में जाकर घटना की सत्यता देखता है (उसके बाद कुछ अंश अनुपलब्ध है जिससे कथा अवरुद्ध हो गयी है) (मान्यखेट पहुंचकर) रत्नदत्त को कुछ दिनों के लिए लावण्यसुन्दरी को छोड़कर जाना पड़ता है। लौट कर आने पर वह लावण्यसुन्दरी को गर्भाधिक्य में देखकर उसे पत्नी रूप में नहीं स्वीकार करता अपितु उसे मां के रूप में देखता है[१]।

उभयानुराग की कथा में अशोकवती और इड्डक के सच्चे प्रेम को तोड़ने के लिए उदयपुर का राजा समरसिंह अपने प्रिय मित्र सुन्दरक को चालाकता से चाल चलता है। सुन्दरक अशोकवती के साथ रात में रहकर उसके चरित्र को कलंकित करता है। इड्डक भी उसके चरित्र को शुद्ध दिखाने के लिए अपने मरने की झूठी सूचना अशोकवती के पास भेजता है जिसको सुनकर वह मर जाती है। इस पर सुन्दरक अपने कर्मों पर पश्चात्ताप करता हुआ आत्महत्या कर लेता है। अशोकवती को मृत देखकर इड्डक भी मर जाता है। राजा भी अत्यन्त दुःखी होकर प्राण त्यागने को उद्यत होता है किन्तु देवी प्रकट होकर उसे रोकती है और मृतकों को जीवित कर देती है[२]।

सर्प की कथा में कौशाम्बी नगरी का विनयधर अनंगवती नामक कन्या पर मोहित होता है। सब धन के खर्च हो जाने पर कुट्टनी उसका तिरस्कार करना शुरू कर देती है। इसका परिणाम यह होता है कि वह रुपया उधार लेकर तथा मृत सर्प को लेकर अनंगवती के यहां पहुंचता है। रात के समय मृत-सांप को कुट्टनी के ऊपर डाल कर नाखून से उसकी नाक काट देता है जिससे सांप का काटा हुआ लगे। कुट्टनी के चिल्लाने पर तथा रोशनी के करने पर वहां सांप दिखायी देता है। उसी बीच विनयधर भी उस स्थल पर

१- आठवीं कथानिका

२- नवमी कथानिका

पहुंचता है और विष न फैलने की भूमिका रच कर उसकी ओठ सहित नाक काट देता है[1]।

मलय सुन्दरी की कथा में पांचाल देश के राजा महेन्द्रपाल का प्रिय सामन्त प्रतापसिंह ढोण्ढा नामक कुट्टनी की पुत्री मलयसुन्दरी से अनन्य प्रेम करता है। मलय सुन्दरी के द्वारा परिहास में यह कहने पर कि यह बालक जनता है-- रुष्ट होकर महेन्द्रपाल उसको बुरी तरह से पीटता है। मलयसुंदरी की मां के द्वारा राजा से विनती किए जाने पर प्रतापसिंह निर्भीक होकर मलयसुन्दरी के पीटने का कारण बता देता है[2]।

इन कहानियों के विपरीत देवदत्ता और मूलदेव की कथाओं में प्रेम-व्यापार का चित्रण नहीं है।

देवदत्ता की कथा में उसके द्वारा की गई उज्जैनी के राजा विक्रमादित्य की चाटुकारिता से प्रसन्न होकर उसका देवदत्ता को अपार धन-राशि देना वर्णित है[3] और मूलदेव की कथा में स्त्रियों के प्रति कुविचार रखने पर भी धूर्त मूलदेव अवन्ति के राजा विक्रमसिंह के अनुरोध करने से विवाह कर लेता है। किन्तु कुछ समय पश्चात् मूलदेव की स्त्री-विषयक कुविचार यथार्थ सिद्ध होते हैं। क्योंकि वह अपनी पत्नी को दूसरे के साथ और राजा की महिषी को महावत के साथ देखता है। इन दोनों की सूचना वह राजा को देता है और राजा उन दोनों को समुचित दण्ड देता है[4]।

धमारक की कथा में बहुत से अंश अनुपलब्ध होने के कारण उसकी कथा के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है[5]।

इन कहानियों का उद्देश्य कवि ने स्वयं ही अपने काव्य के अन्त में स्पष्ट कर दिया है जिसमें बताया गया है कि विषमशीला अपनी पुत्री शृंगारमंजरी को कहानियों द्वारा इसलिए उपदेश दे रही है कि वह किसी प्रकार

१- दसवीं कथानिका
२- ग्यारहवीं कथानिका
३- पांचवीं कथानिका
४- तेरहवीं कथानिका
५- बारहवीं कथानिका

विटों, धूर्तों, कामुकों, कपटी, भुजंगों, रागियों एवं विदग्धों से किसी प्रकार से धोखा न खाए[1]।

यद्यपि कवि ने अपने इस काव्य में 'राग' की चर्चा की है, प्रारम्भ में उन्होंने बारह प्रकार के --१- नीलीराग, २- रीतिराग, ३-अक्षोरीराग, ४- मंजिष्ठराग, ५- कषायराग, ६- नक्तराग, ७- कुसुम्भराग, ८-लाक्षाराग, ९- कर्दमराग, १०- हरिद्राराग, ११- रोचनाराग और १२- काम्पिल्ल राग बताए हैं तथा उनके चार वर्ग --

(१)नीलीराग वर्ग(रीति और अक्षोरीराग इसी में)

(२)मंजिष्ठवर्ग (कषाय और नक्त राग इसी में)

(३)कुसुम्भराग वर्ग(लाक्षाराग और कर्दम राग इसी में)

(४)हरिद्राराग वर्ग (रोचनाराग और काम्पिल्लराग इसी में)

किए हैं[2] और उपर्युक्त सभी कहानियों को इन रागों से सम्बन्धित किया है, इन रागों के अतिरिक्त मूलदेव की कथा में श्रुतिराग,दृष्टिराग, और संयोग-जन्य-राग की चर्चा की है[3], और वह स्वयं शृंगार-रस को सब कुछ मानते हैं, किन्तु इस काव्य में सहृदय इस रस का आस्वादन नहीं ले पाता है। इस काव्य में यह कवि का दोष नहीं कहा जा सकता है क्योंकि कवि ने यहां वेश्याओं का प्रेम दिखाया है जो सर्वदा एक निष्ठ होता है। कुछेक कहानियों में यद्यपि उनका सच्चा प्रेम दिखाया है किन्तु किसी-न-किसी कारणवश उनका स्थिर न रह सकना भी कवि ने दिखा दिया है।

इस काव्य में मुख्यरूप से वेश्याओं के तीन रूप मिलते हैं --

१-धनाढ्य का अपहरण करके उन्हें निकालना,

२-वेश्याओं का स्वयं धोखा खाना, और

३- वेश्याओं का सच्चा प्रेम।

इस प्रकार इस काव्य में वेश्याओं के जीवन-चरित्र को ही प्रधानता है।

१- शृंगारमंजरीकथा पृष्ठ ८९
२- ,, पृष्ठ १८-१९
३- ,, पृष्ठ ८४

इसकी कथावस्तु को देखने से प्रतीत होता है कि कवि भोज अपने पूर्ववर्ती कवि सुबन्धु एवं बाण से प्रभावित न हो कर कवि दण्डी से हैं। दण्डी के 'दशकुमारचरितम्' में जैसे दस राजकुमारों का चरित्र वर्णित है वैसे ही इस काव्य में वेश्याओं का चरित्र वर्णित है। किन्तु भोज ने अपने काव्य के शीर्षक का नाम 'वेश्या-चरित' अथवा 'सप्तदशवेश्या-चरित' आदि न देकर 'श्रृंगारमंजरी कथा' ही दिया है। क्योंकि कवि ने श्रृंगार मञ्जरी को अपने काव्य की नायिका माना है, इसके अन्तर्गत आयी हुई सारी कहानियां उसी को सुनाई गई हैं। अतः कवि ने अपने काव्य के शीर्षक का नाम नायिका के नाम के आधार पर रखा है।

कथावस्तु के प्रस्तुत करने के ढंग में तथा शैली में भोज अवश्य बाण से प्रभावित हैं। हर्षचरित में जिस प्रकार बन्धुओं के अनुरोध से बाण ने उस काव्य की रचना की है उसी प्रकार राजा भोज ने मंत्रियों के अनुरोध से 'श्रृंगारमंजरी कथा' नामक गद्य-काव्य की रचना की है। अपनी धारा नगरी के वर्णन में उन्होंने विशेष रुचि दिखायी है किन्तु जब वहां के राजा के वर्णन (भोजराजा) का प्रसंग आया तो राजा ने उसका स्वयं वर्णन न करके यन्त्र-पुत्रिका के मुख से करवाया है, यद्यपि काव्य में लिखा उन्होंने ही है। वर्ण्य विषयों के वर्णन करने की विधि सुबन्धु और बाण जैसे प्राचीन गद्य-कवियों की भांति है। उदाहरणार्थ राजा भोज के वर्णन में आधीन राजाओं के झुकने एवं शत्रुओं की स्त्रियों के विलाप करने की कल्पना इस काव्य में भी देखने को मिलती है[1]।

बाण की तरह उन्होंने भी विन्ध्याटवी के सौम्य और भयावह दोनों रूपों का वर्णन किया है[2]। यह दूसरी बात है कि बाण के वर्णन-प्रसंग में अक्लिष्ट श्लिष्टोपमा होने के कारण समासबहुला शैली होते हुए भी दुरूहता नहीं आयी है किन्तु भोज का यह वर्णन क्लिष्ट हो गया है।

बाण के इन्द्रायुध तथा सुबन्धु के मनोजव घोड़े की भांति उन्होंने भी अश्व[3] का वर्णन किया है किन्तु यह वर्णन न कवि की सूक्ष्मदृष्टि का

१- श्रृंगार० पृष्ठ ७-८
२- ,, पृष्ठ ५०-५२
३- ,, पृष्ठ २७

परिलक्षित है और न नाटकीय ही । बाण में एक-एक अंग का अनुकूल होने से उनके नखशिख-वर्णन में विशिष्टता आ गयी है ।

भोज का 'रिपुदलन'[2] नामक हाथी का वर्णन अथवा बाण के 'दर्पशात' हाथी के वर्णन के साथ कल्पना की दृष्टि से भी समता रखता है । कवि ने उसके प्रत्येक स्वरूप को लेकर अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है ।

बाण ने शबरसेनापति का सविस्तार वर्णन किया है और भोज ने भिल्लपाटनी के प्रसंग में संक्षेप में किन्तु उसकी स्वाभाविक आकृति का सजीव चित्रण किया है[3] ।

'रविदत्त कथानिका' में बाण की भाँति उन्होंने भी जीवन की प्रभुत निन्दा की है किन्तु विस्तार के साथ नहीं ।

प्राचीन कवियों की प्रशंसा करने की परिपाटी का उन्होंने भी अनुकरण किया है किन्तु उसको प्रस्तुत करने का ढंग नवीन है । अपनी ही राजधानी के वर्णन-प्रसंग में राजा भोज को संकोच होता है तो उनके मित्र उस सम्बन्ध में दण्डी के मत -- 'स्वगुणाविष्क्रिया दोषो नात्र भूतार्थशंसिन:' को उद्धृत करते हैं, साथ ही अपनी प्रशंसा करने वाले वाल्मीकि, पराशर, व्यास, गुणाढ्य, भास, भवभूति, बाण आदि कवियों का नाम आदर के साथ लेते हैं --

> तथाहि मुनिभिरपि वाल्मीकि-पराशर-व्यासादिभि,
> कविभिरपि गुणाढ्य-भास-भवभूति-बाणप्रभृतिभिरात्मगुणाविष्करणमक्रियत ।[4]

इसके अतिरिक्त कवि ने इन कवियों की प्रशंसा स्वतंत्र रूप से भी की है --

> 'देवोऽप्यखिलजनता सुबन्धु: शोभासौ गुणाढ्य:
> प्रशस्तगीर्वाण: ।[5]'

१- शृंगार० पृष्ठ ४६-४७
२- ,, पृष्ठ ५२-५३
३- ,, पृष्ठ २६
४- ,, पृष्ठ १
५- ,, पृष्ठ १

इस नवीनता के अतिरिक्त कथावस्तु के प्रस्तुत करने की पूर्वभूमिका में भी पूर्ववर्ती कवियों से भिन्नता होने के कारण नवीनता आ गई है। और गद्य-कवियों में इष्ट-देवाराधना, काव्य की उपास्यिका देवी सरस्वती की अभिवन्दना, साधु दुष्टों के स्वरूपों की विवेचना आदि का वर्णन पद्य-गद्य में संक्षेप तथा विस्तार के साथ मिलता है, उनमें से किसी का भी यहां वर्णन नहीं है। पद्य को तो कवि ने किसी भी रूप में स्थान नहीं दिया है। सीधे नगरी का सविस्तार वर्णन करके राजा का वर्णन किया है और वहां की विविध प्रकार की कलाओं के जीवन से संबंधित कहानियों को कहना शुरू कर दिया है।

इन कहानियों में यद्यपि उपदेश-वृत्ति की प्रधानता है किन्तु ये कहानियां पंचतंत्र, हितोपदेश आदि की भांति नहीं हैं, क्योंकि कवि ने कलात्मक वर्णन में अपनी विशेष रुचि दिखायी है।

कवि ने अपनी कथावस्तु में नायिका और उसकी मां के नख-शिख-वर्णन के अतिरिक्त प्राकृतिक दृश्यों का भी अलंकारिक वर्णन किया है।

तिलकमंजरी की कथावस्तु--

तिलकमंजरी में कोई एक कथावस्तु नहीं है। इसमें कई कहानियों का सम्मिश्रण है। जिस प्रकार `बृहत्कथामंजरी` तथा `कथासरित्सागर` आदि में इधर-उधर की कहानियां भिन्न-भिन्न पात्र कहते हैं उसी प्रकार इसमें भी विभिन्न पात्रों द्वारा कही हुई कहानियां हैं। मुख्यरूप से इस काव्य में दो कथाएं -- हरिवाहन-तिलकमंजरी तथा समरकेतु-मलयसुन्दरी की हैं। इन दोनों कथाओं में उनके पूर्व-जन्मों का वृत्तान्त भी दिया गया है।

हरिवाहन और तिलकमंजरी पूर्वजन्म में क्रमशः ज्वलनप्रभ और प्रियंगुसुन्दरी थे। ज्वलनप्रभ ने अयोध्या-नरेश मेघवाहन के घर जन्म लिया और उसका नाम हरिवाहन रक्खा गया तथा प्रियंगुसुन्दरी ने रथनूपुर चक्रवाल नामक नगर के राजा चक्रसेन के यहां जन्म लिया और उसका नाम तिलकमंजरी रक्खा गया।

एक बार हरिवाहन अपने मित्रों के साथ `मत्तमण्डपक` में बैठा था वहीं एक विद्याधरपुत्र गन्धर्वक ने तिलकमंजरी के चित्र से अंकित चित्रपट

को लाकर राजकुमार हरिवाहन को दिखाया । राजकुमार चित्रपट पर अंकित उस कन्या की रूपमाधुरी पर मोहित हो गया । उस चित्र की प्रशंसा करते हुए उसने उस चित्र के साथ पुरुष-रत्न को क्यों गन्धर्वक को कहा ? । गन्धर्वक ने हरिवाहन का ही चित्र उस चित्रपट में कन्या के समीप खींच दिया जिससे हरिवाहन के हृदय में कन्या के लिए और भी प्रेम बढ़ गया । गन्धर्वक के वहां से चले जाने के पश्चात् उसके पुन: आगमन की प्रतीक्षा हरिवाहन बड़ी उत्कण्ठा से करने लगा ।

एक दिन हरिवाहन मन को बहलाने की इच्छा से कामरूप-प्रदेश की ओर बढ़ा । वहां पर एक हाथी को ("चित्रमाय" नामक विद्याधर ने हरिवाहन को विद्याधर लोक में ले जाने के लिए ही हाथी का रूप धरा था)वश में करने के लिए जैसे ही हरिवाहन उस पर बैठे वैसे ही वह उड़ गया ।हरिवाहन ने जब उसको मारने के लिए तलवार निकाली तो उस हाथी ने उसे अदृष्टपारा नामक दिव्य सरोवर में गिरा दिया जो रत्नपुर चक्रवाल की सीमा पर था ।

वहां पर पहुंच कर हरिवाहन की सर्वप्रथम भेंट यद्यपि तिलकमंजरी से हुई थी किन्तु हरिवाहन उसे उसके वहां से चले जाने के पश्चात् ही उसे पहिचान पाया था और तिलकमंजरी स्वाभाविक लज्जावश हरिवाहन द्वारा मार्ग के सम्बन्ध में पूछे जाने पर भी नहीं बोली । किन्तु उस घटना से यह अवश्य हुआ कि तिलकमंजरी भी हरिवाहन के प्रति आकृष्ट हो गई ।

तिलकमंजरी के चले जाने के पश्चात् हरिवाहन की वहां पर तपस्या करती हुई मलयसुन्दरी के साथ घनिष्टता हो गई । मलयसुन्दरी की सखी तिलकमंजरी थी । उसने मध्यस्थ बनकर हरिवाहन से तिलकमंजरी को मिलाया ।

वहां पर कुछ दिन रह कर बन्धु-वर्ग एवं अपने प्रियमित्र समरकेतु को देखने की इच्छा से हरिवाहन "चित्रमाय" के साथ अपनी राजधानी आया वहां पर समरकेतु को न देखकर उसको ढूंढने के लिए निकला । मार्ग में लक्ष्मी देवी की उपासना करके विद्याधर राज्य को प्राप्त कर विजयार्धगिरि का राजा बन गया तत्पश्चात् उसने तिलकमंजरी के साथ विवाह कर लिया ।

बाद में उसका प्रिय मित्र समरकेतु भी मिल गया ।

जिस प्रकार समरकेतु इस जन्म में हरिवाहन का मित्र था तथा मलयसुन्दरी तिलकमंजरी की सखी थी उसी प्रकार पूर्वजन्म में भी ये दोनों क्रमश: सुमालि और प्रियंवदा उन दोनों के मित्र थे । उन दोनों ने क्रमश: सिंहलद्वीप के राजा चन्द्रकेतु और कांची नरेश कुसुमशेखर के यहां जन्म लिया । एक बार अयोध्या-नरेश के यहां दण्डाधिपति वज्रायुध ने कुसुम शेखर के साथ लड़ाई छेड़ दी । कुसुम शेखर हारने लगा तो अपने मित्र चन्द्रकेतु को सहायतार्थ बुलाया । चन्द्रकेतु ने अपने पुत्र समरकेतु को सहायतार्थ भेज दिया । उधर कुसुम-शेखर ने संधि के रूप में अपनी कन्या मलयसुन्दरी को वज्रायुध को देना चाहा किन्तु उसकी कन्या मन-ही-मन समरकेतु को वर रूप में ग्रहण कर चुकी थी[1] । उसके सच्चे प्रेम को देखकर कुसुमशेखर ने इस प्रकार का इरादा छोड़ दिया और उसे 'प्रशान्त वैर' नामक आश्रम में भेज दिया । आश्रम में जाने के पहले मलयसुन्दरी की भेंट समरकेतु से हो गयी थी क्योंकि वह कुसुमशेखर की सहायता के लिए आ चुका था ।

आश्रम में कुछ दिन व्यतीत करने पर एक दिन कांची से आये आदमी से समरकेतु के साथ छिड़े युद्ध में कांची की हार सुनकर तथा अन्य राजाओं के

१- इन दोनों के प्रथम दृष्टिपात-प्रणय की घटना बड़ी अद्भुत है । विचित्र वीर्य (जो मलयसुन्दरी का नाना है, पर मलयसुन्दरी नहीं जानती है) के मनोरंजनार्थ विद्याधर एक रात को अन्य कन्याओं के साथ मलयसुन्दरी को भी ले आते हैं । मलयसुन्दरी की नृत्य-कला को देखकर तथा उसकी आकृति को देखकर विचित्रवीर्य को अपनी कन्या गन्धर्वदत्ता की याद आ जाती है जो नगरविप्लव में खो गई थी । मलयसुन्दरी से उसकी मां के सम्बन्ध में पूछ कर अपना सन्देह मिटा लेता है और तपनवेग को मलयसुन्दरी के घुमाने के लिए आदेश देता है । वह उसे अन्य कन्याओं के साथ समुद्र के जिनालय में ले जाता है वहां मलयसुन्दरी सुवेल पर्वत के दुष्ट सामंतों का दलन करने के लिए निकलते हुए समरकेतु को नाव पर बैठे हुए देखती है । वहीं से दोनों को एक-दूसरे के लिए प्रेम हो जाता है ।

प्राय समरकेतु की मृत्यु का अनुमान करके उसने आत्महत्या करने की इच्छा से किंपाक नामक विषैले फल को खा लिया । किन्तु दैववशात् वह बच गई और चेत होने पर उसने अपने को अच्छोदार नामक दिव्य सरोवर में पाया । पुनः मरने की इच्छा से जब वह सरोवर में कूदने को हुई तो उसने समरकेतु के हाथ का लिखा चिट्ठी देखा जिसमें समरकेतु ने अपने अयोध्या-नरेश के पास कुशलपूर्वक रहने की बात लिखी थी । इस पत्र को पाकर उसने मरने का इरादा छोड़ दिया और वहाँ रहकर तपस्विनी सा-सा जीवन व्यतीत करने लगी । वहाँ पर हरिवाहन से उसकी भेंट हुई । वहीं पर अपने प्रिय मित्र हरिवाहन को ढूढ़ता हुआ समरकेतु आया । जिस प्रकार मलयसुन्दरी ने हरिवाहन को तिलकमंजरी से मिलाया था उसी प्रकार हरिवाहन ने मलयसुंदरी को समरकेतु से मिलाया । तत्पश्चात् विचित्रवीर्य ने आकर उन दोनों का विवाह करा दिया ।

इस प्रकार काव्य की कथावस्तु और शीर्षक की दृष्टि से हरिवाहन को नायक तथा उसके मित्र समरकेतु को उपनायक माना जा सकता है । किन्तु अन्य कथाओं की भाँति यह उपनायक न नायक के किसी कार्य में बाधा डालता है और न नायक की प्रेयसी की प्राप्ति में किसी प्रकार सहायक बनता है । यह अवश्य है कि नायक का मित्र होने के कारण नायक के गायब होने पर वह सब कुछ त्याग कर उसे ढूढ़ने निकलता है और उधर नायक रत्नपुर चक्रवाल में तिलकमंजरी को पाकर बन्धुवर्ग को देखने की इच्छा से अपनी नगरी में पहुंच कर अपने मित्र समरकेतु को नहीं देखता है तो उसे ढूढ़ने निकलता है । ये दोनों कथाएं स्वतंत्ररूप से विकसित हुई हैं ।

समरकेतु और मलयसुन्दरी की कहानी के अतिरिक्त काव्य में अन्य कहानियाँ भी आयी हैं ।

१- गान्धर्वक की कथा--

गन्धर्वक नामक विद्याधर अपनी माँ चित्रलेखा की आज्ञा से (जो तिलकमंजरी की धात्री थी) तिलकमंजरी का चित्र लेकर हरिवाहन के पास जाता है वहाँ पर उस चित्र के साथ हरिवाहन का चित्र बनाकर जब कांची की ओर जाने लगता है तो मार्ग में किंपाक फल को खाने से मृतप्राय मलयसुंदरी

के प्रति किए गए उसकी सखी अथवा धात्री के विलाप को सुनकर अपने मित्र चित्रमाय के साथ वहाँ रुक जाता है । चित्रमाय से हरिवाहन को तिलकमंजरी के पास लाने के लिए कह कर स्वयं मलयसुन्दरी को लेकर दिव्य औषधि लाने के लिए आगे बढ़ता है तो महोदर नामक यक्ष सेनाधिपति उसे रोक देता है । गन्धर्वक पहले उससे विनती करता है किन्तु जब उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है तो वह कटु शब्द भी कहता है जिससे क्रुद्ध होकर यक्ष उसे शुक हो जाने का शाप देता है ।

शुक-योनि में भी अन्य पक्षियों से अलग रहकर गन्धर्वक हरिवाहन का उपकार करता है । मलयसुन्दरी के पास बैठे हरिवाहन की चिट्ठी उसके बिछुड़े बन्धु वर्ग के पास ले जाता है और वहां से पत्र का उत्तर लाता है । उसके उस शाप की मुक्ति 'निशीथ' नामक वस्त्र के स्पर्श से हो जाती है ।

वहीं गन्धर्वक हरिवाहन को ढूढ़ने में तत्पर समरकेतु को हरिवाहन के पास ले जाता है ।

२- चित्रमाय की कथा--

यह चित्रमाय गन्धर्वक का मित्र और उसका सहायक है । हरिवाहन को तिलकमंजरी के पास पहुंचाने के लिए हाथी का वेश धारण करके हरिवाहन को उड़ा ले जाता है । हरिवाहन के तलवार निकालने पर अपनी जीवन-रक्षा हेतु उसे सरोवर में पटक देता है ।

यह तिलकमंजरी का सेवक है । पुन: बन्धु-वर्ग को देखने की इच्छा होने पर हरिवाहन के साथ वहां भेजा जाता है । हरिवाहन के वहां से न वापस आने पर वह बड़ी कठिनाई से वापस आता है । तिलकमंजरी के पुन: हरिवाहन के खोज करने की आज्ञा मिलने पर जब वह नहीं सफल होता है तो वह अपने अन्य अनुचरों को लगा देता है ।

३- महोदर की कथा--

यह श्री का सेवक है । श्री ने उसे प्रियंवदा (मलयसुन्दरी) और प्रियंगु सुन्दरी (तिलकमंजरी) की रक्षा का भार सौंप रक्खा था । प्रथम दृष्टिपात-प्रणय के समय समुद्र में जब मलयसुन्दरी और समरकेतु आत्महत्या के

करने के उद्देश्य से कूदते हैं तो वह उन दोनों की रक्षा करता है । किन्तु अकस्मात् उन दोनों के गायब हो जाने से वह दुःखी हो जाता है । जब गन्धर्वक को मलयसुन्दरी के साथ देखता है तो वह उसके मार्ग का बाधक बन जाता है और अन्त में उसे शुक होने का शाप दे देता है ।

४-नाविक तारक की कथा--

यह तारक वणिक तथा राजा चन्द्रकेतु का प्रिय पात्र है । वह राजा की अनुमति से प्रियदर्शना के साथ प्रेम-विवाह कर लेता है । यह नाविक-समूह का स्वामी बना दिया जाता है । वह दुष्टों का दमन करने के लिए निकले हुए समरकेतु का सच्चा मित्र बन जाता है । उसको समुद्र-यात्रा में निरन्तर साथ रखता है । समुद्रयात्रा के समय मलयसुन्दरी और समरकेतु के बीच प्रेम उत्पन्न हो जाने पर तारक ही समरकेतु के प्रेम-प्रस्ताव को रखता है और उसे मलयसुन्दरी के सम्मुख भुकवाता है समरकेतु के समुद्र में कूदने पर वह भी उसमें कूद जाता है ।

५- गन्धर्वदत्ता की कथा --

गन्धर्वदत्ता की कहानी एक दुःखद कहानी है । उसका पिता विचित्रवीर्य 'पंचशैल' नामक द्वीप का राजा है । बचपन में उसके मामा उसे अपने पास ले अवश्य गए किन्तु नगर में विप्लव होने के कारण वह अपने बन्धुओं से बिछुड़ कर "प्रशान्तवैर" नामक आश्रम में पहुंचता है वहीं पर किसी कार्य से कांची नरेश कुसुमशेखर आता है और उसके साथ प्रेम-विवाह कर लेता है । उसी की कन्या मलयसुन्दरी होती है । कुसुमशेखर अपनी कन्या को वज्रायुध को सन्धि के रूप में देना चाहता है पर वह इस विषय में कुछ नहीं कहती । जब कुसुमशेखर इस विचार को छोड़ देता है तब वह अपनी पुत्री को शुभकामना से उसे प्रशान्तवैर नामक आश्रम में भेजने की सलाह देता है । अन्त में ज्योतिषियों की भविष्यवाणी के अनुसार गन्धर्वदत्ता अपनी पुत्री के विवाह के समय अपने बन्धुओं से मिल जाती है ।

६-विद्याधरराज्य-प्राप्ति की कथा--

विजयार्धगिरिशिखर पर स्थित गगन वल्लभ नामक नगर का चक्रवर्ती राजा विक्रमबाहु है। उसको आकस्मिक वैराग्य हो जाने के कारण राज्याभिषेक करने के लिए एक क्षत्रिय राजकुमार की आवश्यकता होती है। इसके लिए वह तथा उसके मंत्री हरिवाहन को उपयुक्त समझते हैं। चूंकि उस समय हरिवाहन अपने मित्र के वियोग में अत्यन्त दु:खी था अत: उस राज्य के शाल्य बुद्धि नामक अमात्य अनंगरति के द्वारा झूठी ही दाम्पत्य-कलह करवाता है। हरिवाहन जब उसकी लड़ाई का कारण पूछता है तो अनंगरति बताता है कि उसकी सम्पत्ति उसके बन्धुओं ने छीन ली है और वह तपस्या करना चाहता है पर प्रेयसी भी उसका अनुसरण करना चाहती है। प्रेयसी जीवन छोड़े उसके पहले वह जीवन छोड़ना चाहता है। उसकी करुण भरी बात सुनकर उसके बदले में हरिवाहन स्वयं तपस्या करने लग जाता है और देवी के प्रकट होने पर अनंगरति के लिए विद्याधर-राज्य की प्राप्ति का वरदान मांगता है। देवी अनंगरति की लड़ाई का रहस्य खोलकर उसी को विद्याधर राज्य दे देती हैं।

ये कथाएं आपस में इतनी अधिक उलझ गई हैं कि बीच-बीच में पाठकों को उन्हें स्पष्ट करने के लिए आगे-पीछे पुस्तक के पृष्ठ पलटने पड़ते हैं। पाठक की यह उलझन कथा के सौंदर्य को दूर कर देती है। कहीं-कहीं धनपाल ने अपनी पुस्तक को बृहताकार रूप देने के लिए कुछ निरर्थक कथाओं का प्रवेश किया है। पाठक चाहता है कि अब जो मुख्य कथा छूट गई है वह फिर से प्रारम्भ हो किन्तु वहां पाठक की आशा के विपरीत दूसरी ही कथा आ जाती है। ऐसी कथाएं कभी भी प्रशंसनीय नहीं होती हैं।

यह कदापि नहीं कहा जा सकता है कि ये कथाएं आकर्षक नहीं हैं। वस्तुत: वे न केवल आकर्षक ही हैं अपितु सरस भी हैं किन्तु उनका सौन्दर्य आवश्यकता से अधिक कथाओं के एक-दूसरे में प्रवेश करने के कारण खो गया है। एक कहानी चल रही है, उसी के अन्दर दूसरी कहानी शुरू हो जाती है फिर दूसरी कहानी में तीसरी कहानी चलने लगती है। इस प्रकार कहानियों की एक शृंखला बंधती चली जाती है। यही उलझन पाठकों में नीरसता उत्पन्न कर देती

वैसे तो कई कहानियां कादम्बरी में भी आयी हैं किन्तु सब कहानियां स्पष्ट हैं । उसमें तीन जन्मों की कथाएं हैं किन्तु उसकी एक-एक कथा अपने निराले ढंग की एवं आकर्षक है । तिलकमंजरी में दो जन्म की कथायें हैं किन्तु उलझी हुई हैं ।

इस काव्य में इतनी अधिक आश्चर्यजनक घटनायें वर्णित हैं कि वह एक जादूगर की पिटारी-सी प्रतीत होती है । हरिवाहन का हाथी से उड़ना, शुक द्वारा हरिवाहन की कुशलता की चिट्ठी उसके बन्धुवर्ग के पास पहुंचाना तथा वहां से उसका ऊपर जाना, मलयसुन्दरी का सोते समय विद्याधर-लोक में पहुंचना तथा उसी रात्रि उसकी अपने शयन-कक्ष में पहुंचना, मलयसुन्दरी के किंपाक फल खाने से मूर्च्छित हो जाने पर अकस्मात् उसका दिव्य सरोवर में पहुंचना, वहां पर बहता हुआ समरकेतु का ही पत्र मिलना, मलयसुन्दरी जिस दारु भवन में अपने को देखती है उसका एकाएक गायब होना, आदि बहुत-सी अद्भुत घटनाएं पहले रहस्यमय प्रतीत होती हैं ।

इस काव्य में हरिवाहन और तिलकमंजरी की कथा ही प्रमुख है किन्तु जितनी आकर्षक ढंग से समरकेतु और मलयसुन्दरी की कथा वर्णित है, उतनी हरिवाहन की नहीं है । समरकेतु और मलयसुन्दरी जब एक-दूसरे को देखते हैं तो कवि ने दोनों की ओर से होने वाली प्रतिक्रियाओं का वर्णन किया है किन्तु हरिवाहन और तिलकमंजरी के अकस्मात् मिलने पर कोई विशेष प्रतिक्रियाएं नहीं वर्णित हुईं । कवि ने दोनों की वियोगावस्था का अवश्य थोड़ा-सा वर्णन कर दिया है । जब हरिवाहन अपने देश लौट आने पर अपने मित्र को नहीं देखता तथा जब वह विद्याधर राज्य की प्राप्ति के लिए निकलता है तब तिलकमंजरी की वियोग-दशा का चित्रण हुआ है । हरिवाहन की मनोदशा का वर्णन तब हुआ है जब वैताढ्य पर्वत में पहुंचने के पूर्व अपने ही प्रासाद में चित्रपट में तिलकमंजरी को देखता है तथा वैताढ्य पर्वत में पहुंच कर तिलक मंजरी को पहचान लेता है ।

कहीं-कहीं कवि ने अपनी कथावस्तु में भावों की अवहेलना भी कर दी है जिससे काव्य में अस्वाभाविकता आ गयी है । हरिवाहन अपनी दुःख भरी

कथा समरकेतु को कहा रहा था उसी बीच समरकेतु और मलयसुन्दरी के बीच की वार्तायें जो उसने मलयसुन्दरी से सुनी था हरिवाहन ने समरकेतु से कहीं किन्तु उसे सुनकर होने वाली समरकेतु की प्रतिक्रियायें कुछ भी वर्णित नहीं की गयीं । इस प्रकार की कहानियों के अन्त हो जाने के पश्चात् जो समरकेतु के भाव वर्णित किए गए हैं उसमें कोई सौन्दर्य नहीं है । ऐसा लगता है कि हरिवाहन उस कथा को समरकेतु को नहीं सुना रहा है अपितु पाठकों को सुना रहा है ।

इसके अतिरिक्त अस्वाभाविकता के और भी कई स्थल हैं । इनसे कथावस्तु शिथिल हो गयी है । विद्याधर मुनि आकाशमार्ग से उतर कर अयोध्या-नरेश मेघवाहन के पास आते हैं किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम है कि वह किस नगरी में खड़े हैं, किससे बात कर रहे हैं और पास में खड़ी स्त्री कौन है[1] ? जब कि वह एक बहुत बड़े योगी थे और उन्होंने पुत्र प्राप्ति की विधि बताई थी । उनका राजा से दुःख का कारण उन्होंने इस प्रकार पूछना --

> इयमपि च कल्याणिनी किमिति म्लानदेहा
> पाणितलाक्रान्तकपोलकलंकपिशुनिताश्रुप्रमार्जना
> सखी विरतेव रोदनाद्विभाव्यते । क्वचिन्न संपन्नः
> प्रयत्नसंरक्षितस्यार्थस्य कस्यचिदतर्कितो विनाशः । क्वचिन्न
> जातः केनापि प्रेमैकनिबन्धनेन बन्धुना सह प्रवासादिकारणदुर्लभो
> विप्रलम्भः । क्वचिन्न संभाविता दुर्लभता चिरं हृदि स्थापितस्य
> कस्यचिन्मनोरथस्य । कथय यदि नातिरहस्यं श्रवणार्हं
> वास्मद्विधानाम्[2] --

-- एक योगी के लिए अस्वाभाविक लगता है क्योंकि उनके लिए सभी वस्तुएं प्रत्यक्ष होती हैं । यदि वे जानते हुए भी अनभिज्ञता दिखाना चाहते थे तो केवल इतना ही पूछना उनके लिए पर्याप्त था कि आप दोनों का मुख इतना अधिक मलिन क्यों है ? इतना अधिक योगी का रानी से

१- तिलकमंजरी पृष्ठ २७
२- ,, पृष्ठ २७

प्रति जानने की उत्सुकता दिखाना उचित नहीं लगता है । अस्वाभाविकता की तो उस समय पराकाष्ठा हो गई जब वह वीणी विद्याधर मुनि राजा को वन जाने से निवृत्त करके घर में ही राजलक्ष्मी की उपासना की आज्ञा देकर रानी से परिहास करने लग जाते हैं --

> "राजपुत्रि, निवर्तितस्तावदरण्यगमनादेष ते प्रणयी जनः ।
> नियोजितश्चातिदुष्करे देवताराधनकर्मणि ।
> मा स्म कुप्यश्चेतसि यदस्माभिरकृत्वा प्रश्नमकृत्वा
> प्रतिवचनमगृहीत्वानुमतिं महाभागाया: कृतान्य वेलसो
> नियंत्रणा निवारणा च[१] ।"

यह विद्याधर मुनि पुत्र प्राप्ति की सूचना देने आए थे । अत: उन विद्याधर को आगे कहां जाना है बताने की कोई आवश्यकता न थी और न जाने के लिए आज्ञा मांगने की[२] ।

राजा मेघवाहन वेताल के कहने पर अपने शिर को तलवार से काटता है । आधा शिर कटने पर उसकी इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं वह मूर्च्छित हो जाता है उस समय राजा का अमरसुन्दरियों के नूपुरों की आवाज सुनना, उस ओर दृष्टि डालना तथा प्रकट हुई से पूछने की सामर्थ्य होना कि वह कौन है, किसलिए देवमन्दिर में आयी है[३] -- असम्भव लगता है । क्योंकि मूर्च्छित अवस्था में ये सब प्रतिक्रियायें नहीं होती हैं ।

इसी प्रकार देवी लक्ष्मी का राजा मेघवाहन के साथ इतनी देर तक वार्तालाप करना तथा मेघवाहन की पुत्रप्राप्ति की वचनभंगिमा को सुनकर उनका इस प्रकार परिहास करना कि आपको किससे डर लगता है जो आपने इस प्रकार की वचन भंगी अपनायी है केवल आपको दुष्ट महोदर से सावधान होने की आवश्यकता है, मैं और किसी रानी से इसकी चर्चा नहीं करूंगी आदि तथा राजा का यह कहना कि मुझे किसी का भय नहीं

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ३१
२- ,, पृष्ठ ३३
३- ,, पृष्ठ ५३-५५

आपत्ति

यदि देखा जाए तो उन्हें भी पुत्र है, ऐसे कोई ~~कारण~~ नहीं-- यादि उचित नहीं प्रतीत होता और न देवी का राजकार्यों और भोगविलासों के लिए मेघवाहन को उन्मुख करना ही समुचित लगता है। विद्याधर मुनि की भांति यों का भी -- 'अनुगन्तासि मां गमनाय' तथा आगे कहां जाना है -- बताना असमीचीन है[1]।

परिस्थितियों की ओर भी ध्यान न देने के कारण कथावस्तु में अस्वाभाविकता आ गयी है। विजयार्धगिरि शिखर पर आते हुए हरिवाहन ने शोकग्रस्त गन्धर्वक को देखा। उसके शोक का कारण था -- तिलकमंजरी का प्राणत्याग करना। हरिवाहन ने जब उसके शोक का कारण पूछा तो उस समय गन्धर्वक को तिलकमंजरी की तत्कालिक स्थिति को बताना चाहिए था किन्तु कवि ने गन्धर्वक पात्र के माध्यम से उनके तथा समरकेतु और मलयसुन्दरी के पूर्वजन्म के वृत्तान्त का सविस्तार वर्णन करना शुरू कर दिया। यदि कवि को इस ओर संकेत करना ही था तो पहले तिलकमंजरी का हाल बता कर रास्ते चलते संक्षेप में यह सब बता दिया जा सकता था।

कहीं-कहीं यह असावधानता चरित्र-चित्रण में बाधक हुई है। क्योंकि हरिवाहन को अयोध्या पहुंचा कर चित्रमाय जब लौट कर बताता है कि समरकेतु के न मिलने पर हरिवाहन उसे ढूढने निकल गया और अभी तक उसका मित्र नहीं मिला तो उस समय मलयसुन्दरी को समरकेतु के लिए दु:ख होना चाहिए था और उसी शोक के कारण उसे मूर्च्छित होना चाहिए था पर कवि ने उसके मुख से ये वाक्य निकलवाये --

> 'हा समस्तलोकलोचनसुभग, हा निरन्तरोपभोगलालित, ...
> चित्रभवनवासदु:खप्राप्तिहेतुर्वियोजित: ... मलयसुन्दरी*
> मोहमगमत्[2]।'

१- तिलक० पृष्ठ ५८-६१

२- ,, पृष्ठ ३६२

जो बिल्कुल ठीक नहीं है ।

इन दुर्बलताओं के होते हुए भी कथाओं की सरल कहा जा सकता है । इनके कथावस्तु के प्रस्तुत करने का ढंग अन्य गद्य-कवियों जैसा है। इन्होंने भी सर्वप्रथम आराध्य-देव 'जिन' की स्तुति करके काव्य की उपासिका देवी सरस्वती की उपासना की तदनन्तर श्लोकों में गद्य-काव्य का स्वरूप,दुष्टों की निन्दा, पूर्ववर्ती कवियों की प्रशंसा, आश्रयदाता की वंशावली, उसका गुणगान, एवं अपनी वंशावली का परिचय देकर अयोध्या के राजा मेघवाहन उसके वैभव,क्रीड़ाओं, महिषी का सौंदर्य वर्णन, पुत्राभाव की चिन्ता, उसके लिए किए गए विविध प्रयत्नों का उत्साह के साथ वर्णन किया है । नायक के जन्म में दैवी कृपा एवं स्वप्न को भी काव्य में स्थान मिला है । इन्होंने भी पुत्र-जन्म-महोत्सव,बालकहरिवाहन के अन्नप्राशन, चलना सिखाने, लोगों का अपने पास बुलाकर चिपटाने चलते समय उसकी रक्षा हेतु अन्त:पुर के सेवकों का उसके पीछे-पीछे चलने, घूमने आदि का वर्णन किया है[1] । यह दूसरी बात है कि इनमें अधिक सौन्दर्य नहीं है ।

इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है कि यह कथावस्तु को प्रस्तुत करने में तथा ~~उनके~~ वर्ण्य-विषय को अपनाने में बाण से प्रभावित हैं । किन्तु इन वर्णनों में बाण जैसी उच्च काव्य की प्रतिभा का परिचय नहीं दे सके हैं । कादम्बरी में चन्द्रापीड़ के विद्याध्ययन करने के बाद उसके लौटने पर पुरवासियों एवं अन्त:पुर का सविस्तार वर्णन मिलता है पर तिलकमंजरी में ऐसा नहीं है । हरिवाहन के विद्याध्ययन करके आने पर राजा उसे अपने भवन में ले जाते हैं +- बस इतना वर्णित है[2] ।

इन्होंने भी राजा मेघवाहन के भोजन करने का वर्णन किया है । कादम्बरी के राजा शूद्रक की भाँति मेघवाहन भोजनालय में जाता है, खाने के पश्चात धूप सूंघता है, धूम्रपान करता है, ताम्बूल ग्रहण करता है, हाथ को सुगन्धित करता है और कुछ विश्वस्त एवं सुहृद्गणों के साथ कलात्मक एवं

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ७८

२- ,, पृष्ठ ७८

विचारात्मक कार्यों में समय व्यतीत करता है[1]। ऐसा ही वर्णन राजकुमार हरिवाहन के भोजन करने में भी आया है[2]। जैसे कादम्बरी में चन्द्रापीड दिग्विजय के लिए राजसी वैभव के साथ इन्द्रायुध घोड़े पर चढ़ता है वैसे ही समरकेतु सुवेलपर्वत के दुष्ट सामन्तों का दलन करने के लिए 'अरवल्लभ' नामक हाथी पर बैठता है। अतः इन दोनों काव्यों में समानता है। क्योंकि यहाँ नगरवासियों का एकत्रित होकर समरकेतु तथा उसकी सेना को देखने, समरकेतु का क्रम से नगरसीमा आदि को पार करते हुए समुद्र को देखने आदि का वर्णन कवि ने बड़े उत्साह के साथ किया है[3]।

'अरवल्लभ' नामक हाथी का वर्णन यद्यपि संक्षेप में है किन्तु बाण के 'हर्षचरित' के दर्पशात हाथी से बहुत कुछ मिलता-जुलता है[4]।

मलयसुन्दरी का, अपनी कथा का प्रारम्भ करने का ढंग वही है जो कादम्बरी में महाश्वेता का है। वहाँ चन्द्रापीड महाश्वेता से इस प्रकार के तपस्विनी वेश धारण करने का कारण पूछता है और महाश्वेता के रोने पर उसके कष्ट का कारण अपने को समझने लगता है, जल लाकर उसका मुख धुलाता है तब उद्वेग के शान्त होने पर महाश्वेता अपना वृत्तान्त शुरू करती है उसी प्रकार तिलकमंजरी में हरिवाहन मलयसुन्दरी से यही सब पूछता तथा करता है और मलयसुन्दरी की सारी प्रतिक्रियायें महाश्वेता की ही भाँति होती है[5]।

जिस प्रकार बाण ने जाबालि ऋषि के आश्रम का पवित्र वर्णन किया है उसी प्रकार धनपाल ने भी 'प्रशान्तवैर' नामक आश्रम का वर्णन किया है। उसमें वनवासियों की जीवनचर्या, मुनि-कुमारियों का देवपूजन के लिए फूलों का तोड़ना, उनके द्वारा बालाओं का आलवाल (थाला)

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ६९
२- ,, पृष्ठ१७८
३- ,, पृष्ठ११४-१२२
५- ,, पृष्ठ २५८-५९

बनाना, पिटिकाओं (पेटी) में अनेक सुन्दर पत्रों से व्यक्तिकाओं का छिपना, पक्षुओं का खिलाना आदि का रमणीय चित्रण किया गया है[1]। इस प्रकार धनपाल का वर्ण्य-विषय बाण के वर्ण्य-विषय से भिन्न हो गया है। धनपाल ने इसका वर्णन अत्यन्त संक्षेप के साथ किया है जब कि बाण ने विस्तार के साथ। जो सौन्दर्य बाण के वर्णन में है वह धनपाल के वर्णन में नहीं है।

इस काव्य में शोक से व्याकुल होकर मलयसुन्दरी के आत्महत्या करने का प्रसंग बार बार आता है --समुद्र में डूबने से[2], गाढ़ से[3], किंपाक नामक विषैले फल खाने से[4] और सरोवर में कूदने से[5]। इस[6] विषय में धनपाल सुबन्धु से प्रभावित है। क्योंकि सुबन्धु ने कन्दर्पकेतु को समुद्र में प्राण देने के लिए तत्पर दिखाया है।

अपने काव्य में कवि ने सुबन्धु और बाण की भांति आत्महत्या से रोकने के लिए आकाशवाणी की कल्पना नहीं की है अपितु अदृष्टपार नामक सरोवर में कूद कर प्राण देने वाली मलयसुन्दरी को इस कार्य से निवृत्त करने के लिए कवि ने समरकेतु के पत्र-प्राप्ति की कल्पना की है। इस सम्बन्ध में कवि की मौलिकता परिलक्षित होती है।

बाण और सुबन्धु के अतिरिक्त धनपाल कवि कालिदास से प्रभावित है 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में शकुन्तला जिस समय तपोवन से राजा दुष्यन्त के पास जाने लगती है उस समय पशु-पक्षियों की दशा एवं उनको देखकर उत्पन्न हुई शकुन्तला की दशा का थोड़ा-सा साम्य मलयसुन्दरी की

१-तिलकमंजरी पृष्ठ ३३१
२- ,, पृष्ठ २९२
३- ,, पृष्ठ ३०५-६
४- ,, पृष्ठ ३३५
५- ,, पृष्ठ ३३६
६- ,, पृष्ठ ३३७

अवस्था के साथ है जब कि उसके पिता उसे वज्रायुध को देना चाहते हैं और वह मृत्यु का निश्चय कर लेती है —

' तत्र चाशंपादितपादप्रहारदोहदेष्वशोकशाखिषु खेदायमानं निःश्वसन्ती, अदृष्टकोरकोद्गतिषु सहकारेषु विषादमुद्वहन्ती ... तात रक्ताशोक, लोकान्तरगतापि स्मर्तव्यास्मि। कमलदीर्घिके, दीर्घकालं सखीमनुभावितासि निर्घृणया निदाघवासरेषु। सखे शिखण्डिन्, अस्तं गता ते हस्ततालताण्डवक्रीडा।.... इति भाषमाणा परिभ्रम्यैतस्यातोऽस्तगिरिशिखरं स्वतेजसि तिग्मांशौ स्वनिवासमगमत्[१]।'

पूर्व कवियों की अनुकृति के अतिरिक्त कवि की मौलिकता भी परिलक्षित होती है। उदाहरणार्थ राजकुल का वर्णन बाण की भांति न उन्होंने विस्तृत किया है और न अलंकारों से बोझिल बनाया है। राजाओं के कार्यों, एवं दानशीलता आदि का वर्णन करके उसे पवित्र स्थान के रूप में वर्णित किया है[२]।

इसी प्रकार पुत्राभाव के वर्णन करने की प्रेरणा यद्यपि कवि को बाण से मिली थी किन्तु उसके वर्णन करने का ढंग काव्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है[३]।

इसके अतिरिक्त भी काव्य में कवि की मौलिक उद्भावनायें भी मिलेंगी।

<u>गद्यचिन्तामणि की कथावस्तु--</u>

धनपाल की भांति ओडयदेव ने भी अपनी कथावस्तु में जैन धर्म के प्रति विशेष पक्षपात दिखाया है। इस काव्य में जीवंधर की कथा वर्णित है। कवि ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि इसकी यह कथावस्तु नवीन नहीं है। उन्होंने बताया है कि श्रेणिक राजा के प्रश्नों के अनन्तर गणनायक

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ३०१-३०२
२- ,, पृष्ठ ६३-६५
३- ,, पृष्ठ २०-२१

सुधर्मा ने इसी कथा को सुनाया था[१] । गद्यचिन्तामणि में वर्णित जीवंधर की कथा इस प्रकार है ।

जम्बूद्वीप के दक्षिण में हेमांगद नामक जनपद की राजधानी राजपुरी का राजा सत्यंधर था । उसकी महिषी का नाम विजया था । यद्यपि वह प्राय: सभी राजाओं को वश में कर चुका था किन्तु कामी होने के कारण शासन की व्यवस्था न रख पाता था । अत: मन्त्रियों के मना करने पर भी उनकी बातों को न मान कर उसने अपना राज्य काष्ठांगार को दे दिया और स्वयं विविध भोगों को भोगने लगा ।

एक दिन रानी विजया ने पुत्रप्राप्ति का सूचक तथा राजा के विनाश का द्योतक स्वप्न देखा । रानी विजया के दु:खी होने पर राजा ने उसे समझाया । उसके गर्भवती होने पर राजा की मृत्यु से वह दु:खी न हो ऐसा सोचकर उसने विजया को मयूर यंत्र पर बैठा कर अन्यत्र स्थान में भिजवा दिया ।

इधर काष्ठांगार को राज्य का लोभ हो गया और मंत्रियों के सम्मुख स्वप्न की बात रखकर राजा सत्यंधर को मारने के लिए उद्यत हो गया और उसने सेना के साथ उसे घेर लिया । राजा सत्यंधर पहले क्रुद्ध होकर लड़ा किन्तु सहसा वैराग्य उत्पन्न हो जाने के कारण उसने शस्त्र डाल दिया । काष्ठांगार ने उसे मार डाला ।

उसकी मृत्यु के पश्चात् रानी विजया का मयूर यंत्र उसी रणभूमि में पहुंचा और वहीं रानी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया । अरण्यदेवी ने उसको सान्त्वना दी कि उसके पुत्र का पालन एक ~~गन्धोत्कट~~ गन्धोत्कट नामक वैश्य करेगा । उसी समय अपने मृत पुत्र को गन्धोत्कट लेकर उसी स्थल में आया और वहां पर नि:सहाय जीवित पुत्र को देखकर उसे उठा लिया और अपने घर लाकर उसका लालन-पालन किया । गन्धोत्कट ने उसका नाम जीवंधर रक्खा । इसके बाद उसके नन्दाढ्य नामक एक और पुत्र हुआ ।

१- इत्थेवं गणनायकेन कथितं पुण्यास्रवं शृण्वतां
तज्जीवंधरवृत्तमत्र जगति प्रख्यापितं सूरिभि:।
विद्यास्फूर्तिविधायिनी वाणीगुणैर्व्यापिनीं
वक्ष्ये गद्यमयेन वाङ्मयसुधावर्षेण वाञ्छावहै॥१५॥ गद्यचिन्तामणि

गन्धोत्कट ने अपने पुत्रों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था रक्खी ।

एक बार कुछ लोगों ने गाय चुरा ली । काष्ठांगार ने सेना के साथ गाय चुराने वालों से युद्ध किया किन्तु वह असफल हुआ । इससे गोपजन सत्यंधर के राज्य का स्मरण करके बहुत ही दु:खी रहने लगे । गोपालग्राम के स्वामी नन्दगोप ने यह घोषणा की जो भी गो-तस्करों को हरायेगा उसके साथ सात पुत्रियों के साथ अपनी गोविन्दा नाम की कन्या का विवाह कर देगा । जीवंधर ने उन्हें हराकर उसके साथ विवाह किया ।

इसके अतिरिक्त जीवंधर ने वीणावादन में गन्धर्वदत्ता को हराकर गन्धर्वदत्ता के साथ, सर्प के विष को दूर करके पद्मा के साथ, स्तुति से मंदिर के द्वार खोल देने से क्षेमश्री के साथ, क्षेमपुरी के राजा दृढ़मित्र के पुत्रों को धनुशिक्षा देने के बदले में कनकमाला के साथ, सागरदत्त की चिरसंचित रत्न राशि का विक्रय देने से विमला के साथ वृद्ध योगी का भाव बदलकर सुरमंजरी के साथ, चक्र-यन्त्र से नियंत्रित तीन वराह को एक बाण से भेद करके विदेहराजा गोविन्द की कन्या के साथ और कठोर तपस्या करके 'मुक्ति' कन्या के साथ विवाह किया ।

जीवंधर द्वारा गुणमाला को परेशान करने वाले हाथी को मार कर वश में करने से हाथी की दशा खराब रहने लगी । वह हाथी काष्ठांगार का था अत: उसने क्रुद्ध होकर जीवंधर को बुलाने की आज्ञा दी । सब योद्धाओं ने जाकर कुमार के घर को घेर लिया । गन्धोत्कट ने सब को शान्त किया और जीवंधर के साथ काष्ठांगार के पास जाकर कई प्रकार से विनती की किन्तु उसने विनती को ठुकरा कर उसके वध करने की आज्ञा दी । वधिक जब उसे वध स्थल पर लिये जा रहे थे तो जीवंधर के सुदर्शन नामक यक्ष (जो पहले कुत्ते की योनि में था किन्तु जीवंधर की सेवा तथा मंत्रोच्चारण से उसने विद्याधर योनि को प्राप्त कर ली थी) का स्मरण करते ही वह प्रकट हो गया और जीवंधर को चन्द्रोदय नामक शैलशिखर पर ले गया । वहां उसने उनका नाम "पवित्रकुमार" रक्खा और उनका यथेष्ट सत्कार किया । एक बार जाते समय जीवंधर ने वहां आग से त्रस्त हाथियों को देखा । यक्ष सुदर्शन से अनुरोध करने पर उसने अग्नि बुझा दी ।

इसके बाद जीवंधर चन्द्राभ नगर और पल्लव की सीमा को पार करके हेमाभपुरी पहुंचा वहां पर उसे उसकी खोज में तत्पर उसके मित्र मिले । उन्होंने जीवंधर को दण्डकारण्य में मिली उनकी माता के सम्बन्ध में बताया । जीवंधर भी मां से मिलने गया । उसने वीरमाता बनकर जीवंधर तथा उसके मित्रों को काष्ठांगार से बदला लेने के लिए उत्साहित किया । जीवक उसे पूरी सान्त्वना दे कर और उसे मामा के घर भेज कर राजपुरी आकर विमला और सुरमंजरी से विवाह करके और गन्धोत्कट के घर पहुंच कर उनसे तथा उनकी पत्नी सुनन्दा से आज्ञा लेकर मामा (विदेह राजा गोविन्द) के यहां गया । मामा ने उसका यथेष्ट सत्कार किया । मामा जिस समय मंत्रियों से साथ जीवंधर के राज्य की पुन: प्राप्ति के लिए बात कर रहे थे तभी काष्ठांगार के द्वारा भेजा हुआ बनावटी संधिपत्र मिला । गोविन्द उसकी चाल समझ गया । उसने भी बाह्य रूप में संधि की घोषणा करा दी और राजपुरी पहुंचकर उसने अपनी कन्या के स्वयंबर की घोषणा की जिसमें जो एक बाण से चक्रयंत्र में नियंत्रित तीन वराह को मारेगा उसी साथ उसकी कन्या का विवाह हो जाएगा शर्त रक्खी । उसमें सभी राजा आए काष्ठांगार भी आया । जीवंधर को छोड़कर कोई भी इस शर्त को पूरी न कर सका । गोविन्द ने सब राजाओं के बीच बताया कि यह जीवंधर सत्यंधर का पुत्र है । काष्ठांगार को छोड़ सभी राजा प्रसन्न हुए । काष्ठांगार ने युद्ध किया किन्तु वह मारा गया । गोविन्द ने उसको सत्यंधर की गद्दी पर बैठाया । उसी समय सुदर्शन यक्ष ने भी आकर उसका राज्याभिषेक किया । जीवंधर ने काष्ठांगार द्वारा कैद किए हुए व्यक्तियों को बंधन मुक्त किया । वहां पर अपनी सब पत्नियों को बुलाकर वह धर्मपूर्वक शासन करने लगा । उसके बाद उसने मामा की कन्या लक्ष्मणा के साथ शुभ मुहूर्त में विवाह किया ।

कुछ समय के बाद उनकी मां विजया और सुनन्दा ने काश्यपीपति की अनुमति से प्रव्रज्या ले ली । पहले जीवंधर बहुत ही दु:खी हुए किन्तु धार्मिक वचनों से शान्त हो गए । मां को विदा करके एक बार पत्नियों के साथ सलिल क्रीड़ा कर रहे थे । थकावट दूर करने के लिए बैठ गए । वहां पर उन्होंने देखा कि एक बन्दरी को बन्दर बहुत मना रहा था किन्तु जब किसी

प्रकार वह नहीं मानी तो उसने कृत्रिम मृत्यु का बहाना किया । वानरी उसे मृत समझ कर विलाप करने लग गई और उसका उपचार करने लग गई । प्रसन्न होकर बन्दर बन्दरी के लिए वैसे ही पनसफल लाया कि माली ने आकर उसे छीन लिया । इस दृश्य को देखकर जीवंधर को वैराग्य हो गया और लोगों के मना करने पर भी जिन दीक्षा लेकर वह उनकी पूजा करने लगा उसी बीच चारणों ने उसके पूर्वजन्म का वृत्तान्त बताया । उसके पश्चात् पुन: राजपुरी लौट कर मंत्रियों की सलाह से गन्धर्वदत्ता के पुत्र को राज्य देकर पत्नियों को तपस्या के लिए तैयार कर नन्दाढ्य के साथ तपस्या करने निकल गया । कठोर तपस्या करके उसने ध्यानावस्था की स्थिति प्राप्त कर ली और अन्त में कैवल्यवधू से विवाह कर लिया ~~और~~ उसने मुक्ति प्राप्त कर ली ।

इस मुख्य कथा के अन्तर्गत प्रत्येक कन्या के विवाह से सम्बन्धित कई कहानियां आती हैं । इसीलिए कवि ने कन्याओं के नाम के आधार पर 'लम्बों' के नाम रखे हैं ।

इन कहानियों के अतिरिक्त मुख्य कथा के अन्तर्गत दो और भी कहानियां आती हैं । इनमें से एक जीवंधर के गुरु नन्दाचार्य से सम्बद्ध है जिसमें गुरु ने जीवंधर को अपनी कथा अन्य कथा के बहाने से बताई है । वह कथा इस प्रकार है --

विद्याधर लोक में लोकपाल नामक राजा था । किसी समय बादल के टुकड़े को देखकर उसे वैराग्य हो गया । अत: परम सुख की प्राप्ति हेतु राज्य भार अपने पुत्रों को सौंप कर वह जिन-दीक्षा में प्रविष्ट हो गया किन्तु पूर्व कर्मों के कारण उसे भस्मक-रोग हो गया । अत: भूख से पीड़ित हो उसने तप छोड़ दिया । भूख से व्याकुल होकर वह गन्धोत्कट के घर में बिना किसी हिचकिचाहट के घुस गया, जहां खाने की तैयारी हो रही थी । जीवंधर ने उनकी आकृति से पहचान लिया कि वह भूखा है अत: उसने उसको भरपेट खाना खिलाया । यहां तक कि अपना परसा हुआ खाना भी उसे दे दिया । इससे उसका भस्मक रोग शान्त हो गया । उसने इसके बदले में प्रसन्न होकर जीवंधर को अनघ-विद्या से अलंकृत किया ।

दूसरी कथा जीवंधर के पूर्व जन्म से सम्बद्ध है जिसे उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर चारणों ने उसको सुनाया है । जीवंधर अपने पूर्व जन्म में राजा पवन वेग का पुत्र यशोधर था । घूमते हुए उसने एक सुन्दर जालपाद-शिशु को पकड़ लिया । पिता को जब मालूम हुआ तो उसने अपने पुत्र को समझाया कि यह पाप है और जो इस प्रकार के कार्य करता है उसे कष्ट भोगना पड़ता है । इस पर यशोधर को पश्चात्ताप हुआ और वह जिनेश्वर की पूजा करने लग गया । किन्तु कर्म की गति बलवान होती है । उसे मनुष्ययोनि में जन्म लेना पड़ा । चूंकि उसने राजहंस को पकड़ा था तथा उसे बन्धुओं से वियुक्त किया था अतः राजपुरी में जन्म लेकर उसे भी अपने मां-बाप तथा बन्धुओं से बिछुड़ना पड़ा ।

ओडयदेव की यह कृति अन्य गद्य-कवियों से पर्याप्त मात्रा में भिन्न है । यद्यपि कथावस्तु के प्रारम्भ करने का ढंग-- अपने आराध्यदेव की स्तुति, काव्य की उपासिका देवी सरस्वती की स्तुति करना, काव्य की कथावस्तु की प्राचीनता पर अपने विचार प्रकट करना, तत्पश्चात् हेमांगद जनपद का वर्णन करके मुख्य कथा पर आना-- एक प्रकार से प्राचीन गद्य-कवियों की परम्परा का अनुसरण करना है ।

इनकी कथावस्तु में और कृतियों की अपेक्षा बाण का कम प्रभाव परिलक्षित होता है । हेमांगद सत्यंधर तथा रानी विजया के वर्णन में बाण की शैली की अनुकृति है । कथावस्तु में नन्दाचार्य जीवंधर को यौवन और राजलक्ष्मी के सम्बन्ध में उपदेश देता है जिसमें बाण के शुकनास के उपदेशों की झलक है[1] । तथा जिस प्रकार हर्षचरित में भैरवाचार्य के राजा पुष्पभूति की सहायता से विद्याधर योनि की प्राप्ति का उल्लेख है[2] उसी प्रकार गद्य चिन्तामणि में जीवंधर की कृपा से कुत्ते के सुदर्शन नामक यक्ष बनकर विद्याधर योनि के प्राप्त करने का उल्लेख है[3] ।

बाण के भोजन-वर्णन करने की विशेषता इन्होंने भी अपनाई है किन्तु उसमें पर्याप्त मात्रा में भिन्नता आ गई है । जीवंधर के भोजनालय में जाने तथा भोजन करने के पश्चात् किए जाने वाले धूम्रपान आदि का वर्णन

१- गद्यचिन्तामणि, पृ० ८१-८२

२- हर्षचरित पृ० १६४.

न करके कवि ने भोजन भूमि का वर्णन किया है[1]।

इसी प्रकार उन्होंने भी बाण की भांति शबरों का वर्णन किया है किन्तु दोनों में महदन्तर है। ओडयदेव ने यहां अलंकृत शैली का प्रयोग न करके सीधे-सादे शब्दों से उनका स्वाभाविक रूप अंकित किया है[2]।

बाण की भांति इस काव्य में भी अश्व आदि सेना का वर्णन हुआ है किन्तु उसमें कुछ विशेष काव्य-सुषमा दिखायी नहीं पड़ता है[3]।

इस काव्य में दक्षिण चरण उठाकर क्रीडाशुक के बोलने की कल्पना कादम्बरी से ली हुई प्रतीत होती है। इसी प्रकार इन्होंने पुत्र-प्राप्ति के पूर्व स्वप्न देखने की विशेषता अपने पूर्ववर्ती सुबन्धु और बाण से ग्रहण की है।

प्राय: सभी कवियों ने विन्ध्याटवी का वर्णन किया है किन्तु इन्होंने दण्डकारण्य का[4]।

ओडयदेव की कन्दुक-क्रीडा का वर्णन दण्डी के 'दशकुमारचरित' में वर्णित षष्ठ उच्छ्वास की नायिका कन्दुकवती की कन्दुक-क्रीड़ा से प्रभावित है। दण्डी की भांति इन्होंने भी कन्दुक-क्रीड़ा को--गीतमार्ग, गोमूत्रिकाक्रम आदि मुद्राओं का उल्लेख किया है[5]।

इसके अतिरिक्त सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग में इन्होंने भी दण्डी की भांति सुरमंजरी के रूप वर्णन में कामदेव की समस्त सौंदर्य सामग्री को उसी के अवयवों में सीमित कर दिया है। इस सम्बन्ध में गद्य चिन्तामणि में दशकुमार चरित की कल्पसुन्दरी का सौन्दर्य वर्णन ही प्राय: पूरा उतार लिया गया है[6]।

इसके अतिरिक्त दण्डी की तरह इन्होंने अपने काव्य में मृगया, द्यूतक्रीड़ा, मधुपान, चौर्यकर्म, कामक्रीड़ा आदि का वर्णन किया है। धूर्तों का भी वर्णन करना नहीं भूले हैं।

१- गद्यचिन्तामणि पृष्ठ २८

२- ,, पृष्ठ ४८

३- ,, पृष्ठ २१

४- ,, पृष्ठ १२०

५- ,, पृष्ठ १२२

६- ,, पृष्ठ १२८, दशकुमार चरित पृष्ठ ८६-८७

सुबन्धु की 'वासवदत्ता' में वर्णित स्वयंवर का वर्णन उन्होंने भी अपने काव्य में किया है। किन्तु भावों का यत्र-तत्र साम्य होने पर भी दो दृष्टि से अन्तर आ गया है। गद्य-चिन्तामणि में स्वयम्वर मण्डप का वर्णन नहीं है, केवल स्वयम्बर में आए हुए राजकुमारों का वर्णन है। दूसरे 'वासवदत्ता' में स्वयंवर में कोई शर्त नहीं रक्खी गई है। गद्यचिन्तामणि में प्रत्येक स्वयंवर में शर्त है।

ओडयदेव के इस काव्य में यत्र-तत्र कालिदास के रघुवंश की छाप भी परिलक्षित होती है। जैसे -- दूत के स्वरूप वर्णन में --

'असौ राजा बाह्यमभिरूयातमधुकमपि विप्रकृष्टं चेत्या-
त्मनिष्करिष्णुर्न व्यजेष्ट। अवहाय नीतिः कातर्यमिव
शौर्यं श्वापदचेष्टितमिव भी स्थितिरिस्मन्विता भामाकांक्षीव।
स्वप्रणिधानं प्रचितप्रणधिनेत्रः शत्रुमित्रोदासीन मण्डलेषु
तैरज्ञातमप्यज्ञासीद्। रात्रौ रात्रिदिवंविभागेषु यदनुष्ठे-
यमिदमित्थमन्वतिष्ठद्। जातमपि सद्यः शमयितुं शक्तोऽपि
सदा प्रवृद्धतया प्रतिकारयोग्यं नाजीजनद्। रागन्वतामवनि-
मतानीव।' (ग०चि० पृष्ठ ८)

'अनित्याः शत्रवो बाह्या विप्रकृष्टाश्च ते यतः।
अतः सोऽभ्यन्तरान्नित्यान् षट् पूर्वमजयद्रिपून् ।।४५।।
कातर्यं केवलानीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम्।
अतः सिद्धिं समेताभ्यामुभाभ्याम् (आभ्या) मन्वियेष सः ।।४७।।
न तस्य मण्डले राज्ञो न्यस्तप्रणिधिदीधितेः।
अदृष्टमभवत्किंचिद्व्यभ्रस्येव विवस्वतः ।।४८।।
रात्रिंदिवंविभागेषु यदादिष्टं महीक्षिताम्।
तत्सिषेवे नियोगेन विकल्पपराङ्मुखः ।।४६।।
कामं प्रकृतिवैराग्यं सद्यः शमयितुं क्षमः।
यस्य कार्यःप्रतीकारः स तन्नैवोदपादयत् ।।५५।।'

--रघुवंश १७ वां सर्ग

इस प्रकार ओड्डदेव की कथावस्तु में मौलिकता होते हुए भी यत्र-तत्र प्राचीन गद्य-कवियों एवं कालिदास का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

वेमभूपालचरित की कथावस्तु--

वामनभट्ट बाण ने अपने काव्य की कथावस्तु का विषय अपने आश्रयदाता वेमभूपाल-- जिन्हें वीरनारायण भी कहा गया है -- को बनाया है ।

त्रिलिंग नामक जनपद का राजा 'काम' था जिसकी राजधानी अद्दंकि थी । उसका पुत्र प्रोलय था । एक बार वह वसंत ऋतु में शिकार के लिए जंगल गया । वहां पर उसने घोड़े पर बैठकर अतितीव्र हरिण का पीछा किया । उसका पीछा करते हुए वह एक मनोहर उपवन में पहुंचा वहां उसकी सुन्दरता को देखकर मुग्ध हो गया और हरिण का पीछा करना भूल गया । अचानक अकस्मात् एक ओर से आती हुई सुगन्धि का उसने अनुभव किया । उस सुगन्धि का अनुसरण करते हुए उसने 'हिन्दोलगान' सुना । वहां जाने की इच्छा से वह घोड़े से उतर गया और वृक्ष के नीचे उसे बांध कर राजा छोटी झुरमुटों के बीच पहुंच गया वहां उसने सहकार वृक्ष पर झूलती कन्या 'अनन्ता' को देखा और कन्या ने राजा को । दोनों ही कामबाणों से बिद्ध हुए गए । इसी बीच राजा को राक्षस से पीड़ित अपने मित्र विदूषक की आर्तनाद सुनाई दी । राजा कन्या के प्रति आसक्त होने पर भी उसकी रक्षा के हेतु विदूषक के पास आया । राजा के प्रभाव से बिना युद्ध आदि किए ही राक्षस ने विदूषक को छोड़ दिया और अपनी उस योनि को छोड़कर उसकी वंश-वृद्धि के विषय में भविष्यवाणी करके वह अन्तर्हित हो गया ।

इसके बाद पुनः वह विदूषक के साथ दोलाविहारभूमि गया किन्तु उस कन्या को न देखकर बहुत दुःखी हुआ । विदूषक ने पहले उसे सावधान किया फिर उसका प्रभाव न पड़ने पर कामोपचार किया और सान्त्वना दी । कल पुनः आकर उस कन्या को देख लिया जाएगा, कहकर उसे राजधानी ले गया ।

इधर कन्या की सखियां भी राक्षस के वृत्तान्त से भयभीत होकर उसे कदाच कन्यान्तःपुर में ले गईं किन्तु वहां वह काम से ही पीड़ित रही ।

सखियों ने भी समझाया तथा सान्त्वना दी और पुनः उसी मण्डप में जाने को उससे कहा । कमलसरोवर के तट पर पहुंच कर सब स्थल पर देखने के पश्चात् भी राजा प्रोल्ल जब उसे वहां मिले तो उस कन्या ने चन्द्रकान्त वेदिका की शिला पर लेट कर उसी राजा का चित्र अंकित किया और देखा करते-करते उसकी अनिर्वचनीय दशा हो गई । सखियों ने उसका उपचार किया और शय्या पर लिटा दिया । उसी बीच दुष्ट हाथी के आ जाने से सखियां भयाक्रान्त हो गयीं और अपनी सखी को छिपाकर कन्यान्तःपुर में ले गयी । इसी भागदौड़ में वह चित्रफलक वहीं छूट गया ।

वही चित्रफलक उसी दिन आये हुए राजा प्रोल्ल के हाथों में पड़ा । जब वह उसको देखकर उस पर विचार कर रहा था कि अनन्ता की सखी उस चित्रफलक को लेने के लिए आयी । राजा के हाथ में चित्रफलक को देखकर उसने कन्या के मिलन तथा उसकी कामुक अवस्था के विषय में बताया राजा ने भी चित्रफलक पर एक आर्या लिखकर `अनन्ता` के पास भिजवा दिया । उसके पश्चात् धूमधाम से दोनों का विवाह हुआ ।

कुछ दिनों के पश्चात् इन्द्र की कृपा से उसके पांच पुत्र-- माच नरेन्द्र, वेमभूप, दोड्ड नरपति, अन्नभूप तथा मल्लमहीपाल हुए । माच के तीन पुत्र रेड्डी प्रोतभूप, पेद्दकोमटीन्द्र और नागेन्द्र हुए । इनमें पेद्दकोमटीन्द्र राजा हुआ उसका अनन्ताम्बा के साथ विवाह हुआ । उनके दो पुत्र वेम और माच हुए । उन दोनों में वेम राजा हुआ ।

एक बार शरद् ऋतु में दिग्विजय की इच्छा से वेमभूप सेना तथा विदूषक माधव को साथ लेकर निकला । उसने चारों ओर के राजाओं को युद्ध से, कृपा दृष्टि से, राजाओं द्वारा लाए गए उपहारों को स्वीकार करने से तथा दान से अपने वश में कर लिया । मार्ग में आए सभी मन्दिरों को आदर की दृष्टि से देखा तथा अपनी राजधानी में पहुंचकर उसने एकच्छत्र-राज्य किया ।

इस काव्य में कवि के आश्रयदाता का वंश तथा उसकी दिग्विजय का सविस्तार वर्णन होने के कारण इसमें कवि की बाण के हर्षचरित के अनुकरण करने की प्रवृत्ति देखी जा सकती है । यद्यपि इन्होंने --

--`बाणकवीन्द्रादन्येकाणाः खलु सरसगद्यसरणीषु ।इति

रहकर बाण के अनुकरण न करने की प्रतिज्ञा की थी किन्तु अन्ततोगत्वा इस काव्य में उन्हें इससे मुक्ति मिला हुई नहीं परिलक्षित होता है । शैली के अनुकरण में तो किसी प्रकार का सन्देह नहीं है, कथावस्तु में भी यही प्रवृत्ति है ।

जिस प्रकार कादम्बरी में चन्द्रापीड़ दिग्विजय प्रस्थान के बाद किन्नरों को देखता है वैसे ही इस काव्य में प्रोल्ल राजा शिकार खेलने के बाद हरिण को देखता है[1]। चन्द्रापीड़ किन्नर का पीछा करते हुए जिस प्रकार अरण्य में अच्छोदसरोवर के समीप महाश्वेता को देखता है वैसे ही प्रोल्ल हरिण का पीछा करते हुए उपवन में `अनन्ता` कन्या को देखता है । अन्तर इतना है कि महाश्वेता को चन्द्रापीड़ ने शंकर की उपासना करते हुए देखा और प्रोल्ल ने झूले पर झूलती हुई कन्या को देखा[2] ।

राजा प्रोल्ल ने भी चन्द्रापीड़ की तरह घोड़े से उतर कर वृक्ष में उसे बांधने के पश्चात् कुछ आगे बढ़कर उस कन्या को देखा ।

इसी प्रकार राजा प्रोल्ल का अकस्मात् आयी हुई सुगन्धि से आकृष्ट होकर उसका अनुसरण करते हुए कन्या का देखना महाश्वेता का अकस्मात् आयी हुई पारिजात मंजरी की सुगन्धि से आकृष्ट होकर पुण्डरीक के देखने का स्मरण कराती है[3]।

कादम्बरी में जैसे पुण्डरीक के साथ सर्वदा कपिंजल रहता है, उसे काम पीड़ित देखकर समझाता है, उसका प्रभाव न पड़ने पर उसका कामोपचार करता है तथा एक-दूसरे से मिलाने के लिए सच्चे मित्र की भांति कार्य करता है वैसे ही इस काव्य में विदूषक राजा प्रोल्ल को समझाता है,कामोपचार करता है और उसकी प्रेयसी की सखी से राजा की कामावस्था का चित्रण करके दोनों के विवाह कराने में सहायक बनता है ।

१- जैनभूपालचरित पृष्ठ २४-२५
२- ,, पृष्ठ ३१
३- ,, पृष्ठ ३७

पुण्डरीक की मरणावस्था देखकर जैसे कपिंजल आश्चर्यचकित हो जाता है, वैसे ही विदूषक भी हो जाता है[१]।

इस विषय में अन्तर इतना ही है कि इस काव्य में सखियाँ और विदूषक दोनों के समझाने की विधि मिलती है[२]।

कथावस्तु के अतिरिक्त उसके विकास में आये हुए वर्णित प्रसंगों में बाण की स्पष्ट छाप है। राजा प्रोल्ल का मृगया-वर्णन बाण के शबर-मृगया-वर्णन से बहुत अधिक प्रभावित है। बाण की भाँति कौलेयक की लाल लाल जीभ का वर्णन करना नहीं भूले हैं[३]।

उन्होंने भी बाण की तरह शिकार के साथ जाते हुए लोगों के कृत्यों एवं कार्यों का वर्णन किया है -- कुछ कुत्ते को साथ लिए, कुछ वागुर और शेर को पकड़ने का पिंजड़ा, कुछ विविध शस्त्र आदि लिए हुए तथा वैणिक, बांस, घंटा, आदि बाजा बजाते हुए लोगों का वर्णन मिलता है[४]। शिकारियों द्वारा छाए गए आतंकों का वर्णन भी हुआ है[५]।

विन्ध्याटवी के वर्णन का प्रसंग इस काव्य में भी है। बाण की ही भाँति उसके सौम्य और भयावह दोनों ही रूपों का वर्णन किया गया है। यह दूसरी बात है कि वहाँ बाण के वर्णन की-सी सरसता नहीं है[६]।

१- वेमभूपाल चरित पृष्ठ ६८-६६, कादम्बरी पृष्ठ ४५७-६५

२- सखियों का समझाना पृष्ठ ७७ और विदूषक का समझाना पृष्ठ ५४,७७।

३- (अ) वेम०-- अतिदूरावलम्बिनीभिरधिकारुणिमानमु... जिह्वाभिरुप-शोभितान्। पृष्ठ २०

(ब) कादम्बरी -- उपजातपरिचयैश्चगुच्छाविभिः..... दारन्तीभि-जिह्वाभि रावेष्यमानवदैः शिकृतमुखतया.... ।" पृष्ठ ६२

४- वेम० पृष्ठ ३२

५- ,, पृष्ठ २०-२१

६- ,, पृष्ठ १८२

बाण की भाँति इन्होंने भी हाथी को वर्णन का विषय बनाया है । बाण ने राजा हर्ष के महल में बंधे हाथी का वर्णन किया है । इन्होंने वेम के प्रस्थान के लिए लाए गए हाथी का वर्णन किया है[1] । कल्पनाओं में मौलिकता होने से केवल वर्ण्य-विषय के चुनने में अनुकृति कही जा सकती है ।

बाण की भाँति कवि ने अश्व का भी वर्णन किया है[2] किन्तु वामन भट्ट बाण अश्व वर्णन की अपेक्षा हस्ति वर्णन में अधिक सफल हुए हैं । क्योंकि अश्व वर्णन में पूर्व कवियों की अनुकृति परिलक्षित होती है । अन्य गद्य-कवियों की भाँति ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में दावाग्नि का वर्णन इन्होंने भी किया है[3] ।

पुत्र के न होने पर पुत्रप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होने तथा पुत्रोत्सव मनाने की चर्चा इस काव्य में भी है किन्तु पुत्रोत्सव में केवल राजा का धन लुटाने पटहनाद होने, सुगन्धित पदार्थों के छिड़काव तथा नृत्य होने, रत्नों का भूमि पर गिराये जाने और आभूषणों की ध्वनि के अतिरिक्त कुछ भी वर्णन नहीं किया गया है[4] । धात्री का हाथ पकड़ कर चलाना, प्रतिबिम्ब देखकर उसे बालक समझ कर बुलाना-- दो ही बाल क्रीड़ाओं का वर्णन है[5] । यह वर्णन केवल गद्यकवियों की परिपाटी का ही अनुकरण करता लगता है ।

बाण ने जिस प्रकार चन्द्रापीड़ को देखने के लिए उत्सुक नारियों का वर्णन किया है उसी प्रकार वामन भट्ट बाण ने भी किया है । वर्ण्य-विषय एक होते हुए भी काव्य की दृष्टि में दोनों का पृथक्-पृथक् स्थान है । यहाँ पर विवाह करके लौटे हुए राजा प्रोल्ल को देखने के लिए स्त्रियाँ बढ़ती हैं । उस समय कोई माला को गले में डालने से देरी हो जायगी यह सोचकर अदावल्य के समान हाथ में ही माला ले लेती हैं, कोई एक पैर में नूपुर पहन

१-वेम० पृष्ठ १२४-१२७
२- ,, पृष्ठ २०६-२०८
३- ,, पृष्ठ १६०
४- ,, पृष्ठ ११५
५- ,, पृष्ठ ११५-११६

कर दूसरे को हाथ में लेकर निकल पड़ती है, कोई नेत्रों में अंजन लगाते हुए अपने नेत्रों की दार्घता की निन्दा करती है... इत्यादि का वर्णन करके उनकी त्वरा(जल्दीबाजी) का वर्णन किया है[1]। इसके अतिरिक्त बाण की ही भांति एक-दूसरे के ऊपर पड़ते हुए राजा प्रीतम के प्रतिबिम्ब को देखकर उठने वाले युवतियों के भावों का भी वर्णन किया है[2]।

इसी प्रकार चण्डिका देवी तथा उनके मन्दिर का वर्णन बाण और वामन दोनों ने किया है किन्तु दोनों के वर्णन में पर्याप्त भिन्नता देखा जा सकता है। बाण ने मंदिर की रक्तध्वजा, देवी की सवारी महिष, पत्थर के बने महिष को चाटते हुए शृगाल-गण, पड़े हुए पूजा के फूल, उपहार स्वरूप पशुओं की हिंसा, दीपकों के धुएं से आरक्त वस्त्र का धूमिल होना, उसके अन्दर जंगली पक्षिगण, छाग, मूषक तथा जंगली कबूतरों का घूमना तथा देवी के स्वरूप आदि का वर्णन किया है। वैतालगणों को केवल उपमान रूप में इस वर्णन-प्रसंग में स्थान दिया है[3]। इसके विपरीत वामन ने वैतालों, भूतों, डाकिनियों राक्षसियों आदि के स्वरूपों और उनके कार्यों का वर्णन अधिक किया है। रक्त को देखकर उनका प्रसन्न होना, हड्डियों की माला धारण करना, भयंकर आवाज करना आदि का वर्णन करना ही कवि को यहां अभीष्ट है[4]।

राजा वेम के वर्णन में यत्र-तत्र राजा शूद्रक के वर्णन की छाप परिलक्षित होती है[5]।

बाण के अतिरिक्त वामन अन्य गद्य-कवियों से भी प्रभावित हुए हैं। दण्डी के दशकुमार चरित में मदिरा तथा उसके पान का वर्णन जैसे मिलता है वैसे ही वामन कवि ने भी वर्णन करके उस विषय को अपने काव्य

१- वेम० पृष्ठ ६७-६८
२- ,, पृष्ठ ६८
३- ~~,,--पृष्ठ~~ कादम्बरी पृष्ठ ६३१-४०
४- वेम० पृष्ठ १८२-८४
५- ,, पृष्ठ ४, कादम्बरी पृष्ठ १५

का चित्रण बताया । मदिरा का सर्वप्रथम सामान्य वर्णन किया । बाद में उसका देवों के साथ संबंध स्थापित करके पुन: उसका महत्त्व बताया । इस दृष्टि से वामन का दण्डी से भिन्नता हो गई है । वामन के इस वर्णन के अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी उनकी मौलिकता दिखायी देती है । यहां मद पीने के पश्चात् होने वाली लोगों की दशाओं का चित्रण शृंगारिक चेष्टाओं के साथ किया है । युवक-युवतियों के मद-विकारों का अच्छा वर्णन किया है[१] ।

वेश्याओं के वर्णन में वामन भट्ट दण्डी और भोज के आभारी हैं । उन दोनों की भांति उन्होंने भी वेश्याओं, उनकी जननी तथा कुट्टनियों का और उनके आवास (वेशवाटी) का सविस्तर वर्णन किया है[२] । सुबन्धु, भोज, धनपाल की भांति उन्होंने भी समुद्र का वर्णन उत्साह के साथ किया है । अन्य कवियों की अपेक्षा उनका वर्णन अधिक सरस और काव्य-प्रतिभा परिपूर्ण है[३] ।

युद्ध-भूमि के वर्णन प्रसंग के प्रति यह ओडयदेव के भी आभारी हैं । जिस प्रकार गद्यचिन्तामणि में ऐसे स्थल पर 'रक्तनदी' की कल्पना की गई है वैसे इस काव्य में भी कवि ने कल्पना की है[४] ।

यह केवल कथावस्तु के विषय में न केवल गद्य-कवियों अपितु पद्य-कवियों में कालिदास तथा भवभूति के भी अनुगृहीत हैं । इन दोनों कवियों में कालिदास का उनके ऊपर विशेष प्रभाव पड़ा है ।

१- वेम० पृष्ठ १८७-१९१

२- ,, पृष्ठ १९४-२०४

३- ,, पृष्ठ १३३-३५

४- ,, पृष्ठ १३८, ग० चि० पृष्ठ ७१,१४१

जिस प्रकार `अभिज्ञान शाकुन्तलम्` में दुष्यन्त पेड़ों की आड़ से सखियों के साथ पुष्पावचय करती हुई शकुन्तला को देखता है वैसे ही राजा प्रौल्ल झुरमुटों के बीच से छुपा छुपा अनन्ता को देखता है। राजा प्रौल्ल भी बहुत कुछ मनोदशा राजा दुष्यन्त जैसा ही पाता है। दोनों ही कन्या को देखकर कमल-सम्भव ब्रह्मा की सृष्टि का स्मरण करते हैं[1]।

राक्षस की घटना भी `अभिज्ञान शाकुन्तलम्` में आई है। वहां पर शकुन्तला के वियोग में व्याकुल दुष्यन्त को कर्तव्य मार्ग में उन्मुख करने के लिए मातलि विदूषक को पकड़ लेता है और विदूषक भयभीत होकर राजा को रक्षा के लिए पुकारता है, और वेमभूपाल चरित में राजा प्रौल्ल को वियोगावस्था तो है नहीं किन्तु काम बाणों से बहुत व्याकुल होने के कारण वह अन्य किसी कार्य के लिए उन्मुख नहीं हो सकता था अतः कवि ने राक्षस द्वारा आक्रान्त विदूषक का इसी प्रकार का वर्णन किया है[2]।

काम पीड़ित शकुन्तला की शय्या की तरह राजा प्रौल्ल को भी कामपीड़ित अनन्ता की शय्या दिखायी देती है। दोनों में अन्तर यह है कि प्रौल्ल कन्या से विहीन शय्या देखता है और दुष्यन्त शय्या पर लेटी कन्या को[3]।

एकाएक दुष्ट हाथी के आ जाने की कल्पना कवि ने अभिज्ञान शकुन्तलम् से ली है[4]। दोनों में अन्तर यह है कि अभिज्ञान शकुन्तलम् में राजा दुष्यन्त तथा सखियों के साथ शकुन्तला सब एक साथ बैठे हैं, तभी दुष्ट हाथी आता है और सखियां राजा की अनुमति लेकर शकुन्तला को आश्रम लिवा ले जाती हैं

१-(अ)- वेम०--`अहो पूर्वकृतस्य पुण्यस्य कर्मण: परिपाक: ।.... अन्यथा कथमीदृगनवद्यनिर्माणकौशलम् घटते ।` पृष्ठ ३२ ।

(ब)-अभिज्ञानशाकुन्तलम् -- १।१६, १।२०

२- अभिज्ञानशाकुन्तलम् -- षष्ठ अंक, वेम० पृष्ठ ३९-४०

३- वेम० पृष्ठ ६५ अभिज्ञानशाकुन्तलम्-- तृतीय अंक

४- ,, पृष्ठ ८८ ,, ,, -- १।२९

'नागनासोरुरित्यादिपद्य' (६७)-- वाल्मीकि

'सर्वाङ्गलक्ष्मीरभवत्: कुच:सुखत्यादि' (१४०)--दण्डी

'कलत्र: कालिंगनाथा:' (१०४) और
'निरन्तराश्रुप्रवाहकज्जलमालेव नागनयोर्न भवति नेदीयसी निद्रा ।' (८४) -- मेघदूत

'कुंकुमरागशोणाम्--इत्यादिभि: श्यामलास्तबकम्, भानुमतीकुचस्पृष्ट कथयितुमुपमानीरुपमानै: (७३) -- अभिज्ञान शाकुन्तलम्

देखने से पता चलता है कि वामनभट्ट ने अनुकरण करके अपनी मौलिकता नहीं खो दी है । गद्य-काव्य में उन्होंने ही विदूषक को स्थान दिया है जो राजा का मित्र बनकर कथावस्तु के विकास में सहायक हुआ है । दो बार विदूषक का वर्णन आया है । प्रोल्ल का विदूषक विवाह कराने में सहायक होता है और वेम का विदूषक द्राक्षारामपुरी के वैभव-वर्णन में अद्भुत सौन्दर्य लाता है ।

राजा प्रोल्ल और अनन्ता दोनों की वियोगावस्था में 'चन्द्रोपालम्भ' का वर्णन कवि की निजी विशेषता है[1] ।

दूसरी विशेषता यह है कि अन्य कवियों की भांति उन्होंने अपनी कथावस्तु को विविध कहानियों से बोझिल बनाकर अस्पष्ट नहीं किया है । एक ही कहानी है । उन्होंने अपने काव्य की कथावस्तु में स्त्री-पात्रों की बहुलता भी नहीं रखी है । अनन्ता और अनन्ताम्बा महिषियों में तथा सखियों में सौगन्धिका को ही स्थान दिया है । सामान्य स्त्रियों के वर्णन विवाह करके लौट कर आते हुए राजा प्रोल्ल को देखने के लिए उत्सुक पुरवासियों की संभ्रमता का सफल चित्रण किया है । गणिका जाति,

---

(पृष्ठ २३० का अवशिष्ट)

५- वेमभूपाल चरित--भूमिका--आर० कृष्णमाचार्य पृष्ठ ६

६- ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ६-१०

१- वेमभूपाल चरित--भूमिका--आर० कृष्णमाचार्य पृष्ठ ५७,७४-७५ ।

वेश्याओं की जननी और कुट्टनियों की जीवन-चर्या बताई है।

अश्वसेना से उड़ाई गई धूल का जितना व्यापक और आकर्षक वर्णन इस काव्य में हुआ है, वैसा अन्य काव्यों में प्रायः नहीं उपलब्ध होता है[१]।

वीर रस प्रधान काव्य होने के कारण कवि ने अपने नायक के दिग्विजय वर्णन में विशेष रुचि दिखायी है[२]। अतः उनके कई युद्धों का तथा युद्धभूमियों का सविस्तर वर्णन सफलता के साथ किया है[३]। युद्धों में पर्वतीय युद्ध तथा सामुद्रिक युद्ध विशेषरूप से अवलोकनीय हैं। इन युद्धों में परिस्थितियों पर विशेष ध्यान रखा है जिससे वांछित चमत्कार आ गया है।

उनके नगर राजधानी, जनपद आदि का वर्णन अपने ढंग का है। इनके वर्णन में उनके वर्ण्य-विषय निश्चित है। उनकी नगरी वर्णन में प्रासाद, प्राकार, दुर्ग, जलाशय, उद्यान, आर्थिक संपन्नता आदि के वर्णन का विषय मिलता है[४]। त्रिलिंग जनपद के वर्णन में तडाग, केदार, उपवन, शिवालय को लिया है। किसानों के आनन्द और उनकी लड़कियों का पक्षियों के भगाने के लिए कोलाहल का वर्णन करके सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है[५]। कांचि राजधानी के वर्णन में प्राकार, परिखा, दीर्घिका, कबूतरों का कोलाहल, भवन, उपवन, सरोवर, यज्ञ करने वाले ब्राह्मण और वार-विलासिनियों को स्थान दिया है[६]।

उन्होंने अपने कथावस्तु के विकास में केवल एक गिरि विन्ध्याचल को स्थान न देकर मलयपर्वत[७], हिमालय[८], कैलाश[९] आदि अन्य पर्वतों को स्थान

१-कैम० पृष्ठ १२६-३०
२- ,, पृष्ठ १३८,१५६-५७,१६२-६३,१४१।
३- ,, पृष्ठ १३६,१५०,१५७।
४- ,, पृष्ठ १६२
५- ,, पृष्ठ ७
६- ,, पृष्ठ १०-११
७- ,, पृष्ठ १५४-५६
८- ,, पृष्ठ १६५
९- ,, पृष्ठ १७१-७३

देकर व्यापक वर्णन किया है ।

कहीं-कहीं पर कवि की इस सम्बन्ध में दुर्बलता भी परिलक्षित होती है ।

कुछ विषयों में केवल परम्परा का पालन किया है । जल क्रीड़ा आदि का वर्णन कथावस्तु से सम्बन्धित न होकर केवल वर्ण्य-विषय के रूप में ही स्वीकार किया है[१] । इसी प्रकार प्रारम्भ में आठ श्लोकों में ईश्वर की स्तुति,काव्य का स्वरूप, बाणभट्टादि कवय: से पूर्व कवियों की ओर संकेत करके अपना पाण्डित्य प्रदर्शन, अपना तथा अपने नायक का परिचय देकर जनपद आदि का वर्णन करने के पश्चात् अपनी कथावस्तु में आ गए[२] । कथा-विकास में न राक्षस द्वारा विदूषक के पकड़े जाने की घटना और न राक्षस की भविष्यवाणी विशेष स्थान रखती है । इस घटना के न वर्णन करने पर भी कथावस्तु का विकास अविच्छिन्न चल सकता है । राजा के कर्तव्यशील होने का गुण और किसी प्रकार से भी चित्रित हो सकता था । इसी वंश-वृद्धि की वाणी— यह भी राक्षस के मुख से निकलवाने की कोई आवश्यकता न थी । क्योंकि संतति के अभाव में देवाराधना द्वारा संतति की प्राप्ति सभी कवियों ने तथा इन्होंने भी कान्ता के जन्म में स्कन्ददेव की कृपा और वेनभूप के जन्म में कामरूपाति की कृपा का उल्लेख किया है ।

पुनरुक्ति दोष भी इस विषय में देखा जा सकता है । कवि एक बार राजा प्रोल्ल का काले मृग का पीछा करना, वन में पहुंच कर हिन्दोल गान सुनना, कन्या को देखना, उसकी अनिर्वचनीय दशा का होना, राक्षस से पीड़ित विदूषक की आवाज सुनना वर्णित कर चुका था किन्तु पुन: राजा के मुख से पूरा वृत्तान्त विदूषक को कवि सुनवाता है[३] ।

इसी तरह राजा के पूछने पर सखी के द्वारा कान्ता की दशा चित्रित करने पर विदूषक राजा की बड़ाई करते हुए उसकी कामुकावस्था का चित्रण करता है जो उस परिस्थिति में उपयुक्त नहीं बैठता है[४] ।

१- वेनभूपा०च० पृष्ठ १०६
२- ,, पृष्ठ १-१६
३- ,, पृष्ठ ४२-४६
४- ,, पृष्ठ ७०

कहीं-कहीं समय का भी ध्यान नहीं दिया गया है । कन्या की वियोगावस्था का आवश्यकता से अधिक लम्बा वर्णन हो जाने से नीरसता आ गई और कथावस्तु के विकास में भी बाधा पड़ी है[1] ।

एक स्थल पर कवि की बहुत बड़ी असावधानी हो गई है । वह यह कि अन्य प्रिय राजातोग्रौरल के विवाह के उपलक्ष्य में 'पहले मैं राजा को नमस्कार करूँ' --भावना से आते हैं और प्रतिहारी उन पर दण्ड-प्रहार करते हैं[2] ।

रामकथा की कथावस्तु

इसमें वासुदेव कवि ने अपने गद्य-काव्य का विषय 'रामायण' से लेकर जगत्-विख्यात राम का चरित लिखा है । उनकी कथा को संक्षिप्त रूप करके अपनाया है किन्तु उनकी कथा से किसी अंश को छोड़ा नहीं है । राम के जन्म से पूर्व किए गए राजा दशरथ के यज्ञ से लेकर उनके राज्याभिषेक तक की कथा को अपने काव्य का विषय बनाया है । स्थान स्थलों पर कथा में किया हुआ परिवर्तन परिलक्षित होता है । उदाहरणार्थ इस काव्य में शूर्पणखा के बार-बार कभी राम और कभी लक्ष्मण के पास जाने से सीता के द्वारा उसकी हँसी उड़ाई जाने पर जब शूर्पणखा अपना भयंकर रूप दिखाकर सीता पर झपटती है तब लक्ष्मण ने उसके नाक कान काटे[3]-- ऐसा बताया गया है ।

इसी प्रकार इस काव्य में स्वर्णिम मृग की माया को जानते हुए भी राम के विवेक के नष्ट होने का वर्णन किया गया है जब कि कवि ने राम को ईश्वर का अवतार माना है[4] ।

१- कैम० पृष्ठ ७२-९०
२- ,, पृष्ठ ९२
३- रामकथा पृष्ठ १९
४- ,, पृष्ठ २४

इसके अतिरिक्त रावण ने शक्ति फेंक कर लक्ष्मण को मूर्छित किया[1] -- ऐसा इस काव्य में आया है ।

कथावस्तु में यत्रतत्र परिवर्तन के चक्कर में पड़ कर कवि ने उसके सौन्दर्य में बाधा उपस्थित कर दी है । एक स्थल पर नायक का ही चरित्र ही गिर गया है । जिस सीता के वियोग में राम वन-वन फिरे, अनेकों कष्ट उठाये उन सीता से वह अग्नि में प्रवेश करने के लिए कठोर वचन कहते हैं । क्योंकि सीता का विशेषण 'परपुरुषागारनिवासिता'[2] दिया गया है ।

सौंदर्य-वर्णन में कहीं-कहीं पर स्थान की उपयुक्तता का ध्यान न रखने के कारण भी इनकी कथावस्तु का विकास शिथिल हो गया है । क्योंकि रावण सब भाई, बन्धुओं के मारे जाने के बाद रण स्थल में पहुंच कर राम को देखता है तो ऐसे समय कवि को राम के पराक्रमी रूप का वर्णन करना चाहिए था किन्तु उनके सौंदर्य का वर्णन करने लगता है[3] । जब वह उनके सौंदर्य पर मोहित है तो वह राम के साथ लड़ाई कैसे कर सकता है ।

कहानी को आवश्यकता से अधिक संक्षिप्त कर दिया । छोटे-छोटे अनुच्छेदों में कथा का एक-एक अंश प्रतिपादित कर दिया है । वर्णन की प्रधानता नहीं है अतः उनके काव्य में कोई आकर्षण नहीं है । प्रकृति-वर्णन की एक प्रकार से उपेक्षा की गयी है । दण्डकारण्य के वर्णन में केवल एक पंक्ति प्रयुक्त हुई है --

"प्राकृत लक्ष्मणमिव बहुलता व्याप्ति दुर्गमं महेन्द्रभवनमिव महापुण्य जनाधिष्ठितं करकलित को दण्डदण्ड मण्ड को दण्डकारण्यम्[4] प्रविशत्" -- से कवि का प्रकृति-प्रेम तथा काव्य-प्रतिभा का परिचय हो जाता है ।

१-रामकथा पृष्ठ ४६
२- ,, पृष्ठ ५०
३- "... पुरस्तात्परमेण तेजसा दिवस करमपः कुर्वाणम् अभिनवतमालदल-मनोहरकान्तिम् आकण्ठामाधुरीमांगम् अरुणसरसिजायतविलोचनम् अनीकारम्भगाढविनद्धमुग्धवल्कवसनम् उज्ज्वलशरशरासनभास्मान करारविन्दम् आनन्दनिष्पन्दमाविलोकनयमानाय अनंगमिव संगृहीततापसवेषम् अनुपमगुणैक-मन्दिरं रामचन्द्रमवलोकयामास ।" पृ० ४८
४- रामकथा पृष्ठ १७

काव्य-प्रतिभा प्रकट करने का अवसर मिलने पर भी उन्होंने नहीं दिया है । प्राय: सभी गद्यकवियों ने अपने काव्य में प्रकृति तथा ऋतु-वर्णन को स्थान दिया है किन्तु उन्होंने इन दोनों की उपेक्षा की है ।

इसमें कवि ने न राजा दशरथ का और न तीनों रानियों का सविस्तर वर्णन किया । नख-शिख वर्णन करने की प्रवृत्ति भी इसमें नहीं है । केवल तीन रानियों का नाम गणना ही गई है । कौशल्या और सुमित्रा के वर्णन में केवल एक ही अलंकार यमक का प्रयोग किया है[1] ।

नायक के जन्म में दैवी कृपा वर्णित अवश्य की है किन्तु जन्म के पूर्व होने वाले स्वप्न की विशेषता को नहीं अपनाया है । पुत्रों के जन्म में यहाँ तक कि नायक के जन्म में भी कवि ने कोई उत्साह नहीं दिखाया है । नायक-जन्म का वर्णन इस सम्बन्ध में देखा जा सकता है --

> "उपगतवति मासि चैत्रनने, रजनिचरतिमिरनिकर काले
> नवमांगल्यमये समये, राज्ञ: प्रथम महिषी विगलितदोषानु-
> षंगम् अपगत कलंकुषंगम् अविरत विराजितं जगत्
> अपरमिव चन्द्रमसं रामचन्द्रमात्मजं जनयामास[2] ।"

युद्धों का कई बार वर्णन हुआ है किन्तु सर्वत्र सफलता मिली है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है । राम-रावणयुद्ध चूंकि नायक का युद्ध था तथा उसको महत्वपूर्ण स्थान देने के लिए उन्होंने उसके युद्ध का सविस्तर वर्णन किया है ।

नगरों में उन्होंने अयोध्या और लंका का ही वर्णन किया है । अयोध्या-वर्णन में कवि अपने पूर्ववर्ती गद्य-कवियों से प्रभावित हुआ है । वर्णन की शैली बाण जैसी है उसके वर्ण्य-विषय उस नगरी की पवित्रता, धनसम्पन्नता, सूर्यवंशी राजा तथा सरयू नदी हैं । एक छोटे-से अनुच्छेद में यह वर्णन प्रसंग समाप्त की गया है[3] ।

लंकापुरी के वर्णन में केवल चन्द्रशाला, सौध, प्रासाद, हर्म्य, का एक पंक्ति में बिना कोई सौंदर्य डाले वर्णन करके प्रसंग समाप्त कर

१- रामकथा पृष्ठ ३
२- ,, पृष्ठ ५
३- ,, पृष्ठ २

किया है । उनके वैभव- वर्णन में भी केवल चन्द्रकान्त मणि का ही उल्लेख किया है[१] ।

इसी प्रकार राजा दशरथ का वर्णन है[२] । कथावस्तु के प्रारम्भ करने की विधि के लिए अवश्य कहा जा सकता है कि कवि गद्य कवियों की परिपाटी का अनुकरण कर रहा है । प्रारम्भ में चार श्लोक आए हैं । प्रथम में गणेशस्तुति, दूसरे में आश्रयदाता आदित्यवर्मा और चौथे में काव्य लिखने की प्रेरणा का उल्लेख करके अयोध्या का वर्णन करके मूलकथा पर आ गए हैं ।

इस प्रकार इनके काव्य में केवल कथा की प्रधानता है । उसके विकास के लिए कवि जिन-जिन वस्तुओं (प्रकृति वर्णन, क्रीड़ा, जन्मोत्सव शिक्षा आदि) को अपनाते हैं उनको स्वीकार करना इन्होंने पसन्द नहीं किया ।

`आसफविलास` में कथा बिल्कुल ही नहीं है । इसमें केवल इतना-सी बात का वर्णन है कि शाहजहां काश्मीर जाता है जहां का राजा आसफखां उसका बहनोई है । इसमें केवल शाहजहां और आसफखां के गुणों एवं काश्मीर की प्रकृति का वर्णन किया गया है । यद्यपि राजा मुसलमान हैं किन्तु उनका वर्णन हिन्दू राजाओं की भांति किया गया है ।

इस काव्य की कथा की अत्यन्त संक्षिप्तता को देखकर कुछ लोगों का कहना है कि इसकी कथावस्तु अधूरी है[३] ।

इसकी वर्णन शैली बाण से प्रभावित है । इस काव्य का आरम्भ विघ्नविनाश के लिए की गई देवस्तुति से नहीं हुआ है । गद्य में केवल गणेश जी को भी सामान्य व्यक्ति के समान `श्रीगजवदनाय नमः` कहकर नमस्कार कर दिया गया है जिसमें कोई सरसता नहीं है । इन्होंने अपने काव्य लिखने का कारण आदि में न देकर अन्त में दिया है ।

अन्य गद्य-कवियों के समान हस्तिसेना, अश्वसेना का इन्होंने भी वर्णन आकर्षक ढंग से किया है किन्तु ये वर्णन अधिकांशतः पद्य में हुए हैं ।

१- रामकथा पृष्ठ ३२
२- ,, पृष्ठ २-३
३- पं०का० सं० --आर्येन्द्रशर्मा पृष्ठ ४

ही वैश्याओं की लोचना-चर्चा से भरा है ।

कथावस्तु के विकास में ये गद्य-कवि प्राचीन गद्य-कवियों के अतिरिक्त पद्य-कवियों से भी प्रभावित हैं । कथावस्तु के निरूपण में स्पष्ट है कि वामनभट्ट बाण पर महाकवि कालिदास तथा भवभूति का भी प्रभाव पड़ा है ।

किन्तु इसका तात्पर्य यह न ले लेना चाहिए कि उनके काव्य की कथावस्तु के विकास में मौलिकता नहीं है । जहाँ-जहाँ पर भी यद्यपि बाण आदि से प्रभावित होकर उनके ही वर्ण्य-विषय लिए हैं किन्तु उन्होंने उनमें अपनी कल्पना-शक्ति से तथा अलंकारों की समुचित योजना करके अतिशय सौन्दर्य ला दिया है । कहीं-कहीं पर कथावस्तु में नवीनता लाने के लिए कवि ने प्रयत्न किया है किन्तु उससे वर्णन-प्रसंग क्लिष्ट हो गए हैं । कहीं-कहीं पर कवियों की असावधानियाँ भी मिलती हैं जिससे कथावस्तु शिथिल हो जाती है । किन्तु इससे गद्य-काव्य का आकर्षण नष्ट नहीं हो जाता ।

-०-

द्वितीय प्रकरण

गद्य-काव्यों की शैली

—०—

गद्य-काव्यों की शैली

काव्य-रचना की सामर्थ्य रहते हुए भी यदि कवि की शैली उपयुक्त नहीं होती है तो उसे काव्य-रचना में असाधारण असफलता मिलती है। क्योंकि शैली अभिव्यक्ति का साधन होती है उसके द्वारा वह अपने विचार प्रकट करता है। यदि उसके विचार स्पष्ट न हुए तो पाठकों के ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता और कवि की यह तीव्र इच्छा रहती है कि उसका काव्य, उसके विचार सहृदय के बीच मान्य हों। इसके लिए कवि को अपनी शैली की ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है। शैली में कवि को भाषा शब्द-चयन, अलंकारों के प्रयोग छन्दों के प्रयोग की ओर ध्यान देना पड़ता है। उसको श्रेष्ठ बनाने के लिए औपपत्तिकता, सजीवता, प्रौढ़ता, प्रभावशालिता लानी पड़ती है। शब्दों के चयन पर ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि प्रत्येक शब्द से भिन्न-भिन्न अर्थ निकलते हैं। उदाहरणार्थ रुद्र शब्द का प्रयोग शिव के प्रलयकारी अथवा भयंकर रूप को बताने के लिए अधिक उपयुक्त होता है। इसी प्रकार कवि को शब्दों की शुद्धता पर ध्यान रखना पड़ता है, अप्रसिद्ध, अप्रयुक्त, असमर्थ, अवाचक, अपुष्टार्थ, निहितार्थ आदि जैसे शब्दों से सावधान होना पड़ता है, वाक्य-विन्यास की भी शुद्धता, रोचकता, संक्षिप्तता, प्रभावोत्पादकता आदि की ओर ध्यान देना पड़ता है, रमणीयता लाने के लिए ग्राम्यत्व, अश्लीलत्व आदि दोषों से सावधान होना पड़ता है, अलंकारों की समुचित योजना करनी पड़ती है क्योंकि इसके द्वारा सहृदय के हृदय-पटल पर सजीव एवं प्रभावपूर्ण चित्र अंकित हो जाता है तथा प्रसंगानुकूल ध्वनि-योजना करनी पड़ती है। क्योंकि सुमधुर स्वर-योजना रचनाओं में नाद सौंदर्य की अभिवृद्धि करती है। इसके अतिरिक्त कवि को चूंकि काव्य की आत्मा रस होती है अत: रस तथा भावों की सफल अभिव्यंजना की ओर ध्यान रखकर शैली के रूप में परिवर्तन लाना पड़ता है। जो कवि इसका आस्वादन नहीं करा पाता उसका काव्य काव्य नहीं रह जाता। अत: कवि के लिए शैली की सार्थकता रसानुभूति कराने में ही होती है। कवि

...रों के माध्यम से अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन करता है । अत: कवि को अपनी शैली में भाव पक्ष और कला पक्ष का समन्वय रखना पड़ता है ।

संस्कृत आचार्य काव्य के 'शैली' तत्व का से अनभिज्ञ नहीं रहे हैं । वे इसकी चर्चा 'रीति' और 'मार्ग' नाम देकर करते रहे । दण्डी और भोज ने इसे कविगमन मार्ग बताया --'अस्त्यनेको गिरां मार्ग: सूक्ष्मभेद: परस्परम्' (दण्डी), 'रिङ० गताविति' (भोज) जो स्पष्ट प से कवियों के अभिव्यक्ति प्रकार (शैली) की ओर संकेत करती है । डा० नगेन्द्र ने रीति और शैली में अन्तर नहीं माना है । उन्होंने शैली की व्युत्पत्ति 'शील' से बताई है[१] जिसका अर्थ 'स्वभाव' होता है और स्वभाव को व्यक्त करने वाली शैली होती है । दण्डी भोज कुन्तक आदि की दृष्टि से रीति में भी स्वभाव की अभिव्यन्जना होती है । डा० नगेन्द्र ने शैली के दो प्रमुख तत्व-व्यक्तित्व और वस्तुतत्व बताते हुए कहा है कि रीति का 'वस्तु-तत्व' से किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है । क्योंकि शैली के जो लय स्वर लालित्य आदि गुण पाश्चात्य विद्वानों ने माने हैं वे सब रीति के वर्ण गुम्फों और शब्द गुम्फों के अन्दर आ जाते हैं । शैली के 'व्यक्तित्व' के सम्बन्ध में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि रीति में व्यक्तित्व की यद्यपि उपेक्षा नहीं हुई है किन्तु वर्तमान रूप में जो शैली के सम्बन्ध में 'शैली विचारों का परिधान है' उपयुक्त शैली का प्रयोग' 'व्यक्तित्व का प्रकार है' आदि कहा जाता है उसमें 'व्यक्तित्व' की प्रधानता अधिक परिलक्षित होती है । इसी दृष्टि से ही डा० नगेन्द्र ने रीति और शैली में अन्तर देखा है अन्यथा नहीं ।[२] डा० सुशीलकुमार डे ने जो दोनों में अन्तर देखा है उसको भी डा० नगेन्द्र ने इस आधार पर निरर्थक कर दिया[३] ।

संस्कृत आचार्यों ने काव्य में तीन प्रकार की शैलियाँ अथवा रीतियाँ को अधिक स्वीकार किया है । वे रीतियां वैदर्भी, गौडीया और पांचाली हैं । इनके नाम कैसे पड़े-- इस विषय के प्रति संस्कृत आचार्य प्रारम्भ से ही

१- भा० का० शा० भू०--- डा० नगेन्द्र पृष्ठ ५३
२- ,, ,, ,, पृष्ठ ५३-५५
३- ,, ,, ,, पृष्ठ ५४

बड़े जागरूक रहे । भरत आदि की रीतियों के नामकरण में यद्यपि प्रादेशिक आधार प्रतीत होता है किन्तु यह आधार चिर स्वीकृत न रह सका । वामन ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि इन रीतियों का नाम देशों के आधार पर नहीं है अपितु वैदर्भ, गौड़ और पांचाल देश के कवियों ने वैदर्भी, गौड़ीया और पांचाली रीतियों का यथा तथ्य रूपों में प्रयोग किया है[1]। इस प्रकार तत्व रूप से रीतियाँ तो पहले से बनी थीं --प्रदेशानुसार नाम बाद में पड़ा ।

डा० नगेन्द्र ने रीति को कृषि के समान जलवायु विशेष की उपज नहीं बताया है ।[2]

रीतियों के इस आधार के अतिरिक्त रुद्रट और आनन्दवर्धन ने समास का आधार भी माना है । रुद्रट ने लघुसमास वाली रीति को पांचाली, मध्यमसमासवाली को लाटीया और दीर्घसमास वाली को गौड़ीया बताया । आनंदवर्धन ने लाटीया को नहीं माना[3]।

राजशेखर ने समास और अनुप्रास को रीतियों का आधार माना--

वैदर्भी	पांचाली	गौड़ी
असमास	ईषद् समास	समास
स्थानानुप्रास	ईषद् अनुप्रास	अनुप्रास [4]

भोज ने गुण और समास को आधार बताया है और अग्निपुराण में रीतियों का आधार समास, उपचार और मार्दव बताया गया है[5]।

कुन्तक ने कविस्वभाव को आधार माना और उनके नाम सुकुमारमार्ग, विचित्रमार्ग और मध्यममार्ग बताये ।

रसध्वनिवादी आचार्यों ने रीतियों का सम्बन्ध बदला और रस से करके उनका आधार वर्ण बताया । अर्थात् वे रीति को रस की अभिव्यक्ति का साधन और गुणों को रीति का आन्तरिक तत्व मानते हैं । अतः इन कवियों ने गुणों के वर्ण निश्चित कर दिए हैं । इन आचार्यों ने वर्णों के

१- भा०का०शा०भू० -- डा० नगेन्द्र से उद्धृत पृष्ठ ४१

२- ,, ,, पृष्ठ ४१

३- ,, ,, पृष्ठ ४५

४- ,, ,, पृष्ठ ४६

५- ,, ,, पृष्ठ ४६

अतिरिक्त समासों को भी आधार बनाया। अर्थात् वैदर्भी रीति में माधुर्य व्यंजक वर्ण तथा समासरहित अथवा छोटे-छोटे समासों को ग्राह्य बताया गया, गौड़ीया रीति में ओजगुण व्यंजक कठोर वर्णों तथा दीर्घ समासों को स्वीकार की गयी तथा पांचाली रीति में वे वर्ण ग्राह्य बताए गए जो न माधुर्य के व्यंजक हैं और न ओजगुण के, तथा समासों में पांच छ: पदों तक के समासों को उपयुक्त बताया गया[१]।

चूंकि माधुर्य गुण शृंगार, करुण, विप्रलम्भ और शान्त के लिए उपयुक्त होता है अत: वैदर्भी रीति का इन्हीं से अधिक सम्बन्ध होता है, तथा ओजगुण वीर,बीभत्स,रौद्र रस के लिए उपयुक्त होता है अत: गौड़ीया इन प्रसंगों में तथा युद्धों के वर्णन में अधिक उपयुक्त होती है।

संस्कृत गद्य-काव्य के लिए यद्यपि आचार्यों ने समासभूयिष्ठ और ओज गुण को प्राण तत्त्व के रूप में लिया है किन्तु उन्होंने इसके चक्कर में पड़कर भावों का अपकर्ष करना कवियों के लिए श्रेयस्कर नहीं बताया है। बाण ने सर्वत्र भावानुरूप अपनी शैली रखकर असाधारण सफलता पाई है।

एक प्रकार से बाण गद्य-काव्य के जन्मदाता हैं। उन्होंने गद्य-काव्य की समासा, असमासा, अल्पसमासा और श्लोक-समन्वित शैली बताई है किन्तु चौथी शैली को गद्य-काव्य के लिए बहुत उपयुक्त नहीं बताया। अत: उनकी रचना में केवल तीन प्रकार की शैली मिलती है। श्लोकों को स्थान गद्य के बीच में नहीं मिला है। प्रारम्भ में श्लोकों का प्रयोग करना गद्य-काव्य की एक विशेषता ही है।

किन्तु अर्वाचीन गद्य-कवियों ने अन्तिम इस शैली को बहुत स्थान दिया है। इसका कारण यह था कि इन कवियों ने बाण की अत्यन्त कष्टसाध्य शैली का अनुसरण करना तो चाहा किन्तु उसका निर्वाह आदि से अन्त तक न कर सके। अत: इस प्रकार की शैली के अभ्यस्त होते हुए भी वे वर्णन-प्रसंग में पद्यों को स्थान देकर उस शैली को अपनाने लग गए।

उन्होंने बाण की शैली में से समासबहुलता को लेकर अपने काव्य को क्लिष्ट बनाने में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया। यहां तक कि

१- सा० द० नवम परिच्छेद पृष्ठ २७०-७१

जहाँ तहाँ उन्होंने वर्णन को नीरस कर दिया । यद्यपि यह दुरूहता बाण की रचनाओं में भी है जिससे खिन्न होकर उनकी रचना के लिए वेबर ने उनके काव्यों की उपमा भयानक जंगल से की थी किन्तु उनके काव्य में सरसता नष्ट नहीं होने पाती है । उनके काव्य में जहाँ तहाँ पढ़ने से जो ऊब-सी होती है वह आवश्यकता से अधिक वर्णन के कारण ही होती है । वेबर ने बाण की जो आलोचना की है वह स्वाभाविक भी है । क्योंकि पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में शैली के गुण स्पष्टता, स्वच्छता, सरलता,लालित्य, उल्लास या प्रोत्साहकता, लय, मर्मस्पर्शिता आदि गुण माने गए हैं और दोष समासों का बाहुल्य, अप्रचलित शब्दों का प्रयोग, दीर्घ,अनुपयुक्त और अधिक विशेषणों का प्रयोग तथा दूरारूढ़ एवं अनुपयुक्त रूपकों के प्रयोग माने गए हैं[1] । सरलता के ठीक विपरीत संस्कृत गद्य-काव्य की विशेषता मिलती है । जो उनके यहाँ शैलीगत दोष समझा गया वह यहाँ अप्रचलित शब्दों का प्रयोग तथा अनुपयुक्त विशेषणों का प्रयोग छोड़ कर काव्य की विशेषता के रूप में अपनाया गया । यद्यपि समासों को इस काव्य में प्रधानता मिली है किन्तु संस्कृत आचार्यों ने शैली का एक गुण 'प्रसाद' होना भी माना है जो वैदर्भी रीति में पाया जाता है । इस गुण को भी गद्य-कवियों ने अपनाया है किन्तु अधिकांशतः भावपूर्ण स्थलों पर । वर्णनप्रधान स्थलों पर क्या प्राचीन क्या अर्वाचीन सभी गद्य-कवियों ने विशेषण विशिष्ट समासाच्छन्न शैली का प्रयोग किया है । अर्वाचीन गद्य-कवियों में कुछ गद्य-कवियों ने बाण की भाँति समास से धीरे-धीरे असमासा शैली में लाने का प्रयत्न किया है और कुछ ने आदि से अन्त तक एक-सी शैली रखी है । कुछ स्थलों को छोड़कर भोज ने जहाँ ऐसी शैली अपनायी है वहाँ शैली में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया है जिससे वर्णन प्रसंग में नीरसता आ गयी है । धनपाल की भी यह शैली मानसिक उद्वेग उत्पन्न करने वाली है । उन्होंने इस शैली का वर्णन अधिकांशतः पर्वत, मठ,मन्दिर, गृह आदि के प्रसंग में किया है । वैसे वे वैदर्भी शैली को श्रेष्ठ मानते हैं । ओडयदेव की समासाच्छन्न शैली कहीं-कहीं रस की चर्वणा में बाधक बनी है ।

१- शैली — पं० करुणापति त्रिपाठी पृष्ठ ८८-८९

इन कवियों की शैलीगत जटिलता को देखकर आलोचकों ने 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वं' कहना शुरू कर दिया जो बाद के गद्य-कवियों के लिए कलंक बन गया था । वामन भट्ट बाण ने इस कलंक को दूर करने का यथेष्ट प्रयत्न किया और अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक सफल हुए ।

जिस प्रकार प्राचीन गद्य-काव्य में दण्डी की शैली भिन्न है उसी प्रकार अर्वाचीन गद्य-काव्यों में वासुदेव की शैली भिन्न है । वासुदेव दण्डी की शैली से अधिक प्रभावित हैं यद्यपि इनके काव्य में दण्डी के काव्य जैसा सौंदर्य नहीं है ।

भोज की शैली --

भोज की शृंगार मंजरी को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह बाण की शैली से बहुत अधिक प्रभावित हैं । राजा, नगरी, गन्धधारा-गृह, प्रकृति-वर्णन आदि में इनकी शैली वही है जो बाण की है । अर्थात् इन प्रसंगों में विशेषण विशिष्ट दीर्घ समासाच्छन्न शैली की प्रधानता है । बाण ने विशेषण विशिष्ट शैली अपनाई अवश्य है किन्तु बहुत अधिक समासों के चक्कर में पड़कर अपनी शैली को क्लिष्ट बनाकर वर्णन-प्रसंग की सरलता को नष्ट नहीं कर दिया है । उन्होंने अपनी शैली में उतार-चढ़ाव रखा है । वे प्रारम्भ में अवश्य दीर्घसमासाच्छन्न वाक्यों वाली शैली का प्रयोग करते हैं किन्तु उनकी शैली मध्य में अल्पसमास वाली तथा अन्त में प्राय: समास शून्य शैली हो जाती है । किन्तु भोज की शैली में इस प्रकार की विशेषता बहुत कम परिलक्षित होती है । उनके अधिकांशत: वर्णन प्राय: एक सी ही शैली में रहते हैं जिससे उनमें पर्याप्त मात्रा में क्लिष्टता आ जाती है और पाठक को मानसिक पीड़ा का अनुभव करना पड़ता है । इस प्रकार से वेबर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने बाण की इस शैली के सम्बन्ध में आलोचना की है वह भोज के लिए एक प्रकार से अधिक समीचीन प्रतीत होती है । क्योंकि इस काव्य के वर्णन प्रधान स्थलों में पाठक को पग-पग पर दीर्घकाय एवं क्लिष्ट वाक्य रूपी पशुओं का सामना करना पड़ता है । इसका परिणाम यह होता है कि प्रसंग नीरस हो जाते हैं ।

इस काव्य में समासाच्छन्न शैली के अतिरिक्त अनुकार वाक्यों से परिपूर्ण शैली मिलती है[१]। इस प्रकार की शैली उपदेशात्मक स्थलों एवं विषमशीला द्वारा कही गयी कथानियों के प्रारम्भिक अंशों में अधिक उपलब्ध होती है । इस शैली का रूप कुछ अधोलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है --

'वत्स, यौवनं नामातिगहनमन्धतमः, दुःपरिहारं सर्वप्राणिभिः। दुःशीलत्वमदनः, नवोन्मादैरावासनं च विषयः ।...नदीनामिव निपतति-अलक्ष्य तरल प्रकृतीव मनः ।....तस्मात् यत्नेन रक्षणा त्वानुरूपेण धीरद्यया अवमन्तव्यम्[२] ।'

अथवा

'अस्त्यत्र कुण्डिनपुर नाम नगरम् । तत्र च महाधनः श्रोत्रियो महान् ब्राह्मणः सोमदत्तो नाम । तेन च विजय नम्रमीप्रति-विधानेनाभीष्टायैन प्रार्थितास्साराध्य पश्चिमवयसि सुरवाप्यत[३] ।'

किन्तु प्रत्येक कथानिका में इसकी शैली समासों से आक्रान्त हो गई है । अधिकांशतः जहां प्रकृति के अथवा हस्ति आदि के वर्णन आए हैं वहां कवि ने इसी प्रकार की क्लिष्ट शैली अपनाना अधिक पसंद किया है । रविदत्त कथानिका में वसन्त वर्णन , विक्रमसिंह कथानिका में वर्षा, माधव कथानिका में शरद् ऋतु, सुदर्शन कथानिका में समुद्र, देवदत्त कथानिका में अश्व-वर्णन, लावण्य सुन्दरी कथानिका में हाथी तथा सूर्योदय चन्द्रोदय , कुट्टनायंकन कथानिका में ग्रीष्म, तथा विन्ध्याटवी, स्वानुरागकथानिका में रात्रि के आगमन तथा उसके अन्त होने, उभयानुराग कथानिका में हेमन्त, सर्पकथानिका में वसन्त, मलयसुन्दरी कथानिका में पर्वत, और मूलदेव कथानिका में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन इसी प्रकार का है ।

कवि की समासाच्छन्न शैली का रूप अधोलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है --

---

१- शृंगार० पृष्ठ१६,२६,२८,३०,३५,४१,५६,६६,७३,७८,८१, ८४।
२- ,, पृष्ठ १६-२०
३- ,, पृष्ठ १६

"मदकुरकामिनीदह्यमान कटकलतास्वच्छजलावगाहिकामी रक्षुंभ-
कुसुम, अत्युन्नत शिखर कोटि संचलत्स्वरविम्बकया ग्लानिकृत -
धारिणी शिखामाणयवलातमनमिवोपलभ्यमागम्[1].... । इत्यादि ।

इसमें सन्देह नहीं कि इन वर्णनीय स्थलों में कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का एवं काव्य-प्रतिभा का निखार देखने को मिलता है, एक-दो स्थलों को छोड़कर उनके काव्य में पुनरावृत्ति भी नहीं मिलेगी । कहीं-कहीं पर विषयों की पुनरुक्ति प्रतीत होती है किन्तु वहां पर भी वर्णन की नवीनता रहती है । उदाहरणार्थ वसन्त ऋतु का वर्णन कवि ने दो बार किया है और दोनों ही बार रात्रि के छोटे तथा दिन के बड़े होने का वर्णन किया है किन्तु एक नवीनता के साथ —

> यो हि नाम त्रिभुवनविजयोद्यतेषु कामिष्वनाक्रामयाति
> गहनं नीत अतिकरुणयेव क्षिप्रमानमागमन्त्रान्तासु रजनीषु,
> अ: दक्षिणानिलाभ्यले निखिलजनस्यापि मधुसमये अत्यदानमनारम्भे-
> ऽत्यायततरां दूयन्ते वियोगिन इत्यनुकम्पादिवोपक्रान्तमानतायकारेषु
> वासरेषु[2] ।"

> "ज्योत्स्नया प्रत्याख्यानमालोक्य क्षपरमीथैव प्रतिवासरं
> तनिमानमागच्छन्तीषु रजनीषु, अतिनिबिडतर तुहिना-
> तिष्यमगमादिव संकोचमुत्सृजत्सु वासरेषु[3] ।"

इसी प्रकार शरद ऋतु वर्णन में कमलदीर्घिकाओं की उपमा वियोगिनी से देते समय जिन - जिन विशेषणों का प्रयोग किया गया है वे ही विशेषण वसन्त ऋतु वर्णन में भी लिए गए हैं किन्तु शरद् ऋतु के वर्णन में उस वियोगिनी से उपमा दी गयी है जिसका संयोग नष्ट हो गया है और वसन्त ऋतु में ऐसा नहीं है[4] ।

कहीं-कहीं पर कवि के शब्दभण्डार की व्यापकता भी दिखायी देती है । उदाहरणार्थ अधोलिखित उद्धरण में कवि ने 'ग्रीष्म' अर्थ के प्रतिपादक

१- शृंगार० पृष्ठ ७८
२- ,, पृष्ठ २१
३- ,, पृष्ठ ७६
४- ,, पृष्ठ ६७
५- ,, पृष्ठ ७६

कई शब्दों का एक साथ में प्रयोग करके अपनी शब्दराशि का परिचय दिया है । --

> मधुप्रमत्तामधकारे प्रमधुरकलिकाकुलं कुसुमकाननानि, अनन्तरं जम्बूकारककाननानि । आदावेव मन्मनोरथी ...क्तिरागं कामिनीनां हृदयमुत्पादयन्ति, पश्चादशोकतरु (F. 125 B.) वाटिका: । प्रारम्भेऽनुराग... कामिनीनां प्रतिकामिनीनां नयनानि मुकुलयति, तदनु कमलिनीवनानि । प्रारम्भ एव विरहिणीहृदयानां भेदमातन्वाने, पश्चात् ...रुद्राक्षग्रन्थीनाम् प्रसूत स्वान्यकारो कुर्वन्ति कामिजनहृदयानि, पश्चान्मधुकरकुलै: कुसुमकाननानि ।[1]

किन्तु ये सब होते हुए भी उनको मस्तिष्क को थका देने वाली यह शैली सौंदर्य की अनुभूति कराने में बाधक बन जाती है । यही कारण है कि बाण की भांति कवि ने यहां भी विन्ध्याटवी के रम्य और भयावह दोनों रूप अपनाया है किन्तु उनके दृश्य-निरूपण में विशेष सफल नहीं हो पाया है , यहां पर हाथियों के युद्ध का वर्णन करने से उनका वर्णन अश्लील भी हो गया है[2] ।

कवि के वर्णन में ऋतु संकलन करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है , रिपुदलन[3] नामक हाथी तथा धारा नगरी के पुरवासियों[4] के वर्णन में कवि की यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है । इसका एक उदाहरण पर्याप्त होगा --

> ग्रीष्म इव प्राप्ताशुचिसंगम: , प्रवृद्ध समय(F.5 ** B)
> इवाकृष्टोग्रकर:, शरद समय इव निर्मलाम्बररुचि: ,हेमन्तोरिव
> सदा समासिक्तोपासिका:, शिशिर इव सर्वदा तापरहित:[5] ।

१- शृंगार० पृष्ठ ७३
२- ,, पृष्ठ ५१
३- ,, पृष्ठ ४७
४- ,, पृष्ठ ३
५- ,, पृष्ठ ३

जिन स्थलों में कवि भोज समासाक्रान्त शैली के चक्कर में नहीं पड़े हैं वहां वे सजीव चित्र उपस्थित करने में सफल हुए हैं । कवि ने प्रात:काल सोकर उठे हुए पक्षियों का स्वाभाविक चित्र सफलता के साथ चित्रित किया है --

'प्रसुप्तस्थितस्तोक स्तोक दृष्टानां निद्राक्शेषो-
न्मिषदलसपक्ष्मपुटतया किंचि दुन्माजित दृशां स्वानंगुलिका-
गात्रमरो सुक तथा च मुहुर्मुहुर्विधुतपक्ष्मतयोरनीनामुदीय-
मानकूजां सरकुलानां शालात्मसि तरुशिरान्तराणि[१] ।'

कवि ने काव्य में प्रभावोत्पादकता लाने के लिए संवादों का आश्रय लिया है[२] । जहां संवाद का आश्रय लिया है वहां वैदर्भी का अच्छा निखार मिलता है । उदाहरणार्थ --

"लावण्यसुन्दरि ! पापो मा प्रापति: । त्वं हि मम जननी भवसि ।' सा तु साकूतम वादीत --'रत्नदत्त ! किमिति ?' रत्नदत्तस्तां पुनरवादीद्' किमन्यद ? त्वं हि-मत्प्रमोदहरा: , तद्भवतु पुत्री, उपविश्यतात् ।' .... [३] ।'

'उक्ते चैतया-'प्रियंगिके । कुतो भवती ?'
प्रियंगिका-- उज्जयनीत: । लवंगिके । भवती पुन: कुत: ?
लवंगिका -- क्वो ग्रामात् । .... [४] ।'

इस प्रकार के संवादों में उनके काव्य में नाटकीयता आ गयी है ।

विविध अलंकारों को अपने काव्य में स्थान देने के कारण कवि की शैली अलंकृत भी कही जा सकती है । कहीं-कहीं बिना अलंकारों के भी कवि ने चित्रण सफल किया है किन्तु मकरन्दिका नामक वेश्या की वियोगावस्था के चित्रण में उनकी अलंकारों से विहीन सादी शैली सफल नहीं हुई है । इस

१- शृंगार० पृष्ठ ६०

२- ,, पृष्ठ ३०,३५,४८,५५-६६ अन्यत्र भी ।

३- ,, पृष्ठ ६५

४- ,, पृष्ठ ३३

[illegible] राजा के लिए कवि ने 'पुण्डरीक' शब्द का प्रयोग किया है --
'पुण्डरीक [illegible] गजगामिनी:[2] ।'

[illegible] के लिए 'रति [illegible]'[3] शब्द का प्रयोग किया है।

बाण आदि पूर्ववर्ती कवियों के ढंग पर भोज ने कथानकों के आदि अथवा मध्य अथवा अन्त में छोटे-छोटे किन्तु भावगर्भित वाक्यों के प्रयोग से अपनी शैली में मनोहरता तथा गम्भीरता ला दी है। इन वाक्यों को 'सूक्ति' भी कहा जा सकता है। काव्य में आये कुछ आकर्षक सूक्तियां अधोलिखित हैं --

'[illegible] प्रेम्ण: [illegible] सर्वदैवात्मा रक्षणीय: ।' (पृ०१६)

'रामो [illegible] पुरुष: परिहरणीय: ।' (पृ० ७२)

'[illegible]: पुरुषा: कोपवशान्न [illegible] कुर्वते' (पृ०७३)

'अक्षमता हि पुरुषा: [illegible] कुर्वन्ति' (पृ०७८)

'[illegible] हि नाम त्रिवर्गैकसाधनं [illegible]ऽपैन्य [illegible] मूल्यता: ।' (पृ० ८४)

'गार्हस्थ्यं हि [illegible] ।' (पृ० ८४)

'यौवनं नाम [illegible]: दुष्परिहरं सर्वप्राणिनामपि: ।' (पृ०१६)

'नलिनीदलनिपतित जललवतरलं प्रकृत्यैव मन: ।' (पृ ०१६)

'दुर्दान्तानि [illegible] चेन्द्रियाणि ।' (पृ०१६)

इस प्रकार भोज ने अपने काव्य में सूक्तियों को बहुत अधिक स्थान दिया है। काव्य के अध्ययन से पता चलता है कि कवि भोज ने समासों की अधिकता होने के कारण वैदर्भी तथा समासों से रहित तथा लघुकाय वाक्यों का प्रयोग होने से वैदर्भी शैली को ही अपनाया है। अत: उनके वर्णन या तो अत्यन्त दुष्कर हो गये हैं अथवा अत्यन्त सरल। मध्यम समासा शैली का यत्र तत्र ही प्रयोग मिलता है किन्तु ऐसे प्रसंग अत्यन्त अल्प हैं जिन्हें नहीं के बराबर कहा जा सकता है। यद्यपि कवि समासभूयिष्ठ शैली के अपनाने में सफल नहीं कहा जा सकता है किन्तु उनकी लघुकाय शैली वर्णन में सफल हुई है और उससे कवि के काव्य में सरसता आ गयी है।

१- शृंगार० पृष्ठ ५०
२- ,, पृष्ठ २४

धनपाल शैली --

जैसा कि धनपाल के गद्य-काव्य 'तिलकमंजरी' की कथावस्तु में देख चुके हैं कि यह बाण से बहुत अधिक प्रभावित है । कथावस्तु में प्रस्तुत करने का ढंग बाण जैसा ही है साथ ही कवि का विस्तार के साथ वर्णन करने की प्रवृत्ति भी कई स्थलों में मिलती है । कहीं-कहीं ये वर्णन आवश्यकता से अधिक क्लिष्ट हो गये हैं । ऐसे प्रसंगों में कवि ने बाण की समासाच्छन्न शैली अधिकांशतः अपनाई है किन्तु वह उसका सम्यक् निर्वाह नहीं कर सके । वर्णन-प्रसंगों में समासों की अधिकता कभी-कभी उनके सौंदर्य को नष्ट कर देती है । इस प्रकार के वर्णन अधिकांशतः प्रकृति के सौंदर्य-वर्णन में प्राप्त हैं । जैसा कि इस काव्य के प्रकृति-निरूपण के सम्बन्ध में वैगैगिक अलंकार आदि के प्रयोग से कवि ने उसको आकर्षक बनाने का प्रयत्न किया है किन्तु इस शैली ने उनके प्रयत्न पर पानी फेर दिया है । प्रकृति-वर्णन के अतिरिक्त मंदिर एवं मठ आदि के वर्णन में भी इसी प्रकार की शैली मिलती है । कहीं-कहीं इनके समासाच्छन्न वाक्य साधारण वाक्य न होकर आवश्यकता से अधिक दीर्घ हो जाते हैं । जैसे --

'कृपाणचक्रप्रासपट्टिशप्रायप्रहरणदुरालोकाभिरा-
लोक्यमानविविधध्वजच्छत्रचामरोद्दामराभिरनेकमणी-
पीठपर्यस्तमुकुटकिरीटगर्भाभिर्विहारकालोपयुक्तवस्तु-
संभारनिक्षेपणस्थानिभिर्मञ्जूषाभिः....दृश्यमानाभिनवशाला-
जिरसंस्कारमपुराणमप्युपलभ्यमानविविधवामनकिरातचरित-
सुवर्णकांचनकलशवक्राक्रान्तविकटोरुकूटै स्तूपाकारैर्गिरिशिरो-
भिरिव ।'[1]

कवि की इस प्रकार की शैली एकाध स्थल पर ही सफल कही जा सकती है, अन्यथा कवि को इस शैली में कुछ विशेष सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है । इस शैली से सर्वत्र वर्णन-प्रसंग क्लिष्ट हो गया है । ऐसे वर्णन को पढ़ने के लिए पाठक को साहस करना पड़ता है ।

१- तिलक० पृष्ठ ३७०-७२

समासों के अतिरिक्त अर्थविरामों के अभाव के कारण भी काव्य के वर्णन-प्रसंग दुरूह हो गए हैं ।

कवि की एक विशेषता रही है कि किसी वर्णनीय प्रसंग का वर्णन केवल एक प्रकार की शैली में नहीं करते हैं । दीर्घसमासाच्छन्न वाक्य अन्त में आते-आते लघुकाय भी हो जाते हैं । अनेक स्थलों पर असमास भी मिल जाता है । वर्णन-प्रसंगों में इस प्रकार का परिवर्तन आ जाने से मस्तिष्क को आराम मिल जाता है और वर्णन-प्रसंग में सरलता आ जाती है ।

चूँकि गद्य-काव्य का प्राण तत्व ओजगुण माना गया है और उसमें समासों की अधिकता होती है । अतः कवि ने भी उस गुण को अपनाया जिसमें वह एक प्रकार से आग्रहशील रहा है, अन्यथा कवि काव्य की रीतियों में वैदर्भी रीति को श्रेष्ठ[१] मानता है और काव्य में क्लिष्टश्लेष को स्थान देना बिल्कुल पसन्द नहीं करता । उनकी दृष्टि में काव्य में वे ही श्लेष प्रशंसनीय होते हैं जो सहृदय के लिए मानसिक पीड़ा को देने के हेतु नहीं बनते हैं । अतः कवि ने अपनी शैली में उन्हीं श्लेषों को स्थान दिया है । अतः उनके श्लेष न काव्य की कथावस्तु के बाधक बनते हैं और न उनकी शैली को क्लिष्ट बना देते हैं । इसके विपरीत यत्र तत्र ध्वनि काव्य की पंक्तियाँ x जैसा चमत्कार वर्णन-प्रसंग में ले आती हैं । उदाहरणार्थ अधोलिखित उद्धरण में मलयसुन्दरी तपनवेग से कह रही है किन्तु उसकी ध्वनि समरकेतु से भी कहते हुए निकल रही है --

'अंगीकृतश्चायं नायकः । किंतु तिष्ठतु तावदावयोरभिलाषा।
[illegible]नुसारिणा कुमारीमन्तःपुरगतं गृहीत्वा [illegible] ।'[२]

इस प्रकार के वाक्य उसकी शैली को ध्वनि-प्रधान बना देते हैं ।

चूँकि कवि वैदर्भी रीति को काव्य में प्रमुख स्थान देता है अतः दीर्घकाय तथा समासाच्छन्न शैली के प्रयोग के वर्ण्य-विषय निश्चित हैं । जहाँ

१- तिलक० पृष्ठ १५६

२- ,, पृष्ठ २००

कहीं भी कवि को मानसिक अन्तर्द्वन्द्व[1], पात्रों की अवस्थाओं,[2] शोकपूर्ण स्थलों,[3] दार्शनिक तथ्यों के निरूपण[4] तथा विविध भावों की अभिव्यक्ति करने[5] की आवश्यकता हुई है वहां कवि ने प्रसादगुण शैली को ही अपनाया है । इसके अतिरिक्त जहां पात्र एक-दूसरे को समझाते हैं वहां इस शैली को स्थान मिला है ।[6] इस शैली का रूप अधोलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है --

> 'अथवा किमिदानीं कर्तव्यम् । यदि तावदस्य वचनमनुवर्तमाना नरपतिकुमारमेनं समाश्वासयामि, ततः श्रावणदुर्विनय जनितो गुरुजनस्य कोपो व्यापादनादयं: । अथ विस्मृत तत्प्रकृतवचनीत्याणि, ततोऽस्य जातिमात्रजनिताभिनिवेशं चात्यन्तमरक्ता न राजसुतोऽभिमानिना ।
> ......[7] ।

कहीं-कहीं तो मानसिक दशा के चित्रण में कवि ने आवश्यकता से अधिक लघुकाय वाक्यों का प्रयोग किया है । जैसे -- कष्टम्, स्वागता, क्व स्थिता, को मे देशः, के आलयः , किं मया प्रस्तुतम्, किमारब्धम्,[8] उत्पन्नजातस्मृतिरकृणवती शब्दमचेतनमन्वी स्पर्शमनुपजिघ्रन्ती गन्धम्... । इत्यादि ।

कवि ने भोज की भांति अपने काव्य में नाटकीयता लाने के लिए संवादों का भी आश्रय लिया है । जहां-जहां पात्रों के संवाद छोटे हैं । इस सम्बन्ध में चित्रवीर्य, वीर्यमित्र और मलयसुन्दरी के बीच होने वाले संवाद देखे जा सकते हैं ।[9]

कहीं-कहीं पर संवाद अत्यधिक दीर्घ हो गए हैं । उदाहरणार्थ राजा मेघवाहन और विद्याधर मुनि का,[10] मेघवाहन और श्री का,[11] पत्रलेखा, तथा नायिका और समरकेतु का[12] संवाद इसी प्रकार का है ।

1- तिलक० पृ० २५०,२८७-८८
2- ,, पृ० २८८,३५७
3- ,, पृ०३०७-८,३३५-३६,३३२-३३
4- ,, पृ०३४६
5- ,, पृ० २७१,३३६
6- ,, पृ० ३४६
7- तिलक० पृ० २८७
8- ,, पृ० २७७
9- ,, पृ० ३७१-७३
10- ,, पृ० २६-३१
11- ,, पृ० ५५-६१
12- ,, पृ०२७८-८६

"आर्य, किं ब्रवीमि । बुद्धिरपि मे न पश्यति गन्तव्यम्,
विधातापि न प्रवर्तयति वाचम्, आगति न संगच्छते जिह्वा-
ग्रेण ।.... जीवन्नेव पंचत्वमापन्न प्रत्युत्पन्नप्रलापः,
शरीरमपि तन्नेतद्विति प्रत्यभिज्ञानानुपपत्तिः । एवं च सर्वतो
निरस्तकारणव्यापारवृत्तिः, किं नागमनकारणं कथयामि । त्वया
तिष्ठत्वेषा कथा[1] ।"

इनके काव्य के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता है कि कवि ने पद्यों का प्रयोग नहीं किया है । अपितु इनके इस काव्य में इतना अधिक पद्यों की बहुलता मिलती है कि कुछ विद्वान् इसी के आधार पर `उदयसुन्दरी-कथा` को भी गद्य-काव्य मानने लग गए । यद्यपि संस्कृत आचार्यों ने गद्य-काव्य में पद्यों को अधिक स्थान देना उपयुक्त नहीं माना है अपितु उसमें पद्यों का निश्चित रूप ही ग्राह्य बताया है। किन्तु अर्वाचीन गद्य-काव्यों में पद्यों का बाहुल्य एक प्रकार से उस काव्य की विशेषता बन गयी है । इसका कारण कवि की दुर्बलता अथवा बाण की शैली के अनुकूल निर्वाह होने के साथ-साथ गद्य-कवि का पद्य-रचना में अपना चातुर्य-प्रदर्शन करना भी हो सकता है ।

कवि की शैलीगत इन विशेषताओं के अतिरिक्त कवि के शब्दों के चयन में भी कुछ विशेषताएं परिलक्षित होती हैं । कवि के कुछ विशिष्ट शब्द हैं । जैसे संसार के लिए `स्तम्भ` (समुपजातक्षावसारुणीकृतमिव ब्रह्म-स्तम्भम्)[2], समय के लिए `होरा` (होराकृष्टिषु नियुंजानेनांगुष्ठकादिप्रश्नेषु[3] ,

---

१- तिलक० पृष्ठ २२४-२५

२- ,, ,, ३५-३६

३- ,, ,, ६४

गणा कण्ठेषु वां हीरावगणाः[1]), बादल के लिए [illegible] (नवीन: वर्द्धुक रश्मिणां भवनेषु[2]) , चन्द्रकान्तमणि के लिए 'मृगांकमणि' (संयोजितमृगांक-मणिदारुनिर्मितोद्वार[3]) मनोहरता के लिए 'चामर' (प्रतिवेलमुद्धूयमानकनक-दण्डचामरैश्च चामरः[4]) मृत्यु के लिए 'संस्थिता' (कुलकन्यका चिरंस्मृतोद्भासिता संस्थिता[5]) आदि शब्दों का प्रयोग इनके काव्य में मिलता है ।

किन्हीं शब्दों के प्रति कवि की विशेष रुचि परिलक्षित होती है । इनमें 'भगिनि'[6] और 'कदरि'[7] शब्द विशेष उल्लेखनीय है ।

कवि ने नादात्मक सौन्दर्य पैदा करने वाले कुछ शब्दों का भी प्रयोग किया है । जैसे -- 'मधुरगम्भीरेण च रणरणायमानधर्मध्वनिरवेण संबोधितः[8] ।'

'सरस्वतीनूपुररणरणारवेण । गुमगुमायमानम्[9] ।'

कहीं-कहीं पर वाक्यों में प्रभाव लाने के लिए क्रियाओं का द्वित्व प्रयोग किया है जैसे --

'ममैव पृच्छतो धाव धाव । शीघ्रं कुरु कुरु प्रगुणां करे कृपाणिकाम् । छिन्धि-छिन्धि पुरतोऽस्य गच्छतो रशारिणः... कन्धरानालम्[10] ।'

१- तिलक० पृष्ठ ७६

२- ,, ,, ६८

३- ,, ,, ६८

४- ,, ,, १०५

५- ,, ,, ३२८

६- ,, ,, ३५,४५,४६,५४,५६,६२,२५४,१८७,१६२,१६५,२१४,२४५,
२७४,२७६,२६०,२६८,२६६,३०३,३१०,३२३,३२८,३३४,३४६,
३७६,३७७,३७६,३८५,४०५,४१६,४२२ ।

७- ,, ,, १३४,१३६,१३६

८- ,, ,, १५८

९- ,, ,, २२६

१०- ,, ,, ३२५

वर्णन करने का ढंग भी बाण जैसा ही है । अर्थात् राजा सत्यंधर के वर्णन में पहले दीर्घ समास शैली फिर धीरे-धीरे अल्पसमास-धारण करने वाली शैली हो जाती है । वर्णनों में विविध अलंकारों की छटा दिखायी देती है । राजा की शासन-व्यवस्था में जिस प्रकार बाण ने परिसंख्या अलंकार का तथा राजा के वर्णन में श्लिष्टोपमा आदि अलंकारों का प्रयोग किया है तथा देवताओं को उपमान बनाया उसी प्रकार ओडयदेव ने भी शासन-व्यवस्था आदि के वर्णन में परिसंख्या आदि अलंकारों को स्थान दिया है और वर्णन-प्रसंग को दीर्घ बनाया है ।

किन्तु विस्तृत वर्णन करने की प्रवृत्ति काव्य के प्रारम्भिक अंशों में अधिक उपलब्ध होती है । उनका काव्य विस्तृत वर्णन से पृथक नहीं हुआ है अपितु कथावस्तु की न्यूनता से हुआ है ।

इन्होंने बाण की अलंकृत शैली के अतिरिक्त समासयुक्त विशेषण विशिष्ट दीर्घ वाक्यों की शैली भी अपनायी है । इनके इस काव्य में दीर्घ समासाच्छन्न वाक्यों की प्रचुरता उपलब्ध होती है । अयोध्या आदि नगरी-वर्णन में, युद्धवर्णन में, करुण प्रसंग में, जीवंधर के मित्रों के क्रोध में, सत्यंधर के क्रोध में , गन्धर्वदत्ता के नख-शिख वर्णन में, बसन्त और ग्रीष्म ऋतु-वर्णन में, अश्वसेना वर्णन में, मार्ग तथा आश्रम आदि के वर्णन में इस प्रकार की शैली अपनायी गयी है । किन्तु कवि इस शैली का सर्वत्र निर्वाह सफलता के साथ नहीं कर सका है । इसका कारण इस शैली का अनुपयुक्त स्थल पर प्रयोग करना तथा समासाच्छन्न वाक्यों का आवश्यकता से अधिक दीर्घ बना देना है । पुलिन्दों के युद्ध के पश्चात् कवि उनकी स्त्रियों का विलाप कराकर करुण रस का आस्वादन कराना चाहता था किन्तु पाठक वहाँ के समासों के जाल में फँस कर वहाँ उस रस का आस्वादन नहीं कर पाता है[१]।

१- ग० चिं० पृष्ठ ४९-५०

कवि ने अधिक सम्पन्नता दिखाने के लिए 'कुबेर' से समता प्राय: सर्वत्र दिखायी है --

'कुट्टमशिलकुबेरनगरलीलनगरीरवा[1] ।'

'कदाचिदपरिमित कुबेरभवनवैभवम्[2] ।'

'अपरिमितकुबेरभवनवैभवं...[3] ।'

'मरकतदेशापदेशकुबेरकोशगृहपाणि:[4] ।'

'धनदपाशक्य: कुर्वन्सर्वगुण भद्रौ[5] ।'

'कुबेरदेशगोचैरपति:[6] ।'

'कुट्टमशिलकुबेरवर्णेण[7] ।'

'प्रज्ञागुणेरपा येन[8] ।'

इसी प्रकार नाक के वर्णन में शब्दों का थोड़ा-सा परिवर्तन हुआ है अन्यथा उसमें वे ही शब्द हैं --

'ललाटार्धचन्द्रबिम्बविगलदमृतधारासंदेहदायिन्या नासिकया[9] ।'

'ललाटेन्दुनिर्गलदमृतधारायमाण नासावंश[10] ।'

इन शब्दों के अतिरिक्त छाया बिखरने की कल्पना कई स्थलों पर मिलती है[11] ।

सेनाओं का वर्णन तीन स्थलों पर हुआ है किन्तु वहीं अश्वों का धूल उड़ाना और हाथियों का मदवारि बहाना वर्णित हुआ है[12] ।

१- ग०चिं० पृष्ठ ८
२- ,, ,, ३८
३- ,, ,, ७२
४- ,, ,, ९१
५- ,, ,, १०१,
६- ,, ,, १०३
७- ,, ,, १२३
८- ,, ,, १३१
९- ,, ,, ९३
१०- ग०चिं० पृष्ठ ६३
११- ,, ,, ७५,७०, १५१-५२ ।
१२- ,, ,, २१,२५, १३७-३८ ।

कवि ने समास शैली को अलंकृत करने एवं समासबहुल वाक्यांशों की रचना करने में भी सामर्थ्य का परिचय दिया है । यद्यपि कवि रस को महत्वपूर्ण स्थान देता है किन्तु इस काव्य में रस की एक प्रकार से उपेक्षा हुई है । लेकिन जैसा कि इन्होंने काव्य का लक्षण 'रमणीयार्थप्रतिपादक: शब्द: काव्यम्' माना है उसके अनुसार इस काव्य में सुन्दर एवं ललित पदावली का अभाव नहीं माना जा सकता है ।

इस प्रकार उत्तरकालीन गद्य-काव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि केवल वासुदेव को छोड़कर प्राय: सभी गद्य-कवि बाण की समासभूयिष्ठ दीर्घसमास तथा विशेषण-विशिष्ट शैली से प्रभावित हैं । उन्होंने इस शैली का प्रयोग प्राय: प्राकृतिक दृश्यों के निरूपण में अधिक किया है । कहीं-कहीं कवियों का इस शैली के प्रति आवश्यक मोह रखने के कारण वर्णन-प्रसंग के सहज सौन्दर्य नष्ट हो गए हैं और ऐसे प्रसंग भी क्लिष्ट हो गए हैं ।

कवि इस शैली के प्रयोग में उतने सफल नहीं हुए हैं जितने कि प्रसादमयी शैली के अपनाने में । इन गद्य-काव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वामन भट्ट बाण को छोड़कर प्राय: सभी गद्य-कवि वैदर्भी रीति को मुख्य स्थान देते थे । इन कवियों ने कथा-प्रसंग में इसी शैली को प्रधानता दी है । धनपाल ने रीतियों में वैदर्भी रीति को श्रेष्ठ माना है, इसलिए वे सभंग श्लेष को स्थान नहीं देते हैं किन्तु ये कवि एक तो बाण से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण और दूसरे गद्य-काव्य का प्राणतत्व ओजगुण मानने के कारण उस समासबहुला शैली से बच न सके ।

अर्वाचीन गद्य-कवियों की शैली की विवेचना से यह भी स्पष्ट है कि इन गद्य-कवियों में न केवल धनपाल ने ही अपितु धनपाल के बाद प्राय: सभी कवियों ने अपने काव्य में उनकी अपेक्षा कम किन्तु प्राचीन गद्य-कवियों की अपेक्षा अधिक पद्य को पर्याप्त स्थान दिया है ।

वामनभट्ट बाण की रचना में पद्यों का बाहुल्य नहीं कहा जा सकता है । प्रारम्भ में तो कवि परम्परानुसार अपना परिचय आदि देने में पद्यों का प्रयोग किया है । कथा-विकास में अवश्य प्रत्येक उच्छ्वास में छन्द आ गए हैं

तृतीय - प्रकाश

अलंकार विधान

-0-

नहीं है । गद्य-काव्य के जन्मदाता एक प्रकार से सुबन्धु ही हैं उनके काव्य में अलंकारों की भी बहुलता है । प्रत्यक्षर श्लेषमयी रचना करने के कारण श्लेष अलंकार का जितना दुरुपयोग हो सकता था सुबन्धु ने किया । बाण ने सुबन्धु द्वारा प्रवर्तित गद्य-काव्य की इस दुरूहता को भी दूर करके अपने गद्य-काव्यों में अलंकारों का समुचित प्रयोग करके कलापक्ष और भावपक्ष में समन्वय लाने की चेष्टा की । दण्डी ने अपनी शैली को अपने पूर्ववर्ती इन दोनों कवियों से भिन्न रखा अत: इन्होंने अपनी शैली को अलंकारों से बोझिल नहीं होने दिया जिसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि उनकी भाषा में प्रसादात्मकता अन्य समस्त गद्य काव्यकारों की भाषा की अपेक्षा सर्वाधिक है ।

परवर्ती गद्य-काव्यकारों ने प्राय: बाण की ही गद्य-काव्य-शैली को आदर्श मान कर अपने काव्यों की रचना की । अतएव उनमें राजधानी, नगर, राजा, रानी , प्रकृति-वर्णन, नख शिख वर्णन आदि जहां कहीं भी वर्णन प्रधान स्थल आये वहां उन्होंने अलंकारों की झड़ी लगा दी । ये कवि यद्यपि बाण की शैली के अनुकरण में विशेष सफल नहीं हुए हैं किन्तु अलंकारों के प्रयोग में इन कवियों के विषय में इस प्रकार की धारणा नहीं बनाई जा सकती है । अलंकार विषयक असफलता कवियों की कुछ ही स्थलों में मिलती है । वर्णन-प्रसंग में अलंकार उतने बाधक नहीं हुए हैं जितनी कि शैली । अलंकारों में कुछ स्थलों को छोड़कर इन कवियों की कल्पनाओं में नवीनता भी मिलती है । " रामकथा " के रचयिता वासुदेव ही कवि एक ऐसे हैं जिन्हें अलंकारों के प्रति कोई विशेष मोह नहीं है । भोज की शृंगारमंजरीकथा, धनपाल की तिलकमंजरी , ओडयदेव की गद्य चिन्तामणि, वामन भट्ट बाण के वेमभूपाल चरित और जगन्नाथ के आसफविलास में पर्याप्त मात्रा में अलंकारों को स्थान मिला है ।

शृंगारमंजरी कथा में अलंकार-विधान--

भोज ने अपने काव्य में बाण की ही शैली अपनाई है उन्हीं की भांति दीर्घ समासाच्छन्न विशेषण विशिष्ट वाक्य मिलते हैं, अलंकारों की बहुलता भी मिलती है किन्तु अलंकारों के प्रयोग में कवि की रुचि विशेष

इन अलंकारों में कवि को कुछ ही अलंकार विशेष प्रिय प्रतीत होते हैं। अतः उनका प्रयोग उसने प्रचुर मात्रा में किया है। उत्प्रेक्षा और उपमा अलंकार इसी कोटि में आता है। कल्पनाओं में नवीन मौलिकता का परिचय मिलता है। कुछ के अपवाद अवश्य मिलते हैं। जैसे अयोध्या नगरी के वर्णन में गगनचुम्बी प्रकार की चोटी के सम्बन्ध में की गयी कल्पना माघ के शिशुपाल वध की कल्पना से प्रभावित है --

'अभ्यागत गगनशिखोत्तोरिणा प्राकारशिखरैण सतिश्रमत्या प्रस्फुल चाटुरिव प्रत्यग्रवन्दनमाला श्यामलाविलोगुरं विलम्बमानाय पावसुरंगुः रविरणाश्वपंक्तिमरुण: ।' (विलास० पृ० ११)

'कुतूहलेन वाद्युपेत्य प्राकारभित्तेः शतमानिनामिव: ।
रत्नरोदाद्भुक्तमम्बुवर्षतटाकेन दन्त्या बहिरम्बुवाह: ।।४१।।

(शिशुपालवध तृतीय सर्ग)

किन्तु जहां वह पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित हुए हैं वहां उन्होंने दूसरे कवियों को भी प्रभावित किया है। परिखा के जल में प्रतिबिम्बित प्राकार से मैनाक पर्वत के डूबने की उत्प्रेक्षा जिस प्रकार इस काव्य में है, उसी प्रकार की १२ वीं शताब्दी में होने वाले हर्ष के नैषधीयचरित में मिलती है --

'मनोरथानामपि दीर्घलंघ्येन पक्कानकसिकसुम्भासमापगो-भिणा जलप्रतिबिम्बितप्राकार छलेन जलराशिशंकया मैनाकमन्वेष्टुमन्त: प्रविष्टमिवातेव महता मालपल्यो वेष्टिता। (विला०पृ०८)

'स्वप्नप्रतिबिम्बितायतिभिरुच्चैस्तरत्नाटकम्: ।
निमज्य मैनाकमहीभृत: खातताल पदानद्धुवत: स्वपतताम्।।१३

(नैषधीय चरित प्रथमसर्ग)

कवि ने पात्रों के स्वरूप-वर्णन में प्राकृतिक दृश्यों के रम्य और भयावह रूप के चित्रण में दृश्यों का सजीव चित्र उपस्थित करने में, भावों की अभिव्यंजना कराने में तथा पाठकों को रस-स्थिति में पहुंचाने में जो अलंकार का आश्रय लिया है और कवि पर्याप्त मात्रा में सफल भी हुआ है।

कवि की इस सम्बन्ध में यह विशेषता रही है कि परिस्थिति तथा वातावरण के अनुकूल ही कल्पना का आश्रय लेकर इस अलंकार का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ विद्याधरमुनि के चरणों में लटकती पुष्पों की माला से कवि भव-सागर में डूबे प्राणियों के उद्धार होने की उत्प्रेक्षा अधोलिखित पंक्तियों में कर रहा है --

"... रर्णकुसुमस्त्राग्भि: समन्ततो जटिलीकृतेन
दुस्तरभवकूपनिपतितप्राणिसार्थोद्धरणार्थमथ: प्रवर्तित-
पुण्यरज्जुनेव.... चरणद्वयेन द्योतमानम्[१] ।"

इसी प्रकार मृत्युलोक में अवतार लेने वाले वैमानिक के चरणों में लिपटते भ्रमरों के सम्बन्ध में कवि उसके वियोग से दु:खी एवं पुन: शीघ्र आने के लिए प्रार्थना करने वाली सुरांगनाओं के अश्रु से उत्प्रेक्षा करता है[२]।

उद्यान में खड़े गन्धर्वक के हाथ से निकली कान्ति से कवि जलधारा की कल्पना करके वृक्षों के आलवाल के सिंचन की कल्पना करता है तथा पहले उसे चित्रकला में निपुण बताकर उस प्रसंग में उसके हाथ की मणि खचित अंगूठी से आकाश में चित्र निर्माण की कवि उत्प्रेक्षा करता है[३]।

समुद्र में समरकेतु और मलयसुन्दरी के डूबने की घटना के पश्चात मलयसुन्दरी समरकेतु को देखती है। उस समय कवि ने उसके हार की उत्प्रेक्षा समुद्र में डूबने में स्पर्धा करने की इच्छा से उसके कण्ठ में लगी नदियों के साथ की[४] है।

१- तिलक० पृष्ठ २४
२- ,, ,, ३६
३- ,, ,, १६४
४- ,, ,, ३११

पात्रों के अनुरूप इस अलंकार का प्रयोग होने से यह अलंकार रस की व्यंजना भी करा देता है । इस सम्बन्ध में वेताल का वर्णन द्रष्टव्य है[१] ।

पात्रों के अतिरिक्त कवि ने समय-परिवर्तन में भी उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग परिस्थिति के अनुकूल ही किया है । उदाहरणार्थ मेघवाहन प्रजा के दुःखों के निवारणार्थ निकला है उस समय कवि ने मध्याह्न का वर्णन राजा से अपने दुःख का निवेदन करते हुए किया है --

तांप्रतिग्मांशुकरनिपातोपतापित: स्वदु:खमाविष्कर्तुमिव प्रत्यासन्नाद मध्याह्नसमय:[२] ।

इसी प्रकार समरकेतु की सामुद्रिक यात्रा की समाप्ति के पश्चात् फैले अंधकार में कवि समुद्रयात्रा कर चुकने वाले यात्री की तथा फैली इसकी लालिमा में ताराओं की सेना मान कर उनके द्वारा धूल उड़ाये जाने की कवि सम्भावना करता है[३] ।

प्रकृति को कभी सहचरी कभी सहानुभूति प्रकट करने वाली कभी मंगल विधान करने वाली के रूप में अपनाने में कवि ने इसी अलंकार का आश्रय लिया है । वर्षाऋतु[४] का पूरा वर्णन हरिवाहन को सान्त्वना देने में ही हुआ है और हरिवाहन की खोज के लिए जाने को तत्पर समरकेतु का मंगलविधान करने के लिए उत्सुक प्रकृति सूर्योदय के प्रसंग[५] में आई है । इन प्रसंगों के अतिरिक्त भी इस प्रकार[६] की कल्पनाओं से युक्त उत्प्रेक्षा अलंकार के रूप देखने को मिलते हैं ।

१- तिलक० पृष्ठ ४६-४८
२- ,, ,, ६६
३- ,, ,, १५०
४- ,, ,, १७६-८०
५- ,, ,, १६७-१६८
६- ,, ,, २५३, २५७

मलयसुन्दरी के वक्षोस्थलस्थित स्वर्णिमकंकण से वेष्टित प्रकोष्ठ एवं कर्णाभूषण दोनों के वर्णन में कवि ने जल के बुदबुदे के साथ उत्प्रेक्षा की है[1]।

वर्णन-प्रसंगों के सामान्य सौन्दर्य-वर्णन के अतिरिक्त कवि ने इस अलंकार का प्रयोग भावों की उत्कृष्ट अभिव्यंजना कराने में भी किया है। पुत्र के अभाव में अत्यन्त दुःखी मेघवाहन का चित्र खींचने में कवि इसी अलंकार के आश्रय से ही सफल हो गया[2]।

संधि के रूप में वज्रायुध को दिए जाने की बात से दुःखी मलयसुन्दरी की अवस्था के चित्रण में हृत्स्नेवानिदारिता बलात्, उपरिपर्यस्तेन गिरिणेव गुरुणा समाक्रान्तेवाधिवयवे[3] से उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया है।

इसी प्रकार समरकेतु की कुशलता जानकर शान्त हुई मलयसुन्दरी के वर्णन[4] में, मलयसुन्दरी को देखकर समरकेतु की श्रृंगारिक चेष्टाओं के वर्णन[5] में तथा किंपाक फल खाने के बाद मलयसुन्दरी के शिथिलांग के वर्णन में[6] इसी अलंकार का प्रयोग सफलता के साथ हुआ है।

उत्प्रेक्षा अलंकार के बाद कवि ने उपमा अलंकार को काव्य में अधिक स्थान दिया है। भावों की अभिव्यंजना कराने में कवि ने या तो उत्प्रेक्षा अलंकार को या उपमा अलंकार को ही स्थान दिया है। अकस्मात् प्राप्त शोकावस्था तथा प्रसन्नावस्था के चित्रण में उपमा अलंकार का

१- तिलक० पृष्ठ १६०-६१

२- ,, ,, २०-२१, २७

३- ,, ,, २६८

४- ,, ,, ३४७

५- ,, ,, २७८

६- ,, ,, ३३५

अधिकांशतः प्रयोग हुआ है । उदाहरणार्थ मंजीर द्वारा प्राप्त आर्या का विवेचना से जहां सब राजकुमार प्रसन्न हो रहे थे वहां कवि मलयसुन्दरी के वियोग से पीड़ित समरकेतु की उपमा पारिखक इव वनचरः लब्धमिथ्याभिशाप इव माधुरकमात्प्रनष्टनक्तग्रहस्वामनेय इव गृहपतिः[1] से करता है ।

इसी प्रकार समरकेतु से मिलने की आशा करने वाली मलयसुन्दरी को जब सब की कुशलता मिलती है और समरकेतु की नहीं तो उस समय उसकी अवस्था का निरूपण कवि 'ग्रमालिनाथ प्रवण सिमवती हंसी'[2] कहकर करता है । इस प्रकार की उपमा उसके अश्रुप्लावित नेत्रों के सम्बन्ध[3] में तथा ज्वलनप्रभ के वियोग में दुःखी प्रियंगुसुन्दरी के वर्णन[4] में मिलती है । मलयसुन्दरी के वियोग में दुःखी समरकेतु को चन्द्र किरणें बाण की तरह तथा वायु विष की तरह उपमा अलंकार के साथ ही बतायी गई है[5] । तिलकमंजरी का वियोग-वर्णन अधिकांशतः उपमा अलंकार के साथ हुआ है जिसमें उसकी उपमा रात्रि में खिलने वाली (नष्ट निद्रा) कुमुदिनी, भूमि पर सोने से स्थलकमलिनी, फलमूल को खाने से शबरी, क्षीणकान्ति होने से शिशिर की दिनलक्ष्मी से , अपने ताप से कमलों को दुःख देने से ग्रीष्मकालीन सूर्य की कान्ति से दी गई है[6] ।

वियोग-वर्णन के समान अकस्मात् प्राप्त प्रसन्नावस्था के चित्रण में कवि ने उस अलंकार का प्रयोग किया है जैसे हरिवाहन के वियोग में दुःखी समरकेतु वनमार्ग में अचानक गन्धर्वक को देखता है उस समय कवि ने उसकी अवस्था के चित्रण में --'प्रथमपायोदाभिवृष्ट इव मरुस्थलाभोगः पार्वणेन्दुचन्द्रिकापरिप्लावित इव ग्रीष्म कुमुदाकरः[7] में इस अलंकार का

१- तिलक० पृष्ठ १११
२- ,, ,, ३८५
३- ,, ,, २५८
४- ,, ,, ४०७
५- ,, ,, ३२४
६- ,, ,, ४१७-१८
७- ,, ,, २२२

प्रयोग किया है ।

समुद्रयात्रा में अकस्मात् दिव्यध्वनि का कौतुहल वश अनुसरण करने के पश्चात् समरकेतु को जब उसका कुछ भी फल नहीं मिलता है तो कवि ने उसकी दुःखावस्था का चित्रण --'कस्मान्मयामिथ्याकुतूहलतरलितेन सहसैव दुर्यस्तमुपसृत्य धावता शिशुनेव च्युतां परामात्मा नीतः'[1] -- कस्कार इसी अलंकार के साथ किया है ।

हरिवाहन को ढूंढने के प्रति समरकेतु का उत्साह दिखाने के लिए कवि ने 'परिक्रमन्नेव दुर्गमातिभिः पदैरध्वानि सर्पतो ,... मारुतैरिव क्रमेणाशेषेणदुस्तारसिन्धोः ,कदाचित्दग्न्यात्शिलादग्नैरिव दुष्पादपारपारग्रामाश्रयिणः'[2] आदि में इस अलंकार को स्थान दिया है ।

कृत्याओं का भयंकर रूप[3] तथा वेताल के बीभत्स रूप[4] को चित्रित करने में इस अलंकार की उपयोगिता देखी जा सकती है ।

राजा के वर्णन में देवता आदि को तो उपमान बनाया ही है साथ ही मयट् निष्पन्न शब्दों को भी उपमान बनाया है जैसे--

'पृथ्वीमय इव स्थैर्ये, तिग्मांशुमय इव तेजसि, सरस्वतीमय इव वचसि'[5] इत्यादि ।

मयट् गत उपमा का क्रम सरोवर में प्रतिबिम्बित लाल कमल, विद्रुमलताओं और इन्दीवरों के वर्णन प्रसंग में मिलती है जिसमें चार प्रहर की कल्पना की गई है --

'प्रत्यूषायमाणं पद्मरागरक्तोत्पलखण्डैः, सन्ध्यायमानमुन्मुद्रविद्रुमलतापवनैः,[6] प्रदोषायमाणमिन्द्रनीलेन्दीवरगहनैश्चन्द्रोदयायमानमिन्दुकान्तकुमुदाकरैः ।'

१- तिलक० पृष्ठ १४८

२- ,, ,, २०१

३- ,, ,, २३३-३४

४- ,, ,, ४६-४८

५- ,, ,, १४

६- ,, ,, २०४

इन स्थलों के अतिरिक्त भी उपमा अलंकार के प्रयोग के कई स्थल इस काव्य में आए हैं।[1]

इस काव्य में श्लिष्टोपमा अलंकार का भी प्रयोग[2] हुआ है किन्तु जैसा बाण की कादम्बरी तथा भोज की शृंगारमंजरी कथा में इस अलंकार की प्रियता दिखायी देती है वैसा इस काव्य में नहीं है। यद्यपि कई वर्णन-प्रसंगों में इस अलंकार को कवि ने स्थान दिया है किन्तु कहीं-कहीं पर एक-दो पंक्तियों में इस अलंकार के प्रयोग की इतिश्री कर दी ~~गई~~ है। परन्तु विद्याधरमुनि के वर्णन में इस अलंकार का प्रयोग कवि ने कई बार किया है। मुनि के अनुरूप ही कवि ने उपमान के विषय ढूंढे हैं जैसे --

त्रयीमिव महामुनिसहस्त्रोपासितचरणाम्, विन्ध्यगिरिमेखला-मिवानामालोपशोभिताम्, त्रिभुवन सृष्टिमिव प्रकटीक्रियमाणप्रजाम्... नदीतट तरुमिव स्फुटीक्रियमाण जटम्... अस्तशैलमिव स्वयं पतितकल्पद्रुम-कुसुमवल्कलावृत नितम्बम्[3]।"

एक स्थल पर कवि ने क्षेत्रगणित को उपमान बनाकर अपने गणित विषयक ज्ञान का परिचय दिया है --

"क्षेत्रगणितमिव लम्बभुजकर्णदिमासितम्[4]।"

वैसे इन्होंने श्लिष्टोपमा में विविध शास्त्रों, महाभारत के पात्रों राम की कथा से सम्बन्धित किसी भी विषय को उपमान रूप में स्थान नहीं दिया है। सरोवर के वर्णन में आई "सौमित्रचरितमिव विस्तारित मिंतास्वर्शीमम्[5]" श्लिष्टोपमा में उनके परवर्ती कवि वामन भट्ट बाण बहुत प्रभावित हुए[6]।

१- तिलक० पृष्ठ ७४,७८,७९,८८,९४,२३७-३८,२४७,३५८ इत्यादि।

२- ,, ,, २४-२५,१०२,२०४,२११-१२, ३६८,३७० इत्यादि।

३- ,, ,, २४

४- ,, ,, २४

५- ,, ,, २०४

६- --"लक्ष्मणमनोवृत्तिरिवऊर्मिलाश्रिते:"। (वेमभूपा० पृ०१२)

काव्य में विरोधाभास[1], विभावना[2], विशेषोक्ति[3], व्यतिरेक[4], अतिशयोक्ति[5], अर्थान्तरन्यास[6], अपह्नुति[7], सन्देह[8], पर्याय[9] तथा यमक[10] अलंकार का प्रयोग हुआ है किन्तु इनके प्रयोग-स्थल की संख्या अत्यन्त अल्प है और कवि की विशेष रुचि भी इन अलंकारों के प्रति परिलक्षित नहीं होती है । यमक, पर्याय तथा अर्थान्तरन्यास अलंकारों का प्रयोग कवि ने केवल एक बार किया है । राजा मेघवाहन के शत्रुओं की स्थिति को बताने में यमक, वज्रायुध तथा समरकेतु के बीच घमासान युद्ध में राजलक्ष्मी की स्थिति को बताने में पर्याय, तथा विद्याधरमुनि के राजा मेघवाहन के पास आने के समर्थन में अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग है ।

अपह्नुति तथा सन्देह अलंकार के प्रयोग-स्थल दो हैं -- हरिवाहन और समरकेतु के वाहन में मिल जाने के पश्चात् सूर्योदय के समय बहने वाली शीतल वायु तथा सरोवर की उत्कृष्टता बताने के लिए कवि ने अपह्नुति अलंकार का प्रयोग किया है ।

गेहे देव्या: तुषिरनिपतन्मारुतोत्तानवेणी
कृत्वाकोणं विरचितलयो वादयन्दन्तवीणाम् ।
रात्रौ छिद्रै: सह सहचरै: सेवते त्वद्विपदा:
किं संगीतं नहि नहि महीनाथ हैमन्तशीतम् ।।[11]

और दूसरे स्थल में इस अलंकार का सामान्य रूप मिलता है जिसमें 'छल' शब्द का प्रयोग हुआ है --

'मन्ये नास्य महिमानमालोक्य संजातमत्सरा वडवानलच्छलेनान्तः-संतापमुद्वहन्तो मुहुः प्रान्तेषु प्रतिवसन्ति जलधयः ।'[12]

१- तिलक० पृष्ठ १३,१५,२४-२५,२०४,२४०,३७०
२- ,, ,, २७८,३६८
३- ,, ,, १०४,१२०,२१,२७८
४- ,, ,, ८,१५, १६५
५- ,, ,, १५, २०६
६- ,, ,, २५
७- ,, ,, २०६,३५८
८- ,, ,, २०५,२४८
९- ,, ,, ६१
१०- ,, ,, १६
११- ,, ,, ३५८
१२- ,, ,, २०६

इन सब अलंकारों में विरोधाभास अलंकार का प्रयोग फिर भी कुछ अपेक्षाकृत अधिक हुआ है ।

इस प्रकार इस काव्य का पूरा अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कवि ने अपनी काव्य-प्रतिभा का विशेष परिचय उत्प्रेक्षा और उपमा अलंकारों के प्रयोग में ही किया है । इन्हीं दोनों अलंकारों का आश्रय लेकर दृश्यों का सजीव चित्र अंकित किया है तथा पाठकों को रसास्वादन कराया है । परिसंख्या तथा श्लेष अलंकारों की अधिकता है किन्तु उनके प्रयोग के स्थल इने-गिने हैं । काव्य में प्राप्त अन्य अलंकार वर्णन-प्रसंग में विशेष सौन्दर्य के विधायक नहीं बनते हैं ।

गद्यचिन्तामणि में अलंकार विधान

ओडयदेव ने अपने काव्य में उत्प्रेक्षा, उपमा, श्लिष्टोपमा, मालोपमा, रूपक, विरोधाभास, व्यतिरेक, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति, प्रताप, श्लेष, उल्लेख, अर्थान्तरन्यास, अनुप्रास, भ्रान्तिमान्, सन्देह तथा परिसंख्या अलंकारों का प्रयोग किया है किन्तु इन अलंकारों में उत्प्रेक्षा, उपमा, श्लिष्टोपमा, मालोपमा और रूपक अलंकारों का बाहुल्य परिलक्षित होता है ।

उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग कवि ने नगर की समृद्धता, सौन्दर्य वर्णन भावों एवं रसों की अभिव्यंजना कराने में किया है । इस अलंकार के प्रयोग में सर्वत्र नवीनता ही परिलक्षित होती है । कुछ अधोलिखित उद्धरणों से उनकी काव्यप्रतिभा का अनुमान लगाया जा सकता है --

जिनालय में बने सिंह के सम्बन्ध में कवि उत्प्रेक्षा कर रहा है --

यं च दिशि दिशि दृश्यमानाजिनालयकलशांशुसंतानविलोपक-
बलिका इव गौतमीन्द्रगुप्तपारिणः।[1]

१- ग० चिं० पृष्ठ ५

'ललाटार्धचन्द्रबिम्बविगलदमृतधारा गंधेदाकि न्या नासिका' (ग०चिं० पृ० १३) तथा ललाटेन्दुनिपंकतुलधारापभाग नासावंशम्' (ग०चिं० पृ०६३

'ललाटशशिमणि [illegible] कान्ति [illegible] इवायां [illegible] वीगवलं [illegible] निराजमानम्' ([illegible] पृ० ३३)'

गुणमंजरी के सौन्दर्य-वर्णन में कवि ने जो कामदेव की समस्त सामग्रियों के [illegible] में उत्प्रेक्षा की है, वह दण्डी से प्रभावित है। इस प्रकार से पूरा वर्णन ही 'दशकुमार चरित' से उतारा हुआ प्रतीत होता है--

'अ[illegible] मदनमहाराजविजयसाधनानां समवाय इव योषिद्वेषेण लक्ष्यते। तथाहि तस्य धनुर्यष्टिरिव भ्रूलते, मधुकरमालामयो ज्येव नीलालकद्युतिः अस्त्राणि वापांगविक्षेपाः, वैजयन्ती दुकूलमिव दशनवसनमधुरवलालक्ष्म, प्रियसुहृदिव मलयानिलो निःश्वासमारुतः, परभृतकलगिवालि मंजुलभाषितम्' इति।' (ग०चिं० पृ० १२८)

'धनुर्यष्टिर्भ्रूलताभ्याम्, भ्रमरमालाभरी ज्यानीलालकद्युतिभिः अस्त्राण्यपांगवीक्षितवृष्टिभिः, महारजन अक्षपटांशुकं दन्तच्छदमधुरवर्णाः प्रथमसुहृन्मलयमारुतः, परिमलगन्धवाही निःश्वासपवनेन, परभृत-मंजुलैः प्रलापैः।' (दशकुमार चरित पृष्ठ [illegible])

अन्य कवियों की भाँति इन्होंने भी भय से किसी के शरण लेने की उत्प्रेक्षा कई बार की है[1]।

सामान्य सौन्दर्य निरूपण में तो कवि ने इस अलंकार का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त विशेष उद्देश्य से भी इस अलंकार का कवि ने आश्रय लिया है। जैसे जीवंधर चूँकि राजा सत्यंधर का पुत्र था किन्तु उसका दुर्भाग्यवश जन्म श्मशान में हुआ था अतः उसके भविष्य में होने वाले राजरूप को बताने के लिए कवि ने इस अलंकार को अपनाया है[2]। इस विषय में एक-दो उदाहरण पर्याप्त होंगे --

---

१- ग० चिं० पृष्ठ ६,११,१२,१६,३०

२- ,, ,, ,, ३२,३६,१४२-४३

उसकी बाल्यावस्था के सम्बन्ध में --

'उन्मीलितनिखिलभुवनव्यापारिणि निस्तेजसि दिननेत्रे गृहप्रदीपान्निर्वापयितुमिव पृष्ठमिव.....गाविर्भूतभावावबोधिन्या मेदिन्येव विकारमुखव्याजेनाङ्गितशरीर: ।' इत्यादि

पात्रों की अवस्था-वर्णन में तथा समय-परिवर्तन के वर्णन में परिस्थिति के अनुकूल उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग रस की अभिव्यंजना कराने में सहायक हुआ है । अपने पिता के वध का कारण काष्ठांगार को जानकर क्रुद्ध हुए जीवंधर के रौद्र रूप का वर्णन अधिकांशत: इसी अलंकार में हुआ है[1] । इसके अतिरिक्त पात्रों के क्रोध का वर्णन करके कवि ने इस अलंकार का प्रयोग रौद्र रस की अभिव्यंजना में किया है[2] । जीवंधर के क्रोध तथा काष्ठांगार के क्रोध में की गयी उत्प्रेक्षाओं में यथोचित समता भी मिलती है[3] । ताम्र नेत्र की उत्प्रेक्षा सत्यंधर के क्रोध-वर्णन में भी मिलती है[4] ।

'विजया की दयनीय अवस्था' मुषितामिव मोहेन क्रान्तामिव क्राशिन्या' आदि में साकार हो उठी है[5] ।

समय-परिवर्तन के तीन प्रसंगों[6] में आगत उत्प्रेक्षा अलंकार शृंगार रस की पृष्ठभूमि तैयार करता है ।

उत्प्रेक्षा अलंकार की भांति उपमा अलंकार का भी प्रयोग कवि ने नारी की सुन्दरता, पात्रों की वीरता, कुटिल स्वभाव आदि बताने के लिए तथा रसानुभूति कराने में किया है । यहां पर भी कल्पनाओं की नवीनता है । उपमानों के चयन में कवि ने उपयुक्तता की ओर ध्यान रखा है । जैसे नवजात

१-ग०चिं० पृष्ठ ४०-४१

२- ,, ,, २६,४७,८५

३- ,, ,, ४०,४१,४७

४- ,, ,, २६

५- ,, ,, १२२

६- ,, ,, २७,६४,६७

देश

वैसे इस अलंकार का प्रयोग जीवंधर में क्रमश: युवावस्था के आने में[1] एवं पात्रों के स्वभाव-चित्रण में[2] इस अलंकार का प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में दो उदाहरण पर्याप्त होंगे --

"राजकुमारं कुसुमामिवगन्ध: क्रीडावननिव वसन्त: चन्द्रमसमिव शरदागम: कुमुदाकरमिव कौमुदीप्रवेश: करिकलभमिव मदोद्गमो यौवनावतार: परं दर्शनीयतामनैषीत्[3]।"

"काष्ठांगारस्तु कुंजर इव गंगानन्दं, प्रतिवादीव स्याद्वादविवाद-कुशलं, अधमर्ण इवोत्तमर्णं, तस्कर इवारक्षकं, महाराजमिवासमवौक्ष्य-न्येनमतितरामशैषीत्[4]।"

मालोपमा के बाद कवि ने श्लिष्टोपमा अलंकार का भी प्रयोग राजा के गुणों, निवासियों, सौन्दर्य-वर्णन, ऋतु-वर्णन एवं युद्ध आदि के वर्णन में किया है। युद्धभूमि के वर्णन में स्थान देकर उन वर्गों के प्रति अपनी श्रद्धा भी प्रकट की है[5]। राजा सत्यंधर के वर्णन में कर्ण के अनुकूल आचरण करने वाले दुर्योधन से उपमा देकर कवि ने अपने महाभारत विषयक ज्ञान का परिचय दिया है[6]। इन वर्गों के अतिरिक्त कवि ने कार्तिकेय[7] इन्द्र चन्द्रशेखर, विष्णुपद, सदानन्द, जिनेश्वर, आदि देवताओं को उपमान रूप में स्थान दिया है। शरद ऋतु के प्रसंग में कवि ने "कुमारसम्भवकाव्य" को भी उपमान रूप में स्थान दिया है -- "समागतैः कुमारसम्भवकाव्य इव ...मानस-सम्भाविकलंकपंकमुक्तैः[8]।" लक्ष्मणा के सौंदर्य-वर्णन में -- "मुनिजनमनोवृत्तिमिव चरणरक्ताम्" "अध्वरसम्पदमिव सुदक्षिणाम्" "सुराज्यमिव चारुवर्णसंस्थानाम्" तथा "नक्षत्रराजिमिव रुचिरश्रवणामुज्वलश्रवणभूषां च"[10] से कवि ने क्रमश:

१- ग० चिं० पृष्ठ ३६
२- ,, ,, ८५,१४१
३- ,, ,, ३६
४- ,, ,, १४१,३२,५८
५- ,, ,, १४२-४३
६- ,, ,, १०-११
७- ,, ,, ~~१४४~~ १०-११
८- ,, ,, ~~१४७~~ ११४
९- ,, ,, ~~१४२~~ १४२

मुनियों की वृत्ति, यश की सम्पत्ति, सुन्दरराज्य की स्थिति तथा नक्षत्रों के प्रति अपने विचार प्रकट किए हैं। 'कच्छपाकच्छपालमिव काष्ठांगारवर्धिनम्'[1] से कवि ने जीवंधर के साथ होने वाले काष्ठांगार के भावी युद्ध की ओर संकेत किया है। ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में कवि ने घोर तपस्या को उपमान बताया, जिसमें खाना-पीना सब छोड़ दिया जाता है। "राजकुलयानीव तेजोधिक-क्षेपोत्पादीनि" से कवि ने राजाओं के कुल के बारे में बताया है[2]। शरद् ऋतु के वर्णन में "अराजकतिराष्ट्र इव मधुपटगाक्रान्ते कुसुमिताविटपिनि"[3] में कवि ने राजा से विहीन राज्य की स्थिति बताई है।

इस प्रकार के उपमानों के अतिरिक्त काव्य में सूर्य, चन्द्र, पारिजात, अगस्त्य मलिन कर्म[4] आदि भी उपमान बने हैं।

कवि ने उत्प्रेक्षा-उपमा तथा मालोपमा की भाँति रूपक अलंकार का प्रयोग अन्य स्थलों में तो किया ही है साथ ही बीभत्स रस की चर्वणा कराने में भी इसको अपनाया है और उसमें कवि को विशेष सफलता मिली है। युद्ध में बहने वाले रक्त का नदी से रूपक कवि ने दो बार बांधा है[5] और एक बार युद्ध-भूमि का समुद्र से[6]। यह रूपक बीभत्स-रस की चर्वणा में कहां तक सफल हुआ है इसका निम्नलिखित उदाहरण से अनुमान लगाया जा सकता है --

'काशकुसुममंजरीधारामिव चामरै राराजिता फेन पटलविभ्रमा, शरदम्बुदकुलमिवैरातपत्रैरासूत्रित पुण्डरीकषण्डाडम्बरा, विडम्बितशिलीमुखसंभ्रमैः कवचनिचयैः कल्पित शैवालविलासा, विलुलितकुन्तलनिकरनिर्मितैर्मौक्तिकप्रकरैः प्रकटितपुलिनभोगा, हरितमणिकरच्छायानुकारिभिर्भुजंगमैरिव तरङ्गभंगैराकुला, भुजभारितान्यपादपानिव कबन्धान्कर्षन्ती, दिगन्तानुकम्पमाना रक्तवाहिनी[7] प्रावर्तिष

१- ग०चिं० पृष्ठ ६६
२- ,, ,, ११५
३- ,, ,, १०-११
४- ,, ,, ६६
५- ,, ,, ७१,१४३
६- ,, ,, १४२
७- ,, ,, ७१

इन अलंकारों के अतिरिक्त कवि ने भ्रान्तिमान[1], उल्लेख[2] का प्रयोग नगर के वर्णन में किया है। त्रिलोकलोक नामक नगरी के वर्णन में मणियों की जगमगाहट से अधिक भ्रम कराया है। किन्तु यहां पर इस अलंकार का उतना आकर्षक रूप नहीं मिलता है जितना अंधकार के वर्णन में। इस अलंकार का कुछ रूप अधोलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है --

'अतिबहलपंकपटलसंश्लेषिभिरावलितागारे निभृतं विप्रलब्धकुलटाभिक्रम्यमाणे विविक्तेषु गृहेषु बलाहकनिवहैः, अन्यत्र जलदपटलभ्रमसंभ्रान्तभुजगः पलायनभिन्नोरुस्तोप चटुलपदसंपुटैः सरभसाभिगम्यमाणे गरः सुखैः...[3]। इत्यादि।

परिसंख्या अलंकार का प्रयोग कवि ने किया अवश्य है किन्तु इस अलंकार के प्रति कवि की विशेष रुचि परिलक्षित नहीं होती है। इसका प्रयोग अन्य कवियों की भांति शासन व्यवस्था तथा स्त्रियों के सौन्दर्य-वर्णन के लिए किया है[4]।

राजा की शासन-व्यवस्था में विशेषोक्ति अलंकार का भी प्रयोग कवि ने किया है --

'यस्य च दुःसहप्रतापेऽपि सुखोपसेव्यता सौकुमार्येऽप्यायवृत्तिरतिमाहसेऽप्यविकलनयविधेयता विश्वंभरावहनेऽप्यखिन्नता सततवितरणेऽप्यक्षीणकोशता परपरिभवनमिलाषेऽपि असमरिभवाभि छायेऽपि परमकारुणिकता पंचशरपारतन्त्र्येऽपि पापशालिता परमद्भुतम्[5]।'

लक्ष्मी के स्वरूप-वर्णन में कवि ने विभावना अलंकार का प्रयोग किया है --

'इयं च पारिजातेन सह जातापि लोभिनां वैरिणी, शिशिरकरसोदरापि परसंतापविधायिनी, कौस्तुभमणिसाधारणप्रभवापि पुरुषोत्तमद्वेषिणी...[6]।'

१- ग०चिं० पृष्ठ ७, ५७, ६०-६१,
२- ,, ,, १०२
३- ,, ,, ८७
४- ,, ,, ९०
५- ,, ,, ९१
६- ,, ,, ४३

किन्तु ऐसे स्थल काव्य में बहुत कम हैं । अधिकांशत: अलंकारों का सदुपयोग ही हुआ है ।

समासोक्ति अलंकार अवश्य आया है किन्तु स्वतंत्र रूप से नहीं अपितु उत्प्रेक्षा अलंकार के साथ[1] । जैसे —

'पूर्वोदधिवेलां विकसितकमलमुखे चन्द्रमुखीमुखावलोकनरागादिव धराग्रे रवौ समारोहति[2] ।'

इस प्रकार पूरे काव्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि कवि ने अपने विशिष्ट अलंकारों में तो सफलता का परिचय दिया ही है साथ ही जो अन्य साधारण अलंकार हैं उनके प्रयोग में भी अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है ।

वेमभूपालचरित में अलंकार विधान

जैसा कि इनकी शैली के सम्बन्ध में देख चुके हैं कि कवि ने अपने काव्य में अलंकृत शैली को ही प्रधानता दी है अत: इस काव्य में अलंकारों की बहुलता होना स्वाभाविक है । अलंकारों की प्रचुरता होते हुए भी यह नहीं कहा सकता है कि इन्होंने उसका दुरुपयोग किया है । वे काव्य में उन अलंकारों को ही स्थान दिये हैं -- 'सत्कविकृतिमिव सदलंकृतिरमणीयाम्[3] ।' इन्हीं अलंकारों के प्रयोग से कवि की काव्य-प्रतिभा की अलौकिकता परिलक्षित होती है । मधुर एवं नवीन कल्पनाओं से ओतप्रोत होने के कारण उनका काव्य अर्वाचीन गद्य-काव्यों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है और कवि को 'अभिनव बाण' की पदवी से विभूषित किया गया है ।

इनके काव्य में उत्प्रेक्षा, श्लिष्टोपमा उपमा, मालोपमा, रूपक, अपह्नुति, अतिशयोक्ति, परिसंख्या, विशेषोक्ति, विरोधाभास, व्यतिरेक, सहोक्ति, स्वभावोक्ति, भ्रान्तिमान् तथा अनुप्रास अलंकार के प्रयोग स्पष्ट मिलते ।

१- ग०चिं० पृष्ठ १७,६२,६४

२- ,, ,, ६२

३- वेम० ,, १९१-९२

इसी प्रकार मलयपर्वत के वर्णन में इन्द्रवज्र से घायल होने की उत्प्रेक्षा कवि ने दो बार की है किन्तु उसमें भी नवीनता देखी जा सकती है--

'बालवज्रव्रणकुहरे पुष्कलवद्रुधिरम्राणि विभ्राणम् ।'[1]

'बालवज्रव्रणवेदनाबाष्पमिव निर्झरजलं विमुंचन्तम् ।'[2]

परिस्थिति की ओर ध्यान देने के कारण उनके उत्प्रेक्षा अलंकार में अद्वितीय सौन्दर्य आ गया है । प्रस्तुत उदाहरण में शिव की मूर्ति कुछ पैदान में है और कवि शिव के मणिजटित चरणों में प्रतिबिम्बित आकाश के सम्बन्ध में उत्प्रेक्षा कर रहा है --

'चरणमणिभूषणे प्रतिबिम्बिताम्बरतलतया घौरविष वितरण-महापराधशान्तये पादपतितं पयोधिमिवाकुलापयन्तम् ।'[3]

कहीं-कहीं पर एक-सी ही कल्पना इस अलंकार में मिलती है । पति के वियोग से दुःखी नायिका के मूर्च्छित होने की तथा उसके मिलता-जुलती कल्पना काव्य में कई बार आयी है ।[4] इस सम्बन्ध में एक उदाहरण पर्याप्त होगा --

'दुर्दिनविरहशोकमूर्च्छितगरलाऽर्च्छं ज्योत्स्नेव मुकुलायमानकुमुदिनीम् ।'[5]

इसी प्रकार अंधकार का वध राजस से रूपक बांध कर उसकी नाश में उत्प्रेक्षा करने की कवि की प्रवृत्ति कई स्थलों में दिखायी देता है,[6] जैसे --

'चान्द्रकरविराविधातिमिरदानवरधिरधारेव काले सन्ध्यारागः ।[7]

१- वैम० पृष्ठ १५४

२- ,, ,, १५५

३- ,, ,, १५७

४- ,, ,, ५६,६०,७८,७८,१४०,१७२

५- ,, ,, ६०

६- ,, ,, ५५,१५०,१६२,१७२,१७८

७- ,, ,, १७२

सूर्यास्त के समय फैली[1] संध्या गोदावरी में प्रतिबिम्बित वृक्ष के[2] तथा माधवी में पड़े सत्कार पुष्प[3] लाल-लाल पल्लवों को लेकर कवि ने 'इव' से कई बार उत्प्रेक्षा की है ।

इसी प्रकार वृक्षों की प्रसन्नता में सिर हिलाने की[4] तथा स्तुति करने की[5] उत्प्रेक्षा भी कई बार आयी है ।

कुछ कल्पनाएं पूर्व कवियों से प्रभावित हैं । जैसे नाव के सम्बन्ध में 'अविश्रान्तनिर्यन्मृदुधाराराम्यमाणनावाकारम्'[6] धनिता बाण तथा ओड्यदेव की कल्पना से समता रखती है ।

इसी प्रकार स्त्रियों के सौन्दर्य-वर्णन में ओड्यदेव का प्रभाव स्पष्ट है --

'यत्र च हरिणीदृशामाननचन्द्रमण्डलेष्वप्यर्णकर्णपाशजाल-संसक्तंकुरङ्ग इव न कदापि निष्क्रान्ति लांछनहरिण: ।' (वैम० पृ० ९४)

'यत्र च नितम्बिनीवदनचन्द्रमण्डलेषु न निपतति कदाचिद्धम्यै कर्णपाशव्याजित मदनांक इव कलंक रूप: कुरंग: ।' (ग०चिं० पृ० ६)

गन्ध-वापियों के अतिरिक्त मणि-क्रीड़ा के कुञ्ज होने के सम्बन्ध में कवि ने जो उत्प्रेक्षा की है वह महाकवि कालिदास से प्रभावित है --

'कोशाम्ब के शिखिर वापिश्रान्तार्किकिणीनिनदां मणिक्रीडां तत्पूर्वयया विरहव्यथेव ऽगनानां विभावयन् ।' (वैम० पृ० ५१)

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।
अदृश्यत, त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदु:खादिव बद्धमौनम् ।। (कालिदास)

किन्तु काव्य में इस प्रकार के स्थल कम ही मिलेंगे । कवि ने इस अलंकार का प्रयोग रसानुकूल स्थिति के निरूपण एवं भावों की अभिव्यंजना

१- वैम० पृष्ठ १७२

२- ,, ,, १५३

३- ,, ,, १८७

४- ,, ,, ६,२७,२१

५- ,, ,, २७,१५०

६- ,, ,, ५०

कराने में भी किया है[१]। जैसे प्रोक्त का कन्या विषयक प्रेम दिखाने के पहले उस उद्यान के वर्णन में प्रयुक्त उत्प्रेक्षा अलंकार के कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं — 'सरसक्षालिंग न सुराधिप नूतनमुकुलपुञ्जजाल मुद्वहन्तम्, प्रतिबिम्बव्याजेन मुक्ताफलजाल मयापि मुक्तिमयाजलरली मनुमिलद्गुरिवागमिनी घनैव मज्जन्तम्... मुक्ताफलाम्भसि परिसरलतांगनाभिः सह संक्रान्तप्रतिमतया सखिलोभिमतारचयन्तम्.... [२]।' इत्यादि।

इस प्रकार ऐसे स्थलों में नायक अथवा नायिका के व्यवहारों के आरोप होने के कारण समासोक्ति की झलक भी मिलती है।

बीभत्सरस की चर्वणा में यह अलंकार कहाँ तक सहायक है उसका अनुमान अधोलिखित पंक्तियों से लगाया जा सकता है जिसमें गीध मुर्दों की अतड़ियों को लेकर इधर उधर घूम रहे हैं —

'पिशितोदकटकाशिकरटितमयी ज्वलितापिशितृष्णपृथुपृथुपृथुक्ष्म दृष्टापि दन्तावलाकर विरलत्पुलकावलिभिः स्वर्चिंगभिमतां सुराणां निरालम्बाम्बरमार्गाभिनामात्म्मानहस्तावलम्बरज्जुजालानमिव हस्तानामनपेक्षिनां योधानामपयोपतया स्वर्गस्य नाकान्तरफलमाधिन्यस्थानवाप्नुरक्तानुबन्धमिव च विभाव्यमानम्[३]।'

इस अलंकार के बाद इस काव्य में कवि ने श्लिष्टोपमा अलंकार को विशेष स्थान दिया है[४]। काव्य में सम्भवतः कुछ ही वर्णन इस अलंकार से रहित मिलेंगे। इस अलंकार के उपमान के विषय अधिकांशतः देवता, रामायण तथा महाभारत के पात्र बनाए हैं। इनके अतिरिक्त शब्दागम[५] चार्वाक वृत्ति, प्रव्रज्या,[६] ब्राह्मण जाति, शबर[७] जाति आदि कुछ विशेष जातियाँ, राशिगण,[८] कुपतिराज्य स्थिति,[९] गन्धर्वविद्या, उत्पातकालीन रविमण्डल, राहु[१०] आदि को भी इस अलंकार में उपमान के रूप में स्थान दिया है

१- वैस० पृष्ठ २६,३८,७२,७४-७५,८४ ८६,८७,१३७,१४०,१७७
२- ,, ,, २६
३- ,, ,, १३७
४- ,, ,, ५,१०,१५,३०,१०६,१०८, ११८,१२०,१३५,१५३,१५६, १६५,१८१,१८४,२००,२०८, तथा अन्य स्थल।
६- वैस० पृष्ठ २००
७- ,, ,, १८१
८- ,, ,, १५६
९- ,, ,, १८१
१०- ,, ,, १३

कवि ने इस अलंकार का प्रयोग विन्ध्याटवी तथा चण्डिकायतन के भयानक वर्णन में ~~इस अलंकार का प्रयोग~~ किया है किन्तु उस रूप के वर्णन में कवि ने विशेष रुचि नहीं दिखाई है । विन्ध्याटवी के वर्णन में केवल 'उत्कण सिंह नादां रणभूमिमिव प्रभिन्नकरिघटासहस्राणि दधानाम्'[1] तथा 'कुगति राज्यस्थितिमिव कण्टकशालसिलीमुखाम्' कह कर तथा चण्डिकायतन के वर्णन में 'पितृपतिपुरमिव प्रेतकुलाध्यासितम्, त्रिविक्रमचरितमिव प्रकटितबलिभूमिनिग्रहम्, नृसिंहमिव तुंगाणि स्तम्भसम्भूतप्रकाशम्'[2] कह कर इस अलंकार का प्रयोग किया है जिससे स्पष्ट है कि यह अलंकार इन दोनों स्थलों की भयानक स्थिति का सजीव चित्र उपस्थित करने में सफल नहीं हो पाता है । बाण ने इसी अलंकार से विन्ध्याटवी का भयानक चित्र खींचा है ।

इनके काव्य में भी सभंग श्लिष्टोपमा मिलती है जिससे कि वर्णन प्रसंग क्लिष्ट हो गए हैं । जैसे -- 'कृष्णक्रीडेव सन्दारावितरुचिभिः' (सन्दा वराणि, सदैव दारेषु), 'उत्ता वल्लीरिव लक्षितवृकोकान्तैर्धनमिव-हैनिरन्तरा' (कटाकानि, वत्स:), 'राजधानीव बहुमातुरंगशोभिता' (बहुमातुः-अंगशोभिता, बहुमा तुरंग), 'कादम्बरीचन्द्रिकेव अविरतकरभासिता' (करभासिता, करभा) इत्यादि[3] ।

इस प्रकार का रूप निर्विन्ध्या कानन[4] तथा उज्जयिनी राजधानी[5] के वर्णन-प्रसंग में भी मिलता है । कतिपय स्थलों पर यह सभंग श्लिष्टोपमा

१- केम० पृष्ठ १८१

२- ,, ,, १८४

३- ,, ,, ११-१५

४- ,, ,, ६-१०

५- ,, ,, ११-१५

इस प्रकार की अपह्नुति में व्यतिरेक अलंकार उसका अंग बना है। उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के साथ भी व्यतिरेक अलंकार आया है साथ,ही वह स्वतंत्र रूप से भी आया है। कवि ने पैदकोमटि वेम तथा राजाओं के गुणों के वर्णन में[1] ,मलयपर्वत को अन्य पर्वतों से उत्कृष्ट बताने में[2] तथा ताम्रपर्णी नदी को अन्य नदियों से श्रेष्ठ बताने में[3] इस अलंकार का विशेष रूप से प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में कवि ने पैदकोमटि वेम की दानशीलता के वर्णन में उसे मेघ,चिन्तामणि, कर्ण आदि सभी से श्रेष्ठ बताया है --

"तथाहि-- स्वयं , नागरगुणप्रकाशनाय, आक्रन्दनाय, अस्थानाभिवर्षणं, भ्रमणपरिभ्रमणं कल्याणकारीणि च पिबन्ती वितरणकाले मेघस्य । चिन्तामणिः कठिन हृदयो सत्यार्थिनाभिवाञ्छितमात्रप्रदायी विभाव्यते । कर्णोऽपि नामभूतिः स्वाधिकारि कामस्य पूरको न बभूव[4] ।"

व्यतिरेक अलंकार के समान ही समासोक्ति अलंकार उत्प्रेक्षा अलंकार के साथ आया है किन्तु यत्र तत्र इस अलंकार का स्वतंत्र प्रयोग भी मिलता है[5] । जैसे --

"पुण्डरीकाक्षरजनीकराम्बरं निरलङ्कारितकरः पश्यति विकसितालंकृतः पद्मिनीभुजंगः[6] ।"

काव्य में विशेषोक्ति के उदाहरण भी मिलते हैं, जैसे --

"यस्य च रिपुरुधिरसरस हरिचन्दनचन्द्रकिरणशिशिरोपचारपीनः.. पुन्नीगापि न शशाम शौर्योष्मा[7] "।

अथवा

"यस्य च पुनरंगनायन: प्रियंभावुकभावस्य सार्वभौमस्यापि न स्पृशति मनो मानस्य । ....[8] ।"

१- वेम० पृष्ठ २०५-६
२- ,, ,, १५२
३- ,, ,, १५४-१५५
४- ,, ,, २०५-२०६
५- ,, ,, १२२,१७८
६- ,, ,, १७८
७- ,, ,, १७
८- ,, ,, १२०

इस काव्य में समासाच्छन्न दीर्घवाक्यों की अधिकता होने के कारण अनुप्रास अलंकार की छटा कई स्थलों में उपलब्ध होती है । कहीं-कहीं इस अलंकार का दुर्पयोग भी परिलक्षित होता है जिससे वर्णन-प्रसंगों में क्लिष्टता आ गयी है ।

इस प्रकार इस काव्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि कवि ने उपमा, श्लिष्टोपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपक अलंकारों को विशेषरूप से अपनाया है । अन्य अलंकारों का भी समुचित प्रयोग किया है । स्वभावोक्ति, विरोधाभास, परिसंख्या आदि अलंकारों को काव्य में स्थान दिया अवश्य है किन्तु इनका प्रयोग यत्र तत्र ही किया है । कुछ स्थलों में पूर्व कवियों की अनुकृति परिलक्षित होती है तथा कुछ स्थलों में काव्य-कल्पना की पुनरावृत्ति दिखायी देती है किन्तु काव्य में ऐसे प्रयोग स्थल बहुत कम हैं । अतः कवि ने जो अलंकार के विषय में धारणा बनाई थी उसमें वह सफल हुआ है -- ऐसा कहा जा सकता है ।

रामकथा में अलंकार विधान --

अलंकारों के प्रयोग की दृष्टि से रामकथा नामक गद्य-काव्य अन्य गद्य-काव्यों से बिल्कुल भिन्न है । समासाच्छन्न वाक्यों का प्रयोग यत्र तत्र होने के कारण उसमें अनुप्रास अलंकार की छटा अवश्य परिलक्षित होने लगती है। कहीं-कहीं तो यह अलंकार वर्णन में अद्वितीय सौन्दर्य भी ला देता है । जैसे इन्द्रजित् के युद्ध-वर्णन में --

'तथा संप्रहरन्तं संप्रहार शौण्डं मण्डोदरीसुतं समिति सुमित्रासुतो रघुवरानुभावसंभृतितीक्ष्णा ऐन्द्रास्त्रेण विगत जीवितमकरोत् ।'[1]

सुमित्रा तथा कैकेयी के वर्णन में इस अलंकार का प्रयोग हुआ है किन्तु उसकी उपयोगिता सुमित्रा के गुणों के वर्णन में देखी जा सकती है --

'निरुपाधिकनिजगुणगरिमपरितोषितमित्रया सुमित्रया ।'[2]

१- रामकथा पृष्ठ ४७

२- ,, ,, ३

कवि ने श्लिष्टोपमा, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा यमक अलंकार का प्रयोग किया किन्तु उनके प्रति एक प्रकार से उपेक्षा दृष्टि ही रक्खी है । किसी भी अलंकार से उनकी वर्णन-काव्य-प्रतिभा का परिचय नहीं होता है । चित्रकूट के वर्णन में कवि ने शब्दप्रबंधमिव विविध धातु-शिलारचितम्[1] तथा दण्डकारण्य में प्राकृतलक्षणमिव बहुलताव्याप्तिप्रचुरमिव[2] प्रयुक्त श्लिष्टोपमा अलंकार से अपने शब्द प्रबंध तथा प्राकृत लक्षण संबंधी ज्ञान का परिचय दिया है । रूपक अलंकार अन्य अलंकारों की अपेक्षा फिर भी आकर्षक कहा जा सकता है । रानी कौशल्या के गुण को बताने में 'गुणानुपधिसंभारकौशल्यया कौशल्यया'[3] पंक्ति सार्थक है । किन्तु यही अलंकार वानर राक्षसों के वर्णन --

'एकलंगकुशाग्रमुखा: पुना स्मुरवा: क्रमेण अराय निर्ययु:'[4]

में विशेष सौन्दर्य का विधायक नहीं बनता है । खर और रावण की आवाज के वर्णन में भी यह अलंकार सामान्य कोटि का है[5] ।

एक बार राम का अनुसरण करती हुई सीता[6] के वर्णन में दूसरी बार राम के वर्णन[7] तथा तीसरी बार कुम्भकर्ण[8] के वर्णन में कवि ने उपमा अलंकार का प्रयोग किया है । राम के सौन्दर्य वर्णन में पर्यायक कुन्दोपमा तथा पूर्णोपमा का भी रूप मिलता है किन्तु एक तो उनमें वैसे ही कोई सौन्दर्य-वर्णन नहीं है और दूसरे युद्ध के लिए आए रावण की दृष्टि से राम के सौन्दर्य का वर्णन परिस्थिति के अनुकूल न होने के कारण यह अलंकार कोई महत्व नहीं रखता ।

१-रामकथा पृष्ठ १४
२- ,, ,, १७
३- ,, ,, ३
४- ,, ,, ४४
५- ,, ,, २०
६- ,, ,, १४
७- ,, ,, ४८
८- ,, ,, ४४

इसी प्रकार राम के वर्णन में आया एकाकार उत्प्रेक्षा अलंकार भी सारहीन है ।[1]

उत्प्रेक्षा अलंकार जहाँ अन्य कवियों को विशेष प्रिय रहा है, वहाँ कवि ने इसका प्रयोग तीन स्थलों में किया है[2] किन्तु कल्पना-वैभव से सर्वथा शून्य । शूर्पणखा के कुटिल स्वभाव के वर्णन में -- 'दुरन्तकुटिलकुन्तलासिरिव गुणागमूर्तिः'[3] उत्प्रेक्षा कुछ सार्थक कहा जा सकता है ।

अन्य अलंकारों के समान एक अलंकार का प्रयोग है जो निशावलोक विघूर्णमान शोणाम्भोधितरंगा इवाम्बर'[4] [illegible] सन्ध्यारागाभा आसक्तानुबिम्बम्'[5] पंक्तियों में ही समाप्त कर दिया गया है ।

इस काव्य के अध्ययन से लगता है कि कवि अपनी शैली में अलंकारों को स्थान देना पसन्द नहीं करता है । वह काव्य का काव्यत्व अलंकार में न मान कर अभिव्यक्ति प्रकार में मानता है । जिन वर्णन-प्रसंगों को पाकर अन्य कवि अलंकारों की झड़ी लगा देते हैं उन प्रसंगों में कवि एक-दो अलंकारों का प्रयोग करके काम चला लेता है ।

आसफविलास में अलंकार विधान--

पंडितराज जगन्नाथ की दृष्टि में 'रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्' है अत: उनके गद्य-काव्य में भी सुन्दर वर्णों की छटा मिलती है । वाक्य लम्बे हैं अत: उनमें अनुप्रास अलंकारों की अधिकता होना स्वाभाविक है । इस अलंकार के अतिरिक्त कवि ने उत्प्रेक्षा, उपमा, श्लिष्टोपमा, विरोधाभास एवं सार अलंकार को भी अपनाया है । उत्प्रेक्षा अलंकार में अन्य कवियों की भाँति इन्होंने भी[6] फल के भार से झुके वृक्षों में अतिथि-सेवा करने की उत्प्रेक्षा की है । यत्र तत्र नवीन कल्पनाओं से ओत प्रोत उत्प्रेक्षा अलंकार के

१-रामकथा पृष्ठ ४८
२- ,, ,, १६,१८,४८
३- ,, ,, १८
४- ,, ,, १६
५- ,, ,, ४८
६- आसफविलास पृष्ठ ८३

जैसे विरोधाभास अलंकार अनन्य पदों भी आया है —" समराविकोऽ
समराचित: ।"[२]

उनके गुणों के वर्णन में भी 'सार' अलंकार का प्रयोग हुआ है —
"भावेष्वभिसंबन्धिषु अश्लेषु नामन्दिषु वाङ्मयेष्विव नाम्नकाव्य:
सामन्तकाव्येष्विव अर्थ: ध्वनीष्विव रसो रसेष्विव शृंगार:.... ।[२]

इस प्रकार उनके काव्य में अन्य कवियों की देखते हुए अलंकारों
की विविध मात्रा तथा उनके प्रयोग कम मिलते हैं । अनुप्रास अलंकार
की मधुर छटा सर्वत्र है । उनका 'सार' अलंकार का प्रयोग नवीन है । कवि
इस अलंकार का प्रयोग प्राय: कम ही किया करते हैं ।

इस प्रकार पूर्वोक्त अर्वाचीन गद्य-कवियों में प्राप्त
अलंकारों के सविस्तर विवेचन से ज्ञात होता है कि प्राय: सभी कवियों ने
अपनी शैली को अलंकृत बनाये रखने के लिए अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग
किया है । इस कथन के अपवाद रूप केवल रामकथा के रचयिता वासुदेव कहे
जा सकते हैं । कवियों ने अलंकारों का प्रयोग दृश्यों के सौन्दर्य-वर्णन के
अतिरिक्त रस तथा भावों की तीव्र अभिव्यंजना कराने के लिए किया है ।
किन्तु भोज ने इनका प्रयोग अधिकांशत: दृश्यों की रमणीयता के लिए ही
किया है । ऋतुओं के वर्णन-प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि इन कवि ने
अलंकारों का उद्दीपक रूप वर्णित करके उनका प्रयोग रस की भूमिका के चित्रण
में किया है । इन काव्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि प्राय: सभी कवियों
ने उत्प्रेक्षा,उपमा, और श्लिष्टोपमा अलंकार को विशेष रूप से अपनाया है ।
रूपक अलंकार की अधिकता वामन भट्ट बाण में अधिक मिलती है । इन कवियों
ने परिसंख्या अलंकार का अपेक्षाकृत बहुत अल्प प्रयोग किया है । धनपाल ने
अवश्य दो नगरों की शासन-व्यवस्था के चित्रण में इस अलंकार के [illegible] रूप
का प्रयोग किया है ।

-0-

१- वासकविलास पृष्ठ ८५
२- ,, ,, ८४

चतुर्थ अध्याय

रस-परिपाक

रस-परिपाक

जैसा कि रस-स्वरूप के विवेचन में देख चुके हैं कि रस काव्य का प्राण है। इसके अभाव में काव्य निर्जीव हो जाता है और गुण अलंकार आदि का कुछ भी महत्व नहीं रह जाता है। जिस प्रकार मृत के गुण का कोई मूल्य नहीं रह जाता तथा आभूषण उपहासास्पद हो जाते हैं उसी प्रकार काव्य में रस के विहीन होने पर गुण गुण नहीं रह जाते हैं और अलंकार भारस्वरूप बन जाते हैं। जिन संस्कृत आचार्यों ने अलंकार रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य आदि में से किसी एक को काव्य की आत्मा माना भी है तो वे भी रस के महत्व के विषय में कोई संदिग्ध दृष्टि नहीं रखते हैं। विश्वनाथ ने काव्य का स्वरूपाधायक 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' कह कर रस को ही बताया। जगन्नाथ यद्यपि विश्वनाथ के इस मत का खण्डन करके 'रमणीयार्थप्रतिपादक: शब्द: काव्यम्' कहते हैं किन्तु रमणीयार्थ का तात्पर्य अन्ततोगत्वा रस से ही है। उन्होंने रमणीयार्थ का अर्थ जो लोकोत्तराह्लाद जनकत्व लिया है वह रस में ही सम्भव है। जहां अलंकारों का चमत्कार रहता है वहां भी रस अज्ञातरूप में विद्यमान रहता है।

अत: सभी कवि अपने काव्य में रसों को स्थान देकर अपने काव्य को सरस बनाते हैं। विविध कहानियों से अपनी कथावस्तु को जटिल करके भी कवि रसों के सफल निर्वाह करने से काव्य में सरसता ले आते हैं। कादम्बरी में तीन जन्म की कथाएं हैं, तिलकमंजरी में दो जन्म की कथा कई पात्रों को शाप से वशीभूत होने के कारण अलग-अलग कथाएं हैं, गद्यचिन्तामणि में भी पूर्वजन्म की कथा, विद्याधरों की कथाएं तथा जीवंधर के आठ विवाह से सम्बन्धित कथाएं हैं, किन्तु ये सब कथाएं सरसता में किसी प्रकार कम नहीं हैं। रसात्मक

ढंग से कवि द्वारा प्रस्तुत होने के कारण पाठकों के हृदय को ये कथाएं आकृष्ट किए रहती हैं । अत: कोई भी ऐसा वाक्य नहीं मिलेगा जिसमें कवि ने रस की अभिव्यंजना न कराई हो । यह दूसरी बात है कि इन स्थलों में कवि को सफलता मिली हो या न मिली हो ।

प्राचीन गद्य-काव्यों में देखा जाय तो रस की दृष्टि से बाण की कृतियां ही श्रेष्ठ हैं । क्योंकि सुबन्धु की वासवदत्ता श्लेषप्रधान रचना होने के कारण कथावस्तु की भांति रस की दृष्टि से भी शिथिल रचना मानी जाती । दण्डी का दशकुमार चरित सुबन्धु की वासवदत्ता से रस की दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ है । यद्यपि उन्होंने सभी रसों को अपने काव्य में स्थान नहीं दिया है उसका कारण कवि का सब रसों के प्रति रुचि होना नहीं है । क्योंकि युद्ध के प्रसंग आने पर कवि वीररस की अभिव्यंजना करा सकता था किन्तु कवि ने सब जगह [illegible] का भी कुछ वर्णन न करके उपेक्षा दृष्टि रखी है । इसी प्रकार नरक का भयंकर वर्णन करके भयानक रस की चर्वणा कराई जा सकती थी किन्तु उस प्रसंग को भी दो पंक्तियों में कह कर समाप्त कर दिया । राक्षस के वर्णन में अवश्य कुछ हद तक बीभत्स रस का आस्वादन हो सकता है । यद्यपि काव्य में विदूषकों का उपहास किया गया है एवं तपस्वी आदि पर व्यंग्य कसे गये हैं किन्तु उन्हें भी हास्य-रस की कोटि में नहीं रखा जा सकता । उन्होंने अपने काव्य में अद्भुत घटनाओं एवं कर्मों का वर्णन करके अद्भुत रस तथा शृंगार-रस को ही स्थान दिया है । कवि ने शृंगार रस में भी एक पक्ष वियोग शृंगार की उपेक्षा की है यद्यपि कवि को इस शृंगार के वर्णन करने के कई अवसर मिल सकते थे क्योंकि राजकुमारों को राजकुमारी के प्रति आसक्त होने के बाद उनकी प्राप्ति के लिए बहुत प्रयत्न करने पड़े थे ।

इस प्रकार इस काव्य में रस का जितना संकुचित घेरा दिखाई पड़ता है इसके ठीक विपरीत बाण की कृतियों में मिलता है । सभी रसों को बाण ने काव्य में समुचित स्थान दिया है । आश्रम का शान्त वर्णन शान्त रस का आस्वादन करता है , विन्ध्याटवी का वर्णन भयानक रस का, प्रेतों का वर्णन बीभत्स और हास्य का , राजाओं का पराक्रम वीर का, युद्ध तथा दिग्विजय के लिए

प्रस्थान करने वाले चन्द्रापीड़ तथा उनकी सेनानियों के उत्साह का वर्णन वीर रस का, आकाशवाणी के न होने तक पुण्डरीक की मृत्यु पर किया गया महाश्वेता का विलाप, यशोमती तथा राजपुत्रों के सती होने पर स्त्रियों का क्रन्दन आदि करुण रस का, इसके द्वारा अपने बलों के गृहकार्य के वध किए जाने पर प्रभाकर वर्धन तथा हर्षवर्धन के क्रोध भाव की अभिव्यंजना रौद्र रस का आनन्द दिलाती है। शृंगार रस के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं। इस प्रकार इन के ग्रन्थों में नवों रसों को स्थान मिला हुआ है। परवर्ती गद्य-कवियों ने शैली के समान रस की दृष्टि से बाण का भी अनुकरण किया है। अधिकांश गद्य-कवियों की शृंगार रस की अभिव्यंजना में बाण का स्पष्ट प्रभाव है। इसमें सन्देह नहीं है कि अनुकरण करने वाले सभी कवि बाण की भांति सभी रसों का अपने काव्य में एक साथ निर्वाह नहीं कर पाये हैं किन्तु उन्हें इस विषय में असफलता ही मिली है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। रामकथा एवं आनन्दविलास नामक गद्य-काव्यों में कवि ने इस तत्त्व की ओर अपनी विशेष रुचि नहीं दिखायी है। रामकथा में तो फिर भी यत्र तत्र रस-निरूपण का प्रयत्न देखा भी जा सकता है किन्तु आनन्दविलास में कोई भी रस नहीं है। वैसे सभी कवियों ने रस के सम्बन्ध में अपनी रुचि दिखायी है। भोज की शृंगार मंजरी कथा इसी प्रकार की है। जो वेश्याओं की रति दिखायी गयी है वह शृंगार रस की अभिव्यंजना न कराके शृंगार का रसाभास कराती है।

शृंगारमंजरी कथा में रसों का निरूपण

यद्यपि 'शृंगारमंजरी कथा' के नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि इस काव्य में शृंगार रस की अभिव्यंजना होगी किन्तु इसके विपरीत इसमें वेश्याओं की जीवन-चर्या, उनकी कूट चालें, कृत्रिम प्रेम दिखाकर प्रेमियों का सारा धन लूटना, धन के समाप्त हो जाने पर उनको दुत्कार देना आदि का वर्णन होने के कारण उस रस का रसाभास ही प्राप्त होता है। रसाभास इसलिए कहा जाता है कि इसमें वस्तुतः रस का आस्वादन सहृदय नहीं कर पाता। यद्यपि

इनमें भावों की अभिव्यंजना उसी प्रकार की जाती है। जैसी किसी रस में की जाती है किन्तु अन्तर यह होता है कि रसाभास में स्थायि-भावों का अनौचित्य रहता है। अनौचित्य रसाभास का व्याप्य करते हुए काव्यप्रकाशकार मम्मट ने "तदाभासा अनौचित्यप्रवर्तिता:" कहा है[1]। यह अनौचित्य शृंगार रस में पांच प्रकार से आता है --

१- उपनायक में रति दिखाने से

२- मुनि तथा गुरु पत्नी विषयक रति दिखाने से

३- बहुनायक निष्ठ रति दिखाने से

४- दोनों में से किसी में रति न दिखाने से और

५- तिर्यक् आदि में रति दिखाने से

इसी प्रकार रौद्र रस में यदि गुरु आदि के प्रति क्रोध दिखाया जाता है, हास्य रस में गुरु आदि को आलम्बन बनाया जाता है, शान्त रस में किसी नीच पात्र में शम स्थायिभाव दिखाया जाता है, वीर रस में ब्रह्म-वध तथा अधम पात्र में उत्साह दिखाया जाता है, भयानक रस का वीर पुरुष तथा करुण रस का वैरागी पुरुष तथा करुण रस का वीर पुरुष आलम्बन बनाया जाता है तो वहां अनौचित्य हो जाता है। इन रसों की पूर्ण अभिव्यंजना न होने के कारण केवल उनका आभास-रूप मात्र भर मिलता है, जिसके कारण वे रस की संज्ञा न प्राप्त करके रसाभास की संज्ञा प्राप्त करते हैं।

शृंगार रस का आभास इस काव्य में पर्याप्त मात्रा में मिलता है। अधिकांशत: रति एक निष्ठा दिखायी गयी है। रविदत्त चित्रवती से[2], विक्रमसिंह मालतिका से[3], माधव कुवलयावली से[4], उज्जयिनी का राजा विक्रमसिंह लावण्यसुन्दरी से[5], सोमदत्त कर्पूरिका से[6], चित्रधर अनंगवती से[7], प्रताप सिंह

१- का०प्र० चतुर्थ उल्लास पृ० ५६
२- प्रथम कथानिका
३- द्वितीय कथानिका
४- तृतीय कथानिका
५- छठी कथानिका
६- सातवीं कथानिका
७- शृंगार० दसवीं कथानिका

कवि ने इस काव्य में जो शृंगार रस का रसाभास दिखाई देता है तो इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वह पाठकों को शृंगार रस का आस्वादन ही नहीं करा सकता है । भोज ही सर्वप्रथम ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने सभी रसों का उद्गम शृंगार रस को ही बताया है । इस काव्य में वर्ण्य-विषय ही ऐसा नहीं है जिसमें शृंगार रस की चर्वणा कराई जाय । वेश्याओं, उनकी माताओं तथा विटों आदि का सजीव चित्र उपस्थित करना ही इस काव्य में कवि को अभीष्ट है । चूंकि वेश्याओं के लिए पुरुषों की मनोवृत्ति जानना परम आवश्यक है अतः कवि ने राग के विविध रूपों की विशद व्याख्या की है और उनसे सम्बन्धित रोचक कहानियाँ लिखी हैं । राग से सम्बन्धित अधिकांशतः इन कहानियों के नायक हैं अर्थात् नीली राग वाले रविदत्त[1], मंजिष्ठराग वाले सिंहभसिंह[2], कुसुम्भराग वाले माधव[3] तथा हरिद्र राग वाले दुर्दर्न[4] हैं । इनके अतिरिक्त कुछ धूर्त नायक भी हैं जैसे सोमदत्त, दुर्दर्श माधव तथा विनश्वर ।

नायक-रूपों के अतिरिक्त इस काव्य में नायिकाओं की आठ अवस्थाओं में से कुछ अवस्थाएं यहां पर देखने को मिलती हैं --

अभिसारिका --

कवि ने जो स्वरूप इसका सरस्वती कण्ठाभरण में बताया है "पुष्पेषु पीडिता कान्तं याति या साभिसारिका" -- वैसा ही रूप इस गद्य-काव्य में देखने को मिलता है । यहां पर अभिसारिका के तीन रूप वर्णित हुए हैं --

----

१- प्रथम कथा०

२- द्वितीय कथा ०

३- तृतीय कथा ०

४- चतुर्थ कथा ०

१- (अ) चांदनी रात में निकलने वाली[1]

(ब) रात्रि में निकलने वाली[2]

(स) मध्याह्न में निकलने वाली[3] ।

२- वासकसज्जा[4] --घर को सजाने वाली तथा प्रियतम की प्रतीक्षा करने वाली नायिका का मात्र उल्लेख है ।

३- मानिनी[5] --मानिनी नायिकाओं के मान को भंग कराया गया है ।

४- विरहिणी[6] --वसन्त में निराश, उदासीन, पीली और केवल कमल के आभूषण पहनती है । मानिनी का मान ज्योत्स्ना में दूर होता है और विरहिणी का वर्षा में ।

किन्तु ये नायिकायें किसी कहानी की नायिकायें नहीं बनी हैं अपितु प्रकृति-वर्णन के सम्बन्ध में इनका उल्लेख हुआ है ।

इस काव्य में नायिकाओं की सखियां दूती का काम भी करती हैं । संग्रामिका रविचन्द्र के पास जाकर चित्रवती के प्रेम को बताकर उसे चित्रवती के घर ले जाती है । इसी कहानी में मधुरिका लावण्यसुन्दरी के बदले नृत्य करती है और दो बार उसके प्रेमी रत्नचन्द्र को ढूंढ लाती है । दूतियों का काम एक-दूसरे के गुणों का बखान करना होता है किन्तु ये दूतियां इस काव्य में स्वतन्त्र रूप से ही वर्णित हैं । उनका रस से कोई भी सम्बन्ध नहीं है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इनके काव्य में शृंगार-रस का निरूपण नहीं हुआ है ।

हास्यरस का निर्वाह अवश्य वेश्याओं की माताओं को ठगने में हुआ है । तीसरी कथा में माधव भुजंगचतुरा के द्वारा स्मृति चिह्न रूप में

१- शृंगार० पृष्ठ ४४
२- ,, ,, ७४
३- ,, ,, ८५
४- ,, ,, ५४
५- ,, ,, ४५
६- ,, ,, ४४,५०

इसी प्रकार दावाग्नि से भयभीत हाथी का वर्णन किया है। हाथी के बच्चे जलती हुई आग को देख कर भयभीत हो एकत्रित हो जाते हैं और हाथी भी आ कर उन्हें देखते हैं, सूंड से भूमि पर प्रहार करके भीषण आवाज करते हैं और मुंह से भी गर्जना करते हैं, बाहर निकलने के लिए ऊपर मुंह उठा कर देखते हैं, भय से उनके कान स्तम्भित हो जाते हैं, पीछे का भाग संकुचित हो जाता है, छोटी सी पूंछ खड़ी हो जाती है, नेत्रों से भय के भाव प्रकट होते हैं, जब दावाग्नि की ज्वाला असह्य होने लगती है तो फिर कुछ दूर जा कर एकत्रित होते हैं और पराक्रमी हाथियों के मार्ग का अनुसरण करते हैं[१]। इस प्रकार भोज के काव्य में हास्य, अद्भुत, करुण तथा भयानक रस का वर्णन हुआ है। एक स्थल पर विरह-वर्णन भी हुआ है।

तिलकमंजरी में रसों का निरूपण--

धनपाल ने अपने इस काव्य में शृंगार रस को प्रमुख स्थान दिया है, अन्य रस गौण रूप में आये हैं। अतः कवि ने शृंगार रस के निरूपण में विशेष रुचि दिखायी है। जैसा कि पहले देखा जा चुका है कि इस काव्य में दो कथाएं हरिवाहन और तिलकमंजरी तथा समरकेतु एवं मलयसुन्दरी की कथा समानान्तर चलती है। ये दोनों कथाएं शृंगार रस से ओत प्रोत हैं। कवि की दृष्टि में विप्रलम्भ शृंगार अधिक श्रेष्ठ है अतः दोनों कथाओं में विप्रलम्भ शृंगार के ही स्थल बहुत मात्रा में मिलेंगे। यद्यपि इस काव्य की नायिका तिलकमंजरी है और मुख्य कथा हरिवाहन और तिलकमंजरी की ही है किन्तु शृंगार रस का समग्र रूप से निर्वाह समरकेतु और मलयसुन्दरी की कथा में है। समरकेतु अपनी समुद्र यात्रा में एक दिव्यायतन में सखियों से घिरी हुई मलयसुन्दरी को देखता है और मलयसुन्दरी तारक के साथ समरकेतु को देखती है और दोनों एक-दूसरे के सौन्दर्य पर मोहित हो जाते हैं। दोनों में कामजन्य विकार उत्पन्न होते हैं। मलयसुन्दरी के काम विकारों में

१- शृंगार० पृष्ठ ५०-५१

काँप से पसीना आना, रोमांच होना, सीत्कार करना, अंग का सहारा लेना, चुप-चुप होना, उसी के ध्यान में एकाग्र चित्त होना, अवयवों का निष्पन्द होना, कुछ न सुनाई पड़ना, मूर्च्छित सा होना, नासिकेन्द्रिय का अपना काम बन्द कर देना आदि वर्णित किया है। अकस्मात् होने वाली अपनी इस दशा पर उसे क्षोभ है। उसे यह नहीं समझ में आता कि वह कौन है? कहाँ आई है? कहाँ खड़ी है? कहाँ की रहने वाली है? उसने अपने आप यह दशा बना ली है या और किसी ने बनाई है? उसे यह नहीं पता चल पाता कि किस दृष्टि से उसने राजकुमार समरकेतु को देखा[1]। समरकेतु के विकारों में कवि ने उसका धैर्य छूटना, तरह-तरह की शृंगारिक चेष्टाएं करना, कटाक्ष फेंकना, कंपन होना, स्वरस्खलित होना, आंसुओं का गिरना, मलयसुन्दरी के वचनों को सुनने में लीन रहना, शून्यमनस्क हो जाना, चित्रफलक पर मलयसुन्दरी का चित्र बनाना तथा उसके अंग-प्रत्यंग पर दृष्टि डालना आदि का वर्णन किया है[2]।

इन विकारों के अतिरिक्त कवि ने इस समय होने वाली दोनों की स्थिति का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। तारक समरकेतु से वहाँ से चलने के लिए कहता है और समरकेतु अपने शरीर की अवस्था का बहाना करके वहाँ से न चलने के लिए कहता है। किन्तु तारक उसे वहाँ से ले चलने को होता है तो समरकेतु कातर दृष्टि से मलयसुन्दरी को देखता है जिसे देखकर मलयसुन्दरी क्षुब्ध हो जाती है और वह वसन्त सेना से तारक को रोकने के लिए कहती है। वसन्त सेना से कहे हुए वाक्यों में उसका क्षोभ स्पष्टरूप से परिलक्षित हो रहा है --

"सखि निषिद्धोऽपि बालम: प्रस्थितोऽयं नाविक: । कृत्वा च पुरत: प्रार्थनाभङ्गभीरु स्व व्रजति राजपुत्र: ।तन्निवर्तयाभिधाय यत्किंचिदतो (१)स्थिरीकुरु तावद्यावदेति प्रेक्षमाणोपदेष्टा मां प्रद्युम्नाद्देवतायतनात् । अन्यथा महन्मालिन्यमायातमस्माकम्[3] ।"

१- तिलक० पृष्ठ १७७-७८
२- ,, ,, २७८-७९
३- ,, ,, २८२

वज्रायुध को दिए जाने से दुःखी होने के कारण आत्महत्या के लिए लगाए गए पाश से मुर्च्छित होने के पश्चात पुनः जब मलयसुन्दरी चेतनावस्था में आती है और अपने सम्मुख कुमार समरकेतु को देखती है तो उस स्थल कवि ने उस के हृदय में उठने वाले भावों का वर्णन सफलता के साथ किया है । उसके भाव अधोलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है --

.... विशेष पाशग्रन्थिनिबन्धनिपीडिता कण्ठनालस्येव हृदयादिनिःसृतो वाचिः, अथ प्राक्तिमर्मिदनुबन्धवादेवकाभिनिविष्टास्था कुलोत्थानात: उत्तान्नदेव किंचित्प्रबोधमात्रोऽथ गुरुजनेन प्रसित:;.... इति तिलकमंजरी ।[1]

मलयसुन्दरी का वियोगावस्था के वर्णन में सहृदय विप्रलम्भ शृंगार का आस्वादन करता है । समरकेतु के वियोग में उसका कुसुम, ताम्बूल, आभूषण, अंगराग के प्रति अनासक्त होना, नित्य अश्रु का प्रवाहित होना, चित्रफलक पर समरकेतु का चित्र बनाना, पुष्पों से कामदेव की पूजा करना, प्रोषितभर्तृका की भांति प्रियसमागम के लिए कष्टसाध्य व्रतों का करना तथा अन्य राजकुमारों के साथ होने वाले विवाह के लिए मां को रोकना आदि वर्णित है ।[2]

उसके अतिरिक्त वियोग में मलयसुन्दरी का प्रकृति के प्रति सहानुभूति रखना भी वर्णित है । कभी वह विघटित हुए चक्रवाक के जोड़े को मिलाती है तो कभी शुक, चकोर, कोयल आदि विविध पक्षियों को जोड़ों के साथ पिंजड़े में बैठाती है तो कभी छोटी-छोटी लताओं से पल्लवों को जोड़ती है और कभी देवतालयों को अलग-अलग प्रतिमाओं को एकत्र करती है ।[3]

मलयसुन्दरी एक तो समरकेतु के वियोग से पीड़ित थी ही दूसरे जब उसे यह मालूम होता है कि उसके पिता-सन्धि के रूप में उसे वज्रायुध

१- तिलकमं० पृष्ठ ३१२
२- ,, ,, २९६
३- ,, ,, २९६-९७

सरोवर में बहते हुए समरकेतु के पत्र को पाकर होने वाले उसके अश्रुपात, निराशा, विस्मय, वितर्क, कम्पन, प्रसन्नता आदि विविध भावों को एकसाथ चमत्कारिक ढंग से प्रस्तुत किया है, जो भाव शबलता का उत्कृष्ट रूप कहा जा सकता है[1]।

समरकेतु से मिलने की प्रतीक्षा में वह तपस्विनी वेश धारण कर लेती है[2]।

कवि ने केवल मलयसुन्दरी के भावों एवं उसकी प्रतिक्रियाओं का वर्णन करके अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। समरकेतु के युद्ध के उपरान्त समरकेतु के पत्र आदि देने की घटना हरिवाहन को मालूम है--ऐसा जानते हुए वह प्रसन्नता से खिल उठती है, उसे स्वर्गलोक जैसी शान्ति मिलती है निराशा से पुनः समागम की इच्छा होने से एक बार पुनः कन्दर्प उस पर आक्रमण कर देता है, सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है, नेत्रों में स्निग्धाभा टपकने लगती है, पुतलियाँ चंचल हो जाती हैं, आनन्दाश्रु बहने लगते हैं, रोमांच हो जाता है, शरीर में कंपन होने लगता है और स्वर गद्गद हो जाता है[3]।

एक स्थल पर कवि की असावधानी हो जाने से मलयसुन्दरी का वियोगपक्ष कलंकित हो गया है। चित्रमाय हरिवाहन को उसके देश पहुंचाकर अकेले लौटता है और समरकेतु के न मिलने के विषय में बताता है तो उस समय कवि को समरकेतु विषयक मलयसुन्दरी का शोक वर्णित करना चाहिए था क्योंकि मलयसुन्दरी को हरिवाहन से समरकेतु विषयक आशा बंध चुकी थी लेकिन कवि ने यहां पर मलयसुन्दरी का शोक हरिवाहन से सम्बन्धित किया है[4]।

वैसे मलयसुन्दरी का प्रेम अत्यन्त उत्कृष्ट है। हरिवाहन के मुख से समरकेतु स्वस्थ है एवं वह उसे चाहता है, यह जानकर वह शान्त हो

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ३३६
२- ,, ,, २५५
३- ,, ,, ३५७
४- ,, ,, ३६२

जाती है और अपने प्रेम की तपस्या पूर्ण कर देना चाहती है[1]।

कवि समरकेतु के वियोग-वर्णन में उतना सफल नहीं हुआ है। वह वज्रायुध के साथ किए गए युद्ध में दिव्य अंगूठी के प्रताप से पराजित होकर अयोध्या नरेश के राजकुमारों के साथ रहने लगता है किन्तु वह वहां पर भी मलयसुन्दरी को भूलता नहीं है। लतामण्डप में बैठकर जब अन्य कुमार किसी के 'काम-तन्त्र' को पाकर अनेक प्रकार की चर्चा करते हैं तो वह मलयसुन्दरी के शोक में डूब जाता है, उसके मुख की कान्ति म्लान हो जाती है, दीर्घ निःश्वास चलने लगते हैं, अश्रु बहने लगते हैं और मुख नीचा करके वह ध्यान सोचने लगता है[2]। कांची की ओर जाने वाले गन्धर्वक को मलयसुन्दरी के लिए पत्र लिखकर अपनी कुशलता भेजता है[3] और उसके पुनः आगमन की प्रतीक्षा अत्यन्त उत्कण्ठा के साथ करता है, हरिवाहन को ढूंढते समय गन्धर्वक को देखकर प्रश्नों की झड़ी लगा देता है[4]।

कवि ने समरकेतु के भावों की एक प्रकार से उपेक्षा की है। हरिवाहन समरकेतु को मलयसुन्दरी का सारा वृत्तान्त सविस्तर बता रहा है किन्तु उस कहानी के प्रसंग के बीच समरकेतु के किसी भी प्रकार के भावों का वर्णन कवि ने नहीं किया है। पूरी कहानी सुन लेने के पश्चात् जो समरकेतु की स्थिति चित्रित की है वह अधिक आकर्षक भी नहीं है --

समुच्च 'स तु न कांचिदचेष्टत, न किंचिदभाषत, न कस्यचिद्वचन शृणोत्, न कस्यचित्प्रतिवचः प्रायच्छत। केवलं वंचित इव, छलित इव, मुषित इव,..... तूष्णीक स्थातिष्ठत्[5]।'

कवि ने समरकेतु का अपने ऊपर इतना अधिक क्षोभ दिखाया है कि वह किसी के भावों को आदर की दृष्टि से देखता भी नहीं है। हरिवाहन तो उसकी दशा तथा मलयसुन्दरी की दशा देखकर उसे मलयसुन्दरी

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ३४७-४८
२- ,, ,, १११
३- ,, ,, १७३
४- ,, ,, २२४
५- ,, ,, ४२०

के पास जाने को कहता है और समरकेतु इन शब्दों में हरिवाहन से कह देता है --

"कुमार, किमन्यमावेदयामि ते । यदि तदास्या सैव यत्न: , प्रविष्ट: कश्चिदस्मदागमनवार्ताहरं स्थानुसरस्व । अहं तु कृतविप्रिय: प्रियासकाशात: प्रभृति तस्याववरस्या न शक्नोमि वीक्षितुं वदनम्[1] ।"

हरिवाहन और तिलकमंजरी की कहानी में जिस शृंगार रस का निरूपण हुआ है वह समरकेतु और मलयसुन्दरी के शृंगार रस की भांति नहीं है । इसमें चित्रदर्शन द्वारा प्रेम-भाव का जागरण होता है और इसका प्रारम्भ नायक हरिवाहन की ओर से होता है । गन्धर्वक हरिवाहन को चित्रफलक पर चित्रित तिलकमंजरी के चित्र को दिखाता है जिसे देखकर हरिवाहन मोहित हो जाता है । गन्धर्वक उस चित्रफलक पर राजा हरिवाहन का भी चित्र उन्हीं के सामने चित्रित कर लेता है और तिलकमंजरी के विवाह हेतु दिखाने के लिए उस चित्रफलक को ले जाता है[2] । यह घटना उसके प्रेम-भाव को और भी उद्दीप्त करती है ।

कवि ने यहां भी विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन किया है किन्तु उसके चार भेद -- पूर्वराग,मान, प्रवास, और करुण में से पूर्वराग को हरिवाहन की वियोगावस्था के वर्णन में अपनाया है । गन्धर्वक के चले जाने के बाद तिलकमंजरी के ही सौन्दर्य का स्मरण करना, ब्रह्मा की सृष्टि की प्रशंसा करना, कन्या का भविष्य सोचना, अपना युद्ध कुछ भी न होना, कामदेव से काम लेना, पृथ्वी में विद्यमान अन्य रूपवती युवतियों को लेकर कन्या के प्रति न आसक्त होने के लिए मन को समझाना,उसको देखने के लिए दिनोंदिन उत्कण्ठा का बढ़ना, दु:ख के साथ-साथ नि:श्वासों का बढ़ना, निद्रा का अपहरण होना, अश्रु बहाना, निरन्तर उसी की चिन्ता करने के कारण भित्तिभित्तियों पर उसी के प्रतिबिम्ब देखना,

---

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ४२२

२- ,, ,, १६५-१७०

गन्धर्वक के आगमन की प्रत्याशा में क्रीडाशैल की चोटी पर चढ़ना और अन्त में निराश होकर तिलकमंजरी के आगमन की आशा छोड़ना आदि कवि ने वर्णित किया है[1]।

उसके वियोग-वर्णन में तीन ऋतुएं -- ग्रीष्म, वर्षा और शरद् ऋतु का भी वर्णन हुआ है[2]।

वह अपने भावों को छिपाने के लिए मण्डप देखने के बहाने गृह से बाहर निकल आता है[3]।

उसके वियोग-वर्णन में स्मृति को विशेष स्थान मिला है। हाथी द्वारा अदृष्टपारा सरोवर में पहुंचकर वहां तिलकमंजरी को देखता है किन्तु वह उस समय उसको पहचान नहीं पाता है। उसके चले जाने के बाद वह उस कन्या की चित्रफलक में चित्रित कन्या से तुलना करके उसे तिलकमंजरी समझ कर उसी का उस समय की नयी विविध चेष्टाओं की याद में सारी रात जागते ही बिता देता है[4]। दूसरे दिन उठकर उसी कन्या की खोज करने लगता है।

मलयसुन्दरी से बात करते हुए जैसे ही हरिवाहन को तिलकमंजरी की कामपीड़ित दशा के विषय में ज्ञात होता है उसकी प्रसन्नता इन वाक्यों में देखी जा सकती है --

'अरे हृदय, किमधुनापि ताम्यसि। किं च न मुंचसि चिरंतनविषादम्। उद्वह परं परितोषमधुना। यस्याश्चित्रपटगतेनापि रूपेण तादृशीं पुरा विकलतां नीतमसि.... सा स्वत एव संप्रति विधेयतां गता जीवितं देवी तिलकमंजरी। सर्वथा लब्धं त्वया लब्धव्यम्, अधिगता धन्यता, निरस्तो दुरन्तश्चिन्ताभारः स्वीकृतं स्वातन्त्र्यम्[5]।'

इस अनुपम मिली प्रसन्नता में भी वह अपने विवेक को नष्ट नहीं होने देता जिससे वह लोगों के बीच हास्यास्पद बन जाए। वह अपने

१- तिलकमंजरी पृष्ठ १७६-७८
२- ,, ,, १७८-८१
३- ,, ,, १८१-८२
४- ,, ,, २५१-५३
५- ,, ,, ३५६-५८

हृदय को सावधान करता है[1]। अपनी राजधानी में पहुंच कर जब वह समरकेतु को ढूंढने निकलता है और रास्ते में चतुरिका द्वारा लाए गए तिलकमंजरी के पत्र को सूंघता है तो उसकी अकस्मात् दयनीय दशा हो जाती है। दु:ख इतना घेर लेता है कि उसे किसी वस्तु की सुध ही नहीं रहती है। उसे यह नहीं मालूम होता है --

'कोऽहम्, क्वायात:, किमर्थमायात:, किं मया प्रस्तुतम्, किमेतद्दिनम्, किं निशा, कोऽयं काल:[2].... ।' इत्यादि

तिलकमंजरी के पूर्वराग का तथा आपस में मिलने के पश्चात् वियुक्त होने से उत्पन्न वियोगावस्था का वर्णन करके कवि ने विप्रलम्भ शृंगार रस का आस्वादन कराया है। तिलकमंजरी हरिवाहन को रत्नपुर-चक्रवाल की सीमा पर देखते ही काम-विद्ध हो जाती है। भोजन के प्रति अरुचि, पीड़ा होने पर भी शीतोपचार के प्रति उदासीनता, सखियों की उपेक्षिता, मौनता, मीठे वचन बोलने पर भी क्रुद्ध होना, जो उस तट से आ जाए उसी से बात करना, उसी को अपने पास बैठाना, उसी की बातों को सुनना[3] आदि का वर्णन उसके प्रथम दृष्टिपात-प्रणय से उत्पन्न तिलकमंजरी की वियोगावस्था के चित्रण में किया है।

हरिवाहन के अयोध्या लौट जाने पर तिलकमंजरी के वियोग-वर्णन में जिन-जिन स्थलों में हरिवाहन के साथ रही उसको अतृप्त तथा आदर की दृष्टि से देखना, कामदेव के मंदिर में देव-पूजन के बहाने रत्नवीणा का बजाना, चित्रफलक पर हरिवाहन का ही चित्र बनाना बार-बार गन्धर्वक से हरिवाहन का हाल पूछना आदि वर्णित है[4]।

तिलकमंजरी भी प्राण त्याग करने के लिए प्रयत्नशील होती है[5]। यहां पर कवि ने छ: महीने के विरह का केवल उल्लेख किया है[6]।

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ३५७
२- ,, ,, ३६७
३- ,, ,, ३५५
४- ,, ,, ३६१
५- ,, ,, ४१७
६- ,, ,, ४१७

उसके वियोग-वर्णन में उसका वनवासिनी वेश धारण करना, निद्रा का दूर होना, भूमि पर सोना, फलमूल कन्द खाना, देह की कान्ति का क्षीण होना, हरिवाहन की प्राप्ति में ही जीवन का धारण करना, कभी एक-शृंग की कन्दराओं के निर्झरों में, कभी अदृष्टपार सरोवर के तट के समीपवर्ती पंचधारागृह में और कभी वैताढ्य पर्वत के तमाल वृक्षों की कुंजों में भीषकाओं द्वारा किए गए शिशिरोपचार का भी वर्णन है[1]।

इन दोनों के बीच निरूपित शृंगार रस में संयोगावस्था भी वर्णित है। इन दोनों का सर्वप्रथम मिलन अदृष्टपारनामक दिव्य सरोवर के तट पर होता है (यद्यपि दोनों एक-दूसरे को पहचान नहीं पाते हैं, हरिवाहन उसके चले जाने पर पूर्व दृष्ट चित्र का स्मरण कर उसे पहचान लेता है।) उस समय कवि ने केवल तिलकमंजरी के अनुभावों का वर्णन किया है। उस समय हरिवाहन के निष्पलक दृष्टि से देखने के कारण तिलकमंजरी में कंपन होना, आँखों का फैलना, हरिवाहन के नगर के विषय में पूछने पर लज्जावश कुछ बोल न सकना आदि वर्णित किया है[2]। मलयसुन्दरी के द्वारा तिलकमंजरी को हरिवाहन की ओर देखे जाने के लिए कहे जाने पर कवि ने उसके नेत्रों का विविध मुद्राओं का वर्णन किया है[3]।

हरिवाहन को पान देते समय तिलकमंजरी के उत्पन्न हुए विकार संयोग शृंगार रस को परिपुष्ट करते हैं। कुछ लज्जा आती है अतः वह मुख नीचे कर लेती है, उत्पन्न हुए साध्वस को दूर करती है, धैर्य का सहारा लेकर, कामावेश को वश में करके, अपने प्रभुत्व को तथा सज्जनों के औचित्य को ध्यान में रखकर आगे बढ़ती है[4]।

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ४१८

२- ,, ,, २५८

३- ,, ,, ३६२

४- ,, ,, ३६३

इसके अतिरिक्त वहां पर तिलकमंजरी का प्रतिक्षण हरिवाहन को ही देखना, माणिक्यमण्डपिका की शिला के स्तम्भों में साक्षात्कार करना, परिभ्रमण करना, शृंगाररस परिपूर्ण कविताएं पढ़ना, भित्ति-भागों पर विद्याधर, पक्षी तथा मृगों के जोड़ों का बनाना, नृत्य करना, लतावों का जोड़ना, चन्दनलेप करना, अपने मुंह से बच्चे के मुंह में पान खिलाना आदि संयोग पक्ष को ही पुष्ट करता है[1]।

इस पक्ष में हरिवाहन की मनःस्थिति का कहीं वर्णन हुआ भी नहीं जो थोड़ा - बहुत यत्र तत्र देखने को मिलता है तो उसमें कवि की प्रतिभा का परिचय नहीं मिलता है तथा वहां संयोग शृंगार का रसास्वाद भी नहीं हो पाता है।

शृंगार रस की अभिव्यंजना नायिक तारक और प्रियदर्शना की कहानी में भी है। तारक को देखकर प्रियदर्शना में केवल साध्वस का होना पदस्खलित होना, वस्त्रांचल गिरना ही वर्णित है[2]। किन्तु गिरने से बचाने के लिए तारक जब उसे पकड़ता है तो प्रियदर्शना में उठने वाले विविध भावों-- साध्वस का दूर होना, प्रगल्भता का आ जाना, समागम की तृष्णा जागरित होना, लज्जा आना, भूमि का कुरेदना आदि का वर्णन करके कवि इस रस में अद्भुत सौन्दर्य ले आया है[3]।

तारक भी उसके व्यवहार से, रूपलावण्य से, करतलस्पर्श से तथा प्रकटित अनुराग से अपने को भाग्यशाली समझने लग जाता है और उसके ऊपर सर्वस्व न्यौछावर करके उसे पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेता है। कवि ने विवाहोपरान्त हास-परिहास, चाटुकारिता, कोप, प्रसादन आदि का वर्णन करके संयोग शृंगार का वर्णन किया है[4]। इस कहानी में विप्रलम्भ शृंगार को किंचिदपि स्थान नहीं मिला है।

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ३६४-६५
२- ,, ,, १२७-२८
३- ,, ,, १२८
४- ,, ,, १२६

इस रस के उपरान्त इस काव्य में करुण रस को महत्वपूर्ण स्थान मिला है । यह रस समरकेतु और मलयसुन्दरी की ही कहानी में अभिव्यंजित है ।

मलयसुन्दरी अपने मरण का निश्चय करके अपने गृहोद्यान में जाकर अपने हाथ द्वारा लगाये गये वृक्षों को जिस कातर दृष्टि से देखती है तथा पक्षियों को जिस प्रकार संदेश देती है वह सब सहृदय - हृदय को करुण रस में डुबा देता है । जब वह अशोक वृक्ष को देखती है तो दुःख से निःश्वास छोड़ने लगती है, छोटे-छोटे आम्र वृक्ष के प्रति उसकी विषाद भरी दृष्टि हो जाती है, बकुलवृक्षों को विफल समझने लगती है , छोटी-छोटी लताओं को देखकर आंसु बहाने लगती है , हंस के जोड़े आ-आकर उसके मार्ग को रोक लेते हैं वह भी दुःख के साथ -- 'तात रक्ताशोक, लोकान्तरगतापि स्मर्तव्यास्मि। कमलदीर्घिके, दीर्घकालं क्लेशमनुभावितासि निर्घृणया विदायमानेषु'[1] । इत्यादि कहकर पक्षियों से विदा मांग कर घर चली जाती है ।

कुसुमायुध के मन्दिर में पाश से बंधी मलयसुन्दरी को देखकर बन्धुसुन्दरी द्वारा किया हुआ विलाप, उसके द्वारा दी गयी विधि को उलाहना, मलयसुन्दरी के जीवित होने की आशा से उसका पाशग्रन्थि को काटने के लिए कभी पेड़ पर चढ़ने का प्रयत्न करना , कभी शाखा को तोड़ने के लिए उसे पकड़ कर उसका झुकना, कभी पाश को काटने के लिए समीप में किसी अस्त्र को ढूंढना, कभी मुखवेदिका के अग्रभाग में पैरों को रखकर मलयसुन्दरी को खींचने के लिए अपनी भुजाओं को फैलाना, कभी उसे पाश से मुक्त करने के लिए जांघ पर उसे रखकर उछालना तथा कभी मलयसुन्दरी के नेत्रों का उसके द्वारा बार-बार खोला जाना , उसका उदासीन दृष्टि से कभी केलिशकुनिकाओं का देखना, मूर्छित होना, मूर्छा दूर होने पर जोरों से विलाप करना, अपने को धिक्कारना, कात्यायनी देवी से उसको प्राण-भिक्षा मांगना, स्वयं दुखिया

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ३०१-[illegible]

को मुंह न दिखाने की इच्छा से पाश बांध कर आत्महत्या का निश्चय कर लेना आदि उसके कार्य किस सहृदय को करुणा से आर्द्र नहीं कर देते[१]।

इसी प्रकार मलयसुन्दरी के किंपाक नामक विषैले फल के खाने पर कही गई तरंगलेखा की बातें सहृदय-हृदय को आर्द्र कर देता है। तरंगलेखा यह समझता है कि वह यों ही यहां आश्रम के औचित्य को छोड़ कर चली आया है। अतः उसे सावधान करने के लिए सब उससे कहती है जब उधर से कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलता है तब भी वह यही सोचता है कि उसके कठोर वचन को सुनने के कारण ही वह उससे नहीं बोल रहा है। वह उसे पकड़ कर उठाता है। मलयसुन्दरी किसी प्रकार कुछ दूर चल कर उस विष वेग के कारण आगे नहीं बढ़ पाता है किन्तु तरंगलेखा तब भी उसका क्रुद्ध होना ही सोचती है और उसे पेड़ के नीचे बैठा देती है। उस समय तक उस विष का उसके ऊपर प्रभाव हो चुका था लेकिन वह यह सब कुछ नहीं समझ रही है और उसे मनाने में लगी है। उसके ये वाक्य —

'मलयसुन्दरि, मलयसुन्दरि, किमेवमुत्सृष्ट चेष्टा तिष्ठसि। किं च वारं वारमालापितापि मे वाचं न प्रयच्छसि। अपि न कुपितास्यहम्।' ..... किमन्योऽप्यस्ति कश्चिन्मम तव स्थाने। किं ईषेण निष्ठुरं त्वां तर्जयामि।... 'एषा मलयसुन्दरी निमेषमपि न त्वयोपेक्षितव्या, रक्षितव्या च सर्वोपद्रवेभ्यः शरीरमिव मदीयमत्यादरेण'। तेनैव मे प्रयत्नः। अन्यथा किमहमेवं त्वां नियन्त्रयामि।....[२] इत्यादि मर्म का स्पर्श करने वाले हैं। बन्धुसुन्दरी और तरंगलेखा के करुणरस के प्रसंग में अन्तर यह है कि बन्धुसुन्दरी मलयसुन्दरी को मरा हुआ समझ लेती है और तरंगलेखा उसे मरा अथवा मूर्छित हुआ न समझ कर क्रुद्ध हुई समझती है।

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ३०७-३०८

२- ,, ,, ३३६ २२५

समरकेतु को युद्ध में मरा हुआ सोचकर मलयसुन्दरी द्वारा किया गया विलाप करुण रस की उत्कृष्ट अभिव्यंजना कराता है । उसका समरकेतु का सम्बोधित करना, समरकेतु से प्रार्थना करने वाली बन्धुसुन्दरी का स्मरण करना, मलयसुन्दरी की उपेक्षा करके समरकेतु के अकेले जाने पर और वहां मृत्यु हो जाने पर ईर्ष्या प्रकट करना, समरकेतु ने उसके शुद्ध प्रेम को ठुकरा दिया आदि सोचकर क्षुब्ध होना, नृपोद्यान से आश्रम आते समय एक बात भी उसने नहीं की -- यह सोचकर उसका क्षोभ प्रकट करना -- आदि वर्णन इस रस में अद्भुत चमत्कार ले आते हैं[1]।

इन स्थलों के अतिरिक्त करुण रस का प्रसंग राजा मेघवाहन के पुत्राभावमें है । युवावस्था व्यतीत हो जाने पर भी जब उनके पुत्र नहीं होता तो सभी राजा को धिक्कारने लगते हैं और छोड़ छोड़ कर भागने लगते हैं । देवर्षि उससे कहते हैं कि तुम अपुण्य हो, पूर्वज राजा के बाद भविष्य में होने वाली अपनी दुर्दशा को स्वप्न में दिखाते हैं, श्री(संपत्ति) अलग अपने भाग्य पर रो कर उसे उलाहना देती है, पृथ्वी उससे विनीत होकर होने वाली अपनी दुर्दशा पर कृपादृष्टि के लिए राजा से याचना करती है । प्रजा अलग प्रजावत्सल राजा के पास शरणागत होकर आती है, श्रुतियाँ भय का सहारा लेकर नरक से अपनी रक्षा स्वयं करो कह कर -- मिलने वाले दण्ड से संकेत कर रहा है किन्तु राजा क्या करे । भाग्य के विधान को तो कोई मिटा भी नहीं सकता । राजा के सारे गुण -- शरणागत की रक्षा, प्रजावत्सलता, श्री-रक्षा आदि सन्तान न होने के कारण नष्ट हुए जा रहे हैं और वह इस सम्बन्ध में कुछकार्य कर नहीं सकता[2] ।

वीर रस का आस्वादन वज्रायुध और कुसुमशेखर के युद्ध-वर्णन में किया जा सकता है जिसमें कुसुमशेखर द्वारा की गयी युद्ध की तैयारी में उत्साह भाव की उत्कृष्ट अभिव्यंजना है । शत्रु की चढ़ाई सुनकर दुर्गों की समुचित

१- तिलकमंजरी ३३२-३३३

२- वही,   २०-२१

व्यय या करना, जलाशयों का निर्माण करना, दुर्ग के अन्दर जाने की समुचित व्यवस्था करना, कुओं को कीचड़ से पाट देना, प्राकारों को दुर्गम बनाना, अनभिज्ञ पुरुषों का आना-जाना रोकना, प्रतोली पर आप्त पुरुषों का प्रबन्ध करना, प्राकार के अन्दर पत्थर फेंकने के लिए उन्हें एकत्रित करना, अन्य सेनाओं का यत्र तत्र फैला देना, अधीन राजाओं के पास सहायतार्थ दूतों का भेजना, सेनापतियों का गुप्तचरों से हाल मालूम करके तदनुकूल आचरण करना, सामन्तों का युद्ध के लिए आगे बढ़ना -- आदि बताकर कवि ने युद्ध की तैयारी वर्णित की है ।

इसमें उत्साह भाव होने के कारण वीर रस तो है ही किन्तु दोनों के बीच होने वाले घमासान युद्ध में वीर रस के आस्वादन की चरम सीमा मिलती है[1] । दोनों ओर से ललकारपूर्ण वचनों का कहा जाना, सुभटों के सिंहनाद से रणभूमि का गुंजित होना, पाषाणों के निरन्तर फेंकने से आकाश को ढका-सा बना देना, तुरही का बजना, शस्त्रों की बौछार होना, गर्म-गर्म तेल फेंकने से पैदल सेना को विघटित करना, कुछ योद्धाओं का प्राकार के मूलों को तोड़ने के लिए प्रयत्नशील होना -- आदि का वर्णन उस प्रसंग में मिलता है[2] ।

समरकेतु के साथ किये गये युद्ध-वर्णन में वीर रस का आस्वादन होता है[3] । कुसुमशेखर के साथ किए गए युद्ध के उपरान्त जब वज्रायुध के सैनानी आराम से सो रहे थे कि एकाएक समरकेतु अपनी सेना के साथ वज्रायुध से युद्ध करने के लिए आ जाता है । उस समय काहलों की ध्वनि, घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़, ढक्के की ध्वनि आदि योद्धाओं को लड़ने के लिए उत्साहित करने लगती हैं । दोनों ओर से युद्ध छिड़ जाने पर

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ८२

२- ,, ,, ८२

३- ,, ,, ८६-९३

समरकेतु का चित्र पाकर और उसे नायिका समझ कर मलयसुन्दरी के विविध भावों का अंकन करके कवि ने भावशबलता की अभिव्यंजना की है[1]।

इस प्रकार इस काव्य में विभिन्न कथानकों की जटिलता रहने पर भी रसों एवं भावों का समन्वित निरूपण होने से एक अविच्छिन्न सरसता आ गई है जिससे मानसिक [illegible] अत्यन्त परिश्रम करने पर भी पाठक आनन्द का अनुभव करता है।

गद्यचिन्तामणि में रसों का निरूपण

गद्यचिन्तामणि में कवि ने जैन धर्म के सिद्धान्तों का स्पष्टरूप से प्रतिपादन किया है, कर्मों की प्रधानता, भवितव्यता, सांसारिक वैभवों के प्रति विरक्ति, यौवन, [illegible], [illegible], [illegible] तथा राजलक्ष्मी की निन्दा आदि विशेषरूप से वर्णित है। मुक्ति की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है-- कवि ने जीवंधर के चरित्र के माध्यम से बताया है। अन्तिम लम्ब का नाम इसीलिए 'मुक्ति श्रीलम्भो नामैकादशो लम्बः' दिया है। अतः इस दृष्टि से इस काव्य में शान्त रस की प्रधानता देखी जा सकती है। यद्यपि इस रस के विषय में बहुत वाद-विवाद है और अभी तक यह अनुसंधान का विषय बना हुआ है किन्तु आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट और विश्वनाथ जैसे संस्कृत-साहित्य के शिरोमणि आचार्य इस रस की सत्ता में किसी प्रकार का संदेह नहीं रखते। इन आचार्यों की दृष्टि से इस रस का स्थायि भाव 'शम' या निर्वेद होता है। इस काव्य में इस प्रकार के स्थल कई हैं और यत्र तत्र ज्ञान की बातें भरी हैं।

जब रानी को देखे गए स्वप्न से पुत्र की प्राप्ति और राजा सत्यंधर की मृत्यु का पता चलता है तो वह शोक से विह्वल हो जाती है। राजा को भी शोक होता है किन्तु भवितव्यता की अचिन्त्य शक्ति के समक्ष अपने को असमर्थ पाकर रानी को सान्त्वना देने लगता है[2]।

काष्ठांगार के साथ युद्ध करते-करते सत्यंधर को अकस्मात् वैराग्य हो जाता है और वह शस्त्रों को छोड़ देता है। उसका निम्नलिखित पद्य वैराग्यक

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ३३६

२- ग०चिं० ,, १६

भावों से ओतप्रोत है --

'विषयासंगदोषोऽयं त्यजेम विषयैषिकुः ।
अंग्रं वा विषयग्रन्थे मुंचात्मन्विषयैकुलाय ।[1] '

विद्याधर लोक में लोकपाल नामक राजा को वर्षाकाल में बादल के एक टुकड़े की क्षणभंगुरता देखकर वैराग्य हो जाता है । सांसारिक वैभवों को जल के बुलबुले के समान देखने लगता है, जीवित रहते हुए संपत्तियों को पुण्य के क्षय से नष्ट होते हुए उसी प्रकार देखने लगता है जैसे वृक्ष के नीचे लोगों का गिरे पत्तों की राशि वायु के प्रबल झोंकों से इधर-उधर बिखर कर नष्ट हो जाती है, वह युवावस्था को घातक, जीवन को नश्वर तथा आई हुई वस्तु का जाना निश्चय है -- इस प्रकार सोचने लगता है । इस प्रकार के विचार उठते ही वह गार्हस्थ्य-जीवन से विरक्त होकर तपस्या करने चल देता है[2] ।

इस घटना में शान्त-रस विभाव, अनुभाव और संचारिभाव से पुष्ट होकर अभिव्यंजित हो रहा है -- आलम्बन बादल का टुकड़ा है, अनुभाव-संसार को क्षणभंगुर आदि समझना है, व्यभिचारी-भाव निर्वेद तथा ग्लानि है तथा स्थायिभाव वैराग्यजनित निर्वेद है ।

जीवंधर की माता विजया, वैश्यपति गंधोत्कट तथा उसकी पत्नी सुनन्दा अन्त में वैराग्य के कारण ही संसार से मोह छोड़ कर तपस्या करने चले जाते हैं । जीवंधर को भी अन्त में जब अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त पता चल जाता है तो संसार को मिथ्या समझ कर अपने जीवन को सार्थक करने के लिए तप करने के लिए तत्पर हो जाता है और अपनी पत्नियों को भी समुचित आदेश देकर उन्हें भी तप के लिए तैयार करता है[3] । उनके उपदेशों में जीवंधर के निर्वेद जनित शम की अभिव्यक्ति होती है ।

इसी प्रकार शरीर की क्षणभंगुरता का उपदेश जीवंधर ने क्षेमश्री को छोड़कर जाते समय रास्ते में मिली विद्याधर की कामुक कन्या को दिया है

१- ग० चिं० पृष्ठ २७

२- ,, ,, ३७

३- ,, ,, १६५-६६

४-

कवि ने हाथी के बाजार पहुंचने का कारण जीवंधर को जानकर काष्ठांगार के क्रोध का वर्णन किया है किन्तु यहाँ यह क्रोध-भाव रस दशा को प्राप्त नहीं कर सका अपितु भाव की कोटि पर ही पहुंच कर रह गया है । यद्यपि यहाँ पर भी लाल नेत्र, भीषण आकृति तथा विकट भृकुटि का वर्णन अलंकारों के साथ है[1] ।

काष्ठांगार द्वारा जीवंधर को वध की आज्ञा मिलने पर जीवंधर के मित्रों के क्रोध-वर्णन में भी वही अंगार सदृश आंखों का लाल होना, कठोर वचन कहना, शरीर को भयावह बना लेना, ओठों का काटना, युद्ध के लिए शस्त्रों का ले लेना वर्णन किया है[2] । किन्तु यह वर्णन रौद्र रस की व्यंजना कराता है और न भावकोटि पर पहुंचता है । अन्य उदाहरणों में भी ये सब बातें वर्णित हैं किन्तु वे अनूठे ढंग से हैं ।

वीर रस का निरूपण युद्ध-वर्णन के प्रसंग में अधिकांश हुआ है किन्तु यहाँ कवि को सफलता नहीं मिली है । काष्ठांगार के घेरे डालने की बात सुनकर सत्यंधर क्रोध से पागल हो जाता है । वह अपनी व्याकुल पत्नी को मयूर यंत्र पर बैठा कर अलग भिजवा देता है और स्वयं हाथ में तलवार लेकर युद्ध के लिए निकल पड़ता है । विपक्षियों की उस समय वैसी ही दशा हो जाती है जैसी सिंह को देखकर हाथी के बच्चों की । यद्यपि कवि ने यहाँ राजा सत्यंधर द्वारा हाथियों का मस्तक काटना , रथों का तोड़ डालना, योद्धाओं की भुजाओं का काट देना, अश्व सेना को व्याकुलित करना आदि का उल्लेख किया है[3] किन्तु पाठक उससे वीर रस का आस्वादन नहीं कर पाता ।

शबरों द्वारा गायों के चुरा लिये जाने पर काष्ठांगार शबरों से युद्ध करता है । उस युद्ध-वर्णन में दोनों ओर से उत्साह दिखाया गया है । दोनों ओर से होने वाले भीषण कोलाहल, धनुष की टंकार सेनानियों का गिरना

१- ग०चिं० पृष्ठ ८५

२- ,, ,, ११६

३- ,, ,, २५-२६

प्राप्त हुआ है। गन्धर्वदत्ता के विवाह के बाद वसन्तोत्सव में जलक्रीड़ा दिखाई गई है। गन्धर्वदत्ता की कथा में शृंगार रस की भूमिका प्रकृति के माध्यम से बांधी गयी है[1]। उसके विवाह के लिए स्वयंवर रचा जाता है, देश-देश से राजकुमार आते हैं, उस समय गन्धर्वदत्ता की शोभा, वीणा-वादन की सुषमा उज्ज्वल रस का पान करती है। उस समय गन्धर्वदत्ता को देखकर होने वाले उनके मनोभिलाषाओं एवं उनके वीणावादन से अंकित उनके नैराश्य एवं वीणावादन के लिए प्रस्तुत होने पर मिली असफलता का वर्णन उस प्रसंग को सरस बनाता है[2]। कवि ने यहां पर कुतूहल पैदा किया है। अतः यहां उस पर प्रसंग रसमय का कहा जा सकता किन्तु जब गन्धर्वदत्ता और जीवंधर का प्रसंग आता है तो यहां प्रसंग शृंगार रस का ही बनता है किन्तु उसमें विशेष सफलता उन्हें मिली है — ऐसा नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि जीवंधर को देख कर उठने वाले गन्धर्वदत्ता के मनोभावों के वर्णन में कवि ने विशेष उत्साह नहीं दिखाया है, एक पद्य में वर्णन कर दिया है। वह केवल इतना लिखता है —" तस्याः उभयो मनः पराजय एव जातान्मे परं श्रेयः[3]।"

गन्धर्वदत्ता के मनोभावों का कवि ने इतना भी वर्णन किया है जीवंधर के मनोभावों का तो उतना भी नहीं है यद्यपि वह गन्धर्वदत्ता को पाने के लिए वीर योद्धाओं से लड़ा भी था। जीवंधर के गन्धर्वदत्ता के प्रति किये गये मनोभावों का तब थोड़ा-सा अवश्य वर्णन कर दिया है जब नन्दाढ्य उसे गन्धर्वदत्ता की चिट्ठी देता है और उसे पढ़कर जीवंधर दुःखित होता है[4]।

गुणमाला की कहानी में भी इस रस की भूमिका वसन्त ऋतु-वर्णन द्वारा तैयार की गई है। इसीलिए इसका वर्णन कवि ने उद्दीपन रूप में किया है[5]। जीवंधर इसी बीच जल क्रीड़ा देखने अपने साथियों के साथ जाता है वहां पर वह हाथी द्वारा त्रस्त गुणमाला को देखता है और उसका रक्षा हाथी से

१- ग०चिं० पृष्ठ ६२

२- ,, ,, ६४-६८

३- ,, ,, ६९

४- ,, ,, ११६-११७

५- ,, ,, ७५

महाश्वेता पुण्डरीक के कान में लगी पारिजात की मंजरी की सुगन्धि से आकृष्ट होकर पुण्डरीक के सौन्दर्य पर मुग्ध होती है उसी प्रकार इस काव्य में राजाप्रौल्ह कुहरे की गीत से आकृष्ट होकर अनन्या के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है।

यहाँ पर कवि ने राजा को देखकर होने वाली कन्या अनन्या की दशा एवं उद्दीपन रूप में वहाँ की प्रकृति का वर्णन करके रति-भाव की और पुष्टि की है। राजा के भी कुछ सात्त्विक-भाव वर्णित किए हैं। उपवन में एक-दूसरे को मिलाकर कवि ने पूर्वानुराग अवस्था का चित्रण किया है। जब ये दोनों एक-दूसरे के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गये तभी राजभवन द्वारा प्रेषित विदूषक का आगमन राजा प्रौल्ह को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इस समय कवि ने राजा प्रौल्ह का विषाद का बड़ा मार्मिक चित्र खींचा है --

"सर्वांगिणीं दृष्टिं कथमप्याकृष्य तत्संगतं हृदयमपि आदादाय, तदवयवलावण्या वलोकन स्पृहां किंचित्संकोच्य, तादृशीं तस्याः स्थितिमपि चित्ते विलिख्य, तदागमन-विशेषविलासभंगीरपि मनसि संयम्य...[1] ।"

प्रौल्ह के वियोग-वर्णन में प्रकृति उसके विरह को और भी उद्दीप्त करने लगती है। विदूषक को बहलाकर पुनः क्रीडा-विहार भूमि में आने पर कन्या को न देखकर प्रौल्ह का वज्राहत होना, उस कन्या के गण्डूष से सिंचित बकुल वृक्ष से ईर्ष्या करना, प्रकृति के उपादानों में अनन्या के अवयवों को देखना बताकर उसकी उन्माद अवस्था का, राजभवन में आकर कहीं शान्ति न मिलने पर उत्कण्ठित होकर शैया पर पड़कर क्रीडा-विहार भूमि में जाने के लिए प्रातःकाल की प्रतीक्षा करना, विरहाग्नि से शरीर का मलिन हो जाना, दूसरे दिन क्रीडा-विहार भूमि में आने पर भी कन्या के न मिलने पर रहे-सहे धैर्य का खो जाना, विधि को उलाहना देना, चन्द्रोपालम्भ करना एवं मूर्च्छित होना आदि उसकी वियोगावस्था के चित्रण में वर्णित हैं[2]।

दूसरे दिन लता मण्डप में पहुंच कर जब राजा प्रौल्ह कन्या को नहीं देखता है इसके विपरीत कन्या के विरह को बताने वाली शय्या को देखता है

१- वैम० पृष्ठ ३८

२- ,, ,, ४१-५७

किन्तु कवि ने प्रेम का [illegible] न लेकर [illegible] कोटि का किया है । विरहाग्नि से [illegible] होकर दोनों दुःखी होते हैं [illegible] विधि-विधान से इन दोनों का विवाह होता है ।

नायक-नायिका की वियोगावस्था के चित्रण में कुछ बातें प्रायः एक-सी हैं । उदाहरणार्थ 'चन्द्रोपालम्भ' राजा प्रोल्ह और अन्ना दोनों की ओर से हुआ है । कहीं-कहीं पर भी भावों की [illegible] समानता की गयी है । उदाहरणार्थ जिस प्रकार विदूषक राजा को आश्वासन देता है उसी प्रकार सखियां अन्ना को आश्वासन देती हैं[1] ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इस काव्य का प्रधान रस वीर ही कहा जायगा । शृंगार रस का जो निरूपण राजा प्रोल्ह के वर्णन-प्रसंग में हुआ है वह अंश रूप में ही आया है । राजा प्रोल्ह स्वयं एक शक्तिशाली एवं शिकारी राजा के रूप में चित्रित हुआ है । काव्य में जितने भी राजा आये हैं सब वीर योद्धा और योग्य शासक के रूप में चित्रित किए गए हैं । किन्तु इस रस का आस्वादन सभी राजाओं के वर्णन में नहीं मिल पाता है ।

राजा प्रोल्ह की मृगया में वीर रस का स्थायि-भाव उत्साह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । वह विविध शस्त्रों एवं शिकारी कुत्तों से सुसज्जित शिकारियों के साथ वन में पहुंच कर वहां के सभी जानवरों को त्रस्त कर देता है । जानवरों का भगदौड़ मच जाता है । चरती हुई भोली भाली गायें भयभीत हो अपने बछड़ों को ढूढ़ने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो जाती हैं । भैंसों के कठोर कन्धों पर तलवारों के गिरने से तलवारों की झनझनाहट होने लगती है । शिकारियों द्वारा मारे गए यूथपति के शोक से विह्वल होकर हथिनियां चिंघाड़ने लगती हैं, शेष हाथी निरन्तर बाणों के गिरने से अत्यधिक भयभीत हो इधर उधर भागने लगते हैं, शिकारियों की छुरिका से लकड़बग्घों (तरक्षु) के पेट विदीर्ण होने लगते हैं, भिन्दिपाल (एक डंडा जिसमें कंकड़ या पत्थर रखकर

१- (अ) विदूषक का राजा प्रोल्ह को सान्त्वना देना, कैम० पृष्ठ ४७, ५४

(ब) सखियों का अन्ना को सान्त्वना देना । कैम० पृष्ठ ७७, ८२ ।

घृणा के भाव जागरित नहीं होते और वे भाव चरम सीमा में पहुंच कर किसी सहृदय को रसास्वादन नहीं कराते ।

सामुद्रिक युद्ध में युद्ध का बीभत्स रूप केवल एक पंक्ति में यह कह कर किया है कि मारे गये योद्धाओं का रक्तपान आदि मानुषकर्दम कर रहा है -- 'आहत निविडपयोधिवपुः [illegible] पुलिनाभ्यवतारितानविमुक्तशक्तिकुन्तानुमानुषकर्दम' [1] अतः इस रस की चर्वणा नहीं हो पाती ।

चण्डिकालय के वर्णन में भी बीभत्स रस का वर्णन हुआ है जहां बलि के लिए भयंकर बकरे काटे जा रहे हैं, उनके रक्त से भूमि पिच्छिल हो गई है जिस पर चलने से पिशाच लड़खड़ा रहे हैं किन्तु रक्त को देखकर अपने अट्टहास से आकाश को गुंजित कर रहे हैं, तलवारों के द्वारा नरबलि की जा रही है और राक्षस उनके ताजे मांस को पाकर अत्यधिक प्रसन्न हो रहे हैं, भूतगण अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं । बड़ी चोटों से मांस जैसा हुई दांतों से गठित मुण्डों का तथा हड्डियों की माला धारण करती हुई, मुंह फैला कर रक्तपान करती हुई डाकिनियों के तथा वैताल स्त्रियों के निर्दय कार्य, पिशाचों का मांस, मेदा, वसा, रक्त आदि के लिए चिल्लाना, भूतों का रक्त का आस्वादन करना आदि का वर्णन[2] करके कवि ने बीभत्स रस की चर्वणा कराई है । किन्तु कवि ने यहां बीभत्स रस को स्वतन्त्र स्थान न देकर उसे भयानक रस के पोषक के रूप में स्वीकार किया है । क्योंकि कवि को चण्डिकालय का भयानक रूप वर्णन करना ही अभीष्ट है । यदि ऐसा न होता तो चण्डिकालय का निम्नलिखित ढंग से भांति-भांति की उपमाओं के साथ कवि वर्णन न करता -- 'पितृपतिपुरमिव प्रेतकुलाध्यासितम्, त्रिविक्रमचरितमिव प्रकटित-बलिभुजनिग्रहम्, नृसिंहमिव कुंभपाणि [illegible]प्रकाशम्, ...परमैश्वर्यं[3] चण्डिकालयमपश्यत् ।' और राजा से स्तुति न करवाता ।

१-वैम० पृष्ठ १५१-१५२

२- ,, ,, १८३-१८४

३- ,, ,, १८३-१८४

रामकथा में रसों का निरूपण--

रामकथा में रौद्र रस और वीर रस के प्रसंग अवश्य आए हैं किन्तु कवि को उन सब में सफलता मिली है -- ऐसा नहीं कहा जा सकता । समुद्र के प्रति किए गए राम के क्रोध-वर्णन में केवल 'अवनि न सकैव तावदञ्जनगुरुतारकाकुनि-रागानयनकोणनद्ध उद्भटभ्रुकुटिलाभ्रटाळफाळलाटस्य अतिविकटदशनसंदष्टरक्ताधरविरोष्ठपुटस्य तत्कालपाणिधिरितकटाक्षमवनमन्धुरं शरीरम्'[1] ही कहा है जिससे स्पष्ट है कि ये पंक्तियां न रस की स्थिति तक और न भाव की कोटि तक पहुंचाता है ।

युद्ध-वर्णन में वीर रस की चर्वणा करने का कवि ने प्रयत्न किया है किन्तु काव्य के नायक राम और उपनायक रावण के मध्य होने वाले युद्ध में कवि इस कार्य में सफल नहीं हो पाया है । इस वर्णन में कवि ने उन दोनों का युद्ध-क्रियाओं का वर्णन न करके युद्ध भूमि का ही वर्णन किया है[2] ।

इसके विपरीत तो राम-रावण की सेना के बीच होने वाले युद्ध में वीर र की अभिव्यक्ति आकर्षक ढंग से हुई है । वानरों द्वारा युद्ध को ललकार, ललकार सुनकर राक्षसी सेना का निकलना, तत्पश्चात् दोनों के बीच घमासान युद्ध का होना वर्णित है । यहां पर कवि उनकी क्रियाओं का उल्लेख एवं अनुकारात्मक शब्दों का प्रयोग करके दृश्य को सजीवता दे पाया है[3] ।

यद्यपि इसमें भी युद्ध स्थल का वर्णन है किन्तु इस युद्ध में दोनों सेनाओं की क्रियाओं, प्रहार, क्रोध आदि विविध भावों का वर्णन मिलता है ।

जिस प्रकार कवि ने इस युद्ध-वर्णन में वानरों की क्रियाओं का वर्णन राक्षस-योद्धाओं को ललकारने के लिए किया था उसी प्रकार कुम्भकर्ण के युद्ध वर्णन में भी युद्ध के बीच होने वाली उसकी क्रियाओं का वर्णन किया है किन्तु वहां पर वीर रस का आस्वादन सहृदय नहीं कर पाता है[4] ।

इसी प्रकार इन्द्रजित् के साथ होने वाले युद्ध-वर्णन में वीर रस की चर्वणा नहीं हो पाती है[5] ।

१- रामकथा पृष्ठ ३८-३९.
२- ,, ,, ४६
३- ,, ,, ४२-४३
४- ,, ,, ४५
५- ,, ,, ४७

रामकथा में रसों का निरूपण--

रामकथा में रौद्र रस और वीर रस के प्रसंग अवश्य आए हैं किन्तु कवि को उन सब में सफलता मिली है -- ऐसा नहीं कहा जा सकता । समुद्र के प्रति किए गए राम के क्रोध-वर्णन में केवल 'अवनि व सहसैव तावदरुणयुगतारकादुनि-रीक्षा-नयनकोकनदम् उद्भटभ्रुकुटिरेखाजटालफालतटम् अतिविशददशनसंदष्टरक्तल चिरोष्ठपुटम् उत्कम्पशिथिलितजटाबन्धबन्धुरं शरीरम्'[१] ही कहा है जिससे स्पष्ट है कि ये पंक्तियां न रस की स्थिति तक और न भाव की कोटि तक पहुंचाता है ।

युद्ध-वर्णन में वीर रस की चर्वणा करने का कवि ने प्रयत्न किया है किन्तु काव्य के नायक राम और उपनायक रावण के मध्य होने वाले युद्ध में कवि इस कार्य में सफल नहीं हो पाया है । इस वर्णन में कवि ने उन दोनों का युद्ध-क्रियाओं का वर्णन न करके युद्ध भूमि का ही वर्णन किया है[२]।

इसके विपरीत तो राम-रावण की सेना के बीच होने वाले युद्ध में वीर रस की अभिव्यक्ति आकर्षक ढंग से हुई है । वानरों द्वारा युद्ध को ललकार,ललकार सुनकर राक्षसी सेना का निकलना, तत्पश्चात् दोनों के बीच घमासान युद्ध का होना वर्णित है । यहां पर कवि उनकी क्रियाओं का उल्लेख एवं अनुकारात्मक शब्दों का प्रयोग करके दृश्य की सजीवता ले आया है[३]।

यद्यपि इसमें भी युद्ध स्थल का वर्णन है किन्तु इस युद्ध में दोनों सेनाओं की क्रियाओं, प्रहार, क्रोध आदि विविध भावों का वर्णन मिलता है ।

जिस प्रकार कवि ने इस युद्ध-वर्णन में वानरों की क्रियाओं का वर्णन राक्षसी-योद्धाओं को ललकारने के लिए किया था उसी प्रकार कुम्भकर्ण के युद्ध वर्णन में भी युद्ध के बीच होने वाली उसकी क्रियाओं का वर्णन किया है किन्तु वहां पर वीर रस का आस्वादन सहृदय नहीं कर पाता है[४]।

इसी प्रकार इन्द्रजित् के साथ होने वाले युद्ध-वर्णन में वीर रस की चर्वणा नहीं हो पाती है[५]।

१- रामकथा पृष्ठ ३८-३-८.
२- ,, ,, ४६

इस प्रकार कवि ने काव्य में केवल दो रसों -- रौद्र और वीर रस को ही स्थान दिया है किन्तु वीर रस के प्रसंग में केवल एक स्थल को छोड़कर प्रायः असफलता ही मिली है -- ऐसा ही कहा जायगा ।

आसफविलास में रस निरूपण--

रामकथा में तो फिर भी रस को स्थान मिला है किन्तु 'आसफविलास' में तो कवि ने इस तत्व की उपेक्षा ही कर दी है । यद्यपि पंडितराज जगन्नाथ ने 'आसफविलास' में ही 'सार्वभौमसंबंधिषु श्लोकेषु नामन्तेषु वाङ्मयेष्विव काव्यकलापः काव्यकलापेष्विव ध्वनिः ध्वनिष्विव रसो रसेष्विव शृंगारः...'[1] कह कर काव्य में रस को महत्वपूर्ण तत्त्व माना है तथा उन्होंने इसका सफल निर्वाह अपनी अन्य काव्यात्मक रचनाओं में भी किया है किन्तु उन्होंने इस गद्य-काव्य में इसका निर्वाह नहीं किया है । सम्भवतः इसका कारण उनका केवल अपनी शैली को मधुर वर्णों से संयोजित करना ही रहा हो । यही कारण है कि कश्मीर की स्त्रियों का सौन्दर्य-वर्णन[2] कवि ने किया है किन्तु उस वर्णन-प्रसंग को शृंगार रस की कोटि में नहीं रक्खा जा सकता है ।

इसी प्रकार कवि ने शाहजहाँ के दान तथा पराक्रम[3] का वर्णन किया है पर उसे रस का नाम नहीं दिया जा सकता है । क्योंकि इन रसों के प्रसंग में कवि ने विभावों, अनुभावों तथा व्यभिचारी भावों का बिल्कुल विकास नहीं किया है जो इसको स्थिति में पहुंचाने के परमावश्यक तत्व हैं । उन्हीं की सत्ता में रस की सत्ता है, दोनों में अन्वय- व्यतिरेकि संबंध है ।

कवि ने राजाओं का जो वर्णन किया है उससे केवल उनकी वीरता का ही अनुमान होता है, रस का आस्वादन नहीं ।

इस प्रकार इन सभी अर्वाचीन गद्य-काव्यों के अध्ययन से स्पष्ट है कि सभी कवि काव्य के आत्म तत्व रस की अवतारणा कराने में निरन्तर प्रयत्नशील रहे । कुछ कवियों को इस क्षेत्र में पर्याप्त सफलता भी मिली है । इसको

१-- पं०का०सं०-- आर्येन्द्र शर्मा, आसफविलास पृष्ठ ८४

सफल अभिव्यंजना होने के कारण उनका काव्य दुरूह होते हुए भी सरसता की दृष्टि से किसी प्रकार कम नहीं है ।

रस का प्राण-तत्व औचित्य होता है । जो कवि इस ओर ध्यान रखते हैं उनके काव्य में इसका सम्यक् निर्वाह हो जाता है और सहृदय उस रस के आस्वादन में निमग्न हो जाता है । इस दृष्टि से तिलकमंजरी, गद्यचिन्तामणि और वेमभूपाल चरित उत्कृष्ट काव्य कहे जा सकते हैं यद्यपि इन काव्यों में भी यत्र तत्र रस-विषयक दुर्बलता मिलेगी किन्तु वे रस चर्वणा कराने में विशेष बाधक नहीं बनती हैं । आनन्दविलास में कवि यदि चाहता तो रस की उत्कृष्ट अभिव्यंजना करा सकता था क्योंकि इसकी अन्य रचनाओं के पढ़ने से उसकी इस विषय में प्राप्त अद्वितीय सफलता के विषय में पता चलता है किन्तु उसने इस ओर ध्यान न देकर रमणीयार्थ प्रतिपादित करने वाली मनोहर पदावली पर ही ध्यान दिया ।

इन गद्य-काव्यों के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि अधिकांश कवियों ने अपने काव्य का मुख्य रस शृंगार को ही बनाया है । जिन कवियों ने शृंगार को नहीं भी बनाया है उन्होंने भी उसे अंग रूप में स्थान अवश्य दिया है और उसके निरूपण में विशेष रुचि दिखायी है ।

-0-

पंचम अध्याय

प्रकृति - निरूपण

--o--

प्रकृति-निरूपण

मनुष्य का सम्बन्ध आदिकाल से प्रकृति से रहा है । जब इतनी अधिक सभ्यता नहीं बढ़ी थी, मकान आदि का निर्माण नहीं हुआ था तब वह प्रकृति के प्रांगण में ही विचरण करता था । उसी की गोद में पल कर विविध शिक्षाएं ग्रहण करता था । उस समय प्रकृति उसका सारा कार्य माता की भांति उसे अपना पुत्र समझ कर करती । उसकी शिक्षाओं को ग्रहण कर आज मानव सभ्यता की अट्टालिका पर चढ़ा हुआ है । कोई भी कृतज्ञ मनुष्य प्रकृति के उपकारों को भूल नहीं सकता है । यदि कोई मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करके उसके उपकारों की उपेक्षा कर दे तो ऐसे व्यक्ति को कृतघ्न के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहा जा सकता है । यह प्रकृति मनुष्य को जीवन की विविध अवस्थाओं में सहयोग प्रदान करती हुई अनुभव की जा सकती है । वह कभी उसके साथ वार्तालाप करती है, कभी उसकी प्रसन्नता में हंसती है, कभी उसके दु:ख से आंसू बहाती है एवं उसे सान्त्वना देती है, कभी बन्धुओं से बिछुड़े एकाकी पथिक को पथ-प्रदर्शित करती है, उसका स्वागत करती है, उसे आश्रय सुख देती है एवं आगामी संकट से सावधान आदि कराती है । संसार में ऐसे उदार मनुष्य कम ही मिलेंगे । अत: जो शान्ति इधर-उधर भटकने पर भी मनुष्य को नहीं मिलती वही शान्ति उसको प्रकृति की गोद में वैसे ही मिल जाती है जैसे शिशु को माँ की गोद में बैठने से ।

कवि भी उसी मानव का एक अंश है । अत: वह भी प्रकृति से न अपने को अलग कर पाता है और न प्रकृति ही उसे अलग होने देती है । चूंकि कवि भावुक होता है, अत: प्रकृति भी भावुक बनकर उसका साथ देती है । यही कारण है कि कवि की प्रकृति तथा वैज्ञानिक की प्रकृति भिन्न-भिन्न दिखायी देती है क्योंकि दोनों के दृष्टिकोणों में अन्तर है । वैज्ञानिक प्रकृति की बाह्य खोज करता हुआ सत्य पर पहुंच कर किसी एक निश्चित नियम का निर्धारण कर लेता है किन्तु कवि प्रकृति के बाह्य रूप पर ही मुग्ध होकर सब कुछ-कुछ

सी बैठता है , उसी में अपने भावों का तादात्म्य कर लेता है । वैज्ञानिक प्रकृति को निर्जीव दृष्टि से देखता है किन्तु कवि उसे सजीव समझने के कारण चलते-फिरते मनुष्य के समान देखता है । कवि के प्रकृति-वर्णन में भावना की प्रधानता के कारण हृदय की प्रधानता होती है और वैज्ञानिक के वर्णन में ज्ञान की प्रधानता होने के कारण मस्तिष्क की प्रधानता होती है । एक की सौन्दर्यानुभूति अल्पज्ञ भी कर सकता है किन्तु दूसरे की सौन्दर्यानुभूति केवल मात्र वैज्ञानिक ही ।

प्रकृति के बिना कवि अपने काव्य की श्रेष्ठ रचना कर भी नहीं सकता है । यह अमर काव्य बनाने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है । डा० किरन कुमारी गुप्त का यह कथन कि "प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में विचरण करने वाले कवि ही अमर काव्य की रचना कर पाते हैं"[१] -- सर्वथा उचित जान पड़ता है । यद्यपि साहित्य का विषय मानव एवं उसकी क्रियायें रहती हैं किन्तु उसका काव्य प्रकृति के सहयोग के बिना अधूरा रह जाता है । क्योंकि प्रकृति संस्कृत कवियों के काव्य की कथावस्तु का निर्माण एवं उसके विकास के लिए समुचित वातावरण उपस्थित करती है । इसीलिए उनके काव्यों में राजधानी, नगरी, उपवन, बन, आश्रम, पर्वत, ऋतु आदि वर्ण्य-विषयों के प्रति कवियों का उत्साह पर्याप्त मात्रा में मिलेगा । इन विषयों का वर्णन करने की कवियों की एक प्रकार से परम्परा बन गई है । संस्कृत कवि सौन्दर्यानुभूति कराने में कुशल होते हैं । किसी भी वस्तु का वर्णन करना होता है तो उसे आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए वे अलंकारों का आश्रय लेते हैं । अलंकार कोई बाह्य वस्तु से सम्बन्ध न रखकर प्रकृति से ही सम्बन्ध रखते हैं । उपमा, प्रतीप, व्यतिरेक रूपक आदि अलंकारों में प्रकृति ही उपमान बनकर आती है । स्त्रियों का नख-शिख वर्णन सभी काव्यों में मिलेगा । शृंगार रस की प्रधानता होने के कारण उस नख-शिख का वर्णन कवि विविध अलंकारों के साथ करते हैं । वहां अलंकारों में प्रकृति का स्थान रहता ही है इसके अतिरिक्त भी प्रकृति कई रूपों में आती है ।

इस प्रकार "प्रकृति कवि के लिए प्रेरणा का स्रोत ही नहीं, सौन्दर्य का अक्षय भण्डार, कल्पना का अद्भुत लोक, अनुभूति का अगाध सागर और विचारों की अद्भुत शृंखला भी बन जाती है[२] ।"

१- हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण --डा० किरनकुमारी गुप्त पृष्ठ १४
२- साहित्यिक निबन्ध --गणपति गुप्त चन्द्र पृष्ठ ३३६

संस्कृत कवि प्रकृति को रम्य व भयावह दोनों रूपों में अपनाते हैं। इस प्रकार के वर्णन करने का अवसर उन्हें पर्वत, वन तथा समुद्र आदि की विषयों में ही मिल पाता है। इनके काव्यों में प्रकृति कभी आलम्बन रूप में और कभी उद्दीपन रूप में भी परिलक्षित होती है। यहां आलम्बन रूप से तात्पर्य किसी स्थायी-भाव के जागरण में सहायक होने वाला विभाव न होकर किसी प्रकृति दृश्य को देखकर कवि के मन में जो भाव उठते हैं उनके वर्णन से है। चूंकि ये भाव कवि से सम्बन्धित होते हैं और काव्य में वर्णित पात्रों की दृष्टि से उनका वर्णन नहीं होता है। अत: कुछ विद्वान इसी रूप को स्वतन्त्र रूप भी कहते हैं।

जब यही प्रकृति पात्रों के भावानुकूल या किसी रस के पोषण के लिए वातावरण उपस्थित करती हुई चित्रित की जाती है तब वह उद्दीपन की कोटि में आ जाती है। यहां जो प्रकृति पहले सुख के समय आनन्द देने वाली होती है वही वियोग-काल के दु:ख के समय पीड़ा को बढ़ाने वाली सिद्ध होती है। इस प्रकार के वर्णन शृंगार रस के दोनों पक्षों में मिलेंगे। इसी प्रसंग में कवि अधिकांशत: ऋतुओं का वर्णन करते हैं।

इसके अतिरिक्त यहां पर मानव के सुख-दु:ख की सहयोगिनी होने के कारण प्रकृति कभी सहचरी और कभी सेविका के रूप में गृहीत होती है, कभी उस पर मानवीय क्रियाकलापों का आरोप किया जाता है और किसी स्थायी-भाव को जागरित कराने में सहायक बनकर आती है।

यह आवश्यक नहीं है कि सहचरी एवं सेविका रूप होने के कारण प्रकृति का मानवीकरण रूप उद्दीपन पक्ष में ही परिलक्षित हो अपितु आलम्बन पक्ष में भी प्राय: इसी प्रकार के रूप मिलते हैं। यहां पर प्रकृति कभी मनुष्य को कर्तव्य क्षेत्र की ओर अग्रसर करती हुई, कभी सावधान करती हुई और कभी उपदेश देती हुई आती है।

कवि काव्य में आलम्बन और उद्दीपन के अतिरिक्त-प्रकृति को पात्रों के चरित्र-चित्रण एवं स्त्रियों के सौन्दर्य-वर्णन में कभी मानवीकरण ढंग या अन्य किसी ढंग से अपना कर प्रचुर मात्रा में स्थान देते हैं। चूंकि गद्य-काव्य भी एक काव्य है अत: जो स्थान प्राकृतिक-वर्णनों का पद्य में (विशेषकर महाकाव्य में) है वही स्थान गद्य-काव्यों में भी परिलक्षित होता है।

प्राचीन गद्य-कवियों की परम्परा का अनुकरण करते हुए अर्वाचीन गद्य-कवियों ने भी इसी काव्य का आवश्यक तत्व मान कर अपनाया है । कुछ कवियों ने इस वर्णन में काव्य-प्रतिभा का अलौकिक रूप दिखा कर बाण के साथ अपने को भी प्रतिभासम्पन्न कवि होने की पुष्टि की है । इस विषय में राजा भोज एवं वामन भट्ट बाण की काव्य-प्रतिभा की प्रशंसा किए बिना कोई सहृदय रह नहीं सकता है । यद्यपि ये प्रसंग शैली के कारण क्लिष्ट हो गए हैं किन्तु मानसिक परिश्रम के बाद मिले आनन्द से मानसिक थकावट दूर हो जाती है । लेकिन इसके विपरीत धनपाल का प्रकृति-वर्णन है जिसमें प्राय: मानसिक परिश्रम करने के उपरान्त भी तदनुरूप आनन्द नहीं मिलता जिससे पाठक ऐसे स्थलों में नीरसता का अनुभव करने लगता है । अर्वाचीन गद्य-कवियों में प्राय: सभी कवियों ने प्रकृति को स्थान दिया है । केवल इसके अपवाद रूप रामकथा के रचयिता वासुदेव ही कहे जा सकते हैं ।

शृंगार मंजरी कथा में प्रकृति-वर्णन--

इस काव्य की कथा का आरम्भ ही प्रकृति के रमणीय वातावरण में होता है। मौसम में वसन्त का अन्त और ग्रीष्म का प्रारम्भ है । राजा भोज विश्वस्त बन्धुओं के साथ उद्यान में बैठे हैं वहाँ उनके अनुरोध से वह कथा कहते हैं । कवि की दृष्टि में प्रकृति-वर्णन काव्य का रसास्वाद कराने में सहायक होते हैं । सरस्वती कण्ठाभरण में उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है --

ऋतुरात्रिं दिवार्केन्दूदयास्तमय कीर्तनैः ।
कालः काव्येषु सम्पन्नो रसपुष्टिं नियच्छति ॥

अतः उन्होंने अपने काव्य में यत्र तत्र उन्हें महत्वपूर्ण विषय बनाकर उनका उत्साह के साथ वर्णन किया है । चूंकि यह काव्य वेश्याओं के चरित्र तथा उनके अनुराग से सम्बन्धित है । अतः प्रकृति अधिकांशतः उद्दीपन रूप में आया है । इस काव्य में जितनी भी ऋतुएं वर्णित हैं वे प्राय: प्रेमी के भावों को किसी न किसी रूप में उद्दीप्त कराने में सहायक होती है । उदाहरणार्थ

पिता द्वारा यौवन से सावधान किए जाने पर भी रविदत्त वसन्त के मादक वातावरण से विनयवती के प्रति आकृष्ट हो जाता है।

उनका ऋतु-वर्णन काव्य में एक पृथक् स्थान रखता है। कवि ने न तो उसे अलंकारों से बोझिल कर दिया और न उसमें कवि की असंख्य पशु-पक्षियों और वृक्षों की नाम गणना की ओर विशेष प्रवृत्ति दिखायी देती अपितु कवि ने अपनी काव्य प्रतिभा के बल से साधारण वर्णन में भी चमत्कार ला दिया है। इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार का आश्रय कवि ने लेकर प्रकृति का मानवीयकरण रूप अवश्य ग्रहण किया है।

इस काव्य में वसन्त ऋतु का वर्णन दो बार हुआ है। रविदत्त की कथा में इस ऋतु का वर्णन उद्दीपन रूप में अधिक हुआ है जिसमें कोयल की कुहू, माधवी लता, कमल वन, किंशुक वन अशोक के कुड्मल, भ्रमरों की गुंजार, सम्पूर्ण वनराजि, वृक्षों के पल्लव, वायु सभी मादक वातावरण उपस्थित करते हैं। यहाँ की प्रकृति ही रविदत्त को विनयवती के सौन्दर्य की ओर आकृष्ट करती है। इसी उद्दीपन रूप के वर्णन में कवि ने प्रकृति का मानवीयकरण रूप भी अपनाया है जिसमें कमलवन को विरहिणियों की व्याकुलता पर हंसी उड़ाते हुए और निखिल वनराजि को तरुण-पल्लव के अवगुण्ठन से सुशोभित नववधू बताया है। रात्रि के छोटे तथा दिन के ताप के बढ़ने के सम्बन्ध में भी कवि ने मानवीय व्यापारों का आरोप किया है जब वह कहता है कि रात्रि विरहिणियों के प्रति सहानुभूति रखने के कारण उसका आना कोई पसन्द नहीं करेगा मानों यह सोचकर क्षीण हो जाती है और दिन वसन्त के सुखधाम होने पर भी हमारा आगमन विरहिणियों के लिए कष्टदायी है मानो इस विचार से उत्पन्न दु:ख के कारण तापग्रस्त हो जाता है[१]।

रविदत्त की कथा में इस ऋतु का संक्षिप्त वर्णन है किन्तु सर्व्यकथानिका में इसका विस्तृत वर्णन है। यहाँ पर भी इस ऋतु का अधिकांशत: उद्दीपन रूप मिलता है। प्राय: वही वर्ण्य-विषय हैं किन्तु कल्पना की नवीनता अद्वितीय सौन्दर्य ला देती है। इस प्रसंग में भी कई स्थलों पर वर्ण्य-विषय की समानता होने पर भी उसका पृथक् स्थान है। रविदत्त की कथा में जिस प्रकार रात्रि

१- श्रृंगार० पृष्ठ २०-२१

के छोटे और दिन के ताप बढ़ने की कल्पना की है, उसी प्रकार यहाँ पर भी है --

"ज्योत्स्नया प्रकाश्यमाननालोक्य शशधरमो च्यवप्रतिवासरं तनिमानमागच्छ-न्तीषु रजनीषु, अतिनिबिडतरसु किरणैर्ति आक्रमादिव संकोचमुत्सृजत्सु वासरेषु"[1]

किन्तु उपर्युक्त उद्धरण से कवि की कल्पना की नवीनता का परिचय मिलता है। यही वर्णन इस प्रसंग में पुन: हुआ है --

"प्रौढिमागच्छति महिम्नि मधुप्रभवे शनै: शनैरल्पायमानासु यामिनीषु कुंजावमलदीर्घिकासु च, तुहिन जडिमोपहितं रुजाभावमवलयमुत्सृजत्सु शशधरकरेषु शिशिरसेषु च"[2]।

किन्तु पुनरावृत्ति किसी भी दृष्टि से नहीं हुई है। एक बार साधारण ढंग से कह दिया और दूसरी बार प्रकृति को मानवीकरण के रूप में।

इस प्रसंग में प्रकृति मानवीय रूप में अधिक आई है। नायक-नायिका के व्यवहारों का आरोप कई बार हुआ है।[3]

इसके अतिरिक्त कवि ने नायिका के व्यवहारों का, अभिसारिका के व्यवहारों का आरोप करके प्रकृति को कई बार अपनाया है। एक स्थल पर उसे नर्तकी के रूप में भी लिया है --

"विचित्र कुसुमवर्णांशुक धारिणीषु प्रबलकिसलयासु लास्येनेव मलयमारुतेन शनै: शनैरतिललितं प्रनर्त्यमानासु वनराजिषु"[4]।"

यहाँ पर बसन्त ऋतु को चक्रवर्ती राजा का रूप भी दिया है जिसमें शरद्‌रूपी राजा से त्रस्त पृथ्वी के दु:ख से दु:खी होकर सब ऋतुओं का सम्राट् बसन्त शरद्‌रूपी राजा को पराजित करता हुआ बताया गया है जिसमें रजनी छत्र धारण करने वाली बनकर चन्द्रमा रूप श्वेत आतपत्र को धारण करती है वायु से हिलते कमल चामर का काम करते हैं और वनराजि अशोक के किसलय फैलाकर उसकी विजय पताका को फहराती है[5]।

१- शृंगार० पृष्ठ ७६

२- ,, ,, ७३

३- ,, ,, ७३,७४,७५,७६

४- ,, ,, ७६

५- ,, ,, ७३

कवि-समय के माध्यम से भी इस ऋतु का वर्णन हुआ है । जिसमें कामिनियों के कटाक्ष से तिलकद्रुम का खिलना, स्त्रियों के ताड़न से उद्यान के कुरबक एवं अशोक वृक्ष का खिलना तथा गण्डूष से केसर तरु का खिलना बताया गया है[1] ।

केरल, चोल, कुन्तल तथा हूण स्त्रियों के सौन्दर्य को लेकर भी इस ऋतु का वर्णन किया गया है[2] ।

इस ऋतु के वर्णन में अन्य अलंकार तो है ही किन्तु उद्दीपन रूप के वर्णन में प्रयुक्त कारण से पहिले कार्य का होना बताकर अतिशयोक्ति अलंकार अपना अपूर्व योग देता है[3] ।

वर्षा ऋतु के वर्णन में प्रकृति मानवीयकरण रूप में ही आयी है जिसमें एक स्थल पर उसकी तुलना राक्षस से की गयी है जिसमें बिजली जीभ, बलाका पंक्ति दांत, प्रबल वायु के झोंके से उठी धूल से धूसरित शरीर, तथा मेघ गर्जन आवाज बताई गई है[4] ।

मानवीय अवयवों के अतिरिक्त मानवीय क्रियाओं का आरोप भी कवि ने किया है । कदम्ब पुष्प मानव की भांति जलधारा को देखकर पुलकायमान हो जाते हैं, कुटज वृक्ष मानिनी के मान को दूर होते देख उनकी दुर्बलता की हंसी उड़ाते हैं (मर्यादा को छोड़ देते हैं), पल्लवित वन-राजि नायक की भांति बादलों से भरी दिशा रूपी नायिका को देखकर अपना अनुराग प्रकट करता हुआ उनके जल कणों के रूप में अश्रु गिराता है और नदी (नायिका) जलधर (नायक) को देखकर उत्कण्ठित हो जाती है[5] । इसके अतिरिक्त यहां पर भी कुकुरमुत्ता (शिलीन्ध्र) द्वारा इस ऋतु का राज्याभिषेक कराया गया है ।

१- श्रृंगार० पृष्ठ ७४
२- ,, ,, ७४-७५
३- ,, ,, ७३
४- ,, ,, २७
५- ,, ,, २७

तथा अन्य कवियों की भाँति बादल को देखकर मयूरों के नृत्य का भी उल्लेख किया गया है[१]।

शरद् ऋतु वर्णन भी कवि की काव्य-प्रतिभा से ओत प्रोत है। इसका वर्णन माधव कथानिका में हुआ यद्यपि वर्षाकाल के बाद बादलों का स्वच्छ होना, इन्द्रधनुष का दिखायी न देना, राजहंसों का कमलों की ओर जाना, मेघों से रहित चन्द्रमा का होना, काश, बंधूक, इन्दीवर बीजक एवं नवीन मृणालों का विकसित होना, नदियों का स्वच्छ होना, सारसों की मधुर ध्वनि से सुशोभित बालू तट का होना, आदि-- वर्ण्य-विषय सामान्य हैं,[२] किन्तु कवि ने इन विषयों को कल्पना की तुलिका से चित्रित करके मनोमोहक बना दिया है।

शरद् ऋतु का वर्णन भी कामदेव का विजय हेतु हंस आदि के कार्य बताकर उद्दीपन रूप में किया है। राजहंस उसकी कीर्ति तथा सूर्य-किरण दिन-प्रतिदिन उसकी आज्ञा को चारों ओर फैलाती हुई बताई गई है। यहाँ पर उसकी उपमा विरहिणी नायिका से देकर भी वर्णन किया है जिसमें स्वच्छ बादल के सम्बन्ध में उसके पाण्डुवर्ण हो जाने, इन्द्रधनुष के न दिखायी देने के सम्बन्ध में हाथ से वलय के गिर जाने की कल्पना की गयी है[३]।

जिस प्रकार कवि ने वर्षा ऋतु का रूपक बांधा है उसी प्रकार इस ऋतु का नायिका से रूपक बांधा है जिसमें चन्द्रमा, कलहंस की ध्वनि, बन्धूक पुष्प, इन्दीवर, चन्दन, मृणाल, नदी की तरंग, सारसों की ध्वनि, स्वच्छ तट, विकसित बीजक को लेकर उसका नख-शिख वर्णन किया गया है[४]।

उभयानुराग कथानिका में कवि ने शिशिर ऋतु का वर्णन किया है। इस ऋतु में उसकी तीव्र ठंडक, शीतल वायु का बहना, लोगों का अग्नि तापना कोहरे एवं यज्ञ के धुएं से गांवों पर आच्छादित होना, कमलों पर तुषारपात होना, बर्फ का गिरना, सूर्य के तेज का क्षाण्य होना, रातों की अधिकता,

---

१- श्रृंगार० पृष्ठ २७
२- ,, ,, २६
३- ,, ,, २६
४- ,, ,, २६

कमलों का खिलना, शस्यों से पृथ्वी का सुशोभित होना आदि का वर्णन अलंकारिक ढंग से किया गया है[१] । इसका वर्णन कवि ने स्वतंत्र और उद्दीपन दोनों रूप में किया है । इस ऋतु में माननियों का मान दूर होना, पथिकों का अपनी स्त्रियों का याद आना कई बार वर्णित है ।

वर्षा ऋतु के समान यहां भी विरहिणी नायिका को स्थान दिया गया है --

'प्रियतमेनेव शरत्समयेन दूरमुज्झितासु म्लान मुख कमलकान्तिषु मृणालवलयमात्र मेवाभरणमादधानासु तुहिनकणदलित जलतया पाणिम[न]मुद्वहन्तीषु श्री सौभाग्य शून्यासु वियोगिनीष्विव प्रतिभासमानासु कमल दीर्घिकासु[२] ।'

किन्तु जैसा कि वर्णन से स्पष्ट है कि यहां पर वर्षा ऋतु के समान नायिका दिशा न बनाकर कमल-दीर्घिका बनाई गई है ।

इसके अतिरिक्त [भी] नायिका के रूप में यहां प्रकृति आई है । अपने आनंद भूत सूर्य(पति) को अस्तप्राय(मृतप्राय) देखकर संकुचित होने वाली कमलिनी को कवि शोक प्रकट करने वाली नायिका के रूप में लेता है[३] ।

इस रूप के अलावा प्रकृति मानव की भांति कार्य करती हुई भी आई है । उदाहरणार्थ कुन्दलतिकाओं में खिले हुए कलियों को देखकर कवि कल्पना करता है कि ये भौंरे प्रियक-पुष्प को परागहीन होने के कारण उसे छोड़कर प्रियंगुलताओं की ओर आ रहे हैं, ये कितने ~~मतलबी~~ [स्वार्थी] हैं -- यह सोचकर कलियां विस्मित हो रही हैं, इसी प्रकार अस्त होते हुए सूर्य के सम्बन्ध में कवि यह कल्पना करता है कि सूर्य शीत के भय से ही दक्षिण दिशा का आश्रय ले लेता है । इसी प्रकार गांव में चारों ओर अग्नि जलने से उठे हुए धुएं के सम्बन्ध में कवि कल्पना करता है कि गांव शिशिर ऋतु की ठंडकता से बचने के लिए कम्बल को ओढ़े हुए हों[४] ।

१- शृंगार० पृष्ठ ६७-६८

२- ,, ,, ६७

३- ,, ,, ६७

४- ,, ,, २६

इसके अतिरिक्त तारों और फैली शरद्-चंद्रिका कामदेव की कीर्ति बतायी गयी है । इस प्रकार यहां पर पूरा शरद् ऋतु वर्णन उद्दीपन रूप में हुआ है । जिस प्रकार शरद् ऋतु का वर्णन विरहिणी नायिका एवं नायिका के अवयवों से रूपक बांध कर उद्दीपक रूप में किया है उसी प्रकार शिशिर ऋतु का वर्णन अधिकांशतः विरहिणी नायिका से सम्बन्धित करके किया है ।

अन्य ऋतुओं के समान ग्रीष्म ऋतु का भी वर्णन आकर्षक हुआ है । अन्य ऋतुओं की अपेक्षा यहां उद्दीपन रूप कम और स्वतन्त्र रूप अधिक वर्णित हुआ है । सूर्य का तेज होना, पशु-पक्षी गणों का छाया का आश्रय लेना वृक्षों में पत्तियों का कम होना , एक तरह से उनमें रूक्षता का आ जाना,गर्म वायुओं से पथिकों का पीड़ित होना,चिरीटिका की ध्वनि की प्रधानता होना, जल्दी-जल्दी दावाग्नि लगना, नदियों और तालाबों का जल सूखना, जलाशयों में पानी कम हो जाने से बगुलों का पानी में घुस कर मछलियों को पीड़ित करना, शैवाल मंजरी समूह में धूप से संतप्त होकर कछुओं का विश्राम लेना, वन महिषों का गर्मी से संतप्त हो खूब जोरों से सांस लेना तथा पीठ को खुजलाना, मृगों का वृक्षों या झाड़ियों की छाया में बैठकर जुगाली करना, पृथिवी के भीतरी भागों में पड़ती सूर्य की ऊपर उठती किरणों से मृग तृष्णा की भ्रान्ति करके हरिणों का इधर उधर भागना, वन वराहों का सूर्य की तीव्रता से संतप्त होकर अपने ऊपर कीचड़ छोड़ना -- आदि का वर्णन है[1] ।

यहां प्रकृति मानव की भांति कार्य करती हुई आयी है । चीरिटीका की आवाज किरणों से संतप्त वनस्थली की करुण पुकार (पुत्कार) लगती है, सूर्य लम्बे दिन हो जाने के कारण निरन्तर चक्कर लगाने से थककर प्यास से व्याकुल होकर सारे सरोवरों का जल पी लेता है और नदियां अपने पड़ोसी (तीरवर्ती वृक्ष) के सौन्दर्य को सूर्य द्वारा नष्ट होता देखकर पड़ोसी होने के नाते उनके दु:ख से कृशता को धारण करती है ।

मूलदेव कथानिका में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन उद्दीपन रूप में अधिक है । यहां पर कामी, कामिनियों एवं उनके वासगृह की सामग्रियों का अधिक वर्णन है

१- शृंगार ० पृष्ठ ४८-५०

एक स्थल में ही यहां पुनरावृत्ति हुई है । पहिले वर्णन में मृग पेड़ों के नीचे बैठ कर जुगाली करते हैं और यहां चक्रवाक मिथुन आपस में कुजन कर सुख का अनुभव करते हैं[1]।

किन्तु यहां के वर्णन में यत्र तत्र ही काव्य-प्रतिभा का परिचय होता है कनक केतकी के सम्बन्ध में किया गया श्लोक सर्वथा श्लाघ्य है -- जिस प्रकार दुःसह प्रतापी राजा तपे हुए सोने को चुराने के कारण चोर को लोहे की जंजीर से बंधवा कर कोष से बाहर निकालता है उसी प्रकार कठोर ग्रीष्म अलि रूपी काली लोहे की जंजीर से बांधकर नवीन तृण के समान श्यामल लम्बी पत्ती रूपकोश से चोर रूप केतकी को निकालता है[2]।

इस प्रकार कवि ने ऋतु-वर्णन में प्रकृति को कभी मानव के रूप में, कभी विरहिणी नायिका के रूप में कभी सहानुभूति प्रकट करने वाली के रूप में ग्रहण करके तथा कभी कवि-समय का प्रयोग करके, कभी विभिन्न देशीय स्त्रियों (केरल स्त्री आदि)को उपमान बनाकर इन ऋतुओं का वर्णन किया है । पुरवासियों के वर्णन में ग्रीष्म,वर्षा, शरद् ऋतुओं का संकलन किया है --

'ग्रीष्म इव प्राप्तानुविलंगम: प्रावट् समय (एफ० ५ बी०) इवादृष्टोग्रकर शरत् समय इव निर्म्मलाम्बररुचि:, तुहिनर्तुरिव सदासमहितोपचित: शिशिर इव सर्वदातापरहित:[3] ।'

ऋतु-वर्णन के अतिरिक्त कवि ने सूर्यास्त, सूर्योदय,चन्द्रास्त और चन्द्रोदय का वर्णन भी सफलता के साथ किया है । लावण्य सुन्दरी कथानिका के प्रसंग में किए गए सूर्यास्त के वर्णन में पके धानों में कोल समूहों का घुसना तथा चरागाहों से लौटती गायों का वर्णन करना नहीं भूले हैं । सूर्यास्त के समय उल्टी परछाईं का होना, सायंकाल को सुलाली बताना, पेड़ों से छनती हुई धूप से सुशोभित उपवन भूमि की विचरण करती हुई वनदेवताओं के आलक्तक से रंजित चरण-चिह्नों से उत्प्रेक्षा करना, लाल किरणों से मिश्रित जलाशयों के जल की शोभा

१- शृंगार ० पृष्ठ ८४, ८५.

२- ,, ,, ८६

३- ,, ,, ५

ही हो जाने वाले विछोह से विदीर्ण चक्रवाक मिथुनों के हृदय के रक्त से कल्पना करना कवि की मौलिकता है । कवि ने सूर्यास्तकालीन इन प्राकृतिक दृश्यों में पादपच्छाया को प्राची दिशा की ओर जाते हुए जीवितेश्वर का वियोग न सहन कर सकने के कारण उसी का अनुकरण करने वाली नायिका बताकर तथा संध्या की लाल किरण रूपी तन्तु से लालवस्त्र बिनने वाला जुलाहा बताकर मानवीय रूप में प्रकृति को ग्रहण किया है[1] ।

इस कथा में चन्द्रोदय का वर्णन बहुत आकर्षक नहीं है । केवल उपमा अलंकार को स्थान दिया है उसमें भी नवीनता नहीं है । चन्द्रमा को केवल दिशा-रूपी स्त्री का स्वर्णिम कर्णाभूषण, यामिनी (रात्रि और स्त्री) के मुख का कुंकुम-रस निर्मित तिलकबिन्दु, दिग्वधू का स्वर्णिम दर्पण, आकाश रूप सरोवर का विकसित स्वर्णिम कमल, रति के हाथ की लालिमा से रंजित क्रीड़ा कन्दुक, कामदेव के राज्याभिषेक का कलश[2] आदि बताकर उस प्रसंग को समाप्त कर दिया है ।

इस कथा में सूर्यास्त और चन्द्रोदय के प्रसंग में आकाश में होने वाले विविध रूपों का वर्णन न करके जगत् में होने वाले (चन्द्रोदय प्रसंग को छोड़कर) रूपों का वर्णन अधिक किया है । चन्द्रोदय में भी केवल चन्द्रमा के ही विविध रूप बताये हैं । एक स्थल पर अवश्य कवि ने अंधकार की राक्षस से तुलना की है[3] ।

स्वप्नानुराग में चन्द्रास्त और सूर्योदय का वर्णन है जिसमें आकाश की स्थिति का वर्णन किया गया है । यह वर्णन अलंकारों से रहित होने पर भी सजीव चित्र उपस्थित करता है । धीरे धीरे अंधकार के दूर होने , किरणों के फैलने, चन्द्रमा और तारों के क्षीण होने का वर्णन नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है[4] ।

प्रात:काल बोलने वाले मुर्गे की आवाज़ के विषय में कवि भाँति-भाँति की कल्पनायें करता है । कभी उसकी आवाज रात्रि के अन्त को बताने वाली, कभी दिन की लक्ष्मी के प्रवेश के समय बजने वाले मंगल पटह की ध्वनि और कभी

१- शृंगार ० पृष्ठ ४२-४३
२- ,, ,, ४४
३- ,, ,, ४४
४- ,, ,, ६०

मानिनी के मान को दूर करने वाले मंत्र के उच्चारण की ध्वनि लगती है[१]।

समय-परिवर्तन का वर्णन यहाँ अत्यन्त उत्कृष्ट हुआ है जिसमें कवि की प्रतिभा का निखार देखा जा सकता है। कल्पनाओं में किसी की अनुकृति नहीं है। यहाँ पर कवि ने प्रकृति को मानव के रूप में अधिक देखा है। प्रात:काल विकसित कमल पर मंडराते हुए भ्रमर द्वारपाल की भाँति रात्रि के समय कमल के अन्दर घुस कर (बन्द होकर) प्रात: काल उठकर सूर्य की किरण रूपी कुंजी से लक्ष्मी के विलास-भवन रूप पंकज के द्वार खोलते हुए प्रतीत होते हैं, संकुचित कुमुदिनी जलाशय (जड़ाशय) में उत्पन्न होने के कारण मूर्ख की भाँति गुणानुरूप चेष्टा करती हुई प्रतीत होती है और लालदिशा चिरप्रवास के अनन्तर आते हुए पति(सूर्य) को देखकर प्रसन्न होकर अपने शरीर को कुंकुम-राग से रंजित करके अद्वितीय शोभा को धारण करने वाली वधू की भाँति प्रतीत होती है[२]।

कवि ने प्रात:काल के वर्णन में उल्लुओं के न दिखायी पड़ने का वर्णन सादा न करके दुर्जन से उपमा देकर किया है। जैसे दुष्ट पुरुष की दुष्ट दृष्टि सामने प्रकाश के रहते हुए भी वस्तु को नहीं देख पाती है वैसे ही उल्लू भी प्रकाशित वस्तुओं को देखने में असमर्थ होता है[३]।

प्रात:काल मन्द होते दीपक के सम्बन्ध में कवि कल्पना करता है कि योगी के समान वैराग्य को धारण कर वह निर्वाण(मोक्ष तथा बुझना) को प्राप्त होता है[४]।

इस वर्णन में स्वतंत्र रूप से भी प्रकृति को कवि ने अपनाया है। प्रात: काल सो कर उठे हुए पक्षियों का वर्णन उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के साथ न करके उनकी स्वाभाविक मुद्रा का वर्णन किया है। सो कर उठने के पश्चात कौन सी क्रियायें होती हैं, उन सब का वर्णन करके कवि ने सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है[५]।

इस सूर्योक्ति के वर्णन में एक स्थल को छोड़कर[६] पुनरावृत्ति नहीं है।

१- शृंगार० पृष्ठ ६०
२- ,, ,, ६०
३- ,, ,, ६०
४- ,, ,, ६१
५- ,, ,, ६०
६- ,, ,, ६०, ६१

पर्वत वर्णनों में बाण की भांति विन्ध्याटवी[1] का वर्णन इन्होंने भी किया है । इसके रम्य और भयानक दोनों रूपों का वर्णन है । किन्तु शैली की दृष्टि से बाण के विन्ध्याटवी-वर्णन से पर्याप्त भिन्नता आ गई है । बाण के इस वर्णन में भी दुरूहता नहीं आने पायी है उसमें सहज सौन्दर्य देखा जा सकता है किन्तु भोज का यह वर्णन अत्यन्त क्लिष्ट हो गया है । यह अच्छा है कि इन्होंने अन्य कवियों की भांति पेड़ों की झड़ी नहीं लगा दी है । मरिच,वल्लि, लवंग,पूग,खर्जूर,कीचक तथा ताड़ वृक्षों का ही उल्लेख किया है । कवि ने इस प्रसंग में एक वृद्ध बन्दर तथा हाथियों के समूह का सविस्तर वर्णन किया है । दावाग्नि से भयभीत बन्दर की अवस्था और भयभीत हाथी की अवस्था का प्रायः एक-सा ही वर्णन है । हाथी का वर्णन प्रायः पूरे एक पृष्ठ में हुआ है । सरोवर तट पर पहुंच कर पानी के साथ हाथियों की क्रीड़ाओं का वर्णन सविस्तर किया है । यहां एकाध स्थलों पर ही कवि की काव्य प्रतिभा का परिचय होता है ।

विन्ध्याटवी का वर्णन स्त्री का आरोप करके भी किया गया है । कंटकमय बांस(वेणु) के पेड़ों से स्त्री के रोमांच की, मन्द वायु से कीचक पेड़ के अन्दर से उठने वाली ध्वनि से उसके मधुर गान की , वायु से हिलते किसलयों से उसके नृत्य की , सूर्य से तप्त शिला से निकले हुए जतुरस से उसके पसीने की , पवन से हिलते ताड़ी वृक्ष के पत्तों से उसके ऊपर पंखा हिलाये जाने की तथा पक्षियों के कलरव से उसके बातुनी होने की कल्पना करके कवि विन्ध्याटवी के सहज सौन्दर्य को नेत्रों के समक्ष रखता है[2] ।

कवि ने उसके भयंकर रूप के वर्णन में उसे अनर्थ,आपत्ति और भय की सीमा बताकर इन्हीं बातों को कई प्रकार से रूपक अलंकार के साथ वर्णन किया है[3] ।

मलयसुन्दरी कथानिका में कवि ने एक और पर्वत[4] का वर्णन किया है किन्तु उसके भयानक रूप का वर्णन न करके उसकी विशालता एवं समृद्धि का वर्णन किया । श्लिष्टोपमा और विरोधाभास अलंकार से उसे अलंकृत तो किया ही है साथ ही वहां

१- शृंगार० पृष्ठ ५०-५२

२- ,, ,, ५२

३- ,, ,, ५३

४- ,, ,, ७८-७९

उत्प्रेक्षा अलंकार से कवि की अद्वितीय कल्पना- शक्ति का परिचय होता है । कवि कभी सघन वृक्षों से तो कभी चोटी पर दिखायी पड़ने वाले चन्द्रबिम्ब से छत्र की कल्पना करता है । उसी प्रकार वहां की मणियों की कान्ति की नवीन कल्पना की दृष्टि से कवि कई प्रकार से , कभी विविध रत्नमणियों की दिव्य आभा से इन्द्र की स्पर्धा से इन्द्रधनुष धारण करते हुए कभी नीलमणि स्फटिक मणि और पद्मराग मणि की निकली विविध कान्ति से उदयाचल और अस्ताचल की स्पर्धा करने के हेतु विविध रंग-बिरंगे बाणों का निर्माण करते हुए , कभी नीलमणि की कान्ति से वनविहार से थकी भोली-भाली शबर सुन्दरियों के विश्राम हेतु वंशावन का निर्माण करते हुए और कभी ऊपर उठती स्वर्णिम कान्ति से पट्टबन्ध का निर्माण करते हुए देखता है । वहां पर निर्झर से गिरता हुआ स्खलित जल फेन पुंज सदृश और चोटी पर विद्यमान तारे पवन से हिलने के कारण रगड़ से टूटने से निकली हुई बड़ी-बड़ी मोतियों के सदृश लगते हैं ।

यहां प्रकृति दो बार मानवीय रूप में आयी है । एक बार पर्वत को प्रियतम और गगन लक्ष्मी को उसकी पत्नी तथा दूसरी बार वनराजि को प्रियतमा बताकर , युवती के अंगों का आरोप करके वर्णन किया है ।

यहां पक्षियों में तोता और दात्यूह जैसे पक्षियों को स्थान मिला है ।

भोज ने समुद्र[1] का वर्णन किया है किन्तु उसके बहुत से अंश अनुपलब्ध हैं । उसके प्राप्त अंशों से ज्ञात होता है कि वहां उठती हुई ऊंची लहरें, बड़वाग्नि, उसके तट पर मधुर ध्वनि करते हुए भ्रमरों से सुशोभित पल्लव, उसमें पड़े हुए डिण्डीर, चन्द्र एवं सूर्य के प्रतिबिम्ब आदि वर्ण्य-विषय बने होंगे । कहीं-कहीं अलंकारों के माध्यम से वर्णन-प्रसंग को आकर्षक बनाया है । कवि उठती हुई लहरों से आकाश लक्ष्मी के आलिंगन करने की उत्प्रेक्षा करता है, उसमें पड़े अनेक विद्रुम लताओं को कवि बहुत-सा रूप धारण करने वाली बड़वाग्नि के रूप में देखता है । बीच-बीच के वर्णन अज्ञात होने के कारण कवि की काव्य-कल्पना अस्पष्ट है ।

धारा नगरी के सरोवर[2] वर्णन में कवि ने उसके हंसने , नृत्य करने , कटाक्ष फेंकने आदि का वर्णन करके प्रकृति को मानवीय रूप में अपनाया है किन्तु यह वर्णन

१- शृंगार० पृष्ठ ३१

२- ,, ,, ४

यह वर्णन-प्रसंग अन्य प्राकृतिक दृश्यों के समान न तो अत्यधिक सरस हो पाया है और न उसमें विशेष नवीनता का परिचय होता है ।

इन प्राकृतिक वर्णनों के अतिरिक्त प्रकृति धारा नगरी के वैभव-वर्णन में भी आयी है । अलंकारों में जो स्थान उसे मिला है वह तो है हां साथ ही वहां सूर्य और चन्द्र की स्थिति का भी वर्णन किया है । इसी प्रकार विविध मणियों के सम्पर्क से उत्पन्न चन्द्रकिरणों की कान्ति के विविध रूपों का वर्णन है । सूर्य किरणों के सम्बन्ध में मणियों के सम्पर्क से विलीन होने की बात न कह कर विकसित होने की बात कही है ।

शृंगार मंजरी के वर्णन में नेपाल भूमि, उद्यान भूमि, प्राग्ज्योतिष शिरी कैलाश, नासिक प्रदेश, शोणाधर, किष्किन्ध गुफा, क्रौंचगिरि, हिमांचल, कैलाश, अंजनगिरि, मंदर पर्वत को उपमान रूप में स्थान दिया है ।[१]

इस प्रकार इस काव्य में कवि ने प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में ऋतु-वर्णन का अधिक तथा विस्तार के साथ वर्णन किया है । प्राय: सभी ऋतुएं आयी हैं । समय-परिवर्तन का प्रसंग केवल दो बार ही आया है । पर्वतों के कई नाम वैसे तो नख-शिख वर्णन में मिलेंगे किन्तु कल्पना-वैभव से परिपूर्ण वर्णन केवल दो पर्वतों का ही है । ये प्रकृति-वर्णन कवि की अद्वितीय काव्य-क्षमता एवं सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते हैं ।

तिलकमंजरी में प्रकृति-वर्णन--

धनपाल ने अपने काव्य में प्राकृतिक दृश्यों को पर्याप्त मात्रा में स्थान दिया है । लतामण्डप, जलमण्डप, उद्यान, अरण्य, पर्वत , समुद्र, सरोवर एवं समय-परिवर्तन आदि का वर्णन इस काव्य में कई बार मिलता है । किन्तु कवि का इन दृश्यों के वर्णन में विशेष उत्साह परिलक्षित नहीं होता है । अत: उनमें काव्यात्मक अनुभूति होने का प्रश्न ही नहीं उठता है । ऐसे स्थलों पर कवि को समास-भूयिष्ठ शैली का ही मोह परिलक्षित होता है ।

१- शृंगार० पृष्ठ १३

किन्तु काव्य में कुछ ऐसे स्थल भी हैं जहां कवि की काव्य-प्रशंसा मुक्तकण्ठ से भी की जा सकती है । कहीं-कहीं पर अलंकार आदि नहीं हैं किन्तु कवि का परिस्थितियों पर विशेष ध्यान होने के कारण वे प्रसंग अद्वितीय सौन्दर्य ले आते हैं ।

इस काव्य में कालपरिवर्तन के प्रसंग कई बार आए हैं[1]। कई बार तो सूर्यास्त चन्द्रोदय आदि का वर्णन मात्र कर दिया गया है[2]। कहीं पर नगरी के वैभव-वर्णन में सूर्योदय और चन्द्रोदय का वर्णन है । किन्तु उस वर्णन में कवि की निजी विशेषता कुछ भी परिलक्षित नहीं होती है । यहीं ऊंचे प्रकार से स्खलित गति होकर सूर्य की स्तुति करना, सारथि अरुण द्वारा रवि के रथ के घोड़ों का रोकना, और स्त्रियों के मुख से लज्जित होकर चन्द्रमा का काला होना आदि वर्णित है[3]।

समरकेतु के सेनानियों के साथ समुद्र पार करने के पश्चात जो सूर्यास्त तथा सूर्योदय का वर्णन किया है उसमें आकाशगत स्थिति के परिवर्तन का वर्णन नहीं किया है । सूर्यास्त के समय समुद्र की पूजा[4] तथा सूर्योदय होने पर प्रयाणपटह, तथा मंगल तुरही का बजना, लोगों का कार्य करने के लिए निकल पड़ना, पशुओं का चारा रखना, अग्नि का जलाना, खाना पकाना, सेनानियों के बीच कोलाहल होना, छावनी छोड़ने के पहले अच्छी तरह से उसे देख लेना, आदि का वर्णन किया है[5]।

कवि द्वारा किए गए मध्याह्न समय का वर्णन यद्यपि इसी प्रकार है किन्तु उसमें अद्भुत सौन्दर्य आ गया है । इस वर्णन में अन्य कवियों की छाप किंचिदपि नहीं देखी जा सकती है । उसमें गर्म हवा का चलना, पेड़ों की छाया में शान्ति मिलना, सड़कों पर सन्नाटा छाना, बूढ़ों की स्तुति-पाठ करना, छात्रों का पुस्तक बन्द करना , ब्राह्मणों का सरकूट पर नहाने जाना, कौओं को खाना देना, चौका समाप्त करके आंगन का लीपा जाना आदि दैनिक कार्यों का

१- तिलक० पृष्ठ ११-१२,६२,६६,७४,९६,१२३-२४,१४१,१५०-५१,१७७-७८,१८७-८८ २३७-३८, ३२९-३० ।

२- ,, ,, ६२,१७७-७८,१८७-८८ ।

३- ,, ,, ११-१२

४- ,, ,, १२३-१२४

५- ,, ,, १४१

अधिकांश वर्णन किया है[1] ।

दो स्थलों पर ही कवि ने यहाँ पर अलंकारिक वर्णन किया है । एक बार दूसरे के दुःख का निवारण करने वाले राजा मेघवाहन के पास सूर्य-किरणों से संतप्त मध्याह्न का दुःख निवेदन करने के लिए आना बताया गया है[2] और दूसरी बार प्रातःकाल में कष्टपूर्वक हरित्कुश(अंधकार) को लेकर तथा उदयाचल से तारा रूपी पुष्पों को लेकर अरुण-सारथि से प्रेरित होकर सूर्य के आकाश-गंगा में स्नान करने की इच्छा से आकाश के मध्यमार्ग में पहुंचने का वर्णन किया गया है[3] ।

राजा के स्वप्न देखने के पूर्व वर्णित हुआ सूर्योदय यद्यपि संक्षेप में है किन्तु वहाँ स्थूल-जगत् का वर्णन न करके एक स्थल को छोड़कर प्राकृतिक सौन्दर्य का निरूपण किया है । यहाँ उसका अलंकारिक वर्णन होने के कारण प्रकृति का अलंकृत रूप कहा जा सकता है[4] ।

वज्रायुध और समरकेतु के बीच होने वाले युद्ध की समाप्ति के पश्चात् वर्णित रात्रि के अन्त में प्रकृति सहानुभूति प्रकट करती हुई तथा रस का पोषण करती हुई आती है ।

वज्रायुध की द्वारपालिका समरकेतु की दुःखभरी कहानी सुना रही है तभी रात्रि का अन्त हो जाता है । उस समय रात्रि मानो समरकेतु की दुःखभरी कहानी सुनकर दुःखावेग से आर्द्र दृष्टि वाली (तरलतारका) होकर क्षीण हो जाती है । स्वर्ग में जाते हुए वीर योद्धाओं का गाढ़ आलिंगन अप्सराएं करती हैं जिससे उनके हार टूट जाते हैं , उन टूटी हुई मोतियों की वर्षा गगन ओस के रूप में करने लगता है, रणभूमि के रक्त को देखकर चन्द्रमा अस्ताचल पर जाकर मूर्छित हो जाता है, बालारुण नामक अंगूठी के प्रभाव से पराजित समरकेतु के समान सूर्य से पराजित नक्षत्र-राशि पराजित हो जाती है, मुर्गों के प्रहार शान्त

१- तिलक० पृष्ठ ६६

२- ,, ,, ६६

३- ,, ,, ६६

४- ,, ,, ६ ७३-७४

हो जाने से निर्भीक पक्षियों को आने-जाने का अवसर मिलने लगता है, निरन्तर पहुंचते हुए योद्धाओं से सूर्यमण्डल छिद्र जाता है जिससे उससे निकले हुए रक्त के रूप में सन्ध्या फैलने लगती है, रण के भयानक दृश्य को देखकर भयभीत हुई रात्रि भागने लगती है और सूर्य छल से पराजित हुए समरकेतु को देखने के कारण क्रुद्ध होकर सामने आ जाता है[1]।

समरकेतु के सैनानियों के साथ समुद्र पार करने के बाद वर्णित किया गया रात्रि-अन्त और सूर्योदय का वर्णन कभी मानवीकरण रूप में और कभी स्वतंत्र रूप में हुआ है। इस वर्णन का प्रारम्भ कथावस्तु से सम्बन्धित करके किया गया है चूंकि समरकेतु अपनी समुद्र यात्रा समाप्त कर चुका है, अतः अंधकार भी सामुद्रिक यात्री की भांति (चन्द्र) किरण रूपी रस्सी का आश्रय लेकर चन्द्रनगरी से सम्पूर्ण आकाशरूपी समुद्र की यात्रा करके दूसरी (पश्चिमी) दिशा रूपी यानपात्र से उतर जाता है और तारा समूहों के प्रस्थान से उठी हुई धूल से संध्या-लालिमा आकाशरूपी मार्ग में छा जाती है।

यहां पर सूर्योदय का वर्णन चूंकि समुद्रतट से सम्बन्धित है अतः इस ओर कवि ने विशेष ध्यान रखा है। समुद्र में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा के सम्बन्ध में कवि कल्पना करता है कि वह अपने चंचल तरंग रूपी हाथों से मन्दराचल द्वारा फेंके गए दामिनवस्त्र के समान चन्द्रमा को पकड़ लेता है और पक्षीगण समुद्र को जगाने के लिए गीत गाते हुए प्रतीत होते हैं[2]।

इसके अतिरिक्त समुद्र में रहने वाले पक्षियों का आहार ढूंढने के लिए निकलना, मछुआरों का नदी-तट पर जाना, वायु का धीरे-धीरे गर्म होना, प्रभातकालीन वायु से शंखों का मुखरित होना, सूर्य की रोशनी देखकर बैतालों का भागना आदि भी वर्णित है[3]।

इस प्रसंग में कवि ने एक स्थल पर आकाश को मान दण्ड (तराजू) भी बना लिया है जब वह वर्णन करता है कि उसका एक भाग (दिशा रूपी पलड़ा)

१- तिलकमं० पृष्ठ ९६

२- ,, ,, १५०-५१

३- ,, ,, १५०-५१

नक्षत्रों के भार से झुक जाता है और दूसरा भाग (पूर्व दिशा रूपी पलड़ा) ऊपर उठ जाता है (दिशा दिखायी देने लगती है)[१] ।

समरकेतु हरिवाहन को छोड़े ढूढ़ने का निश्चय कर लेता है उस समय का किया हुआ सूर्यास्त का वर्णन अधिकांशत: समरकेतु का मंगल विधान करने वाले व्यक्ति के रूप में हुआ है[२] । इसी प्रकार उदित होते हुए चन्द्रमा का वर्णन है[३] । यहाँ पर चन्द्रोदय तथा अंधकार के फैलने का वर्णन अवश्य हुआ है किन्तु उसमें विशेष सौन्दर्य नहीं है[४] ।

मंगलविधान के अतिरिक्त तिलकमंजरी के वियोग में दु:खित हरिवाहन को सान्त्वना देने एवं सहानुभूति प्रकट करने के रूप में कवि ने सूर्योदय का वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त हरिवाहन के काम-पीड़ित होने के कारण कवि ने यहाँ प्रकृति का उद्दीपन रूप भी वर्णित किया है जिसमें प्रात:काल सरोवर तट पर सोने वाले सारस , क्रौंच,कलहंस की दिगन्तव्यापी ध्वनि को कामदेव द्वारा उठाई गई विजय पताका स्वरूप बताया गया है[५] ।

मलयसुन्दरी की कथा समाप्ति पर वर्णित किए गए कालपरिवर्तन का प्रारम्भ कथावस्तु से सम्बन्धित है । हरिवाहन की कुशलता का संदेश उसके बन्धुवर्ग के पास पहुंचाने वाले शुक के विषय में हरिवाहन मलयसुन्दरी से पूछता है और मलयसुन्दरी भी इससे अनभिज्ञ है, उसी समय सूर्यास्त हो जाता है और सूर्य नीले पंख तथा लाल चोंच वाले शुक का क्रम से अपने हरे घोड़े तथा लालिमा को आगे करके अनुकरण करता हुआ आकाश में आ जाता है[६] । इसके अतिरिक्त इसका स्वतंत्र तथा ध्वनि-प्रधान वर्णन भी किया गया है । कहीं-कहीं पर प्रकृति मानव की भाँति कार्य करती हुई वर्णित की गयी है । एक स्थल पर नायक-नायिका के व्यवहारों का आरोप भी किया गया है जब कवि बड़वाग्नि से जलते समुद्र रूपी कड़ाहे में अस्ताचल से गिरते हुए सूर्य को पक्षियों के कलरव से सुनकर प्रदोष का

१- तिलक० पृष्ठ १५०-५१
२- ,, ,, १६७
३- ,, ,, १६८
४- ,, ,, १६८
५- ,, ,, २५३
६- ,, ,, ३५०-३५१

व्याकुलता से श्यामवर्ण का ही आनावर्णित करता है । एक स्थल पर समय-चक्र को ढोंगा बनाकर उसके द्वारा मधुर ध्वनि करने वाले भ्रमरों से वेष्टित चरण वाले चक्रवाक के जोड़ों को आपस में मिलने से रोकने के लिए कमलरूपी दीर्घिका में बन्द करना वर्णित हुआ है । इसके अतिरिक्त शंखरोल की ध्वनि, पक्षियों का शौच शरण पक्षी का ऊपर पैर करना, उल्लुओं का दिखाया देना, चकवे की नींद हरना वर्णित हैं[१] । यहां फैले हुए अंधकार की सघनता का सामान्य रूप ही बांधा है उसमें कोई सौन्दर्य नहीं है । हरिवाहन को ढूंढकर[२] समरकेतु और हरिवाहन एक साथ बैठे हैं उस समय कवि ने समय-चक्र का वर्णन गद्य-पद्य दोनों में किया है । यहां प्रकृति स्वतन्त्ररूप के साथ-साथ विभिन्न क्रिया-कलापों को करती हुई मानव के रूप में भी आती है । स्वतन्त्र-रूप-वर्णन में चन्द्रमा की कान्ति का दूर होना, तारागों का दाड़िम बीज के सदृश लगना, अंधकार का धुएं की तरह प्रतीत होना, ज्योत्स्ना से विहीन चन्द्रमा का मकड़ी के जाल के सदृश लगना वर्णित है । चन्द्रमा को एक व्यक्ति मान कर उसका पैर(किरण) समेटना, सूर्य को धीवर तथा कमल तारागों (पुतलियों) से युक्त अंधकार को मछली मान कर सूर्य का किरण रूपी जाल मछलियों को पकड़ने के लिए फेंकना, त्रियामा (तीसरा पहर) को आक्रमणकारी मान कर उसका लाल किरण रूपी हाथों से धागा मारना बताकर प्रकृति का मानवीय रूप कवि ने अपनाया है । अंधकार को राजा हरिवाहन का शत्रु बताकर सूर्य के द्वारा उसका नाश करना, चकवे के जोड़े को मिलाकर सूर्य के द्वारा हरिवाहन की भी इच्छा की पूर्ति होते दिखाना, सूर्य के ताप के फैलने का वर्णन करके हरिवाहन के प्रताप के फैलने की कल्पना करना, तथा कमल का हरिवाहन की मुख-शोभा को देखने के लिए आना आदि का वर्णन करके कवि ने प्रकृति और मानव का सम्बन्ध दिखाया है ।

विरह-वर्णन में कवि ने ऋतुओं का अधिकांशतः उल्लेख किया है । कहीं एक-दो पंक्तियों में उनका वर्णन करके उस प्रसंग को समाप्त कर दिया है । शरद् काल का दो बार वर्णन हुआ है[३] किन्तु दो पंक्तियों में ही । इसी प्रकार ग्रीष्म

१- तिलक० पृष्ठ ३५०-३५१
२- ,, ,, ३३७-३८
३- ,, ,, ८२,१८०-८१

ऋतु का प्रसंग दो बार आया है । एक बार तो उसका उल्लेखमात्र कर दिया गया है[१], दूसरी बार उसका उद्दीपक रूप वर्णन करना कवि ने चाहा किन्तु उसमें वह सफल नहीं हो पाया । केवल उसे राजा हरिवाहन के तिलकमंजरी सम्बन्धी विरह को उद्दीप्त करने वाला, दिन को बड़ा करने वाला तथा निरन्तर उष्ण वायु फेंकने वाला बता कर इस प्रसंग को समाप्त कर दिया है[२]।

वर्षा-काल का वर्णन अवश्य काव्य-प्रतिभा का द्योतक है । वर्षा राजा से सहानुभूति प्रकट करती हुई आती है । सम्पूर्ण विश्व का कल्याण करने वाली वर्षा ग्रीष्म और कामदेव दोनों से एक साथ पीड़ित राजकुमार हरिवाहन के कष्ट को दूर करने के लिए आ जाती है और अपनी प्रबल धाराओं को पूरे आकाश में फैला देती है, उसके जल से हरी-भरी पृथ्वी उसके निरन्तर जागने से जड़ीभूत नेत्रों को शीतल करना चाहती है, सुगन्धित शीतल वायु उसके अंग के ताप को दूर करने का प्रयत्न करता है, मानसरोवर जाने के उत्सुक राजहंस राजा का संदेश लेकर तिलकमंजरी के पास उत्तर दिशा को जाने लगते हैं, कमल राजा के विरह को दूर करने में असमर्थ होने के कारण लज्जित होकर वर्षा से भरे सरोवर में मुख छिपा लेते हैं, इत्यादि[३]।

इसके अतिरिक्त उसके सामान्य स्वरूप-वर्णन में कोयल और चातक की पुकार, मेढकों की टर्टर, अमर्यादित नदियों की कलकल, बादलों की गड़गड़ाहट, बिजली का चमकना, कामुकों का धैर्य दूर होना, आदि का वर्णन राजा के भावों को उद्दीप्त करने वाला है । क्योंकि कवि ने राजा के विरह-वर्णन में इस ऋतु का वर्णन किया है[४]।

मलयसुन्दरी के विरह-वर्णन में कवि ने वसन्त ऋतु का वर्णन किया है । अतः वहां पर कवि का उद्देश्य प्रकृति को उद्दीपन रूप में ग्रहण करना ही है । इसमें कवि ने वसन्तकालीन वृक्षों का निकलना तथा पुष्पों का विकसित होना ही अधिकांशतः वर्णित किया है । यत्र तत्र रात्रि का कम होना, वायु द्वारा मानिनियों का मान दूर होना आदि भी वर्णित हुआ है । यह वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है

१- तिलक० पृष्ठ १०५
२- ,, ,, १७६
३- ,, ,, १७६-८०
४- [illegible]० ,, १७६-८०

और अलंकारों को किंचिदपि स्थान न मिलने के कारण यहां प्रकृति का अलंकृत रूप नहीं है[१]। कवि-समय को इस प्रसंग में स्थान मिला है[२]।

समुद्र का वर्णन कवि ने एक स्थल पर अपनी दृष्टि से और दूसरे स्थल पर पात्र-तारक की दृष्टि से किया है। कवि ने उसकी बाह्याकृति, जल में प्रतिबिंबित सूर्य और चन्द्र, नदियों का गिरना, फेनराशि, तरंगें, आवर्त, वडवाग्नि, ज्वार-भाटा, तट पर बिखरे मोतियां, पानी पीते हुए बादल, उसकी नीली कान्ति आदि का अलंकारिक ढंग से वर्णन करके अपनी काव्य-कल्पना की नवीनता का परिचय दिया है। इस वर्णन में बिखरी मोती के सम्बन्ध में कवि हिरण्याक्ष के वक्षःस्थल से टूटे हुए महावराह के दांत की तथा मधु-कैटभ से क्रुद्ध होकर विष्णु द्वारा बजाए गए पंचजन्य शंख से निकली मोतियों की कल्पना करता है[३]। कवि को समुद्र कभी पाताल का पिधान, कभी त्रिभुवन की चतुःशाला की मणिमयभूमि, कभी आकाशकुवलय का जन्मदाता सरोवर कभी काल का दाढ़ाग्र रूप आदि दिखायी देता है[४]।

कवि ने इसको दुष्टपुत्र की भांति वडवाग्नि से पीड़ित होता हुआ, वेत्र-यष्टि (बांस के पेड़) को इधर-उधर घुमाने वाले द्वारपाल की भांति वायु द्वारा दिशाओं में घुमाया जाता हुआ, नदी-प्रवाह से नृत्य करता हुआ तथा अपनी वडवाग्नि रूप जीभ से निरन्तर जल के पीने पर भी प्यास के शान्त न होने से फेनराशि के रूप में अट्टहास करता हुआ चित्रित करके उसे मानव का रूप दिया है[५]।

दूसरी बार समुद्र का वर्णन तारक करता है जिसमें उसके भयानक स्वरूप को अधिक चित्रित किया गया है। विशाल जलचर, यानपात्रों को उलटने में समर्थ ऊंची भंवरें, स्थान-स्थान पर यात्रा के उत्साह को शिथिल कर देने वाले पत्थर, मकर, नक्र, शिशुमार, सर्प, सिंहमकर, काले कमठ तथा तिमिंगिल मछलियां आदि यहां वर्णित हैं[६]।

१- तिलक० पृष्ठ २९६-९७
२- ,, ,, २९७
३- तिलक० ,, ११९-२२
४- ,, ,, १२०
५- ,, ,, ११० १२३
६- ,, ,, १४५

काव्य में कुछ सरोवरों का उल्लेख मात्र कर दिया गया है । कवि की विशेष रुचि केवल अदृष्टपारा नामक सरोवर के वर्णन में ही रही है । यह सरोवर काव्य में प्रमुख स्थान पाए हुए है । नायक-नायिका, उपनायक-उपनायिका तथा अन्य सभी पात्र यहीं एकत्रित होते हैं । अत: प्राय: प्रत्येक पात्र की दृष्टि से इस सरोवर का वर्णन हुआ है । हरिवाहन द्वारा दृष्ट चित्रपट में अंकित इस सरोवर के सौन्दर्य-वर्णन में[1] तथा जब वह स्वयं उस स्थल पर पहुंच कर उसका सौन्दर्य-वर्णन[2] करता है तो उसमें कोई सौन्दर्य नहीं है । सामान्यरूप से वृक्ष आदि का उल्लेखमात्र कर दिया है । समरकेतु द्वारा दृष्ट इस सरोवर का वर्णन कहीं अधिक आकर्षक हुआ है । वर्णन भी विस्तृत है । यह वर्णन कवि और समरकेतु दोनों की दृष्टि से है ।

कवि उसे त्रिलोकी-लता के जल से भरा आलबाल, धात्री के नाभिमंडल, दिशा के दर्पण, अम्बरतल के प्रतिबिम्ब, फणीन्द्र के लीलादुकूल आदि के सदृश तो देखता ही है साथ ही उसे वह विशाल, चंचल तरंगों से तरंगित, मयूरों के केकारव से मुखरित, शिखर के अन्दर विश्राम करने वाले सारसों, विटपों को तोड़ने वाले हाथी के बच्चों, शावकों को खिलाते हुए वानरों, जलपान से सन्तुष्ट जंगली जानवरों तथा उसके जल को धारण करने वाली मेघ पंक्तियों से सुशोभित पहाड़ी भूमि से परिवेष्टित देखता है । उसके जल से ही सारी दिशाएं तथा वायु शीतल हो जाती है[3] ।

इसके जल में प्रतिबिम्बित वृक्षों, ऊंची उठती लहरों की ध्वनि, विद्याधर कन्याओं की जलक्रीड़ा, कमलों पर बैठे हंसों आदि का वर्णन भी काव्य-कला से परिपूर्ण है[4] ।

कवि ने उसको पाण्डुफेन से हंसता हुआ, शिला पर पड़ती लहरों से आवाज करता हुआ, ऊपर-नीचे उठती मछलियों से कटाक्ष करता हुआ, तथा पवन से हिलते बेंत के वृक्षों के साथ नृत्य करता हुआ बताकर सरोवर को मानव रूप प्रदान किया है[5] ।

पद्मराग वाले कमलों से प्रत्यूषकाल, विकसित विद्रुम लता से संध्या, इन्द्रनील कमल से प्रदोष तथा श्वेत कुमुदों से चन्द्रोदय बताकर इस वर्णन में समय-चक्र को स्थान दिया है[6]।

१- तिलक० पृष्ठ १६६
२- ,, ,, २५०
३- ,, ,, २०५,२०६
४- तिलक० पृष्ठ २०३-२०४
५- ,, ,, २०४
६- ,, ,, २०४

उसकी स्वच्छता को लेकर विभिन्न देशों की स्त्रियों को उपमान रूप में स्थान दिया है[१]।

समरकेतु उस सरोवर को कभी वैताढ्यगिरि के चन्द्रकान्तमणि से निकला हुआ जल-प्रवाह, कभी सूर्य के विष के भय से मलयाद्रि द्वारा रखा गया चन्दन का द्रव, कभी अमृत मंथन के लिए उद्यत देवासुरों से भयभीत होकर समुद्र द्वारा छिपाया हुआ अमृत कोष तथा उसे महान् संरक्षक के रूप में देखता है[२]। उसकी दृष्टि में वह सरोवर सागर से भी महान् है तथा सागर वड़वाग्नि के रूप में ईर्ष्या उससे करता है[३]।

रत्नकूट पर्वत का वर्णन सादा है। उसकी दृष्टि के सम्बन्ध में कवि राम की कथा का स्मरण करता है। उसकी अत्यधिक रमणीयता बता देने के लिए कवि ने उसे अन्य पर्वतों के बीच स्थान न देकर समुद्र की अपनी गोद में स्थान देता वर्णित किया है। इस पर्वत के वर्णन में कवि की काव्य प्रतिभा का परिचय नहीं होता है[४]।

सुवेल पर्वत का भी वर्णन काव्य की दृष्टि से प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता है। पग-पग पर रामायण की कथा सामान्य ढंग से वर्णित है क्योंकि उस समय चलते हुए सैनानियों की वहां पर घटित होने वाली राम सम्बन्धी कथाएं वार्तालाप के विषय हैं। यहां पर क्लिष्टता आ जाने के कारण यत्र तत्र नीरसता आ जाती है[५]।

वैताढ्यपर्वत की चोटी, अंचल तथा मध्य भाग का वर्णन अधिक सरस हुआ है जिसमें कल्पना का माधुर्य देखा जा सकता है[६]। इस पर्वत का भी कथा की दृष्टि से बहुत महत्व है। इसकी चोटी का वर्णन अत्यन्त सामान्य कोटि का है किन्तु उसके मध्यभाग का वर्णन काव्यात्मक है।

कवि ने उस पर्वत के मध्यभाग को स्वर्ग-सदृश, जम्बूद्वीप की पगड़ी, भारतवर्ष का मानदण्ड, गगन-सिन्धु का सेतु-बन्ध, पृथ्वी की सीमा, मन्दाकिनी का

१- तिलक० पृष्ठ २०३
२- ,, ,, २०५
३- ,, ,, २०५-२०६
४- ,, ,, १३७-१३८
५- ,, ,, १३४-१३६
६- ,, ,, २०२

प्रवाह आदि[1] बताकर वर्णित किया है । इसके अतिरिक्त गम्भीर गैरिक की खानों में लटकते सर्प , मणशिल को फैंकते हुए हाथी, हाथी को मारते हुए सिंह,किन्नरों को भगाते हुए जंगली महिष, एवं विविध वृक्षों की सघनता[2] से उस भाग का भयंकर रूप चित्रित किया है ।

इसका रम्य वर्णन कवि ने सामान्य तथा अलंकारिक दोनों ढंग से किया है । सामान्य ढंग में वहां रहने वाले शबर,नदियां,सिद्धायतन,ऊंचे-ऊंचे तालवृक्ष, मणिशिला के गृह,लतागृह,बन्दरों की किलकारी, मयूरों का नृत्य आदि वर्णित हैं[3]। उस प्रसंग में इसके अलंकारिक वर्णन में प्रकृति का मानवीय रूप अधिक है ।कवि उसे दोनों ओर से घिरे हुए समुद्र से उसे जल पीने की इच्छा से उसी में निमग्न होता हुआ अपनी कान्ति से कैलाश पर्वत की उपहास करता हुआ,बहुत स्त्रोतों में बहते हुए निर्भरों से हिमालय से स्पर्धा के कारण सहस्त्र गंगा की सर्जना करता हुआ,गुफाओं से निकलती वायु से सुमेरु की महिमा से ईर्ष्या करने के कारण निश्वास लेता हुआ तथा निरन्तर पक्षियों के कलरव से मन्दर पर अधिक्षेप करता हुआ देखता है[4] ।

इसकी अटवी के भी रम्य और भयावह दोनों रूपों का वर्णन हुआ है । रम्य वर्णन में बीच-बीच में दिखायी पड़ने वाली नदी, वन के हाथी,जर्जरित भूर्ज वल्कल,मणियों की परीक्षा करने वाले पत्थर,औषधि,गुंजाफलों से सुशोभित गुफा,तपस्वियों एवं विद्याधरों से सुशोभित तट आदि का वर्णन स्वतन्त्र रूप से हुआ है । यह वर्णन सामान्य ढंग का है[5] किन्तु इसका भयंकर रूप अधिक आकर्षक है जिसमें उसे कद्रु लोक रूपी सर्पों का क्रीड़ास्थल तथा कालीय नाग की कान्ति से मूर्च्छित होती हुई तथा सर्पों की विषैली वायु से उद्वेग को प्राप्त कराने वाले उसके मार्ग आदि बताए गए हैं[6] ।

हरिवाहन को ढूढ़ने के लिए जाते समय मार्ग में मिली एक अटवी का वर्णन काव्य में आया है जिसमें उसकी भीषणता का अधिक वर्णन है । उसके

१- तिलक० पृष्ठ २३६
२- ,, ,, २३६-२४०
३- ,, ,, २३६-२४०
४- ,, ,, २३६
५- ,, ,, २३३-२३६
६- ,, ,, २३३

दुर्गम मार्ग, वृक्षों की ऊंचाई से उत्पन्न अंधकार, व्याकुल पक्षी के कठोर रव, दावाग्नि से प्रज्ज्वलित वंशीवन की चट-चटाहट, सिंह के गर्जन से चकित मृग, अजगर सर्प की निःश्वासों से हिलते वृक्ष, जंगली कुत्ते, छवित चर्म को खाने की इच्छा करने वाले बहेलिये उस अटवी का भयानक दृश्य उपस्थित करते हैं[1]। इसके अतिरिक्त वहां की नदी शबर-बस्ती आदि भी वर्णित हैं। कहीं कहीं पर इसका वर्णन अलंकारिक भी हुआ है[2]। इस काव्य में उपवन के प्रसंग कई आए हैं[2] किन्तु उनमें कवि की अधिकांशतः प्रवृत्ति वृक्षों एवं पशु-पक्षियों के नामगणना में है। किन्तु इन वर्णनों में कवि की काव्य-प्रतिभा का अभाव नहीं है। प्रकृति के स्वतन्त्र रूप एवं मानवीय दोनों ही रूप मिलते हैं। सरयूतट पर स्थित मकोकिल[3] नामक उपवन में निर्मित जलमण्डप के वर्णन में कवि ने विशेष उत्साह दिखाया है। यहां प्रकृति के स्वतंत्र रूप में मयूर, हंस, वृक्ष आदि तो वर्ण्य-विषय हैं ही साथ ही जलमण्डप की जो भी विशेषताएं होती हैं अर्थात् अपनी शीतलता से मनुष्य को पीड़ा आदि को दूर करना, उनसे युक्त होना भी बताया गया है। इस प्रसंग में प्रकृति मानव के रूप में दो बार आयी है। एक बार जलमण्डप को कवि ने कपड़े से ढके ऊपरी भाग वाले कलशों से शिर-वेदना के कारण शिर पर पट्टी बांधे हुए और दूसरी बार वहां के वृक्षों को हिलती हुई शाखाओं को परस्पर आलिंगन करते हुए बताया।

प्रकृति का मानवीय रूप हरिवाहन को ढूढने के लिए जाते समय मार्ग में मिले उपवन के प्रसंग में भी मिलता है। वहां पर कवि पवन से हिलते हुए वृक्षों के सम्बन्ध में उपवन की शोभा से विस्मित होकर सिर हिलाने की, पुष्पित लताओं के सम्बन्ध में पुष्प रूपी नेत्रों से देखने की तथा इसी प्रकार की अन्य कल्पनाएं करता है[4]।

इसके स्वतन्त्र रूप वर्णन में कवि उसे मधुपों से गुंजित उद्यानगोष्ठी, कीरग्राम से (तोते के समूह) सुशोभित कश्मीर मंडल, बहुमुल्म(ठूंठ) तथा श्यामलता (श्यामलता) से आक्रान्त वातरोग से पीड़ित व्यक्ति के समान देखता है[5]।

१- तिलक० पृष्ठ १९९-२००
२- ,, ,, ६,१०५-१०७,२१०-२११,३०४
३- ,, ,, १०६-१०७
४- ,, ,, २१२
५- ,, ,, २११-२१२

अन्य वर्ण्य-स्थलों की भांति कवि ने यहां भी उसे वसन्त का घर, अनन्त देवताओं का एक मन्दिर, क्रीडाओं का तिलक आदि बताया है[१]।

इस उपवन के बीच विद्यमान कल्पतरु चूंकि दिव्य वृक्ष माना गया है अत: कवि ने उसका वर्णन तदनुकूल ही किया है। यहां पर उसने अलंकारों को स्थान नहीं दिया है[२]।

मलयसुन्दरी का गृहोद्यान का वर्णन भावपूर्ण होने के कारण सबसे पृथक् है तथा वह विप्रलम्भ शृंगार रस के रसास्वादन कराने में सहायक होता है। विविध वृक्ष, दीर्घिका, मयूर, हंस, चक्रवाक, शुकपोत आदि यहां भी आए हैं किन्तु उनको अद्वितीय ढंग से काव्य में स्थान दिया गया है। इस प्रसंग में मलयसुन्दरी का उन वृक्षों तथा पक्षियों के प्रति प्रेम तथा पक्षियों का उसके प्रति प्रेम वर्णित है[३]।

वैताढ्य पर्वत से रथनूपुर चक्रवाल तक जाने के बीच में मिले रम्भा गृह का वर्णन कवि ने सविस्तर किया है। उसमें विभिन्न केले के पत्तों से उत्पन्न नीली कान्ति, उसके टेढ़े-मेढ़े पत्ते, बहती हुई वायु, बीच-बीच में विद्यमान पारिजात वृक्ष का अलंकारिक वर्णन किया है[४]। चूंकि वह रथनूपुर चक्रवाल की सीमा के अन्दर था अत: सामान्य रूप से उसे राजाओं, चारणों और प्रतिहारों से सुशोभित एवं देशीय गानों से गुंजित होना बता दिया है[५]।

इन स्थलों के अतिरिक्त भी कवि ने प्रकृति को स्थान दिया है। समरकेतु अकेले ही 'अदृष्टपार' सरोवर में पहुंचता है जहां कोई भी मनुष्य नहीं है अत: राजकुमार का स्वागत करने के लिए प्रकृति आगे बढ़ती है-- राजहंस भी उसका गुणानुवाद तथा स्वागत करते हैं, सरोवर मानो ऊपर उठती हुई लहर रूपी भुजाओं से उसके चरणों को अर्घ देता है, जांघों को विश्राम देता है, वक्ष:स्थल का आलिंगन करता है, पानी में उतरते समय आगे बढ़ती छाया भी उसके मार्ग प्रदर्शन का कार्य करती है और स्नान करने में जल देवता उसका साथ देते हैं[६]।

१- तिलक० पृष्ठ २१२
२- ,, ,, २१३-२१४
३- ,, ,, ३०४
४- ,, ,, २२७-२२८
५- ,, ,, २२८
६- ,, ,, २०६

इसी प्रकार समरकेतु उस सरोवर से आगे बढ़ने को हुआ तो प्रकृति मंगल-विधान करने वाले व्यक्ति के समान उसका सारा कार्य करती है । समरकेतु के आगे बढ़ते ही वनकरिणी अपने कर्णों को हिलाकर उससे उत्पन्न ध्वनि से ताल के साथ मंगल तुरही बजाने लगती हैं, वनस्पतियां हवा से गिरते हुए पुष्पों के बहाने से अक्षत डालने लगती हैं, भय से आगे भागते हुए मल्लिकाक्ष (हंस) मार्ग प्रदर्शन करने लगते हैं और घूम-घूम कर झुक कर तृण खाते हुए हरिण उन्हें प्रणाम करने लगते हैं[1] ।

इसके अतिरिक्त सरोवर में स्नान करने के पश्चात् समरकेतु की गयी क्रियाओं में प्रकृति को स्थान मिला है । उसे कमलवन तोड़ने के कारण हाथी, कमल पराग को सूंघने के कारण भंवरा कुमुद के पुष्प को तोड़कर भ्रमरों को निकालने के कारण प्रदोष काल बताया है[2] ।

इन वर्णनों के अतिरिक्त नगरी, मंदिर, मठ आदि की शोभा-वर्णन में भी प्रकृति को पर्याप्त स्थान मिला है ।

गद्यचिन्तामणि में प्रकृति-वर्णन--

इस काव्य में कथावस्तु की प्रधानता होने के कारण अन्य गद्य-काव्यों की अपेक्षा प्राकृतिक दृश्यों का निरूपण कम प्राप्त होता है । यद्यपि तिलकमंजरी में भी कथाओं की प्रमुखता है फिर भी वहां प्राकृतिक दृश्यों की सघनता दिखायी देती है किन्तु इस काव्य में उस ओर कवि की विशेष रुचि परिलक्षित नहीं होती है । चूंकि गद्य-काव्य में प्राकृतिक वर्णनों को स्थान मिलना चाहिए अतः इन्होंने भी उस विशेषता को स्वीकार करके थोड़ा स्थान दे दिया है । इसीलिए इनके काव्य में भी ऋतु वर्णन, सूर्यास्त-सूर्योदय आदि का वर्णन, वन, जलाशय, उपवन तथा नगरी आदि के वर्णन मिलते हैं साथ ही कवि ने कवि-समय का प्रयोग करके प्रकृति को स्थान दिया है तथा उसे कभी भावों को उद्दीप्त करने वाली के

१- तिलक० पृष्ठ २०९-२१०

२- ,, ,, २०६

रूप में भी मानव के साथ सहानुभूति प्रकट करने वालों के रूप में भी लिया है ।

इस ओर विशेष महत्व न देने के कारण कवि ने काव्य में आए हुए धिलयार्धगिरि[1] तथा चित्रकूट पर्वत[2] का उल्लेख मात्र कर दिया है । अन्य कवियों ने विन्ध्याटवी का वर्णन किया है किन्तु इन्होंने दण्डकारण्य का । दण्डकारण्य में कवि ने केवल वहां के आश्रम का वर्णन किया है जिसमें यज्ञ की होमाग्नि का धुआं उठना, उससे वृक्षों के फलों का धूमिल होना, फलों के भार से वृक्षों का झुकना, सन्ध्या समय शृगाली छोड़ कर मृगों का नीवारादि खाना तथा विहंगों का पेड़ के आलवाल से जल पीना ही वर्णित है[3] । आश्रम की सामान्य बात कहकर उस प्रसंग को समाप्त कर दिया गया है । इसमें न कोई नवीनता है और न काव्य प्रतिभा का कोई चमत्कार, जिससे कि वर्णन में सौन्दर्य आता ।

वन का वर्णन अवश्य हुआ है किन्तु उसके रम्य पक्ष को ही लेकर । उसकी बीहड़ता का प्रसंग एकाध स्थलों में ही आया है अन्यथा उस ~~वन~~ वन में कहीं भ्रमर मंडरा रहे हैं, कहीं सरोवरों में कमल, कुमुद आदि खिले हुए हैं, कहीं सरोवर के तट पर हंस बोल रहे हैं, कहीं कुंजरों ने अपनी सींग से किनारों को विध्वंसित कर दिया है तथा कोई प्रदेश विविध पुष्पों से अत्यधिक सुरभित हो रहा है[4]-- इत्यादि वर्णन करके उस प्रसंग को समाप्त कर दिया गया है ।

उपवन का वर्णन दो बार हुआ है किन्तु बहुत आकर्षक नहीं है । हेमांगद नामक जनपद के वर्णन में आए हुए उपवन के प्रसंग में वृक्षों की अधिकता मिलेगी, कोयल से कूजित आम्र, मधुकर से गुंजित चम्पक, कामिनी के गण्डूष से विकसित बकुल, पदाघात से प्रफुल्लित अशोक, आपस में गुथे कुब्जक तथा माधवी लताओं का उल्लेख है[5] । इस उपवन की अपेक्षा राजधानी 'राजपुरी' का उपवन-वर्णन अधिक उत्कृष्ट है । यद्यपि यहां पर भी विविध वृक्ष तथा कोकिल से कूजित आम्र का वर्णन है किन्तु उन्हें प्रस्तुत करने की विधि भिन्न है । यहां पनस के फटने पर बंदरी का क्रुद्ध होना एवं बन्दर का उसे मनाना, कबूतरों के उड़ने से

१- ग०चिं० पृष्ठ ६२
२- ,, ,, ६८
३- ,, ,, १२०
४- ,, ,, ९९-१००
५- ,, ,, ३- ४

उत्पन्न हवा से पुष्पों का टूट कर पेड़ों के नीचे गिरना, चारों ओर उपवन को खिला देखकर तथा अपनी मेहनत को सफल जानकर लोगों का प्रसन्न होना, उसका दिगन्त व्यापी-सौन्दर्य, मधुकरों के आस्वादन से शिथिल वृन्त वाले चम्पक, पाटल, पुन्नाग, केसर, कर्णिकार, तथा वन देवताओं के अधर के समान बन्धु जीव तथा कुरबक से लिपटी माधवी लता का वर्णन है[1]।

हेमांगद जनपद के वर्णन में कवि ने जलाशय का भी वर्णन किया है। उसके जल, उसमें प्रतिबिम्बित वृक्ष, कमलों में बैठे हंस आदि वर्ण्य-विषय हैं। कवि ने जलाशय को प्रतिबिम्बित वृक्ष से समुद्र को जीतने की इच्छा से कल्पतरु का निर्माण करता हुआ, ऊपर उठती चंचल जलराशि से मन्दाकिनी को बन्दी बनाने की इच्छा करता हुआ तथा कमलों से जनपद की शोभा को देखने के लिए सहस्र नेत्रों को धारण करता हुआ बताकर मानवीय रूप दिया है[2]।

विदेह नामक जनपद के वर्णन-प्रसंग में भी वृक्ष तथा खेत जैसे प्राकृतिक वर्ण्य-विषय अपनाए गए हैं। यहां कवियों की अनुकृति भी परिलक्षित हो जाती है। उदाहरणार्थ विनम्रता प्रदर्शन हेतु खेतों का नीचे झुकना यहां पर भी वर्णित है। पके ईख के वृक्ष के फटने से निकले मुक्ताफलों को देखकर ताराओं से युक्त पृथ्वी को बताकर कवि ने नवीनता का परिचय दिया है[3]।

विद्याधर लोक में विद्यमान 'नित्यालोक' नामक नगर के वर्णन में कवि ने प्रकृति को विभिन्न मणियों की कान्ति से सम्बन्धित करके ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ वहां के स्कन्धावार का पाताल रूपी हाथ से चन्द्रमा के कलंक को धोना, पद्मरागमणियों से बालातप (उदीयमान सूर्य) की भ्रान्ति पैदा होना, गारुडरत्न से अंधकार उपस्थित करके चक्रवाक पक्षियों को दु:खित करना, तथा सूर्य की कान्ति को तिरस्कृत करने वाले नीलोत्पल से रचित तट से कदली वृक्षों का भ्रम पैदा करना इत्यादि वर्णित है[4]।

१- ग० चिं० पृष्ठ ६-७

२- ,, ,, ४

३- ,, ,, १३३

४- ,, ,, ६०-६१

नखशिख वर्णन के प्रसंग बहुत हैं । आठ कन्याओं के साथ विवाह जीवंधर का दिखाया गया है । कवि ने उन आठ कन्याओं एवं रानी विजया सभी के सौन्दर्य का वर्णन प्राय: किया है तथा उसमें प्राकृतिक उपादानों को भी विविध अलंकारों के अन्दर ग्रहण करके स्थान दिया है । कवि का कंठ को कमल-नाल से, मुख को चन्द्र से, ललाट को अर्ध-चन्द्र से , नासिका को ललाट-चन्द्र से निकली अमृतधारा से, भ्रू-लता को धनुर्यष्टि से, श्वासानिल को मलयानिल आदि से उपमा देना प्राचीन कवियों की अनुकृतिमात्र है । कुछ स्थलों पर नवीनता भी है । जैसे विजया के शरीर को चन्दन का वृक्ष मान कर भुजाओं को सर्पों से तुलना करना[1] तथा लक्ष्मणा के प्रसंग में नवीन वस्त्र को धारण किए हुए उन्नत स्वच्छ आकाश से सुशोभित शरद् ऋतु तथा तिलक से विभूषित उसे वनराजि बताना[2]-- नवीन कल्पना है.।

इन उपर्युक्त विषयों में कवि को कोई विशेष सफलता मिली है ऐसा नहीं कहा जा सकता है किन्तु सूर्यास्त सूर्योदय आदि के वर्णन में ऐसी धारणा नहीं बनाई जा सकती । प्रकृति के विविध रूप अपना कर इन सब का कवि ने वर्णन किया है ।

रानी के स्वप्न देखने के पूर्व कवि ने तुर्य प्रहर का वर्णन किया है जिसमें चकोर के निरन्तर चन्द्रिकापान करने से चन्द्रमा का कान्तिविहीन होना अथवा निरन्तर जागने के कारण सोने की इच्छा से अस्तगिरि की गुफा में चन्द्रमा का जाना, सूर्य-सारथि अरुण से व्याकुल होकर नक्षत्रमण्डल का मूर्छित होना साथ ही नक्षत्रों का नष्ट होना वर्णित है जो कवि की काव्य प्रतिभा के साथ साथ उनकी मौलिकता का परिचायक है[3] ।

इससे भी अधिक आकर्षक वर्णन इसी के आगे सूर्योदय के प्रसंग में हुआ है जहां यामिनी रूपी प्रेमिका रात्रि के अस्त होने से (नायक) उत्पन्न विरहजनित ताप को न सहन कर सकने के कारण अपनी तापपीड़ा को शान्त करने के लिए

१- ग० चिं० पृष्ठ १३

२- ,, ,, १५८

३- ,, ,, १६-१७

अस्ताचल रूपी सागर में स्नान करने के लिए चली जाती है, सूर्य-रथ के घोड़ों के खुरों के गिरने के भय से तारागण अलग छिप जाते हैं, उसी समय विविध रूप में सूर्य उदित हो जाता है । कवि को सूर्य कभी गगन सागर के अभ्यन्तर में लगी विद्रुमलता के रूप में, कभी उदयाचल के प्रान्तप्रदेशों पर लगी दावाग्नि के रूप में तथा कभी ऊषाकाल (प्रत्यूष) के रक्त से वृक्षों को लाल करता हुआ दिखायी देता है । सूर्य को देखते ही नायिका की भांति कमलनेत्र खिल उठते हैं तथा अपने मित्र (चन्द्रमा) को पराजित करने वाले सूर्य को देखकर ईर्ष्यावश कुमुद अपने दल रूपी द्वार को बन्द करके सोने चले जाते हैं(संकुचित हो जाते हैं) । यहां कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से प्रकृति को मानवीय रूप दिया है[1] ।

इसी प्रकार राजा जलंधर की मृत्यु पर मानव की भांति शोक प्रकट करती हुई प्रकृति सूर्यास्त वर्णन के प्रसंग में आयी है जो करुण रस में सहायक होती है । यहां कवि कल्पना करता है कि सूर्य इस दु:खद घटना को न देखने के कारण मानो सागर में डूब गया, अपने पति(दिशाओं का पति राजा कहा गया है) राजा की मृत्यु को देखने के कारण दिशाओं को अत्यधिक शोक हुआ और वही शोकाग्नि संध्या के रूप में प्रकट हो गई, वसुंधरा ने राजा की पत्नी होने के कारण सती होने के लिए ताराओं के रूप में लाल हार पहन लिया और अंधकार के बहाने बाल बिखेर कर वियोगिनी का वेश धारण कर लिया तथा वह वायु के बहाने नि:श्वास छोड़ने लग गयी[2] ।

इस प्रकार सुरमंजरी की कथा के प्रसंग में जो सूर्यास्त तथा सूर्योदय का वर्णन हुआ है वह श्रृंगार रस के पोषण में हुआ है । सूर्यास्त के समय सन्ध्या की लालिमा , कौव्वे आदि का नीड़ों की ओर लौटना, अंधकार का फैलना आदि कुछ विषयों को छोड़कर शेष वर्णन प्रायः उद्दीपन रूप में हुआ है । चन्द्रमा सुरमंजरी को कामदेव की स्फटिक मणि निर्मितकन्दुक, कामदेव का अभिषेक जल से भरा कलश इत्यादि प्रतीत होता है , फैली हुई ज्योत्स्ना आदि भी उसे कामोद्दीपक लगती है[3] ।

१- ग० चिं० पृष्ठ १७

२- ,, ,, २७

३- ,, ,, १२८-१३१

अनंगदेव के मन्दिर में वर-प्राप्ति का वरदान मिल जाने के बाद जब सुरमंजरी वृद्ध के स्थान पर अपने प्रिय जीवंधर को देखकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाती है उस समय होने वाले सूर्योदय के वर्णन में कवि ने प्रकृति-सौन्दर्य में विवाहकालीन क्रियाओं का आरोप किया है । उस समय सूर्य विवाहकालीन मंगल कलश के दीपक की भांति उदित होता है, चूंकि सुरमंजरी तथा जीवंधर का मिलन हुआ है अतः चकवा-चकवी के जोड़े भी मिल जाते हैं, हवन कुण्ड की तरह विकसित लाल कमलों (अग्नि) से सुशोभित सरोवर के समीप कोकिल (ब्राह्मणों की भांति) अपने कूजन से मंगल पाठ करने लग जाती है, लतायें मधुर गुंजार के साथ पुष्पों को गिराने के बहाने लाया बिखेरने का कार्य करने लगती है । दोनों को आपस में मिलाने के लिए पक्षी कलरव करने लगते हैं[1] ।

इसी प्रकार लोकपाल नामक राजा की कन्या पद्मा के विवाह के पूर्व वर्णित प्रातःकाल का वर्णन कवि ने उद्दीपन रूप में किया है । ताराओं का अस्त होना, वायु का पुष्पित लताओं का स्पर्श करना, कुसुमों का खिलना, ऊषा-राग का प्रकट होना, भ्रमरों का गुंजार करना आदि सब विवाहकालीन कार्यों से सम्बन्धित होने के कारण संयोग शृंगार के पोषक हैं[2] ।

विद्याधर लोक से पृथ्वी तल पर आने वाली गन्धर्वदत्ता के प्रसंग में जो सूर्योदय का वर्णन हुआ है वह गन्धर्वदत्ता से प्रकृति का सम्बन्ध कराकर, प्रेमी प्रेमिका का आरोप करके तथा गन्धर्वदत्ता के वियोग में दुःखी प्रकृति को बताकर हुआ है[3] ।

समय-परिवर्तन के वर्णन में प्रकृति किसी-न-किसी के उपकारक रूप में आयी है । पद्मा को छोड़कर जीवंधर चुपचाप जाना चाहते हैं तो प्रकृति उनके अनुकूल वातावरण उपस्थित कर देती है अर्थात् सुषमा अस्ताचल जाकर सर्वत्र अंधकार छिटका देती है[4] और जब जीवंधर क्षेमश्री को चुपचाप छोड़ कर जाते हैं

१- ग० चिं० पृष्ठ ६४

२- ,, ,, ७२

३- ,, ,, ७२

४- ,, ,, ६६

तो प्रकृति मुर्गे की आवाज़ से सेनाओं को सावधान करती है[1]।

रात्रि में सेवकों के साथ रह कर दूसरे दिन प्रात:काल चुपचाप जीवंधर के चले जाने पर वर्णित किए गए सूर्योदय-वर्णन में भी प्रकृति मानव के रूप में आयी है जिसमें सूर्य का वड़वाग्नि का निगलना, धर्म व्यक्ति के समान सूर्य का प्रात:कालीन वायु के रूप में उपचार लेना, आदि वर्णित हैं। यहां पर फैली हुई अरुणिमा के सम्बन्ध में नायक-नायिकाओं के व्यापारों का भी आरोप किया गया है[2]।

पद्मा की कहानी में आये हुए सूर्यास्त का वर्णन कवि ने स्वतन्त्र रूप से किया है। जहां एक स्थल पर प्रकृति शिक्षिका के रूप में आयी है जब कवि काल दोषों (अंधकार और तमोगुण) से दूर रहने पर भी केवल वारुणी (पश्चिम दिशा तथा शराब) के सम्पर्क से सूर्य का अध:पतन (अस्त) होना बताता है। निशा रूपी निशाचरी के द्वारा फैंके गए तीव्र शूल से सूर्य के हृदय का विदीर्ण होना बताकर कवि प्रकृति को मानव के रूप में काव्य में स्थान देता है। फैलते हुए अंधकार के सम्बन्ध में कवि कई प्रकार की कल्पना करता है। यहां पर अंधकार का वर्णन कवि की दृष्टि से तथा पशु-पक्षियों की दृष्टि से हुआ है। वराह का अंधकार को कीचड़ समझ कर उसमें लोट लगाने की इच्छा करना, हंस का उसे वर्षाकालीन मेघ समझ कर भय की दृष्टि से सरोवर को देखना, सिंह का उसे लोहे का कठोर पिंजड़ा समझ कर गुफाओं में घुस जाना आदि का वर्णन करके कवि ने फैलते हुए अंधकार के साथ जानवरों एवं पक्षियों की सन्ध्याकालीन क्रियाओं का भी वर्णन किया है[3]।

इसी प्रसंग में कवि ने अंधकार फैलने एवं सूर्योदय के होने की उपमा क्रमश: तमोगुण एवं उसके नाशक ज्ञान से दी है जिसमें फैलता हुआ अंधकार धर्म की ओर उन्मुख तापस के हृदय से निकल कर तमोगुण के रूप में फैला हुआ बताया गया है और सूर्य सम्यक्त्व बल से निकाले गए तमोगुण से पुन: स्पर्श न हो इस

१- ग० चिं० पृष्ठ १०६

२- ,, ,, १०८

३- ,, ,, ९७

भय से उसे जड़ से नष्ट करता हुआ बताया गया है[१]।

काव्य परम्परा का अनुकरण करते हुए इन्होंने भी ऋतुओं को स्थान दिया है । जैसी काव्य-प्रतिभा काल-परिवर्तन में मिलती है वैसी ऋतु-वर्णन में नहीं । ग्रीष्म ऋतु का प्रसंग तीन बार आया है । एक बार तो काव्य के अन्त में वर्षा, और हेमन्त के साथ इसका उल्लेख कर दिया गया है[२]। अन्य दो स्थलों में इसका सविस्तार वर्णन किया गया है । एक स्थल पर इस ऋतु का वर्णन जंगल के दृश्य-निरूपण में हुआ है । वहां बहती हुई गर्म हवा, गर्म बालू, सूखी नदियां पानी के जल के रूप में केवल हाथियों का मदवारि, पत्तों से विहीन वृक्ष, सूखे पत्तों की मर्मर से गुंजित दिशाएं, छाया के रूप में केवल हाथियों के शरीर की छाया, प्यास से व्याकुल हाथियों के रक्तपान से तृष्णा को शान्त करने वाले सिंह, स्फटिक पत्थरों को चाट कर प्यास बुझाने वाले हरिण, जल की झूठी तृप्ति देने वाली मृग-तृष्णा, भूख से व्याकुल जानवर -- आदि का उल्लेखमात्र करके उस समय का सामान्य चित्र चित्रित कर दिया है[३]।

दूसरी बार का वर्णन[४] किसी एक स्थल में सीमित न होकर व्यापक क्षेत्र में हुआ है और पहले की अपेक्षा कहीं अधिक आकर्षक हुआ है, यहां अलंकारों को भी स्थान मिला है । यद्यपि यहां भी पत्तों की मर्मर, दावाग्नि, पानी के सूखने, प्यास की उत्कण्ठा आदि वर्णित हैं किन्तु उन्हें सरस बनाकर वर्णित किया है तथा ग्रीष्मकाल में फल के भार से झुके आम्रवृक्ष, पेड़ों के नीचे बैठ कर जुगाली करती हुई गायें, दावाग्नि के भय से तेजी के साथ भागते हुए हरिण, सूखे सरोवर को देखकर पानी से निराश होकर सूंड़ फटकारते हुए हाथी, पानी से रिक्त निर्झर, भोजन की इच्छा की कमी, हवा के लिए व्याकुलता -- आदि का वर्णन करके कवि पूर्वोक्त वर्णन से नवीनता ले आया है ।

वर्षाकाल तथा शरद् ऋतु का भी वर्णन है किन्तु न उसमें कोई सौन्दर्य है और न वहां कवि की कोई मौलिकता परिलक्षित होती है । वर्षाकाल का

१- भ० चि० पृष्ठ ९९

२- ,, ,, १६८

३- ,, ,, ८९

४- ,, ,, ९६

केवल सामान्य ढंग से कवि ने वर्णन कर दिया है । मयूरों का नृत्य, इन्द्रधनुष का निकलना, राजाओं की यात्राओं का बन्द होना, बिजली का चमकना, सूर्य का तिरोहित होना, मेढकों की टर्र-टर्र, बगुलों का उड़ना, दिन-रात का कठिनाई से पता चलना-- आदि का वर्णन करके कवि ने यद्यपि सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है[1] किन्तु उनके प्रस्तुत करने के ढंग में कोई आकर्षण नहीं है । उन्हें विविध कल्पनाओं से मण्डित करने की आवश्यकता कवि ने नहीं समझी। कवि प्राय: ऐसे प्रसंग अपनी काव्य-प्रतिभा को प्रकट करने के लिए ढूंढते हैं किन्तु इन्होंने ऐसे प्रसंग को ग्रहण करके भी अपना परिचय नहीं दिया है ।

शरद् ऋतु के वर्णन में चन्द्रमा का दिखायी देना, सूर्य द्वारा वर्षाकालीन कीचड़ का सुखाया जाना, आकाश में तारों का छिटकना, सरोवरों का स्वच्छ होना, नदियों के तट दिखायी देना (मर्यादित होना), मधुकरों का पुष्पित वृक्षों पर झुण्ड के झुण्ड गिरना, मयूरों (नर्तनप्रिय) का नृत्य त्यागना, कोयल की कूक का सुनायी देना, पद्मों का सरोवरों में खिलना -- आदि का वर्णन अधिकांशत: उपमा अलंकार के साथ किया गया है । किन्तु यह अलंकार वर्णन-प्रसंग को विशेष आकर्षक नहीं बनाता ।

गन्धर्वदत्ता के विवाह के उपरान्त कवि ने वसन्त[2] ऋतु का वर्णन किया है । कवि का उद्देश्य उसका उद्दीपन रूप में ही वर्णित करने का है । कोयल का पंचम स्वर, भ्रमरों की गुंजार, मंदवायु, कुरबक, चम्पक, आदि वृक्ष सब उसी रूप में हैं । वायु से हिलने के कारण वृक्षों से गिरते पुष्पों के सम्बन्ध में कवि अपने साथी के आगमन से प्रसन्न होने वाले व्यक्ति के समान लाजांजलि के गिराने की कल्पना करके प्रकृति को यहां पर मानव के रूप में स्थान देता है । प्रकृति का मानवीय रूप वसन्तागमन के प्रसंग में भी अपनाया गया है जब कवि वसन्त को कामदेव के सहायक तथा सामन्त के रूप में वर्णित करता है --

'विषमशरस्य साचिव्यमिवाचरयितुमाजगाम जातोरु हर्षैः
सेतरकिसलयराशिभिरुपशोभितवनान्तो वसन्तः । प्रविशति भुवनं नृपमनंगनृपतावमन्तो वसन्ते पुण्याहमिवोच्चारयांबभूवुरुत्कलरवमुखरितकण्ठाः कलकण्ठाः ।'

१- ग० चिं० पृष्ठ ११४

२- ,, ,, ७५

काल परिवर्तन तथा ऋतु-वर्णन के अतिरिक्त प्रकृति भावों को उद्दीप्त करने में उत्तेजक के रूप में चित्रित हुई है । विद्याधर लोक के राजा लोकपाल को आकाश में एक बादल के टुकड़े को नष्ट होता देखकर वैराग्य हो जाता है[१] ।

काव्य में स्वतन्त्र रूप से भी मानव की भांति सहानुभूति रखती हुई प्रकृति आई है । जीवंधर अरण्य में अकेले जा रहे हैं , महान होने के कारण यह छत्र धारण करने योग्य हैं उनके सिर पर धूप नहीं पड़नी चाहिए यह सोचकर मार्ग के वृक्ष सूर्य के ताप को शान्त करते हैं तथा उनकी ऐसी अवस्था देखकर निर्झरों के बहाने से अश्रु गिराते हैं[२] । इसी प्रकार जीवंधर के तेजी से चलने से आन्दोलन के हिलते हुए वृक्ष भय से शिर हिलाते तथा जीवंधर को पुष्पांजलि भेंट करके प्रणाम करते हैं[३] ।

प्राकृतिक वर्णन-प्रसंगों में पक्षियों को स्थान तो मिला ही है किन्तु काव्य में सन्देश देने के रूप में भी पक्षियों का स्थान दिया गया है । चक्रवा-चक्वी पद्मा को जीवंधर से पुन: मिलने की आशा बंधाते हैं । क्योंकि पद्मा से जीवंधर के- 'प्रिये, पश्य मद्वियोगेऽपि पुनस्तत्संयोगमनुभूयापि तथा विरहमाहिष्णुमिमाम्' इति ' वाक्य सुनकर उसकी मां उसे शान्त करती है[४] । इसी प्रकार हंसी हंस क्षेमश्री को जीवंधर से पुन: मिलने की आशा बंधाते हैं[५] ।

संदेश को ले जाने वाला शुक गुणमालिका की कथा में आया है[६] । यह जीवंधर से मिलाने में दूत का काम करता है ।

वेमभूपालचरित में प्रकृति-वर्णन--

यह काव्य जहां कथावस्तु रस अलंकार तथा काव्य-प्रतिभा की दृष्टि से अपना अद्वितीय स्थान अर्वाचीन गद्यकाव्यों में प्राप्त किए हुए है उसी प्रकार प्रकृति-सुषमा के वर्णन में भी यह उच्च स्थान का अधिकारी है । यद्यपि कवि

१- ग० चिं० पृष्ठ ३६-३७
२- ,, ,, ८८-८६
३- ,, ,, ५२
४- ,, ,, ६८
५- ,, ,, १०७
६- ,, ,, ८०

के प्रकृति-वर्णन में वृक्षों के नाम गणन करने की प्रवृत्ति बहुत अधिक मात्रा में मिलती[१] जो कभी-कभी नीरसता ला देती है तथा उसमें पुनरुक्ति दोष भी आ जाता है किन्तु यदि इस ओर ध्यान न दिया जाय तो सर्वत्र कवि की रमणीय कल्पना काव्य में परिलक्षित होगी ।

प्रकृति-वर्णन में उन्होंने केवल एक निश्चित रूप को नहीं अपनाया है अपितु अपने काव्य को उसके विविध रूपों से अलंकृत किया है जिससे कि काव्य में अद्भुत सौन्दर्य आ गया है ।

प्रकृति के काल परिवर्तन में कवि ने इस बीच में होने वाली आकाश तथा भूमि की स्थिति का चित्रण करके कवि ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है । इस वर्णन में प्रकृति कभी स्वतंत्र रूप में , कभी उद्दीपन रूप में, कभी मानवीय रूप में , कभी सहानुभूति प्रकट करती हुई , कभी रस के पोषण में , कभी नायिका के रूप में और कभी विभिन्न भावनाओं से सम्बन्ध रखती हुई हमारे समक्ष आती है । यह कोई आवश्यक नहीं कि वियोगी के लिए काल परिवर्तन पूरा उद्दीपन रूप में ही दिखाया जाये । कन्या के प्रति आसक्त राजा प्रोल्ल उसकी चिन्ता करता है किन्तु कवि ने काल-परिवर्तन का वर्णन सभी दृष्टि से किया है ।

१- केम०(अ) त्रिलिंग जनपद में पृष्ठ १-६
(आ)बसन्त वर्णन में ,, ११-१८, ११३
(इ) राजा प्रोल्ल जिस उपवन में पहुंचे पृष्ठ २६-२७
(ई) बाल तरुखण्ड के वर्णन में पृष्ठ २८
(उ) राजा प्रोल्ल जिन स्थलों को देखता है पृष्ठ ६२
(ऊ)कन्या के लिए निर्मित लता मण्डप में पृष्ठ ६३-६४
(ए) कुसुम शय्या के वर्णन में पृष्ठ ८१
(ऐ) शरद ऋतु-वर्णन में पृष्ठ १२२
(ओ)वर्षाकाल वर्णन में पृष्ठ १६२
(औ)समुद्र के दक्षिणी तट के वर्णन में पृष्ठ १४०, १५१
(अं) पाण्ड्य देश के वर्णन में पृष्ठ १५०
(अः)मलय पर्वत के वर्णन में पृष्ठ १५६
(क) हिमालय के वर्णन में पृष्ठ १६४
(ख) गोदावरी वर्णन में पृष्ठ २०५

कवि जहां स्वतं वर्णन करने लग जाता है वहां प्रकृति स्वतन्त्र रूप में आ जाती है वहां पर कवि को अस्ताचल की ओर जाता सूर्य कभी आकाश रूपी फन वाले सर्प की गिरी पद्मरागमणि, कभी वरुण नगरी के गोपुर में स्थित मणिकलश, कभी पश्चिम दिशा रूपी अशोक वृक्ष का पल्लव, कभी ताण्डव नृत्य करते हुए शंकर का गिरा अंगार, कभी कालरूपी कुल्हाड़ी से काटा हुआ दिन रूपी वृक्ष का पश्चिम दिशा में गिरा पका फल -- आदि दिखायी देता है । संध्या उसे रात्रिरूप नटी के प्रवेश कराने वाली यवनिका तथा गगनरूपी कसौटी पर कसने से बनी सोने की रेखा के सदृश लगती है । अंधकार कभी हाथियों का समूह, कभी वनवराह का झुंण्ड, कभी कालकूट, कभी नीलोत्पल वन, कभी ताण्डव नृत्य करते समय शंकर का गिरा गज-चर्म, कभी काला आवरण और कभी होम के धुएं का समूह -- आदि प्रतीत होता है । तारे अंधकार रूपी कालिन्दी के बुदबुदे, गगनफलक की रजतबिन्दु, रात्रिरूपी सीपी के मुक्ताफल, चमकने वाले (जलने वाले) चन्द्रमा की चिनगारी आदि से लगते हैं ।[1]

इसी प्रकार सूर्यास्त के बाद तत्कालिक निकला लाल चन्द्रमा कवि को अंधकार रूपी राक्षस के समूह को नाश करने के लिए नारायण द्वारा फेंका हुआ चक्र लगता है । स्फटिक मणिमय शिला पर प्रतिबिम्बित चन्द्रमा का कलंक हरिण सदृश लगता है, माणिक्य मय प्रासाद पर पड़ती चन्द्र किरणें अपने को शुद्ध करने के लिए अग्नि में प्रवेश करती हुई-सी प्रतीत होती है । अस्त होता हुआ चन्द्रमा कलाओं का निधि, अमृत का निधान, सज्जनों का अग्रणी होने पर भी वारुणी (पश्चिमदिशा और शराब) का सम्पर्क पाने से अपने स्थान से च्युत होता हुआ दिखायी देता है । पश्चिम दिशा की ओर जाती हुई रात्रि कपालिकी-सी दिखायी देती है । इसके बाद प्रभातिकी संध्या आकाशरूपी रंगमंच पर आने वाले नटरूपी सूर्य के लिए लाल रंग के पर्दे को धारण करती और कभी प्रात:काल रूपी भैरव को बलि देने के लिए अरुण (सूर्य सारथि) द्वारा अंशुरूपी

१- वैम० पृष्ठ ५०-५१

शुल्कांगी से अंधकार रूपी भैंसे को मारे जाने से निकले रक्त से सनी हुई दिखायी देती है ।

कवि ने आकाश के मध्य होने वाली स्थिति का वर्णन करके जगत् में होने वाले परिवर्तनों का भी वर्णन किया । यह वर्णन स्वतन्त्र और उद्दीपन दोनों रूप में हुआ है । सूर्यास्त के समय कौओं का नीड़ों की ओर लौटना, मधुकरों का कमल-कोष में बन्द होना, अभिसारिकाओं का निकलना, दीपकों का जलना, मृगों का सोना, हंसों का शैवालिनी तट पर लेटना आदि का वर्णन[1] और प्रातःकाल के वर्णन में शीतलवायु, पक्षियों का कलरव, मुर्गे की बोली, गोपांगनाओं का दधिमंथन, गृह-गृह में होमाग्नि का प्रज्वलित होना, कुमुदिनी का बन्द होना आदि का स्वतन्त्र रूप से वर्णन करके कवि ने सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है[2]। कुमुदिनी के वर्णन में उसने प्रकृति का मानवीय रूप भी अपनाया है । जब कवि भ्रमरों को कोष में छिपाये हुए तथा बन्द होती हुई कुमुदिनी को चन्द्रमा के विरह में विषपान करने से मूर्च्छित होते हुए चित्रित करता है[3]।

कवि ने सूर्यास्त का उद्दीपनरूप भ्रमरों का कामदेव की विजयावली गाना, चक्रवाक का कलरव से प्रोषित भर्तृकाओं का हृदय विदीर्ण करना -- आदि का वर्णन करके अपनाया है[4] और चन्द्रोदय का उद्दीपन रूप -- रात्रि के समय कुमुद चकोर, नदी, वायु, भ्रमर, चक्रवाक, दीर्घिका आदि सभी को राजा की कामपीड़ा का वर्धक बताकर तथा चन्द्रोपालम्भ करवा कर स्वीकार किया है । चन्द्रमा पथिक-हृदय को विदीर्ण करने वाला, काम का धवल छत्र, मृत्यु सहायक, पापकारी, किरण रूपी हाथों से प्राणों को नष्ट करने वाला, तथा विष सदृश बताया गया है[5]।

प्रकृति के इन दो रूपों के अतिरिक्त कहीं पर प्रकृति राजा प्रौढ़ के भावों के साथ भी सम्बद्ध की गयी है । अस्तकालीन सूर्य की लालिमा, राजा

१- कैम० पृष्ठ ५१

२- ,, ,, ६०

३- ,, ,, ६०

४- ,, ,, ५५-५६

५- ,, ,, ५५-५७

का अनुराग तथा उसकी क्षीणता उसके विरहशोक का कारण बतायी गयी है। इसी प्रकार रात्रि तथा चन्द्रमा के क्षीण होने के कारण क्रमश: राजा का विरह नि:श्वास तथा राजा का निष्पलक दृष्टि से चन्द्रमा की कान्ति का पीना बताया गया है[१]।

राजा प्रौष्ठ में आसक्त कन्या अनन्ता के विरह-वर्णन करते समय वर्णित किए गए सूर्यास्त[२] और चन्द्रोदय[३] के वर्णन में कवि ने अधिकांशत: प्रकृति का मानवीय रूप अपनाया है जिसमें कभी वह राजकुमारी अनन्ता के दु:ख में दु:खी, कभी उसके दु:ख को निरन्तर देखने के कारण मूर्च्छित होती हुई, कभी उसके दु:ख का उपचार करती हुई, कभी सहानुभूति प्रकट करती हुई और कभी पति के जाने से अत्यन्त दु:खी होने वाली नायिका की भांति तथा अन्य कई प्रकार के आचरण करती है।

यहां पर कवि की रुचि प्रकृति का स्वतंत्र रूप अपनाने में परिलक्षित नहीं होती है। स्थान स्थानों पर ही इस प्रकार का रूप देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ, प्रात:कालीन वायु का बहना, ज्योतिष मण्डल का कान्ति विहीन होना, सूर्य का उदय होना स्वतन्त्र रूप से वर्णित है[४] किन्तु उसमें काव्यात्मक सौन्दर्य नहीं है।

विरह-वर्णन में यहां भी चन्द्रोपालम्भ कराया गया है। अत: चन्द्रमा का वर्णन उद्दीपन रूप में होने के कारण प्रकृति उद्दीपन रूप में आयी है[५]।

कलिंग के युद्ध के पश्चात् किए गए सूर्यास्त का वर्णन बीभत्स और वीररस के पोषण में होने के कारण प्रकृति रस के पोषक के रूप में आयी है। योद्धाओं की शूरगति से आकाश-मार्ग में चलने में बाधा पहुंचने के कारण सूर्य का रथ लौटाना युद्ध भूमि के शव को खाने के लिए आने वाले अंधकार रूपी राक्षस का आना, रण के अद्भुत दृश्य को देखने से तारागों के रूप में रोमांच का उत्पन्न होना, दीर्घिका का रण की भयंकरता देखने के कारण मूर्च्छित हो जाना, कबन्धों का नृत्य देखने

१- वेम० पृष्ठ ५०

२- ,, ,, ७७-७८

३- ,, ,, ७६-८०

४- ,, ,, ८०

५- ,, ,, ७८

के लिए चन्द्रमा का आ जाना आदि वर्णित करके कवि ने प्रकृति को मानवीय रूप दिया है ।

सन्ध्याकालीन अरुणिमा के सम्बन्ध में योद्धाओं के (मर कर ऊपर जाने से) रक्त से आकाश के व्याप्त होने की कल्पना करके कवि प्रकृति को वीभत्स वर्णन में सहायक होने वाली के रूप में लेता है[1]।

रात्रि के अन्त का वर्णन कवि मानव और प्रकृति का सम्बन्ध स्थापित करके करता है । यहां पर उसने रात्रि का अन्त विपक्षी राजा का नाश, अन्धकार का अन्त, कलिंग राज के प्रतापाग्नि के धुएं का नाश, और ताराओं का अन्त उसके यश का अन्त होना बताया है[2] ।

कवि ने हिमालय पर्वत के वर्णन में सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय तक के वर्णन में प्रकृति का स्वतन्त्र रूप लिया है जिसमें प्रकृति मानव की भांति कार्य करती हुई अधिकांशतः आयी है । स्वतन्त्र वर्णन में धीरे-धीरे फैलता हुआ अंधकार दिग्गजों के कर्णताल के हिलाने से भागते हुए भ्रमरों के सदृश लगता है, अंधेरे में तारे बलराम के हलाघर्षण से क्षुब्ध कालिन्दी के प्रवाह का अनुकरण करते हुए दिखायी देते हैं, हिमालय की पद्मरागमणियों में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा नवोदित सूर्य का भ्रम पैदा करा कर चक्रवाक को धोखा देने वाला प्रतीत होता है और प्रातःकाल के तारे अंधकार रूपी वृक्ष के टूटने से गिरे हुए कुसुम के समान महत्वहीन लगते हैं और फैली हुई लाल किरणें उस वृक्ष के प्रवाल के सदृश प्रतिभासित होती हैं[3] ।

और मानवीकरण रूप में अंधकार के विषय में कवि कल्पना करता है कि दिशायें तात्कालिक उत्पन्न रवि के विरह-शोक के कारण काले वस्त्र से अपना मुंह ढक लेती हैं[4], और सूर्यास्त समय फैली संध्या रक्तपान की इच्छा से लाल लाल जीभ से अंधकार रूपी राक्षस को निगलने लगती है[5] । इसी प्रकार सूर्योदय के समय सूर्य-किरणें मृत्यु लोक में आकर देवता के समान अंधकार रूपी

१- वैमुपा० पृष्ठ १४०

२- ,, ,, १४०

३- ,, ,, १७१-७८

४- ,, ,, १७१

५- ,, ,, १७२

राक्षसों को नष्ट करने लग जाता है; पद्मिनी-नाथ (सूर्य) आशा के साथ (दिशायें दिखाई देने लग गईं) धीरे-धीरे हाथ (किरण) फैलाते हुए पद्मिनी के लाल वस्त्र (कमल) का स्पर्श करने लग जाता है । इसी प्रसंग में कवि ने राम की कथा का भी स्मरण किया है । जिस प्रकार राम ने हनुमान तथा बन्दरों के साथ लंका में आकर तीव्र बाणों से राक्षसों का नाश करके पावक में प्रवेश करने से शुद्ध सीता को ग्रहण किया था उसी प्रकार सूर्य ने अरुण (सारथि) और घोड़ों के साथ तेज से दीप्त दिशा में आकर अंधकार का नाश करके अग्नि में सम्बन्ध करने से शुद्ध तेज (कान्ति) को धारण किया है[1] ।

इस प्रसंग में किया गया सूर्योदय का वर्णन रात्रि का विलासक्रीडाओं से सम्बन्धित है । यहाँ प्रकृति मानवीय रूप में आयी है[2] ।

ऋतु-वर्णन में कवि ने चार ऋतुओं -- वसन्त, वर्षा, शरद् और ग्रीष्म-- को अपने काव्य में स्थान दिया है । ऋतु-वर्णन में प्रकृति की सुषमा के वर्णन में कवि ने विशेष उत्साह दिखाया है । विभिन्न ऋतुओं में कौन से वृक्ष तथा पुष्प खिलते हैं, कौन से नहीं, इस ओर कवि ने ध्यान दिया है । उसने अमुक ऋतु किन पक्षियों के लिए आह्लादकारी है, किनके लिए कष्टकारक है तथा प्रकृति में क्या-क्या परिवर्तन हो जाते हैं-- आदि का वर्णन करके अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है । ऋतुओं के वर्णन में कवि ने प्रकृति के स्वतन्त्र तथा मानवीय रूप को तो अपनाया ही है साथ ही उनके काव्य में उनकी प्रवृत्ति विभिन्न ऋतुओं में होने वाले वृक्ष आदि की नाम गणना कराने में तथा कवि-समय के प्रयोग करने में परिलक्षित होती है । वसन्त ऋतु के वर्णन में गण्डूष से बकुल का, पदाघात से अशोक का तथा वनदेवताओं के गाने से बकुल का खिलना वर्णित है[3] ।

वसन्त ऋतु के वर्णन में प्रकृति का उद्दीपन रूप अधिक वर्णित है क्योंकि राजा का शिकार खेलने के लिए जाने के पूर्व इसका वर्णन है जो कि आगे जाकर शृंगार रस की पूर्व भूमिका के रूप में सहायक होता है । (राजा प्रौढ़ रूपी नायक

१- वेमभूपाल० पृष्ठ १७८

२- ,, ,, १७७-१७८

३- ,, ,, १७-१८

ऋतु में उपवन में जाकर अनन्ता कन्या को देख कर उसके प्रति आसक्त होता है)
कवि बसन्त ऋतु के उद्दीपन रूप का वर्णन करने में सफल भी हुआ है । आम्र के वृक्षों पर बोलती कोयल, मधुकरों के गुंजन से युक्त दाड़िम, बकुल, अशोक, प्रियाल वृक्ष की शोभा, खिली माधवीलता, कमलवन-लक्ष्मी तथा वायु सभी मिलकर एक मादक वातावरण उपस्थित कर देते हैं।[1] विरही-जन रूपी हरिणियों को मारने के लिए कामदेव का साथी वायु परागरूपी जाल को फेंकता है, लाल-लाल किंशुक दुःखित स्त्रियों के हृदय से निकले हुए रक्त से सिंचित बाण तथा कान्त उल्मों के मणिमय प्रदीप की तरह प्रतीत होते हैं। वायु अलग कामपीड़ा को बढ़ाता है[2]। विरहीजन को मारने के लिए कामदेव धनुष की प्रत्यंचा उठाकर उसकी ध्वनि से दिशाओं को गुंजित करता है[3]। एक स्थल पर स्वतन्त्र वर्णन करते हुए बसन्त को कुमार का रूप देकर मलयगिरि को धौंकनी और पल्लव को अग्नि के रूप में कवि देखता है[4]।

वर्षाकाल का वर्णन नवीन कल्पनाओं से ओतप्रोत है । बिजली के विषय में कवि ने अपनी अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया है[5]। कभी वह बादल रूपी रंगमंच की नर्तकी, कभी आकाशरूपी कसने वाले पत्थर की कनक रेखा, कभी समय रूपी योद्धा के बादल रूपी हृदय को काटने वाली तलवार और कभी आकाश रूपी आलिन्द भूमि में घूमने वाहनों को चलाने वाले मेघ की स्वर्णिम लगाम के सदृश दिखायी देती है[6]।

इस वर्णन में कवि ने राम, अर्जुन, द्रौपदी, धार्तराष्ट्र , सीता, शिव आदि को किसी-न-किसी रूप में लाने के कारण प्रकृति को मानवीय रूप में भी अपनाया है[7]।

शरद् ऋतु के प्रसंग में भी कवि ने खिलने वाले पुष्पों, न खिलने वाले पुष्पों का, हंसों के दिखायी देने, मेढकों के शान्त होने, इन्द्रधनुष और बिजली

१-कैमुनाट० पृष्ठ १७-१८

२- ,, ,, १८-१९

३- ,, ,, १७-१८

४- ,, ,, १८

५- ,, ,, १०७-१०८

६- ,, ,, १०७-१०८

७- ,, ,, १०८-१०९

के न दिखायी देने, राजाओं के चलने आदि का वर्णन करके तथा उसे मयूरों के आनन्द का अपहरण करने वाला, चातक आदि की प्रसन्नता का घातक बता कर उसमें खेतों का लहराना, कीचड़ का अभाव, क्रौंच की गुंजार आदि का वर्णन करके सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है । इस ऋतु-वर्णन में पक कर शाल्मली वृक्ष से आकाश में उड़ती हुई रुई का वर्णन करना नहीं भूले हैं[1] ।

इस ऋतु-वर्णन में भी बादलों के सम्बन्ध में [handwritten: वायु]ानल से भग्न होने की कल्पना में, बन्धुजालों के सम्बन्ध में बिजली को [struck out] मेघरूपी घोड़े के ऊपर चाबुक पड़ने से उनके निकले हुए रक्त की कल्पना में, इधर-उधर मंडराते हुए [handwritten: के ऊपर पंख फैलाने की कल्पना में, आकाश] हंसों के द्वारा वज्रानल से पीड़ित आकाश को स्वच्छ करने के कारण उसे धोबी मानने की कल्पना में, एवं अस्थिर बिजली को वेश्या के रूप में अपनाने में कवि ने प्रकृति का मानवीय रूप ही अपनाया है[2] ।

शिशिर ऋतु-वर्णन में भी उस समय के खिलने वाले अथवा न खिलने वाले पुष्पों का उल्लेख करके, कमलराज की पीड़ा, उल्लू का बोलना, रात्रि का क्षीण होना, धनिक लोगों का कम्बल आदि ओढ़ना तथा सिकुड़ कर बैठना, निरन्तर तापना, ठंड से जकड़ा जाना, कोहरा फैलना-- आदि का वर्णन किया है[3] । एक स्थल पर शिशिर ऋतु को वीणावादक के रूप में बताया गया है --`जनतादन्तवीणावादनमतिवैणिके[4] ।`

ग्रीष्म ऋतु अन्य ऋतुओं के समान ही वर्णित है । दावाग्नि, झंझावात नदियों का सूखना, रात्रि का कम होना-- आदि के वर्णन के साथ-साथ मानवीय रूप में भी उसका वर्णन हुआ है । उस समय झंझावात से पूरित गुफाओं की प्रतिध्वनि से सूर्य से संतप्त होने के कारण पर्वत विलाप करते हैं, ग्रीष्म ऋतु सूर्य की किरणों से अपने विपक्षी जल के आधारभूतों को जलाता है और अपने विपक्षी बादलों पर क्रुद्ध होने के कारण नदियों को सुखा देता है जिससे कि [struck out]

१- वैमभूपाल पृष्ठ १२१-२२

२- ,, ,, १२२

३- ,, ,, १४२

४- ,, ,, १४३

बादल आ ही न पाए[१] -- आदि ।

यद्यपि सभी ऋतुओं का वर्णन आकर्षक रूप में है किन्तु यत्र तत्र विषयों की पुनरावृत्ति भी मिल जाती है ।

कवि ने अपने काव्य में कई नदियों को स्थान दिया है जैसे -- गंगा, यमुना, सरस्वती, रेवा, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी[२], कृष्णा, मणिकर्णिका, तुंगभद्रा, तथा ताम्रा[३] आदि । इन नदियों का कहीं उल्लेखमात्र है, कहीं अलंकारिक वर्णन तथा कहीं इन्हें समुद्र का प्रेयसी बताया गया है ।

कवि ने ताम्रपर्णी और गोदावरी नदी का सविस्तर तथा आकर्षक वर्णन किया है । ताम्रपर्णी नदी में प्रकृति मानवीय रूप में भी आयी है । उसमें प्रतिबिंबित पल्लव सूर्य की किरणों से भयभीत होकर उसके जल के अन्दर शरण लेने वाले अंधकार के सदृश लगते हैं और प्रतिबिम्बित वृक्षों के लाल-लाल पल्लव मीठे जल को पीने के लिए वृक्षों द्वारा फैलायी गयी लाल जीभ प्रतीत होते हैं[४] । वह स्वयं शंख रूपी वलयों से युक्त तरंगरूपी हाथों में सिन्धुराज रूपी राजा पर फेनपटल रूपी चामरों को डुलाती है और तरंगरूपी हाथों से सीपियों से मोतियां निकाल कर लुटे हुए समुद्र को देकर उसे पुन: धनाढ्य बनाती है[५] ।

नदी में नायिका के अवयवों का आरोप भी किया गया है । उसमें चंचल लहरों से पड़ी आवर्त की बुदबुदे स्वेद बिन्दु के सदृश, तरंग की वायु से जल में फैले हुए कमल-पराग रोमांच सदृश, तरंगे[६] भ्रूभंगिमा सदृश और सारस की कूज भूषणों की ध्वनि के सदृश प्रतीत होती है ।

गोदावरी नदी के वर्णन में कवि ने उसे कुमुद, कमल, कल्हार से भरी, चक्रवाक मिथुनों से सेवित, लहरों में प्रतिबिम्बित उपवन, आवर्तमण्डल, तटवर्ती सारस, पानी में पड़े पुष्प, कल्लोल, जलविहार करते हंस, प्रतिबिम्ब चन्द्र से युक्त तथा स्वर्ग की

१-जैनप्रुपा०० पृष्ठ १६०

२- ,, ,, १३४

३- ,, ,, १०६

४- ,, ,, १५३

५- ,, ,, १५२

६- ,, ,, १५३

सीढ़ी, पापनाशक आदि के रूप में देखा है[1]। जल में प्रतिबिम्बित बुद्बुद और फेन को क्रमश: हलाहल और अमृत के रूप में कवि देखता है। कवि नदी के तटवर्ती आश्रमों से धर्मोपदेश तथा लहरों की कलकल ध्वनि से कलियुग के पापों के नाश की घोषणा सुनता है[2]। इसी प्रसंग में कवि ने महाभारत की कथा तथा महावीर को भी उपमान बनाया है[3]।

यहां पर प्रकृति दण्ड विधायक के रूप में भी आई है। कुमुदवन को बन्द करने के अपराध में यह नदी अपने जल में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा को बन्द करके तरंगों से पीटती है और चन्द्रमा उसी पीड़ा से खिला हुआ दिखायी देता है। यह सुन्दरियों की गति चुराने के कारण राजहंसों को टूट कर फैले हुई कमल नाल के तन्तुओं से बांधती है[4]।

सरोवर का वर्णन केवल अलंकि राजधानी के वर्णन में है। हंसों की मधुर ध्वनि, कोमल किंजल्क के खाने की इच्छा से कुवलय पर बैठे चक्रवाक लहरों में चलते बरटा और बराटक, कमलों की छाया में बैठे राजहंस, हंसों द्वारा तोड़े गए कुसुमपराग की सुगन्धि तथा मधु से युक्त सरोवर का वर्णन है। हंस से सम्बन्धित प्रसंग उसमें अपेक्षाकृत अधिक है[5]।

समुद्र के वर्णन में कवि ने उसकी कल्लोल, गर्जन, शंख, पानी पीते बादल, आवर्त, सभी नदियों का वहां पहुंचना, ज्वार भाटा आदि सभी का अलंकारिक ढंग से वर्णन किया है। यहांपर भी महाभारत के पात्रों में कृष्ण, दुर्योधन, भीम, जयद्रथ, कर्ण - इसके अतिरिक्त देवताओं में शंकर, कार्तिकेय और पर्वत में मैनाक को उपमान बनाया है। आदि वाराह और कूर्मावतार का भी उल्लेख हुआ है। कवि को समुद्र कभी युद्धशाला, कभी रक्षा दुर्ग और कभी रंगमण्डप के सदृश दिखायी देता है[6]। उसकी ऊंची-ऊंची लहरें मानव की भांति

१- जैन भूपाल० पृष्ठ २०५
२- ,, ,, २०५-२०६
३- ,, ,, २०६
४- ,, ,, २०६
५- ,, ,, १२
६- ,, ,, १३४

आकाश को चूमने की इच्छा करती हैं, समुद्र शिव को विष देने के अपराध के कारण बड़वाग्नि से अपने को तपाता है जिसका धुआँ बादल के रूप में ऊपर उठता है वह पारिजात के वियोग में ऊंची-ऊंची लहरों के बहाने निःश्वास छोड़ता है, वारुणी के संसर्ग रूपी पाप को दूर करने के लिए वह गंगा में स्नान करता है[१]।

कवि समुद्र-मंथन में जो पदार्थ समुद्र से निकल गए थे उनसे पुनः युक्त होते देखता है। कवि वृक्षों के प्रतिबिम्ब से कल्पवृक्ष, फेनपिण्ड से अमृत, जलदेवता से अप्सरा, नभप्रतिबिम्ब से कालकूट, बादल समूह से ऐरावत गजगण, शैवाल मंजरी से रोमश, विद्रुम वृक्षों से विराल की कल्पना करता है[२]।

समुद्र के दक्षिणी तट का सारा सम्बन्ध राम-रावण की कहानी से है[३]।

उपवनों के वर्णन में कवि की प्रवृत्ति वृक्षों के नाम गिनाने में अधिक परिलक्षित होती है। इसके प्रसंग त्रिलिंग जनपद तथा अलंकि राजधानी के वर्णन में भी आए हैं किन्तु वे अत्यन्त आकर्षक नहीं हैं। काव्य-प्रतिभा से परिपूर्ण उपवन का प्रसंग उस उपवन तथा सहकार वृक्ष के वर्णन में मिलता है जिसमें अनन्ता क्रीड़ा रही है। कवि ने उसका वर्णन अधिकांशतः उद्दीपन रूप में किया है। यहां हिलती हुई शाखाओं से लताओं का वन-माधुरी की प्रशंसा करना, वृक्षों पर दौड़ते हुए भ्रमरों का स्तुति-गान करना, वायु का राजा का सत्कार करना, कोयल का कुशल पूछना, -- आदि को मानवीकरण ढंग से प्रस्तुत करके प्रकृति के आलम्बन रूप (स्वतंत्ररूप) को वर्णित किया गया है[४]।

वहां के बाल सहकार का वर्णन उद्दीपन और स्वतन्त्र दोनों रूप से हुआ है जिसमें प्रकृति मानव के रूप में आयी है। स्वतन्त्र वर्णन में बाल सहकार गीत सुनकर खुशी से शिर हिलाता है, निरन्तर जल में रहने के कारण शीत से कांपता है[५] और उद्दीपन रूप में मुकुल की सरललता (नायिका) के सम्पर्क से उत्पन्न

१- वैमपुपा० पृष्ठ १३३-३४
२- ,, ,, १३३-३४
३- ,, ,, १५१-५२
४- ,, ,, २७-२८
५- ,, ,, २६

पुलक के बहाने धारण करता है, सघन छाया से अंधकार उपस्थित करके लता रूपी वधू के लिए अभिसरण कराने की तैयारी करता है, आलबाल में प्रतिबिम्बित अन्य वृक्षों के साथ उसमें जलक्रीड़ा करता है, कोयल से मंत्रों का उच्चारण कराकर मकरन्द रूपी घृत को स्फुलमालिनी रूपी अग्नि में लता रूपी बन्धु के लिए आहुति डालता है और पल्लव रूपी उंगलियों तथा शाखा रूपी भुजाओं को हिला-हिलाकर नृत्य करता है[1]।

कवि ने बाल सहकार के उद्दीपन रूप के इस वर्णन के ढंग के अतिरिक्त सामान्य वर्णन में इस वृक्ष के पुष्पांकुर को कामास्त्र, मुकुल को पुलक, कुसुमपराग को कामदेव का चूर्ण आदि बताकर वर्णन किया है[2]।

बाल सहकार के स्वतन्त्र वर्णन में बाल सहकार को दिगम्बर धारण करने वाले शिव, नेत्रसहस्त्र को धारण करने वाले इन्द्र और सुपर्णा का संग करने वाले विष्णु के सदृश बताया है[3]। इसके अतिरिक्त देवताओं और असुरों द्वारा मथित क्षीरसागर के कल्पद्रुम के सदृश कवि उसे देखता है[4]।

वन का प्रसंग राजा प्रोल्ल के शिकार तथा विन्ध्याटवी वर्णन में मिलता है। शिकार के लिए जाते समय अरण्य की भीषणता का चित्र न खींचकर शिकार के पश्चात् उस अरण्य में सोनेवाले पशुओं की दुःखद स्थिति का चित्रण किया है[5]। यत्र तत्र वहां तलवारों से कटे पशुओं के निकलते हुए खून से सनी भूमि का वर्णन करके बीभत्स रूप चित्रित करने का प्रयत्न भी किया है[6]। विन्ध्याटवी का वर्णन सौम्य और रौद्र दोनों रूपों में हुआ है। भयानक वर्णन जैसा कि रस-निरूपण में देखा जा चुका है, पशुओं की मारकाट आदि से है और रम्य वर्णन वृक्षों, पुष्पों एवं पक्षियों से है। जानवरों में रोहित मृग, शरभ, तरक्षु, हरिण, चमरीमृग, सिंह, हाथी, भालू, हारीत, शूकर आदि, पक्षियों में कपिञ्जल, करटि, शुक, कलविंक, भेरुण्ड, कपि, चक्रोड, कपिंजल, खंजरीट तथा

१- वेमभूपा० पृष्ठ २६

२- ,, ,, २६

३- ,, ,, ३०

४- ,, ,, ३०

५- ,, ,, ३१

६- ,, ,, ३२

उल्लू आदि और वृक्षों में करवीर, पुरुष, ताल, धवन, मालती, गायत्री, जपा, श्रीफल, कंकेलि, दाडिम, गुग्गुल, गोशीर्ष आदि को लिया है। इसका भयानक वर्णन रस के पोषण में सहायक हुआ है[1]।

बाण ने विन्ध्याटवी के प्रसंग में निषादाधिपति का सविस्तर वर्णन किया है और इन्होंने निषाद जाति का किन्तु संक्षेप में[2]।

कवि ने पर्वतों में केवल मलय पर्वत का वर्णन सविस्तर किया है। इस वर्णन में कवि ने उसकी अमरालय, मन्दर, विन्ध्य, कैलास आदि पर्वतों से उसकी उत्कृष्टता एवं समृद्धता बताई है। अत: इसका वर्णन उद्दीपन रूप में न होकर स्वतन्त्र रूप में हुआ है। ऊपरस्थित बादलों से इन्द्र-वज्र के द्वारा उत्पन्न घाव होने के कारण शिर पर पट्टी बांधने की कल्पना, अन्य पर्वतों का उपहास करना, तटवर्ती चन्दनपल्लवों से समुद्र की बड़वाग्नि को शान्त करना, सेतु रूपी शृंखला से व्यथित होकर नि:श्वास लेना, इन्द्र के वज्र की वेदना से झरने के बहाने अश्रु छोड़ना, नीलमणियों की कान्ति से दूसरे आकाश की सृष्टि करना, निर्झर की ध्वनि से सागरशायी नारायण की स्तुति करना, सागर की प्रतिध्वनि से हिमालय के आधिपत्य की हंसी उड़ाना, बातें करना -- आदि क्रियाओं का आरोप करके तथा गुफा को खुला हुआ मुंह, चन्दन वृक्षों पर लटके हुए सर्पों को शिराजाल, धातुओं को कुंकुम का स्थासक बताकर कवि ने प्रकृति को मानव की भांति कार्य करते हुए अपनाया है[3]।

इस वर्णन प्रसंग में कवि ने अन्य वर्णन- प्रसंगों की भांति वृक्षों के नाम गिनाने नहीं शुरू किए हैं।

मलय पर्वत के समान हिमालय के वर्णन में कवि की विशेष काव्य-प्रतिभा का परिचय नहीं मिलता है। फूल, वृक्ष, पक्षी आदि की ही नाम-गणना मिलती है[4]।

इन विषयों के अतिरिक्त स्त्रियों के नख-शिख वर्णन में कवि ने अलंकारों के साथ प्रकृति को कई प्रकार से स्थान दिया है। कभी उपमेय को नगण्य

१- वैमुपाल० पृष्ठ १८०-१८१

२- ,, ,, १८२

३- ,, ,, १५५-५६

४- ,, ,, १६५

करके प्रकृति को प्रस्तुत स्थान दिया है जैसे 'यत्र वृक्ष च पुनरम्बुधरकदम्बकम्', अमृतकर-बिम्बक... इत्यादि[1] कभी प्रकृति में मानवीय अवयवों का आरोप करके, जैसे 'बिम्बाधर इति पल्लवं विमृशन्, हरिणमिति पुष्पमवलोकयन्...' इत्यादि[2] कभी मानव की भाँति कार्य करने वालों के रूप में जैसे 'मुखकान्तिवदर्पिता कमलैरधुविन्दव इव मुक्तान्ते... सविलासगति चातुरीदर्शनलज्जामज्जनमाचरति सलिलेषु हंसकुलम्.. इत्यादि'[3] और कभी दण्डविधायक के रूप में प्रकृति को देखता है जैसे अनन्ता के वर्णन में --

पल्लव चूंकि उसके बिम्बाधर की समता रखने का साहस करते हैं अतः शुक उनको कुतर कुतर कर दण्ड दे रहा है, उसकी मीठी बोली से पराजित होकर कोयल आम्रादि वृक्षों पर बैठी हुई[4], ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें मानों दण्ड के रूप में अग्नि में प्रवेश कराया जा रहा है, अवयवों से विजित लताओं को उसके ऊपर चढ़ने वाले वृक्षों से बांधा जा रहा है, इत्यादि।

कवि ने नख-शिख वर्णन में कभी वृक्षों[5] और कभी नदियों[6] को स्थान देकर प्रकृति को स्थान दिया है।

स्त्रियों के नख-शिख वर्णन के अतिरिक्त उनके सामान्य सौन्दर्य-वर्णन में प्रकृति मानव की भाँति कभी सहयोग देती हुई, कभी सेवा करती हुई तथा कभी अन्य कार्य करती हुई आयी है।

इस प्रकार कवि के काव्य में प्रकृति को पर्याप्त मात्रा में स्थान मिला है और उसके वर्णन में उसने अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है।

रामकथा में प्रकृति-वर्णन--

वासुदेव ने अपने काव्य में केवल कथावस्तु को प्रधानता दी है। इस काव्य में न अलंकारों की छटा, न विविध रसों की अभिव्यक्ति और न प्रकृति की मधुर सुषमा देखने को मिलती है। केवल प्रसादगुणमयी शैली का ही सौन्दर्य है। यदि कवि प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करना चाहता तो इस कथा में कई ऐसे दृश्य आए थे जिनका वह वर्णन कर सकता था। राम का अधिकांश जीवन वन में

१- वैम० पृष्ठ १५-१६
२- ,, ६१
३- ,, १६७-६८
४- ,, ४८
५- ,, १६५
६- ,, १०६

ही सीता था न जाने कितने आश्रमों में वे गए थे किन्तु कवि ने उन सब का उल्लेख मात्र कर दिया है । चित्रकूट[१] और दण्डकारण्य[२] के विषय में यह नहीं कहा जा सकता है कि उनका उल्लेख ही हुआ है किन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनके वर्णन में कवि ने किसी प्रकार की रुचि दिखायी है । उन वर्णनों को एकाध पंक्ति में समाप्त कर दिया गया है ।

राक्षसों से भयभीत जिस आश्रम का वर्णन किया है उसमें भी कोई सौन्दर्य नहीं है । उसमें केवल यज्ञ करने वालों का यज्ञ छोड़कर भागना, ब्रह्मचारियों के हाथ से दंड का गिर जाना, एवं कोलाहल से ब्रह्माण्ड का व्याप्त हो जाना ही वर्णित है ।[३]

इसी प्रकार समुद्र को सुखाने के लिए रामचन्द्र के धनुषबाण उठाने पर कवि ने अन्य स्थलों की अपेक्षा ब्रह्माण्ड का अधिक विस्तृत वर्णन किया है । इसमें सातों समुद्र के प्राणियों का भयभीत होना, पाताल-लोक निवासी राक्षसों का धैर्य छूटना एवं त्राहि-त्राहि करना, लोगों का असमय प्रलयकाल की कल्पना करना आदि कुछ ही वर्ण्य-विषय हैं[४] ।

अन्य कवियों ने अपने काव्य में समुद्र को स्थान देकर न जाने कितने प्रकार से उसका वर्णन किया है किन्तु इस कवि ने इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी । उसका केवल उल्लेख[५] करके ही आगे बढ़ गए ।

अन्य कवियों ने राजधानी आदि के वैभव का वर्णन करके अपने काव्य में प्रकृति को स्थान दिया है , इन्होंने यह भी नहीं किया है । दो बार लंका का वर्णन हुआ है किन्तु एक में केवल कुछ मणियों को स्थान मिला है[६] और दूसरे में लंका की ऊंचाई से सूर्य को रोकने की इच्छा करती हुई तथा अनेक मणियों की कान्ति से सन्ध्या और मेघ को एक साथ करती हुई बताया है[७] ।

१-रामकथा पृष्ठ १४

२- ,, ,, १७

३- ,, ,, ८

४- ,, ,, ३६

५- ,, ,, ३५

६- ,, ,, ३२

७- ,, ,, ५२

अयोध्या के वर्णन में मध्याह्न सूर्य की जिस स्थिति का वर्णन किया भी है, उसमें न कोई नवीनता है और न सौन्दर्य ही । उसमें पूर्ववर्ती कवियों की अनुकृतिमात्र है[1] ।

वहां पर सरयू नदी का वर्णन भी कमल और कुमुद पुष्प से युक्त तथा पापनाशिनी बताकर समाप्त कर दिया है[2] ।

दूषण युद्ध के उपरान्त रक्त से सनी गोदावरी नदी का वर्णन अवश्य कुछ हद तक सुन्दर कहा जा सकता है --

'निरन्तरप्रकाररघुवीरशरशातशकलितखरदूषणशरीरनिर्गत्वरुधिरापगा-संमिश्रितारुणिततोया गोदावरी विभीषणभावनावेदयितुकामेव लंकापुरस्यपरिसरायै सरितांपत्ये सत्वरतरं प्रावहत्[3] ।'

४- राम के सौन्दर्य-वर्णन में कवि ने अवश्य उनके तेज से तिरस्कृत सूर्य, तमाल एवं कमल को स्थान दिया है जिनमें कमल को नेत्र और हाथ के वर्णन में दो बार ग्रहण किया है । इसमें कोई नवीनता नहीं है[4] ।

आसफविलास में प्रकृति-वर्णन

संस्कृत गद्य-काव्य को नया मोड़ देने वाले 'आसफविलास' के रचयिता जगन्नाथ ने अपने काव्य में प्रकृति के रम्य रूप को ग्रहण किया है । ऐसे महान् आचार्य एवं प्रतिभासम्पन्न कवि से इस विषय में जैसी आशा पाठक करता है वैसी उपलब्धि में उसे निराश होना पड़ता है ।

कश्मीर भूमि-सौन्दर्य की पराकाष्ठा बतायी गयी है किन्तु कवि ने उसका वर्णन सामान्य रूप से कर दिया । वहां पुष्पों पर भ्रमरों की गुंजार, फलों के भार से नत वृक्ष, खिले हुए कमलों से निकले पराग से पाण्डुरित चोंच वाली हंसियों से बुलाये जाते हुए हंस तथा जलाशय वर्णित हैं । बाग के उपवन के वर्ण्य-विषय साधारण वृक्ष एवं वापी हैं[5] ।

१- रामकथा पृष्ठ २
२- ,, ,, २
३- ,, ,, २०
४- ,, ,, ४८
५- आसफविलास पृष्ठ ८३-८४

यहाँ के मार्ग एवं हिमालय के वर्णन के प्रति कवि की रुचि परिलक्षित नहीं होती है । मार्ग के लिए केवल 'विषमतरारोहावरोहाभि: स्वरावृत्तिभिरिव पद्धतिभिरनाकलितदु:खलेशं कश्मीरदेशमजगाम'[1] कह कर तथा हिमालय के लिए केवल — 'यस्मिन्ननवरतमपरिमितपयोदपटलच्छायांसात्प्रालेयपुंजपिंजरितेन परित: स्फुरता रजतप्राकारेणेव गौरीगुरुणा हिमगिरिणा'[2] कह कर वर्णन प्रसंग को समाप्त कर दिया है ।

फल के भार से झुके वृक्षों को अतिथि की सेवा में तत्पर हुए, मधुकरों के गुंजन से उन्हें विरुदावली गाते हुए तथा सूर्य की किरणों से त्रस्त होकर अंधकार को पानी के अन्दर शरण लेते हुए बताकर कवि ने प्रकृति को मानवीय रूप दिया है । किन्तु केवल कुएं के पानी के सम्बन्ध में कवि ने जो कल्पना की है वह नवीन कही जा सकती है और अन्य सब कल्पनाओं में पूर्व कवियों की कल्पना की छाप परिलक्षित होती है[3] ।

इस काव्य में पंडित राज जगन्नाथ ने भ्रमरों का कई बार उल्लेख किया है ।[4]

इस प्रकार अर्वाचीन गद्य-काव्यों में प्रकृति निरूपण के संबंध में देखा जा सकता है कि इस काल में भी गद्य-कवि प्रकृति को पर्याप्त मात्रा में स्थान देते रहे और उसमें उनकी काव्य-प्रतिभा का परिचय होता है । अर्वाचीन गद्य-कवियों में यदि किसी ने इस तत्व की उपेक्षा की है तो वासुदेव कवि ही कहे जा सकते हैं । अन्यथा इन कवियों ने प्रकृति को कभी स्वतन्त्र, कभी उद्दीपन, कभी रसपोषिका, कभी शिक्षिका, कभी दण्ड-विधातृ, कभी सेविका, कभी सहचरी और कभी इसी प्रकार के अन्य रूपों में अपनाया है । इस विषय में भोज, धनपाल, ओडयदेव तथा वामनभट्ट बाण कवियों की विशेषरूप से प्रशंसा की जा सकती है । धनपाल का काव्य यद्यपि क्लिष्ट हो गया है किन्तु उनके काव्य में प्रकृति की विविध रूपता अपना विशेष स्थान रखती है । पण्डितराज जगन्नाथ के काव्य में प्रकृति की विविधरूपता नहीं मिलती है । उन्होंने अपने लघुकाय गद्य-काव्य में प्रकृति को स्वतन्त्र रूप में ही अपनाया है । स्थान स्थलों पर प्रकृति में मानवीय क्रिया-कलापों का आरोप कर दिया है ।

-०-

१- आसफविलास पृष्ठ ८३
२- ,, ,, ८३
३- ,, ,, ८४
४- ,, ,, ८३,८४।

षष्ठं अध्याय

पात्रों का चरित्र-चित्रण

--०--

पात्रों का चरित्र-चित्रण

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है कि कवि अपने काव्य के अध्ययन से समाज को जिस ओर मोड़ना चाहे तथा उसमें जो भी परिवर्तन करना चाहे बड़ी सरलता से कर सकता है। क्योंकि उसके काव्य में एक सरसता होती है जिससे सहृदय आकृष्ट होकर अथवा जिसके आस्वादन में विभोर होकर वह यन्त्र-चालित-सा कार्य करने लगता है। काव्य के दिए गए उपदेशों में उसे एक अद्वितीय आनन्द मिलता है जिन्हें वह नि:संकोच ग्रहण कर लेता है। अत: कवि में ही यह शक्ति होती है कि व्यक्ति को बुरे मार्ग से सन्मार्ग की ओर ले जाए यद्यपि यही कार्य शास्त्र आदि भी करते हैं किन्तु वे विषय ज्ञानी पुरुषों के लिए ही ठीक हो सकते हैं, अल्पज्ञ के लिए नहीं। फिर ज्ञानी पुरुष भी सरल मार्ग होने के कारण काव्य के द्वारा दिए गए सरस उपदेशों को अपनाना अधिक पसन्द करते हैं। अत: कवि का कर्तव्य हो जाता है कि अपने काव्य को आदर्शमय बनाए। इसीलिए संस्कृत आचार्यों ने नायक के लिए विनम्र, मधुर भाषी, त्यागी, चतुर, लोगों का रंजक, पवित्र मन वाला, बातचीत करने में कुशल, कुलीन वंशी होना तथा उसमें बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, धर्मशास्त्र तथा कला-विषयक-ज्ञान, शूरता, दृढ़ता, तेजस्विता आदि गुणों का होना भी आवश्यक बताया है। यही कारण है कि संस्कृत काव्यों में चाहे वे नाटक हों या गद्य-काव्य सब में इसी प्रकार के नायक रखे जाते हैं। अधिकांशत: नायक राजा या राजकुमार हुआ करते हैं। उनकी महानता बताने के लिए कवि उनके जन्म में दैवी विधान की कल्पना करते हैं। उपनायक को लाकर नायक को उससे बढ़कर दिखाते हैं। नायक की भाँति नायिका भी उच्चवंशीय वर्णित होती है। कवि अधिकांशत: उसे सौन्दर्य की अधिष्ठातृ-देवी के रूप में चित्रित करते हैं। उसको अधिकांशत: विविध कलाओं में निपुण एवं प्रेमिका रूप में दिखाया जाता है और वे आदर्श प्रेम का रूप रखती हुई चित्रित की जाती हैं। कुछ नायिकाएं प्रेमिका के रूप में न आकर पतिव्रता स्त्री का आदर्श अथवा अन्य कोई आदर्श रखती हुई वर्णित की जाती है। अर्वाचीन गद्य-काव्यों में गद्य चिन्तामणि की महिषी गन्धर्वदत्ता तथा रामकथा की सीता को कवि ने पतिव्रता स्त्री के रूप में चित्रित किया है।

संस्कृत गद्य-काव्यों में नायक-नायिका के अतिरिक्त अन्य पात्र भी आदर्श की स्थापना करते हुए वर्णित किए जाते हैं। यही कारण है कि इन काव्यों में उपनायक सर्वदा खल रूप में नहीं दिखाया जाता है। नाटक में उपनायक को नायक की फलप्राप्ति में विघ्न उपस्थित करने वाला, नायक-शत्रु, लोभी, धीरोद्धत, घमण्डी, पापी तथा व्यसनी की ही दृष्टि से देखा जाता है किन्तु गद्य-काव्य में इस रूप के अतिरिक्त साधु रूप में भी मिलते हैं। उपनायक का प्रथम रूप गद्यचिन्तामणि के काष्ठांगार पात्र में देखा जा सकता है और दूसरा रूप तिलकमंजरी के समरकेतु में। समरकेतु सच्चे मित्र और उत्कृष्ट प्रेम का आदर्श उपस्थित करता है।

संस्कृत गद्य-काव्य अधिकांशत: शृंगार रस प्रधान है और जो नहीं भी है उनमें इस रस को स्थान अवश्य मिला है (इस विषय में केवल शृंगार मंजरी कथा तथा रामकथा अपवाद-स्वरूप हैं) अत: उनमें नायक-नायिका का चित्रण अवश्य हुआ है किन्तु अर्वाचीन गद्य-काव्यों में एक ऐसा भी लघुकाय गद्य-काव्य मिलता है जिसमें कवि ने नायिका पात्र को स्थान ही नहीं दिया है । इस सम्बन्ध में जगन्नाथ का वासकविलास उद्धृत किया जा सकता है । उस काव्य के पात्रों में केवल दो पुरुष पात्र ही हैं । उसमें कोई भी स्त्री पात्र नहीं है केवल उनके सामान्य सौन्दर्य का संक्षिप्त वर्णन कर दिया गया है ।

किन्तु कवि की सफलता अथवा असफलता काव्य में स्त्री-पात्रों के स्थान देने अथवा न देने में नहीं होती है अपितु पात्रों को इस ढंग से प्रस्तुत करने में होती है कि वे हमारे समक्ष सजीव रूप में आ जाएं और पाठक उनके सुख-दु:ख का साझीदार बन जाए । अत: चरित्र-चित्रण में कवि का कार्य केवल गुणों की सूची तैयार कर देना नहीं होता अपितु उसे काव्य में उन गुणों के सम्यक् निर्वाह करने में भी ध्यान रखना पड़ता है, पात्रों के भावों का सूक्ष्म विश्लेषण करना पड़ता है, उनकी प्रकृति समझनी पड़ती है जिससे उन पात्रों के बीच किसी प्रकार की अस्वाभाविकता न आने पाए । इसी दृष्टि से ही कवि की चरित्र-चित्रण विषयक शक्ति का मूल्यांकन होता है ।

संस्कृत अर्वाचीन गद्य-काव्यों को यदि पात्रों के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से देखा जाय तो कुछ ही गद्य-काव्य श्रेष्ठ मिलेंगे । क्योंकि अधिकांश कवियों ने पात्रों के चित्रण में केवल अपार गुण राशि का बखान कर देना ही अपना कर्तव्य समझा है और उन गुणों को उनके जीवन में घटित होते हुए नहीं चित्रित किया है । कुछ कवियों ने किस समय पात्र में कौन से गुण बताने चाहिए, इस पर भी ध्यान नहीं रक्खा, जहां उनकी जैसी इच्छा हुई उसी रूप में वहां उनका वर्णन कर दिया । कुछ कवि ऐसे भी हैं जिन्होंने अन्य पात्रों का तो फिर भी अच्छा चित्रण कर दिया है किन्तु नायक के चित्रण में उपेक्षा दृष्टि ही रक्खी है जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके नायक का चित्रण ही सम्यक् प्रकार से नहीं हुआ । वैसे अर्वाचीन गद्य-काव्यों के नायक महान और आदर्श रूप में चित्रित हैं । कुछ कवियों ने अपने काव्य में सभी पात्रों को एक आदर्श को लेते हुए चित्रित किया है । कुछ कवियों ने साधु और दुष्ट प्रकृति के पात्रों को रखकर अधर्म के ऊपर धर्म की विजय दिखा कर आदर्श की स्थापना की है ।

शृंगारमंजरी कथा के पात्र--

अर्वाचीन गद्य-काव्यों में सबसे भिन्न प्रकार का गद्य-काव्य `शृंगारमंजरीकथा` है जिसमें कवि ने अन्य कवियों की भांति राजाओं के सौन्दर्य गुण आदि का वर्णन न करके वेश्याओं का चरित्र खींचा है । अत: उनके काव्य में वेश्या-पात्रों का, उनकी माताओं का एवं उनके सम्पर्क में आने वाले पुरुषों का ही चित्रण मिलता है । प्रारम्भ में कवि ने पुरुषों के कुछ व्यक्तित्व के प्रकार बताये हैं तथा उनके रागों की चर्चा की है उनमें से कुछ प्रकार के व्यक्तित्व वाले एवं राग वाले पात्रों को लेकर कवि ने उनके स्वरूप की विवेचना की है । काव्य में वेश्याओं का सम्पर्क पाने वालों में से कुछ पात्र उनके रूप-माधुर्य पर सब कुछ न्योछावर कर देने वाले हैं जिनमें रविदत्त और विक्रमसिंह आते हैं ।

क्योंकि ये दोनों क्रमश: विनयवती और मालतिका नामक वेश्याओं पर सर्वस्व न्योछावर कर देते हैं । कवि ने रविदत्त के स्वभाव में धीरे-धीरे होने वाले परिवर्तन का वर्णन किया है । वह पिता के द्वारा दिए गए यौवन सम्बन्धी उपदेशों का पालन करता है, विनयवती के सौन्दर्य पर मुग्ध होने पर भी तथा विनयवती की सखी के द्वारा उसके पास जाने का प्रस्ताव रखे जाने पर भी वह एकदम से अधीर नहीं हो जाता । वह बहुत सोच-समझ कर उसके प्रस्ताव को स्वीकार करता है । कवि ने पहले उसे एक आदर्श व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है तत्पश्चात् वेश्या के सम्पर्क से उसका नीचतम रूप बताकर उसका अध:पतन दिखाया है ।

विक्रमसिंह को कवि ने स्वभावत: विलासी के रूप में चित्रित किया है । यद्यपि उसके पराक्रमी और त्यागी होने की बात कही है किन्तु वे गुण क्रियान्वित रूप से घटित होते हुए नहीं दिखाए गए हैं । वह रविदत्त की भांति वेश्या की ओर से आने वाली सखी की प्रतीक्षा नहीं करता है अपितु स्वयं अपने मित्र को भेजता है । कवि ने उसे कामुक के रूप में चित्रित किया है । अत: उसकी सहनशीलता भी मालतिका की प्रतीक्षा में होने के कारण उसके इसी रूप को चित्रित ~~किया है~~ करती है ।

कुछ पात्र वेश्याओं की माताओं से परेशान होकर उन्हें समुचित दण्ड देते हुए चित्रित किए गए हैं । माधव, सोमदत्त और विनयधर इसी प्रकार के हैं । माधव और विनयधर दोनों ही वेश्याओं की माताओं को उनके नाक-कान काट कर दण्ड देते हैं । सोमदत्त के दण्ड देने का तरीका इन दोनों से भिन्न है । उसकी विधि में वह धूर्तता नहीं परिलक्षित होती जो उपर्युक्त अन्य दो पात्रों में होती है । वे दोनों पात्र एक प्रकार से धूर्त प्रकृति के चित्रित किए गए हैं और सोमदत्त इस प्रकार का नहीं कहा जा सकता है । वेश्याओं की लूट चालों को सर्वप्रथम समझने का जहां तक प्रश्न उठता है वहां कवि ने माधव को बुद्धिमान बताया है । क्योंकि वह लुटने के पहले ही सचेत हो जाता है, विनयधर लुट जाने के पश्चात् सचेत होता है और दण्ड देने के लिए उसे उधार लेना पड़ता है, सोमदत्त भी सब कुछ लुटा कर भाई का आश्रय लेकर दण्ड दे पाता है । अन्य दो पात्रों की अपेक्षा सोमदत्त अधिक बेवकूफ दिखाया गया है वह वेश्या की चालों में फंसकर धनप्राप्ति के रहस्य तक को बता देता है ।

सुरथर्म को माधव की भांति वेश्याओं की चालों को समझने की दृष्टि से तीव्र बुद्धि वाला कहा जा सकता है क्योंकि समुद्र द्वारा दिए गए दिव्य रत्नों को पाकर कहीं किसी से लुट न जाए तो वह पागल का-सा अभिनय करने लगता है । देवदत्ता नाम की वेश्या उस पर तरह-तरह के जाल डालती है किन्तु उसमें वह फंसता नहीं है ।

सुरथर्म की जहां यह बुद्धि उसको वेश्या के जाल में न फंसने में सहायक बनती है, वहां उसकी दयालुता उसको वेश्या के जाल में फंसा देती है । देवदत्ता की मृत्यु का कारण अपने को जान कर वह उसके रोते-बिलखते परिवारों को दिव्य रत्न देकर स्वयं मरने को उद्यत हो जाता है और देवदत्ता उस रत्न को पाकर कुछ दिनों बाद उसे घर से निकाल देती है ।

काव्य में कुछ ऐसे भी पात्र आये हैं जिनपर वेश्याओं का मुग्ध होना बताया गया है । आठवीं कथानिका का रत्नदत्त इसी प्रकार का है । वह स्वयं किसी पर आकृष्ट नहीं होता अपितु उस पर वेश्या लावण्य सुन्दरी आकृष्ट होती है और अपना सब कुछ

न्योछावर कर देती है ।

कवि ने यद्यपि उसे रूपवान, विद्वान, द्यूतपटु, गज, अश्व आदि विविध शिक्षाओं में निपुण तथा वीर योद्धा बताया है किन्तु उसके गुणों का कथन ही कवि ने किया है उससे पात्र का कोई चरित्र चित्रित नहीं होता । केवल उसके संयमी रूप को चित्रित करने में कवि ने सावधानी रखी है । क्योंकि वह लावण्यसुन्दरी को अलंकृत एवं राजा के पास से आयी हुई देखकर तथा उसके पैर धोने के लिए उसे उद्यत देखकर केवल उसे `माँ` कहकर रोक देता है और उसे स्वामी की पत्नी बताता है ।

दोनों के वार्तालाप को सुनकर राजा सामने आता है तो वह शस्त्र लेकर खड़ा अवश्य हो जाता है किन्तु क्रोधावेश में निरर्गल बातें कुछ नहीं करता वह केवल उससे वहां से हट जाने को ही कहता है । (आठवीं कथा०)

रत्नदत्त लावण्यसुन्दरी को चाहता है किन्तु कवि ने उसकी संदेहात्मक प्रकृति का चित्रण किया है और अशोकवती नामक वेश्या को चाहने वाले हुड्डक के प्रेम में कवि ने इस प्रकृति को किंचिदपि स्थान नहीं दिया है । यहां तो राजा दोनों के प्रेम के बीच भेद डालने के लिए घृणित से घृणित कार्य करता है किन्तु कवि ने उसके ऊपर उसका कुछ भी प्रभाव पड़ते नहीं दिखाया । इसके विपरीत उसे संसार के समक्ष अपने सच्चे प्रेम का दृष्टान्त उपस्थित करते हुए चित्रित किया है जिसमें अशोकवती और हुड्डक दोनों की मृत्यु हो जाती है ।

काव्य में वेश्याओं का सम्पर्क करने वाले सामान्य कोटि के पुरुष ही नहीं राजा तथा सामन्त आदि भी हैं । उरगपुर का राजा समरसिंह अशोकवती को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए घृणित से घृणित कार्य करने को उद्यत रहता है । (नवमी कथा०)

उज्जैनी का राजा विक्रमार्क देवदत्ता नामक वैश्या का सम्पर्क पाकर अपार धनराशि देते हुए चित्रित किया गया है । यहां यह एक चाटुकारिता का प्रेमी बताया गया है और देवदत्ता उसकी इस दुर्बलता का लाभ उठाने के लिए मनगढ़न्त कहानी रचती है । (पांचवी कथा०)

विक्रमादित्य लावण्यसुन्दरी (जो वस्तुत: वेश्या नहीं थी अपितु उसे परिस्थितियों के कारण बनना पड़ा था) के प्रेम में फंस कर मातृगुप्त के द्वारा बार बार सावधान किए जाने पर उसकी परीक्षा लेकर और उसमें उसे खरा देखकर उसके प्रेम में किसी प्रकार का सन्देह नहीं करता है । यद्यपि वह उससे प्रेम करता है क किन्तु कवि ने उसे एक आदर्श व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है जो एक बार वचन देकर फिर पीछे हटना नहीं जानता । लावण्यसुन्दरी से प्रसन्न होकर वह हस्ति आदि उसे दे देता है । लावण्यसुंदरी जब अपना रहस्य खोलती है तो उसे धक्का अवश्य लगता है किन्तु वह उसकी इच्छा में किसी प्रकार की रुकावट नहीं डालता । (सप्तमी कथा०)

मान्यखेट का ~~हवबाजा~~ राजा लावण्यसुन्दरी के लिए उसके द्वारा कही गयी सभी शर्तों को बिना किसी संकोच के शीघ्र मानने को तैयार हो जाता है । किन्तु कवि ने इस राजा का चित्रण अन्य राजाओं के चित्रण से भिन्न प्रकार का किया है । उसके प्रेम में वह अन्य राजाओं की भांति अपने विवेक को नष्ट नहीं करता है । उसमें विलासप्रियता के साथ-साथ मानवता भी दिखायी गयी है । मानवता के नाते ही रत्न-दत्त का लावण्यसुन्दरी के प्रति किए हुए सन्देह को जानकर उसे अत्यन्त दु:ख होता है ।

वह सच्ची घटना को बताने के लिए इन दोनों के सम्मुख आ भी जाता है । (आठवीं कथा

प्रतापसिंह महेन्द्रपाल का सामन्त है वह लावण्यसुन्दरी से अनन्य प्रेम करता है । कवि ने उसे नर्मशील, क्रोधी और भद्दी आकृति वाला बताया है किन्तु काव्य में कवि ने उसकी असहिष्णु प्रकृति एवं क्रोधी स्वभाव का ही चित्रण किया है । कवि ने उसे नर्मशील बताया है किन्तु हास्य में कही हुई बातों को भी वह सत्य मान कर क्रुद्ध होता हुआ वर्णित किया गया है । क्योंकि लावण्यसुन्दरी द्वारा परिहास में कही गयी बात से अपने प्रेम को कलुषित होने का अनुमान लगा कर वह उसकी दुर्गति कर देता है । इस प्रकार कवि ने उसके दो विरोधी गुणों का चित्रण किया है जो स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता है ।

कवि ने उसे निर्भीक प्रकृति का होना भी बताया है । वह राजा के सामने भी अपने इस दुर्व्यवहार को कहने में किंचिदपि भयभीत नहीं होता ।(एकादशी कथा०)

काव्य में कुछ पुरुष पात्र वेश्याओं से सीधे सम्पर्क नहीं रखते हैं । जैसे सुन्दरक राजा का सेवक बताया गया है । अत: वह राजा को प्रसन्न करने के लिए घृणित से घृणित कार्य को करने में संकोच नहीं रखता । यद्यपि वह निम्नस्तर का पात्र है किन्तु ने उसमें मानवता चित्रित की है । अपने ही कारण अशोकवती की मृत्यु देखकर उसे अत्यधिक पश्चात्ताप होता है, वह राजा से कहता है --`देव । मया स्त्रीरत्नमिदिग्वधं विनाशितामति मम स्थातुं न युज्यते । तदादिशतु मां देवस्तयोश्च प्रेम्णि क्षीर नीरयोरिव नान्तरमस्ति । किन्तु मया तस्या: स्वकौटिल्येन मनोमोहमुत्पाद्य ईदृक्पर्यवसानमुत्पादितम् । तदिदानीमिदमेव ममोचितं यद् प्राणा: परित्यज्यन्ते`।[1]

इसी प्रकार मूलदेव वेश्या से सम्पर्क न रखने वाला एवं स्त्रियों को चंचला,क्षण विरागिनी और नीचानुरागिनी समझने वाला तथा विवाह को बेकार की वस्तु समझने वाला चित्रित किया गया है ।वह इन दोनों विषयों को लेकर राजा से बहुत देर तक वाद-विवाद करते हुए चित्रित किया गया है । धूर्त एवं विदग्धों, चतुरों तथा कितवों को बेवकूफ बनाने में निपुण होने के कारण ही वह राजा के अनुरोध से विवाह कर लेने के पश्चात् भी अपनी पत्नी तथा राजा की महिषी के दोषों को पकड़ कर राजा से इसकी सूचना दे देता है और अपनी धारणा को सत्य प्रमाणित करता है (त्रयोदशी कथा०)

राजाओं में केवल त्रयोदशी कथानिका का राजा विक्रमादित्य तथा आठवीं कथानिका का राजा सुरधर्मा वेश्याओं के सम्पर्क में आने वाले के रूप में चित्रित नहीं हुए हैं । विक्रमादित्य स्त्रियों को सुख की धाम, यश, अर्थ एवं संतति का मूल स्त्रोत समझता है तथा गार्हस्थ्य को निखिल आश्रम का प्राणतत्व समझता है । इसीलिए वह निरन्तर मूलदेव को समझाता रहता है । कवि ने उसे समदर्शी के रूप में चित्रित किया है । जहां वह मूलदेव की पत्नी को दण्ड देता है वहां अपनी महिषी को भी दण्ड देता है ।

१- शृंगार० पृष्ठ ७२

पुरधर्मा को कवि ने विवेकहीन पुरुष के रूप में चित्रित किया है जो अपनी बुद्धि से काम न लेकर दूसरों की बातों पर शीघ्र विश्वास कर लेता है । ढोण्ढा की झूठी ही कहानी को सुनकर अपराधी को पकड़ने के लिए तैयार हो जाता है । किन्तु उसके इस कार्य का निर्वाह कवि ने नहीं किया है क्योंकि वह उसे पकड़ना अथवा दण्ड देना भूल कर उसके रूप पर मुग्ध हो जाता है । अत: कवि ने एक अस्थिर प्रकृति वाले पात्र के रूप में उसे काव्य में स्थान दिया है । (आठवीं कथा०)

इस प्रकार कवि ने अपने काव्य में किसी एक प्रकार के व्यक्तित्व को धारण करने वाले पात्रों को स्थान न देकर विभिन्न स्वभाव वाले पात्रों को स्थान दिया है तथा उनका वेश्याओं के सम्पर्क से किस प्रकार अध: पतन होता है इसी का चित्रण उन्होंने अधिकांशत: किया है ।

पुरुष पात्रों की भांति इस काव्य में वेश्यापात्रों की भी विविध रूपता मिलती है । इस काव्य की नायिका वेश्या ही है । उसे कवि ने एक अद्वितीय रूपवती, विविध भाषाओं की ज्ञाता, वेश्यावृत्ति के अनुकूल शास्त्रों की विशेषज्ञ, काव्य आदि की रचना में निपुण तथा अन्य गुणों से युक्त बताया है । इस पात्र का काव्य में केवल माता के द्वारा कही हुई कहानियों के सुनने तथा बीच-बीच में अपनी उत्सुकता प्रकट करने के अतिरिक्त कुछ भी क्रियात्मक रूप देखने को नहीं मिलता है । अत: इस पात्र के चित्रण में कवि ने केवल उसके रूप और गुणों का ही बखान किया है । इन दोनों में भी कवि की विशेष रुचि उसके सौन्दर्य वर्णन में ही रही है ।

जिस ढंग से कवि ने शृंगारमंजरी का रूप-सौन्दर्य वर्णित किया है उसी प्रकार उसकी मां विषमशीला का भी किया है । एक को सौन्दर्य एवं गुणों की देवी के रूप में और दूसरे को वृद्धावस्था के कारण शिथिल अंगों से प्राप्त कुरूपता एवं अवगुणों को मूल स्त्रोत के रूप में चित्रित किया है । किन्तु कवि शृंगारमंजरी की अपेक्षा विषमशीला के चित्रण में अधिक सफल हुआ है -- ऐसा कहा जा सकता है । कवि ने इस पात्र का सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है । उसकी वृद्धावस्था का रूप कुछ अधोलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है --

'जराप्रसरजर्जरितमूर्ति:, काशकुसुमसंकाशकेशा, द्वित्रदिनविकसितशतपत्रकर्जरस्फार-स्मारित पुरातनकान्त्यागन्तु(क)विटग्रासगृध्नुतयेव प्रतिदिनं विवर्धमाननं दधाना,.... विगलितदशनतया मुहुर्मुहुर्जगद्ग्रासगृध्नुमिव संवृण्वती,.... अतिबलात् पृष्ठपार्श्वयो: प-
(एफ० २५ बी)
लितान् सन्धीन् स्वचरित्रगोपनस्थानानीव बिभ्रं दर्शयन्ती[1]।'... इत्यादि ।'

इसी प्रकार उसके गुणों के वर्णन में --

घटयित्री दुर्घटानाम्, विघटयित्री सुघटितानाम्,... पितृस्वसा पिशाचीनाम्, सहोदरी सर्पयुवते:, सृष्टि: निकृष्टताया:, भयस्यापि भीति:, मायां अपि मायी,. धृष्टमपि धर्षयति, दक्षामपि क्षापयति,.... मधुरा मुखे,कुटिलामनसि, प्रसन्ना दृशि, दारुणा चेष्टिते....[2] ।'

१- शृंगार० पृष्ठ १४-१५

२- ,, ,, १५, १८

उपर्युक्त पंक्तियों से उसका सजीव चित्र पाठक के सामने आ जाता है । यह पात्र ही इस काव्य की तेरह कहानियों की सूत्रधार स्वरूप ही है क्योंकि ये सब कहानियां अपनी पुत्री को सावधान करने हेतु उसे सुनाई गई हैं ।

विषमशीला द्वारा कही गयी कहानियों में सभी वेश्याएं हैं किन्तु थोड़े-थोड़े परिवर्तन के साथ उनके स्वरूप-चित्रण में भिन्नता आ गयी है । कुछ वेश्याएं ऐसी हैं जो पहले अपना अनुराग दिखाकर प्रेमी से सब धन लेकर उन्हें निकाल देती हैं । इस कोटि में विनयवती, मालतिका और चतुर्थ कथानिका की देवदत्ता आती है । विनयवती और मालतिका को अपने प्रेमपाश में बांधने के लिए बहुत अधिक प्रयत्नशील नहीं होना पड़ता है । विनयवती अपनी सखी को रत्नदत्त के पास भेजकर अपना कार्य सिद्ध कर लेती है, और मालतिका को तो यह भी नहीं करना पड़ता । अपितु उसके पास उससे प्रेम करने वाले विक्रमसिंह का सहचर आता है । देवदत्ता को इस कार्य के लिए कई चालें चलनी पड़ती हैं । वह सुरधर्म को अपने पास रख कर तथा कई प्रकार से प्रेम दर्शा कर उसे फंसाना चाहती है किन्तु जब उसमें नहीं सफल होती तो अन्त में वह कपट-मृत्यु की चाल चलती है ।

कुछ वेश्याओं का स्वयं का कोई व्यक्तित्व नहीं है वह अपनी मां के कथनानुसार कार्य करती हैं । कुवलयावली भुजंगवागुरा के कथनानुसार माधव को प्रेम जाल में फंसाती है तथा उसका वहां से जाना सुनकर वह कृत्रिम रोने का नाटक रचती है । (तृतीय कथा०)

कर्पूरिका भी मां के कथनानुसार कार्य करती है और सोमदत्त को धनप्राप्ति का रहस्य पूछ कर उसे बता देती है।(सप्तमी कथा०)

कुछ वेश्याओं का सच्चा प्रेम भी काव्य में वर्णित हुआ है किन्तु परिस्थितियों के कारण उनका सच्चा प्रेम स्थिर नहीं रह पाया है । लावण्यसुन्दरी रत्नदत्त को हृदय से चाहती है । कुट्टनी के द्वारा बहुत रोके जाने पर भी वह उसकी बातों पर ध्यान न देकर जाते हुए रत्नदत्त का ही अनुसरण करती है । वह आदर्श पत्नी की भांति उसके मार्ग में सो जाने पर उसका सिर अपने गोद में रखती है, बाहर से रत्नदत्त आता है तो उसके पैर धुलाने के लिए स्वयं आगे बढ़ती है । वह सच्चरित्रा है किन्तु राजा के आधीन रहने के कारण उसे राजा की आज्ञा भी माननी पड़ती है किन्तु वह अपने चरित्र को उस समय भी कलंकित नहीं होने देती । वह राजा के सम्मुख नृत्य करती रहती है किन्तु जैसे ही वह रत्नदत्त का आगमन सुनती है वह जल लेकर उसके पैर धोने के लिए आगे बढ़ती है किन्तु रत्नदत्त उसे ऐसा करने से एकदम रोक देता है । उस समय लावण्यसुन्दरी की जो दशा का चित्रण किया है वह श्लाघ्य है । लावण्यसुन्दरी के 'रत्नदत्त ! किमेतत् ?'[1] में कितनी व्यथा है -- स्पष्ट रूप से झलक रही है ।

तैलिक धुडाक की पत्नी लावण्यसुन्दरी वेश्या नहीं है किन्तु उसको अपने पति को राजा के द्वारा दिए गए दण्ड से मुक्त कराने के लिए वेश्यावृत्ति धारण करनी पड़ती है और इसके लिए उसे कई परीक्षाएं देनी पड़ती है । (छठीं कथा०)

१- शृंगार० पृष्ठ ५६

कवि ने कुछ वेश्या पात्रों में प्रेम का सच्चा आदर्श उपस्थित किया है । अशोकवती इसी कोटि में आती है । धोखे में आकर सुन्दरक के साथ कुकर्म करती है किन्तु अपने इस कर्म पर उसे क्षोभ होता है --

`किं मयैतदकृत्यमास... परया पापया विहितम् । अहो दुर्लंध्या हतविधेर्विलसितानां ..... तन्नियतमनुल्लंध्या भवितव्यता । तया धिग्लुब्धया पापकारिण्या नास्मि प्रतिबोधिता

उसके सच्चे प्रेम की पराकाष्ठा उस समय देखने को मिलती है जब वह `तिलकप` के द्वारा अपने प्रिय की मृत्यु (जो कि वस्तुत: मरा नहीं था, चाल चली गयी थी) के सुनते ही स्वयं प्राण को छोड़ देती है ।

पांचवी कथा की वेश्या देवदत्ता को कवि ने चाटुता करने वाली के रूप में चित्रित किया है जो राजा को प्रसन्न करने में झूठी कहानी को रच कर उससे अपार धन प्राप्त कर लेती है ।

इन वेश्याओं के अतिरिक्त काव्य में उनकी माताओं का भी चित्र मिलता है जो दुष्टा,पुत्रियों को सावधान करने वाली एवं कुटिल चाल चलने वाली के रूप में वर्णित है । मकरदंष्ट्रा कमनीय पदार्थ मिलाकर धनप्राप्ति की स्रोत स्वरूपा कपोतिका को निगल लेती है । मुजंगवागुरा वस्त्र लेकर माधव की हंसी उड़ाना चाहती है, नवीं कथानिका की ढोण्ढा रत्नदत्त पर मिथ्या अभियोग लगा कर राजा सुरधर्मा से उसे पकड़वाना चाहती है, दसवी कथानिका की कुट्टनी विनयधर को अत्यधिक परेशान कर डालती है । पुरुषों ने इनसे तंग होकर किस-किस प्रकार से उन्हें दण्ड दिया इसका भी वर्णन काव्य में कवि ने किया है । शृंगारमंजरी की माँ विषमशीला का स्वरूप वर्णन यद्यपि दुष्टा के रूप में अधिक हुआ है किन्तु काव्य में उसको एक शिक्षिका के रूप में कवि ने स्थान दिया है ।

इस प्रकार कवि भोज ने अपने काव्य में अन्य कवियों की भांति आदर्श की स्थापना करने वाले तथा राजवंशी पात्रों को नहीं लिया है । जो राजवंशी हैं भी तो उन्हें विलासी के रूप में ही चित्रित करना कवि ने अधिक पसन्द किया है, उनके जो अच्छे गुण बताये हैं वह पाठक को अपनी ओर अधिक आकृष्ट नहीं करते हैं । कवि ने वेश्याओं की क्रियाओं एवं मनोभावों के चित्रण में तथा उनके सम्पर्क से मनुष्य की क्या गति हो जाती है, उसके निरूपण में ही अपनी रुचि रखी है और उसमें उसने पाठक का व्यतिरेक मुखेन उनसे बचने के लिए सावधान किया है ।

तिलकमंजरी के पात्र --

धनपाल ने भोज की भांति अपने काव्य में निम्न स्तर के पात्रों को न लेकर राजवंशीय पात्रों एवं विद्याधरों को लिया है । इस काव्य में कई कहानियां होने के कारण कई पात्र आए हैं, जैसे मेघवाहन, हरिवाहन, कुसुमशेखर, चन्द्रकेतु, समरकेतु,विचित्रवीर्य,

---

१- शृंगार नवमी कथा०

गन्धर्वक, महोदर, चित्रमाय, तिलकमंजरी, मलयसुन्दरी, उनकी माताएं, दासी एवं सखियां आदि। यद्यपि ये सब पात्र अपने कार्य में दत्तचित्त एवं पाठक के समक्ष आदर्श उपस्थित करते हैं किन्तु कवि ने चरित्र-चित्रण की दृष्टि से कुछ ही पात्रों का विशेष रूप से सफल चित्रांकन किया है।

राजा मेघवाहन अयोध्या का नरेश तथा नायक का पिता है। एक योग्य शासक के लिए जिन गुणों की कल्पना की जाती है, कवि ने उन सभी गुणों का उसमें समावेश किया है। अर्थात् कवि ने उसे वर्णाश्रम धर्म का व्यवस्थापक, विद्वान्, षड्गुण प्रयोक्ता, विवेकी, प्रतापी, दृढ राज्य का संस्थापक, सदाचारी, कूटनीतिज्ञ आदि सभी बताया है किन्तु उन गुणों का केवल उल्लेखमात्र कवि ने उसमें कर दिया है। कवि ने उसके कुछ गुणों की दृष्टि से उसके चरित्र को ऊंचा भी उठाया है। काव्य में उसे महान् त्यागी के रूप में अंकित किया गया है। वह दूसरों के हितार्थ अपने प्राण तक न्योछावर करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करता। श्री की आराधना में लगे हुए मेघवाहन से वेताल ताजे मांस खाने की इच्छा रखता है किन्तु वह एक ऐसे व्यक्ति के मांस खाने की इच्छा करता है जिसने निरन्तर युद्ध में विजय पायी हो, जो कभी युद्ध में विमुख न हुआ हो और शत्रु के समक्ष कभी झुका न हो। उस समय राजा के लिए वेताल की इच्छापूर्ति हेतु कोई अन्य पात्र मिलना दुर्लभ था क्योंकि उस मन्दिर में एक तो कोई अन्य पात्र थे नहीं और दूसरे वेताल द्वारा वांछित इन गुणों से युक्त पुरुष का मिलना दुर्लभ था। अतः वह स्वयं ही अपना शिर काट कर उसे ताजा मांस देने को तत्पर हो जाता है। वेताल जब उसके शिर को काटने के लिए तलवार निकालता है तो राजा मेघवाहन वेताल से " वह अपना शस्त्र अपने पास रखे, इसके लिए उसे कष्ट करने की आवश्यकता नहीं, वह स्वयं अपना सिर काट कर उसे अर्पित करेगा " कह कर सहर्ष अपनी तलवार से सिर काटने लगता है[1]। उस समय उसे अपने शरीर के प्रति कुछ भी मोह नहीं रह जाता, असाधारण धैर्य एवं अपार साहस उसके रूप की भव्यता को और भी द्विगुणित कर देते हैं। उस समय की अवस्था का चित्रण कवि की अधोलिखित पंक्तियों में सजीव हो उठा है --

"अथ भीमकर्मावलोकनोद्भीतिभिरिव स्थायिभिरपि शोकभयजुगुप्साप्रभृतिभिः परित्यक्तयोः असाधारणधैर्यदर्शिना दाक्षिण्यव्रीडैरिव सात्त्विकैरपि स्वरवैवर्ण्यवेपथुस्तम्भादिभिरपास्तसंनिधिः, अव्याजसाहसावर्जितमनोवृत्तिभिरिव व्यभिचारिभिरप्यमर्षमद हर्षगर्वोग्रतापुरैः सैरालिं-गितः सर्वांगेषु भावैः।" २

जब अदृश्य शक्ति के कारण उसकी तलवार आगे नहीं बढ़ती है और मेघवाहन अपने प्रार्थित की इच्छा-पूर्ति नहीं कर पाता है तो वह क्षुब्ध हो जाता है और

१- तिलक० पृष्ठ ५२

२- ,, ,, ५३

निर्दयता से अपने सिर के ऊपर तलवार चलाने लगता है[१]।

कवि ने जहां उसे त्यागियों में महान् बताया है , वहां उसे विनम्री भी बताया है । वेताल ने जिन गुणों से युक्त पुरुष के मांस की अभिलाषा प्रकट की थी वह सब गुण मेघवाहन में थे किन्तु कवि ने राजा के मुख से अधोलिखित वाक्य कहला कर उसके विनम्री स्वभाव को चित्रित किया है --

"प्रेतनाथ, नान्यथोचितं भवता । तथ्यमेवेदम् । कृता: शतकृत्वो मया संग्रामा: । हताश्चसंख्यातीता: क्षत्रिया: क्षोणिपतय: । किं त्वनेकराजकार्यव्यापृतत या कदाचिद् कुर्वता दिव्यकार्यपर्यालोचनम्, अतीन्द्रियज्ञानविकलतया स्वयमनावेदितम्, अजानता परेषां हृदयगतमर्थम्.... अल्पमपि न कृतस्त्वत्कपालानां संग्रह: ।.... अथ न सह्य: कालातिपात:, तदिदमेव मे स्वीकुरु शिर:[२]।"

कवि उसके विनम्र स्वरूप का चित्रण वेताल के प्रसंग में तो सफलता के साथ कर सका है किन्तु विद्याधर मुनि के प्रसंग में जो उसकी विनम्रता दिखायी है वह अधिक हृदयग्राही नहीं प्रतीत होती है । विद्याधर महान् तेजस्वी चित्रित किए गए हैं किन्तु कवि ने जो मेघवाहन का अतिथि-सत्कार करना तथा अपना राज्य, पृथ्वी, धन आदि सब कुछ उन्हें अर्पित करना आदि वर्णित किया है[३] उससे न मेघवाहन की विद्याधर मुनि-विषयक श्रद्धा का और न अपना सर्वस्व न्योछावर करने में उसकी विनम्रता का सफल चित्रण हो पाता है । यद्यपि कवि उसको यहां पर इन्हीं दो रूपों में चित्रित करना चाहता था ।

मेघवाहन त्यागी एवं विनम्र होने के साथ-साथ वाग्भट्ट के रूप में भी चित्रित किया गया है । पुत्र-प्राप्ति का वरदान देने के लिए आयी हुई लक्ष्मी से वह स्पष्ट शब्दों में अपनी अभिलाषा न प्रकट कर अधोलिखित वाक्यों में प्रकट करता है --

"यथाहमेव नामशेषभुवनवन्दितावदातचरितानां चतुरुदधिवेलावधिवसुंधराभुजाम... पश्चिमो न भवामि, यथा च देवी मदिरावती जगदेकवीरात्मजप्रसविनीनामस्मत्पूर्व-पुरुषमहिषीणां महिमानमनुविधत्ते, तथा विधेहि[४]।"

यद्यपि राजा लज्जावश इस प्रकार की वचनभंगिमा को अपनाता है किन्तु वह अपने आत्मसम्मान पर धक्का लगते हुए नहीं देख सकता । लक्ष्मी के द्वारा इस वचनभंगिमा का कारण 'राजा का अन्य रानियों से भयभीत होना' लिए जाने पर राजा स्पष्ट शब्दों में कह देता है कि उसने ये वचन भय के कारण नहीं अपितु लज्जा के कारण कहे हैं ।[५]

इस प्रकार कवि ने उसे आत्मसम्मानी के रूप में पाठकों के समक्ष रखा है ।

१- तिलक० पृष्ठ ५३
२- ,, ,, ५१
३- ,, ,, २६
४- तिलक० पृष्ठ ५८
५- ,, ,, ५६

कवि ने उसे गुण पारखी के रूप में भी चित्रित किया है । समरकेतु उसके शत्रु का पुत्र है किन्तु अपने सेनापति के साथ किए गए युद्ध में उसकी वीरता को सुनकर वह समरकेतु पर मोहित हो जाता है और वह उससे मिलने के लिए आतुर हो जाता है और एकदम विजयवेग से पूछ उठता है --

"क्वास्ते स सिंहलेश्वरसुत: । कदा च सोऽस्माद् द्रष्ट(व्य) ति[1] उसको देखते ही स्नेह के साथ अपने पास बुलाकर उसे 'वत्स' शब्द से सम्बोधित[2] करके उसे अपना पुत्र तुल्य बताता है और पिता की भांति उस पर गर्व करता है[3]। इतना ही नहीं, उसे अपने पुत्र हरिवाहन के समान अपना दूसरा पुत्र समझता है और उसे अपने पुत्र से भी अधिक श्रेष्ठ समझता है । वह हरिवाहन से कहता है -- "एष समरकेतुर्गुणै: समधिकं समं चात्मबन्धुवर्गे प्रधानपुरुषमपश्यता मया तवैव सहचर: परिकल्पित: ।"[4]

कवि ने राजा मेघवाहन के इन गुणों के अतिरिक्त उसकी मानव जाति में स्वभावत: उठने वाले पुत्र-प्राप्ति की प्रबल इच्छा का भी बड़ा मार्मिक चित्र खींचा है । उस इच्छा के चित्रण से कवि ने राजा मेघवाहन की दयनीय स्थिति के स्वच्छ निरूपण में अभूतपूर्व सफलता पायी है । उसकी उम्र ढलती जा रही है किन्तु उसे पुत्र नहीं हो रहा है । देवर्षि, पूर्वज, लक्ष्मी, पृथ्वी, प्रजा आदि सभी उसको धिक्कारते हुए तथा अपने कर्मों पर रोते हुए चित्रित किए गए हैं । वहाँ उसे 'पुनाम्न नरक' प्राप्ति का भय दिलाते हैं । राजा स्वयं चाहता है कि उसके पुत्र हो किन्तु दैवी-विधान बड़ा प्रबल होता है । वह क्या करे, उसे कुछ नहीं समझ में आता । वह अपने तेज को ही निरर्थक समझने लग जाता है उसे वैभवों से विरक्ति सी हो जाती है[5]।

सब सुखों के रहते हुए भी पुत्र के अभाव का शोक इस प्रकार की विरक्ति यदि मनुष्य में ला देता है तो यह कोई असम्भव बात नहीं है । कवि ने अपने काव्य में पहले उसके विविध विलासों का वर्णन करके बाद में पुत्राभाव की कमी से उनके प्रति विरक्ति तथा ईश्वराराधन की ओर प्रवृत्ति करायी है, उसमें कवि ने एक क्रम रक्खा है । क्योंकि विषयों से विरक्ति होने पर ही लोगों का ईश्वर की ओर ध्यान जाता है ।

किन्तु कवि ने इसकी विरक्ति सन्यासियों की विरक्ति की तरह नहीं वर्णित की है । मेघवाहन अपनी काम-सिद्धि(पुत्रप्राप्ति) के लिए विषयों से मुख मोड़ कर, कठोर तप करके श्री की आराधना करता है और इच्छा की पूर्ति हो जाने पर पुन: पूर्ववत् कार्य करता है ।

राजा मेघवाहन के पुत्र हरिवाहन को कवि ने राजकुमार के रूप में चित्रित किया है किन्तु उसे उसके पिता के समान भविष्य में होने वाले एक योग्य शासक के रूप में चित्रित न करके कला तथा वीणा का प्रेमी, रसिक, विद्वान् तथा तिलकमंजरी का प्रेमी एवं समरकेतु का सच्चा मित्र बताया गया है । इस प्रकार यहां यह एक धीरललित नायक के रूप में चित्रित हुआ है । कवि ने एक ही बार समरकेतु के मुख से हरिवाहन के द्वारा कुछ ही दिनों में विद्याधर राज्य को प्राप्त कर लेना कहलवा दिया है किन्तु कवि ने

१- तिलक० पृष्ठ १००
२- ,, ,, १००
३- ,, ,, १०१
४- तिलक० पृष्ठ १०२
५- ,, ,, २०-२१
६- ,, ,, २७१

उस राज्य की प्राप्ति के लिए हरिवाहन से कोई संघर्ष नहीं कराया जिससे उसकी वीरता का परिचय होता । इसके विपरीत कवि ने उस राज्य की प्राप्ति उसकी कठोर तपस्या के द्वारा प्रकट हुई देवी लक्ष्मी की कृपा का फल बताया है । जिस जगह का राज्य उसे मिला है उसका राजा विक्रमबाहु स्वयं ही विषयों से विमुख होकर राज्य छोड़ना चाहता था और उसके मंत्री ने पहले से ही उस राज्य को हरिवाहन को दे देने का निश्चय कर लिया था[1] ।

कवि अपने काव्य में हरिवाहन को वीर रूप में चित्रित न करके कला प्रेमी के रूप में ही चित्रित करना चाहता है और कवि नायक के इस गुण के चित्रण में सफल हुआ है -- ऐसा कहा जा सकता है । हरिवाहन ने अपनी वीणा के द्वारा जिस हाथी को वश में कर लिया था उस हाथी का भयानक वर्णन नायक के इस रूप के चित्रण में अद्वितीय सौन्दर्य ला देता है । क्योंकि कवि ने हाथी का भयंकर रूप चित्रित करके तथा हरिवाहन के उसको पकड़ने के लिए आगे बढ़ने पर उसके मित्रों द्वारा रोके जाने का उल्लेख करके नायक की वीणावादन-कला का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है[2] ।

वह कला का प्रेमी बताया गया है किन्तु केवल वीणावादन तथा चित्रकला का ही । कवि उसके वीणावादन की कला के चित्रण में सफल कहा जा सकता है किन्तु चित्रकला के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता है । हरिवाहन की चित्रकला के सम्बन्ध में यद्यपि "चैनमागत्यागत्य नगरनिवासिनो वैदेशिकाश्च लोका: कलासु शास्त्रेषु शिल्पेषु च प्रकाशयितुमात्मनो विचक्षणतामनुक्षणं पश्यन्ति[3] आदि उक्तियां कही गयी हैं किन्तु गन्धर्वक के चित्र को देखकर जो उसने प्रशंसा की है तथा उस चित्र की कमी दिखायी है वह चित्र-कला-विशेषज्ञ की दृष्टि से अधिक प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती । इस प्रकार कवि ने उसका वीर रूप में चित्रण न करके उसे राज्य आदि की चिन्ता से मुक्त कराकर धीरललित नायक का रूप दिया है । उसकी विलास-प्रियता ही कवि ने अधिक चित्रित की है । एक आर्या को लेकर कवि ने हरिवाहन के मुख से उसकी जो व्याख्याएं करायी हैं, उससे उसकी रसिकता ही परिलक्षित होती है[4] ।

वह रसिक है, तिलकमंजरी के चित्र मात्र को देखने से ही उससे प्रेम करने लगता है किन्तु कवि ने उसके प्रेम में गम्भीरता दिखायी है । उसका तिलकमंजरी विषयक विरह उसी तक सीमित रहता है, अपने काम-जन्य विकारों को किसी के समक्ष नहीं प्रकट होने देता, जब वह अधीर हो जाता है तो अन्य मित्रों के साथ नगर की सीमा में घूमने के बहाने से राजभवन से निकल जाता है, तिलकमंजरी के अपने प्रति प्रगाढ़ प्रेम को जानकर भी वह किसी प्रकार की अधीरता नहीं प्रदर्शित करता अपितु जब उसके पास जाने का प्रश्न आता है तो वह अपने हृदय को किसी प्रकार की असावधानी न करने के लिए सावधान करता है, क्योंकि वह लोगों के मध्य हास्य का विषय नहीं बनना चाहता[5] । वह प्रेम के आगे अपने कर्तव्य को भूल नहीं जाता । तिलकमंजरी को पाकर भी अपनी राजधानी में आकर अपने मित्र समरकेतु को न देखकर उसे ढूढ़ने के लिए निकल जाता है[6], अनंगरति के हितार्थ की गयी तपस्या में भी उसका तिलकमंजरी विषयक प्रेम किसी प्रकार की बाधा नहीं उपस्थित कर पाता है ।[7]

१- तिलक० पृष्ठ ४०१
२- ,, ,, १८३-८४
३- ,, ,, १६३
४- तिलक० पृष्ठ २०६
५- ,, ,, ३५६-५७
६- ,, ,, ३८८

इन घटनाओं को रखकर कवि ने हरिवाहन के प्रेम में किसी प्रकार की कमी नहीं आने दी ।चित्रपट में चित्रित चित्र मात्र के देखने से ही उसका प्रेम निरन्तर बढ़ता ही है, कम नहीं होता, तिलकमंजरी से मिल कर अपने बन्धुवर्ग के पास जाकर सोए समरकेतु को ढूढ़ने के लिए निकल जाता है उस समय मार्ग में मिली तिलकमंजरी की सखी से उसका पत्र प्राप्त करके वह अनिर्वचनीय दशा को प्राप्त करता है तथा विद्याधर-राज्य की प्राप्ति के पश्चात् अस्तव्यस्त दशा में गन्धर्वक को देखकर तिलकमंजरी की अवस्था का अनुमान करके व्याकुल हो जाता है ।

इस प्रकार कवि ने उसे एक आदर्श प्रेमी के रूप में चित्रित किया है और उसमें वह सफल हुआ है ।

हरिवाहन काव्य में एक सच्चे मित्र का आदर्श उपस्थित करता है । समरकेतु उसका अन्तरंग मित्र है । मित्र की हंसी उसे असह्य है । उद्यान में प्राप्त `आर्या` की व्याख्या से वहां सब राजकुमार मनोरंजन करते हैं किन्तु समरकेतु उसमें भाग नहीं लेता, इसपर कमलगुप्त उसकी हंसी उड़ाने लग जाता है तो तुरन्त ही समरकेतु का पक्ष लेकर वह उससे कहता है --`कमलगुप्त, किमयमस्थाने विप्लवप्रपंच:`[१] । उसके अतिरिक्त विद्याधर लोक से अयोध्या जाकर और अपने इस मित्र को न देखकर सब कुछ त्याग कर उसे ढूढ़ने के लिए निकल पड़ता है[२]।

पिता के समान इसे भी दूसरे के उपकार के लिए कष्ट उठाते हुए कवि ने चित्रित किया है । वह अनंगरति को विद्याधर राज्य दिलाने के लिए बिना किसी संकोच के कठोर तपकरने लगता है[३]।

यहां पर कवि ने उसके द्वारा दूसरे के हित के लिए कठोर तप करवा कर उसके चरित्र को ऊंचा उठाने की चेष्टा की है किन्तु एक स्थल पर वरदान के लिए आयी हुई देवी से उसका यह कहना --`यद्यु प्रियमिहाप्यवस्थायां तदहमात्मनैवात्मन: करिष्यामि । किं मया पृष्टेन । अयमनुयुज्यतामनंगरति नामा द्वारवर्ती विद्याधरयुवा यदर्थमेष प्रस्तुतो मन्त्रसाधनविधि:`[४] उसके चरित्र को नीचे गिरा देता है । इस कथन से उसकी धृष्टता ही परिलक्षित होती है । अत: उसके इस कथन को सुनकर देवी के द्वारा `अहो महासत्त्व`[५] कहना भी उसके चरित्र के लिए कोई महत्त्व नहीं रखता ।

कवि ने काव्य में उसकी परोपकारी प्रकृति के अतिरिक्त दयालु प्रकृति का भी चित्रण किया है । वह अपने कारण किसी को दुखी नहीं देखना चाहता । मलयसुन्दरी से परिचय करने की इच्छा से वह उससे पूछना चाहता है किन्तु उसे रोता देखकर वह उसे शान्त करता है, उसका मुंह धुलाता है,उसकी दु:खभरी कहानी को ध्यान से सुनता है, समरकेतु की कुशलता को बताता है तथा अयोध्या पहुंचकर समरकेतु के न मिलने पर वह बिना ढूढ़े उसे अपना मुख दिखाने का साहस नहीं करता है ।

१- तिलक० पृष्ठ ११३
२- ,, ,, ३८८
४- तिलक० पृष्ठ ४००
५- ,, ,, ४००

समरकेतु काव्य का उपनायक है वह एक ओर सच्चे मित्र का आदर्श रखता है और दूसरी ओर आदर्श प्रेम का । वह अपने मित्र के लिए सब प्रकार के सुख एवं वैभव को छोड़ने के लिए तत्पर रहता है । हाथी से एकाएक हरिवाहन के गायब हो जाने पर उसके अन्य मित्रों एवं बन्धुओं की अपेक्षा कवि ने उसकी परेशानी के चित्रण में विशेष रुचि का परिचय दिया है । उसके वियोग में वह खाना पीना सब कुछ छोड़ देता है । पहले लोगों को ढूढ़ने के लिए भेजता है फिर स्वयं तत्पर हो जाता है । उसे सब कोई रोकते हैं किन्तु वह किसी की नहीं सुनता, बस, उसे ढूढ़ने की लगन ही लगी रहती है । उस समय न मार्ग की बीहड़ता उसके गन्तव्य मार्ग को रोक पाती है और न जंगल की भयानकता उसे भयभीत कराने में समर्थ रहती है । उसकी इस तत्परता का चित्रण कवि की अधोलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है --

"करिकलभस्येव दुरपातिभि: पदैरध्वनिर्पतो, यावकरसस्येव वारं वारं लंघितमहेलाधरस्य, मारुतेरिव क्रमेणोत्तीर्णदुरवतारसिन्धो:, कदाचिदग्न्याहितादग्नेरिव शुष्कपादपारण्याश्रयिण:,.... कदाचिन्मुनेरिव फलमूलकन्दकल्पिताभ्यवहारस्य,....कदाचिदद्रेरिव शीतलै: प्रस्रवणवारिभि: स्वयंधौतपादस्य...[1] । इत्यादि

लौहित्य नद में प्राप्त हरिवाहन की चिट्ठी से यह आशय लेकर कि हरिवाहन ने समरकेतु को व्यर्थ के कष्ट से बचाने के लिए ही अपनी कुशलता का समाचार दिया है तो इस पर उसे हरिवाहन के प्रति प्रेमभरी झुंझलाहट आती है --

"अहो मूढतास्य । जानाति स्नेहनिर्भरां मदन्त:करणवृत्तिम् । न वेदमवगच्छति यदुत मत्परोक्षे कथंचिदप्येष न गृहे स्थास्यति । अविदिताश्रयश्च मद्दर्शनाशया समुद्रपर्यन्तां पर्यटन्नटवीमतिमात्रमायासपात्रं भविष्यति ।"[2]

हरिवाहन के समान इसका भी प्रेम एक आदर्श रखता है । उसके प्रेम में भी गहराई है ।वह अपनी समुद्रयात्रा में मलयसुन्दरी को देखकर उसमें मोहित होता है किन्तु अपने मित्र तारक के द्वारा वहां से चलने के लिए कहे जाने पर केवल शिर के दर्द का ही बहाना करके वहां से हटना नहीं चाहता है । तारक जब उसको वहां से ले जाने को होता है तो वह शब्द से कुछ न कहकर कातर दृष्टि मलयसुन्दरी पर डालता है । वह तारक से स्वयं कुछ नहीं कहता अपितु तारक दोनों की चेष्टाओं को देखकर उनके प्रेम का अनुमान लगा लेता है ।

वह मलयसुन्दरी से प्रेम करता है उसके अभाव में अपने को निष्प्राण-सा समझता है किन्तु कवि ने उसे कायर की तरह कन्या का हरण करने वाला चित्रित नहीं किया है मलयसुन्दरी की सखी बन्धुसुन्दरी इस प्रकार के कार्य के लिए उससे कहती है तो वह इस कर्म को अपने कुल के लिए तथा मलयसुन्दरी दोनों के लिए लज्जास्पद[3] बात कहकर उसकी बात को काट देता है । वह इस प्रकार के निन्दनीय कार्य करके अपने प्रेम और चरित्र को कलंकित नहीं करना चाहता ।

१- तिलक० पृष्ठ २०१
२- ,, ,, १९६
३- ,, ,, ३२६

कवि को इस पात्र के प्रेमीरूप के चित्रण में एक स्थल पर असावधानी हो जाने के कारण असफलता मिलती है । क्योंकि हरिवाहन से आशातीत मलयसुन्दरी की कहानी सुनते समय कवि ने उसके विभिन्न भावों का वर्णन बीच-बीच में नहीं किया । जो उसकी अवस्था का चित्रण किया भी[1] है तो उससे केवल उसकी किंकर्तव्यविमूढ़ता का ही परिचय मिलता है , उसके प्रेमी-हृदय का परिचय नहीं हो पाता ।

इन दोनों रूपों के अतिरिक्त कवि ने उसे एक वीर योद्धा के रूप में भी चित्रित किया है जिसके चित्रण में उसने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है । उनकी युद्ध सम्बन्धी क्रियाओं का, ललकार का, उस समय राजलक्ष्मी की अवस्था का चित्रण करके कवि ने उसकी युद्ध-कला की प्रवीणता का परिचय दिया है । कवि ने उस दृश्य की सजीवता नेत्रों के समक्ष उपस्थित कर दी है[2] । छोटे-छोटे वाक्य कवि की इस अभीष्टपूर्ति में अपना अद्वितीय सहयोग देते हैं । अधोलिखित कुछ पंक्तियों में उसकी युद्ध सम्बन्धी तत्परता एवं उसके उत्साह का रूप देखा जा सकता है --

.... तत्र पाणी प्रोत इव तूणीमुखेषु, लिखित इव मौर्व्याम्, उत्कीर्ण इव पुंखेषु, अवतंसित इव श्रवणान्ते तुल्यकालमलक्ष्यत ।वामेतर: पाणिरविरलशरासारत्रासिता[3] हंसीव मेघागमे पल्वलम् , नवशोभिताश्रयविसंस्थुला सैन्यपतिबद्धा स्थलममुंचत् । इत्यादि ।

मूर्च्छोपरान्त सचेत होने पर अपने शत्रु वज्रायुध को देखकर भी उसे उसका[4] न मारना और उसका व्रज । विश्रब्धमेहि । न तावत्प्रहरामि यावन्न त्वया न प्रहृतम् कहना उसके वीर चरित्र को और भी ऊंचा उठा देता है ।

इसी प्रकार उसका अन्य साथियों के रोके जाने पर भी अकेले युद्ध में कूद पड़ना रथ आदि के टूट जाने पर भूमि में ही खड़े होकर उसका बिना किसी विकार के पूर्ववत् उत्साह के साथ लड़ाई करना उसके[5] वीर होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहता । अत: यदि राजा मेघवाहन एवं मलयसुन्दरी[6] पात्र उसे वीरों में अग्रणी मानते हैं, उस पर गर्व करते हैं तो कोई अनुचित नहीं करते ।

कवि ने उसकी मानवीय सुलभ दुर्बलताओं का भी वर्णन किया है । वह समुद्र में मलयसुन्दरी के गायब हो जाने पर अपने मित्र तारक एवं बन्धुवर्गों को संदेश देकर प्राण देने के लिए कूद पड़ता है ।

यद्यपि वह गम्भीर है किन्तु कभी-कभी चंचल वृत्ति उसको किसी कार्य के लिए अत्यन्त आतुर कर देती है । वह कौतूहलवश तारक के साथ अकेले समुद्र की यात्रा शुरू कर देता है किन्तु उसे समुद्र की भयानकता देखकर अपनी इस वृत्ति पर झुंझलाहट आती है । कवि ने यहां पर उसका अन्तर्द्वन्द्व दिखा कर उसके महत्वाकांक्षी रूप का चित्रण सफलता के साथ किया है । समरकेतु को यही चिन्ता लग जाती है कि जब वह वापस लौटेगा तो उसके सभी मित्र आदि क्या देखा क्या अनुभव कियाआदि पूछेंगे और वह कुछ नहीं बता पाएगा,

१- तिलक० पृष्ठ ४२०
२- ,, ,, ८८-६४
३- ,, ,, ६०-६१
४- तिलक० पृष्ठ ६६
५- ,, ,, १०१
६- ,, ,, २३३

किस प्रकार प्रधान राजपुरुषों[1] एवं वृद्धों को वह प्रसन्न करेगा और तारक उसे किस प्रकृति का समझेगा इत्यादि की चिन्ता से वह ग्रस्त हो जाता है ।

पुरुष पात्रों में कवि की विशेष रुचि वज्रायुध के चित्रण में भी परिलक्षित होती है । समरकेतु की भांति इसे भी कवि ने वीर योद्धा के रूप में चित्रित किया है । यद्यपि कवि ने इसका युद्ध कुसुमशेखर के साथ भी दिखाया है किन्तु वह उस युद्ध में उसके वीर रूप को चित्रित करने में सफल नहीं हो पाया है । इसके विपरीत समरकेतु के साथ किए गए युद्ध में कवि उसके इस रूप को चित्रित करने में सफल हुआ है । कुसुमशेखर से होने वाले युद्ध के पश्चात् जब अपने शिविर में आराम से बैठते हैं, एकाएक समरकेतु की चढ़ाई की बात सुनकर कवि ने उसके क्रोध का सफलता के साथ चित्रण किया है ।वह तलवार लेकर युद्ध के मैदान में उपस्थित हो जाता है । युद्ध की बात सुनकर वह भयभीत नहीं होता अपितु एक वीर योद्धा होने के नाते वह हर्षित होता है और यह सूचना उसे अमृत तुल्य लगता है[2] । यही नहीं, वह व्यूह आदि की रचना करके घमासान युद्ध करता है । कवि ने यहां पर घनघोर युद्ध का दृश्य खींचकर दोनों पात्रों की वीरता का चित्रण किया है । शत्रु पक्ष की ललकार सुनकर उसका भी क्रोध के साथ 'हत हत: पश्यै[3] नाथ' कहना उसकी वीरता का ही प्रदर्शन करना है ।

वह वीर है किन्तु वह शत्रुपक्ष के वीरों को भी आदर की दृष्टि से देखता है । छोटे से युवक की वीरता को देखकर और युद्ध में दिव्य रत्न के प्रताप से उसको जान कर उसे अपने शिविर में लाकर उसकी चिकित्सा करता है और उसे यथेष्ट सम्मान देता है । उस युवक के हृदय में किसी प्रकार की चोट न लगे वह उससे कहता है -- 'कोऽस्य तव पराजये ।... स तु प्रभावोऽन्यस्य कस्यचिद[4] ।' इन वाक्यों से वज्रायुध का चरित महान् हो गया है । वह राजा मेघवाहन के पास उसे एक कैदी के रूप में नहीं अपितु एक सम्मानी व्यक्ति के रूप में भेजता है ।

इस प्रकार कवि ने इस पात्र को काव्य में थोड़ी देर के लिए स्थान दिया है किन्तु उतनी-सी देर में वह पाठक के ऊपर अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है । यह कवि की चरित्र-चित्रण विषयक सफलता ही कही जायगी ।

काव्य की कथावस्तु एवं चरित्र-चित्रण की दृष्टि से स्त्री-पात्रों में तिलकमंजरी एवं मलयसुन्दरी प्रधान हैं । तिलकमंजरी इस काव्य की नायिका है । जिस प्रकार अन्य कवि नायिका को अत्यन्त रूपवती, गुणवती तथा विविध कलाओं की ज्ञाता बताते हैं उसी प्रकार धनपाल ने भी किया है । अत: उनकी तिलकमंजरी भी सभी कलाओं में विजय-पताका को लहराती हुई बतायी गयी है । कवि ने इन कलाओं में से उसका विशेष अधिकार चित्रकर्म,वीणावादन,ताण्डवनृत्य एवं संगीत विषयक कलाओं में बताया है[5] । किन्तु कवि ने केवल उसके शृंगाररस परिपूर्ण सुकवि भाषितों का कहना,विद्याधर पक्षियों के जोड़ों का स्तम्भों पर बनाना एवं ताल के साथ मयूरों का नृत्य करना ही वर्णित किया है । कवि ने इन सब का वर्णन करके उसकी कला-विषयक प्रवीणता न बताकर हरिवाहन को देखकर होने वाली उसकी शृंगारिक चेष्टाओं का ही वर्णन किया है[6] ।

१- तिलक० पृष्ठ १४६-५०
२- ,, ,, ८६
३- ,, ,, ८६
४- तिलक० पृष्ठ ६८
५- ,, ,, ३६३
६- ,, ,, ३६४

कवि का उद्देश्य उसे एक प्रेमिका के रूप में ही चित्रित करना प्रतीत होता है और उसमें उसको सफलता मिली है -- ऐसा कहा जा सकता है । सरोवर तट पर हाथी की घटना से भयभीत इधर-उधर घूमती हुई एक कन्या की नवागन्तुक को उसकी ओर घूरते हुए देख कर जो अवस्था हो जाती है उसका `समुपजातसाध्वसा सहसैव प्रवलमारुताहता बालकदलीकन्दलीव कम्पितुमारब्धा' -- एक पंक्ति में करके कवि ने अपनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है । आगन्तुक का परिचय मिल जाने पर उसके मन में उठने वाले प्रेम का संचार उसके अनुभावों के द्वारा कवि ने कराया है । वस्त्र का संवारना, तिरछी दृष्टि फेंकना, वहां से निकलने के लिए कातर दृष्टि से देखना उसके मूक प्रेम को स्पष्ट करते हैं [२]। कवि ने उसकी वार्तालाप न दिखा कर वहां पर उसे अत्यन्त लज्जालु प्रकृति का बताया है ।

इस घटना के पश्चात् कवि ने विषयों के प्रति उसकी उदासीनता, सखियों के प्रति उपेक्षा भाव, सरोवर तट से आने वाले के प्रति स्नेह का भाव एवं उसकी झुंझलाहट आदि दिखाकर उसकी पूर्वानुराग अवस्था का चित्रण किया है [३]।

मलयसुन्दरी के माध्यम से हरिवाहन से पुनः मिल जाने पर उसकी श्रृंगारिक चेष्टाओं को दिखाकर कवि ने उसके अपार प्रेम को प्रकट कराया है [४]।

अन्य पात्रों की भांति इसके प्रेम को भी कवि ने उच्छृंखल नहीं बनाया है । वह न अपने प्रेम की चर्चा सखियों से करती है अपितु सखियां उसका अनुमान लगा लेती हैं और न वह हरिवाहन के पास रहने पर अपनी परमप्रिय सखी मलयसुन्दरी से ही इस संबंध में कुछ बात करती है । वह तो वहां चुपचाप बैठी रहती है और तिरछी दृष्टि से देखती है , बात तो उसकी सखी करती है । अपने साथ भोजन करने का प्रस्ताव स्वयं नहीं रखती अपितु उसकी सखी रखती है [५]।

कवि ने इसे दूसरे पात्रों के अधीन इतना अधिक कर दिया है कि उसका कुछ अस्तित्व ही नहीं रह जाता । मलयसुन्दरी जैसा कहती जाती है वैसा वह करती रहती है । मलयसुन्दरी के कथनानुसार अपने प्रेमी बन्धुवर्ग को देखने के लिए उत्सुक हरिवाहन को चित्रमाय के साथ भेज देती है [६]।

किन्तु कवि ने इन सबसे उसका प्रेम कम होना नहीं बताया है । वह उसको भेजकर पुनः आने की आशा करती है किन्तु चित्रमाय को अकेले आता देखकर वह व्याकुल हो जाती है, जब उसकी पीड़ा अत्यधिक बढ़ जाती है तो वह प्राणोत्सर्ग करने के लिए तत्पर हो जाती है उस समय उसका संभालना दूसरों के लिए दुष्कर हो जाता है । बहुत प्रयत्न करने पर पिता की आज्ञा से कुछ दिनों की और प्रतीक्षा करती है [७]। उस समय कवि ने उसकी विह्वलता और दयनीयता का बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन किया है । उसकी यह

१- तिलक० पृष्ठ २४८
२- ,, ,, २५०
३- ,, ,, ३५५
४- ,, ,, ३६२-६३
५- तिलक० पृष्ठ ३६५
६- ,, ,, ३८५
७- ,, ,, ४१८

विह्वलता हरिवाहन को देखकर ही शान्त होती है ।

इस प्रकार कवि ने उसके प्रेम की उत्कृष्ट अभिव्यंजना उसके विरही रूप के वर्णन में की है ।

यद्यपि तिलकमंजरी काव्य की नायिका है किन्तु कवि की विशेष रुचि मलयसुन्दरी के चित्रण में अधिक परिलक्षित होती है । वह समरकेतु की प्रेमिका है । उसका प्रेम विरहाग्नि से तपा कर खरा उतारा गया है । एक बार दृष्टि अनुराग हो जाने पर वह किसी अन्य पुरुष की कल्पना नहीं कर सकती है । अपने पिता द्वारा वज्रायुध को को दिए जाने की सूचना पा कर कवि ने जो उसकी मानसिक स्थिति का चित्रण किया है वह अत्यन्त स्वाभाविक है । पिता से जिस चीज़ की आशा उसने कभी नहीं की थी उस चीज़ को होते देख उसे क्रोध आना स्वाभाविक भी है । किन्तु कवि उसे उद्दण्ड प्रकृति का बताना नहीं चाहता है अपितु उसके माध्यम से आज्ञाकारी बेटी का भी उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता है अत: उसके इस प्रकार के विचारों का निरूपण कवि ने उसकी भावुक अवस्था में किया है ।

वह अपना सच्चा प्रेम रखने के लिए प्राणोत्सर्ग करना अधिक श्रेष्ठ समझती है । रात में जब वह अकेले इस कार्य के लिए निकलती है तो उस समय कवि ने चोरी करके निकलने वाले चोरों की सी दशा का चित्रण उनकी स्थिति के निरूपण में करके प्रसंग में एक सरसता ला दी है । उसका वस्त्र किसी में फंस जाता है या उसके ही पैरों की आवाज़ आने लगती है या इस प्रकार की कोई अन्य बातें हो जाती हैं तो वह उसका कोई पीछा कर रहा है -- ऐसी अनुमान कर लेती है[२]।

मरने के पहले अपने हाथ से पाले एवं बढ़ाये गये विषयों के प्रति मोह होना स्वाभाविक है । उसी स्वाभाविकता का परिचय कवि ने मलयसुन्दरी का वनस्पतियों के विषय में उसका संदेश दिलवा कर किया है । कवि ने उसकी इस स्थिति का इस ढंग से निरूपण किया है कि वह प्रसंग अत्यन्त मर्मस्पर्शी बन जाता है ।

इसी प्रकार वह प्रिय के वियोग में मरना चाहती है और इस कार्य के लिए तीन बार प्रयत्न करती है किन्तु तीनों बार वह इसमें सफल नहीं होती है । इसपर एक सच्ची प्रेमिका के हृदय में कैसे भाव उठ सकते हैं उसका निरूपण कवि ने बड़े उत्साह के साथ तथा हृदयग्राही किया है । उस समय उसके " न जाने कियन्मयाद्यापि दुष्कृतस्य फलमुपभोक्तव्यम्, केषु देशान्तरेषु गन्तव्यम्........ मरणमपि पापकारिण्या न संपद्यते । तथाहि- पूरित सप्तपातालमुदधिजलमपि न हवल जातम् । प्राणनाशाय निविष्टाहित: कण्ठदेशे पाशोऽपि पुष्पमाला संवृत्ता[४] इत्यादि के वाक्य उसकी दयनीय स्थिति के निरूपण में अपना अपूर्व योग देते हैं ।

इसी प्रकार तपोवन में रहती हुई तथा प्रिय समरकेतु के मिलन की प्रतीक्षा करती हुई उसे जैसे सूचना वज्रायुध के साथ होने वाले युद्ध में कांची के वीर सैनिक मार डाले गए-- मिलती है और अपने प्रिय की मृत्यु का अनुमान लगा लेती है उस समय कवि ने उसका विलाप करते हुए उसके गुणों का स्मरण करना, पूर्व की सारी घटनाओं का स्मरण

१- तिलक० पृष्ठ २९८-९९
२- ,, ,, ३००
३- तिलक० पृष्ठ ३०१
४- ,, ,, ३३७-३८

होना, उसकी वीरता के प्रति गर्व करना, मर कर उसका अनुसरण करना आदि का मार्मिक वर्णन करके उसे एक आदर्श नारी के रूप में पाठक के समक्ष उपस्थित किया है[१]।

एक स्थल पर कवि ने उसके आदर्श नारी के रूप को उसका अत्यधिक स्नेह हरिवाहन के प्रति दिखा कर नीचे गिरा दिया है। क्योंकि मलयसुन्दरी को हरिवाहन से समरकेतु सम्बन्धी कुशलता मिल चुकी थी अत: उससे उसकी आशा बंधना स्वाभाविक था किन्तु हरिवाहन को अयोध्यानगरी में पहुंचाने वाले चित्रमाय से समरकेतु के वहां न मिलने पर कवि को उसके कारण उसका मूर्च्छित होना दिखाना चाहिए था किन्तु कवि ने हरिवाहन के कष्टों का स्मरण करवा कर उसका मूर्च्छित होना वर्णित किया है[२]।

बाण ने जिस प्रकार पुण्डरीक की प्रतीक्षा में महाश्वेता का तपस्विनी रूप चित्रित किया है उसी प्रकार धनपाल ने मलयसुन्दरी का, किन्तु दोनों के द्वारा किए गए चरित्र-चित्रण सम्बन्धी सफलता का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। धनपाल ने केवल उसे सद्य: स्नाता, पुष्पों को देवता के ऊपर चढ़ाती हुई ध्यानमग्न, अक्षमाला तथा मंत्र का जाप करती हुई बताया है। यद्यपि कवि ने `अतिस्थिर तया कायस्य लिखितामिवो-त्कीर्णामिव निखातामिव`[३] आदि बताकर दृश्य को सजीवता लाने का प्रयत्न किया है किन्तु उससे न प्रसंग और न उसका यह रूप ही अनायास अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ हो पाता है जैसा महाश्वेता के वर्णन में मिलता है।

कवि ने उसे लोक व्यवहारज्ञ, विदुषी, वाग्पटवी एवं लज्जालु प्रकृति का भी बताया है। वह तिलकमंजरी के विपरीत नवागन्तुक हरिवाहन का यथेष्ट सत्कार करती है और अपने पास बैठा कर उसको आत्मीय समझ कर अपनी दु:खभरी कहानी सुनाती है। उसके हृदय में किसी प्रकार की चोट न लगे वैसा ही प्रयत्न करती है, तिलकमंजरी और हरिवाहन को एक-दूसरे से मिलाने में बड़ी चतुराई से काम करती है।

कवि ने उसे राज्य कन्योचित विद्या, उपनिषद्, नाटक, गायन, वाद्य आदि सभी कलाओं से परिचय रखने वाली बताया है[४]। किन्तु पाठक उसकी नृत्यकला के सम्बन्ध में की गयी प्रशंसा से ही परिचय पाता है[५]। कवि ने उस समय उसकी नृत्यकलाओं की मुद्राओं का वर्णन नहीं किया है। इस प्रसंग को पढ़ने से ऐसा लगता है कि कवि केवल उसके इस गुण को ही बताना चाहता है और इस गुण का बताना भी काव्य के लिए आवश्यक था अन्यथा कहानी का विकास आगे नहीं हो पाता।

कवि ने उसकी वाग्पटुता से उसकी हास्य प्रकृति को भी चित्रित किया है। विचित्र वीर्य उससे उसकी मां गन्धर्वदत्ता की आयु, वर्ण आदि के विषय में पूछता है और वह उसका उत्तर अधोलिखित पंक्तियों में देती है --

`तात, प्रमाणतो नाति ह्रस्वा न चात्यायता, वर्णेन विकचचम्पकावदाता, वयसापि यादृग्मपि प्रथमगर्भसंभवायां संभवति तादृशेनोपेता, रूपेण तु किंचित्तादृशमपरामिव सदसि मानुषधर्मणामु पुरुषेषु वा पश्यामि। यदि परं देवस्यैव किंचिदनुकरोति[६]।`

१- तिलक० पृष्ठ ३३२
२- ,, ,, ३६२
३- ,, ,, २५५
४- तिलक० पृष्ठ २६४
५- ,, ,, २७०
६- ,, ,, २७१

इस प्रसंग के अतिरिक्त उसकी वाग्पटुता का परिचय समुद्र में दृष्ट समरकेतु के प्रसंग में मिलता है जहाँ वह श्लिष्ट भाषा में पूजा के हेतु सामग्री को लाने वाले तपनवेग और समरकेतु के मित्र तारक दोनों से कहती है और कांची में जाकर समरकेतु के वरण करने का संकेत करती है[१]। वहाँ पर कवि ने उसके पूजन-विधि में उसकी चतुराई दिखाकर उसकी चतुर प्रकृति का भी चित्रण किया है[२]।

कवि ने उसकी लज्जालु प्रकृति के चित्रण में विशेषरूप से सफलता पायी है। विचित्रवीर्य उससे बार-बार पूछता है कि ज्योतिषियों से कब उसकी माँ गन्धर्वदत्ता की बन्धुवर्ग जनित भेंट होना बताया है, चूंकि यह भेंट उसके विवाह के समय बतायी गयी थी अत: लज्जावश वह स्पष्ट शब्दों में नहीं कह पाती। पहले वह माँ का परिचय देते समय 'किमप्यवादात्' कहकर उस प्रसंग को छोड़ देती है। किन्तु विचित्रवीर्य के द्वारा बार-बार अनुरोध किए जाने पर कभी 'न मया सम्यगवधारितम्' कहती है, कभी भूमि कुरेदने लगती है और कभी मुख नीचा कर लेती है। जब किसी प्रकार उसे मुक्ति नहीं मिलती है तो केवल 'कथितमेवार्येण सर्वं यथावस्थितम्' कहकर चुप हो जाती है[३]।

समरकेतु की भांति कवि ने इसका भी अन्तर्द्वन्द्व दिखाकर उसे विवेकी के रूप में चित्रित किया है। तारक समरकेतु को उसके पैरों पर झुकवाता है उस समय कवि द्वारा निरूपित उसकी स्थिति का चित्रण अधोलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है --

'मया तु किमिदानीं कर्तव्यम्। यदि तावदस्य वचनमनुवर्तमाना नरपतिकुमारमेनं समाश्रयामि, तत: स्वापत्यदुर्विनयजनितोद्वेगस्य गुरुजनस्य कोपोत्पादनधर्म:। अथ बिभ्यती तस्मादवधीरयामि, ततोऽस्य जातिमात्रव्यवहितस्य प्रज्ञानिधिमहापुरुषस्य प्रथमप्रणयभंगोऽस्य बाल्यन्तमरक्तस्य राजसूनोर्विमानना।[४]... ।'

काव्य में ये सब पात्र कथानक की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखने के कारण प्रधान पात्र हैं अत: कवि ने इन सब का चित्रण सविस्तर किया है किन्तु काव्य में कुछ गौण पात्र भी हैं। जैसे स्त्री-पात्रों में बन्धुसुन्दरी, तरंगलेखा, गन्धर्वदत्ता, पत्रलेखा चित्रलेखा, लक्ष्मी आदि। किन्तु कवि ने इन अप्रधान पात्रों में केवल बन्धुसुन्दरी तरंगलेखा और गन्धर्वदत्ता के चित्रण में कुछ अधिक रुचि दिखायी है।

बन्धुसुन्दरी मलयसुन्दरी की विश्वस्त सखी है। मलयसुन्दरी केवल इसी को अपने समुद्र में दृष्ट प्रिय समरकेतु का वृत्तान्त बताती है। बन्धुसुन्दरी स्वयं उसकी सच्ची सखी होने के कारण माँ पर क्रुद्ध होते देख उसे समुचित मार्ग दिखा कर शान्त करती है[५]। उसे पाश से ग्रस्त देखकर वह अपने को ही धिक्कार तोरै कि उसके अनन्य प्रेम को जानते हुए भी तथा वज्रायुध को घिर जाने की घटना सुन करके भी क्यों अकेले उसे छोड़ आयी। वह अपना प्राण देकर देवताओं से उसके प्राण की भीख मांगती है, पाश से उसे मुक्त करने के लिए तरह-तरह की चेष्टाएं करती है। उस समय कवि ने उसके भिन्न-भिन्न कार्यों का एवं विलाप में कहे हुए वचनों का वर्णन किया है वे सब उसकी व्याकुलता के चित्रण में अद्वितीय सौन्दर्य ला देते हैं[६]। उसी समय मलयसुन्दरी

१- तिलक० पृष्ठ २८८
२- ,, ,, २८६
३- ,, ,, २७३
४- तिलक० पृष्ठ २८७
५- ,, ,, ३००
६- ,, ,, ३०६-३०८

को हिलता हुआ हाथ देखकर बन्धुसुन्दरी के क्रोधपूर्ण इन कथनों में -- भर्तृदारिके,विरम । किं व्यर्थयसि दैवेनैव वारिता । विरताहमथ प्रभृति रोदनाद । अनाकुलाप्रसाधय स्वामिप्रेतमर्थम्'[1] में कोई अस्वाभाविकता नहीं आती है, अपितु इन वाक्यों से मलयसुन्दरी विषयक उसका अनन्य प्रेम ही परिलक्षित होता है । वह दोनों को मिलाने में दूती का काम करती है[2]।

तरंगलेखा मलयसुन्दरी की धाय है और वह एक सच्ची धाय का आदर्श रखती है । विषण्ण मलयसुन्दरी को देखकर मलयसुन्दरी के पिता द्वारा कही गई बातों का उसे स्मरण हो जाता है । इसीलिए उसे अपने ऊपर क्षोभ होता है कि वह अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर पा रही है । उसके अधोलिखित वाक्यों से उसकी कर्तव्य परायणता ही परिलक्षित हो रही है --

`.... किं द्वेषेण निष्ठुरं त्वां तर्जयामि । किंप्रातिकूल्येन विचरन्तीमितस्ततो निवारयामि । प्रस्थानसमये सबहुमानमाहूय त्वदीयपित्रा वारंवारमभ्यर्थिताहम्...तैनैष मे प्रयत्न: ।'[3]

इसीलिए मलयसुन्दरी की इस दु:चेष्टा को देखकर वह उसकी बुद्धि एवं शालीनता को धिक्कारती है[4]।

उसकी दृष्टि में आत्महत्या एक बहुत बड़ा पाप है । उसकी दृष्टि में जो व्यक्ति जिसके ऊपर रक्षा के लिए छोड़ा जाता है वह यदि आत्महत्या कर ले तो आत्महत्या करने वाला पापी तो बनता ही है साथ ही उसका रक्षक भी उस पाप का भागी बन जाता है । इसीलिए वह पाप से भयभीत हो उठती है[5]।

गन्धर्वदत्ता मलयसुन्दरी की माँ एवं कुसुम शेखर की आदर्श पत्नी है । कुसुमशेखर सन्धि के रूप में अपनी कन्या को वज्रायुध को देना चाहता है किन्तु पति की इच्छानुरूप चलने वाली होने के कारण वह उससे इस सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहती है । अपनी पुत्री की आत्महत्या के करने की बात सुनकर जब कुसुमशेखर गन्धर्वदत्ता से सलाह लेता है तो उस समय कवि ने अवश्य `य एवात्मने रोचते , य एव बहुगुण: प्रतिभाति स एवाश्रीयते'[6] कहला कर उसके क्रोध का वर्णन किया है किन्तु उसके क्रोध को चिरस्थायी नहीं रहने दिया । वह अपने मातृत्व का परिचय उस समय देती है जब वह पुत्री के सुख की कामना से उसे तपोवन में भिजवा देती है । उसके ये वाक्य --` देव, यद्यसौ दूरे गमयितव्या तद्दूरं वैखानसाश्रमपदे गच्छतु, यत्रार्यपुत्रेण सह मे प्रथम दर्शनं संवृत्तम्'[7] उसके मातृत्व की सूचना देते हैं

स्त्री पात्रों की भांति पुरुष पात्रों में महोदधि,चित्रमाय, विक्रमबाहु आदि कई पात्र हैं किन्तु कवि ने कुसुमशेखर ,विचित्रवीर्य तथा गन्धर्वक के चित्रण में कुछ विशेष उत्साह दिखाया है ।

कुसुमशेखर का चित्रण कवि ने पहले एक योग्य शासक के रूप में किया है जिसमें वह अपनी राजधानी कांची की रक्षा के लिए तत्पर रहता है । वज्रायुध की लड़ाई की सूचना

१- तिलक० पृष्ठ ३०६ 2- ,, ,, ३१३ 3- तिलक०पृष्ठ ३३६ 4- ,, ,, ३३५-३३६ ५- तिलक० पृष्ठ ३३५ ६- ,, ,, ३२८

पाते ही वह युद्ध की तैयारी जोर-शोर के साथ शुरू कर देता है और उसके साथ युद्ध करता है । युद्ध में अपनी वीरता का परिचय घमासान युद्ध करके देता है और अपनी सहायता के लिए अन्य राजाओं के पास दूत भेज देता है[1] । वह देश के हित के लिए अपनी पुत्री तक को वज्रायुध को संधि के रूप में दे देने के लिए तैयार हो जाता है[2] ।

इससे यह तात्पर्य न लेना चाहिए कि वह अपनी कन्या को नहीं चाहता । उसे जब अपनी पुत्री द्वारा पाश बांध करके आत्महत्या करने की सूचना मिलती है[3] तो उसे अपनी गलती पर बड़ा पाश्चात्ताप होता है । `एह्येहि पुत्रि, परिष्वजस्वमां नृशंसम्` में जो 'नृशंस' कहा है उससे उसकी पितृवत्सलता तथा अपनी करनी पर किये गये पाश्चात्ताप की अभिव्यंजना हो रही है ।

पंचशैल द्वीप के राजा विचित्रवीर्य को पुत्री गन्धर्वदत्ता के वियोग में अत्यन्त दु:खी दिखाया गया है । उसके राज्य के सब कर्मचारी उसके पुत्रीजनित दु:ख को विविध प्रकार से कम करने की चेष्टा करते हैं विविध देशों से राजकुमारियों को लाकर नृत्य कराते हैं किन्तु उसका मन किसी प्रकार भी नहीं बहलता है । नृत्य में अन्य राजकुमारियों के साथ आई हुई मलयसुन्दरी से जब उसको अपनी कन्या के विषय में पता चलता है तो न जाने वह कितने प्रश्न उससे करने लग जाता है । अकस्मात् पुत्री प्राप्ति की मिली सूचना पर उसे जल्दी विश्वास नहीं होता । विचित्रवीर्य का मंत्री उसे कई बार समझाता है पर उसका कुछ भी प्रभाव उसपर नहीं पड़ता है । विचित्रवीर्य स्वयं इस बात का अनुभव करके मंत्री से कहता है --

`आर्य, किं करोमि । एतदपि श्रुत्वा न मे निसर्गदुर्विदग्धं श्रद्दधाति दग्धहृदयम् ।`[4]

उसका चरित्र अत्यन्त उच्च है वह पर-कलत्र दर्शन को पाप समझता है । क्योंकि उसका मंत्री जब पवनगति नामक दूत को भेजकर गन्धर्वदत्ता को बुलाने के लिए कहता है तो वह यह कहता है --` आर्य, गर्हितमस्मद्विधानामकाले परकलत्रदर्शनम् ।`[5]

गन्धर्वक एक विद्याधर का पुत्र है जो चित्रकला में अत्यन्त निपुण है । कहने की देर नहीं और चित्र बनाकर सामने रख देता है । गन्धर्वक के द्वारा बनाए गए तिलकमंजरी के चित्र में हरिवाहन के द्वारा बताए गए पुरुष रत्न की कमी में वह तुरन्त ही हरिवाहन का चित्र वहां बना देता है[6] ।वह हरिवाहन और समरकेतु[7] के प्रेम-सन्देश ले जाने का वाहक बनता है । उसमें उपकार की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में मिलती है ।किंपाक फल खाने से मृतप्राय मलयसुन्दरी के प्रति किए गए तरंग लेखा के विलाप को सुनकर उसका उपचार करने के लिए अपना गन्तव्य मार्ग छोड़कर तत्पर हो जाता है । मलयसुन्दरी की रक्षा के लिए महोदर यक्ष से लड़ता है और शुक-योनि के शाप को प्राप्त करता है । शुक-योनि में भी हरिवाहन की कुशलता पत्र के माध्यम से उसके बन्धुवर्ग के पास पहुंचाता है और वहां का सन्देश हरिवाहन के पास लाता है[8] ।इसके अतिरिक्त वह मरणासन्न तिलकमंजरी की अवस्था को देखकर हरिवाहन की खोज के लिए निकल पड़ता है । १०

१- तिलक० पृष्ठ ८२-८३
२- ,, ,, २६८
३- ,, ,, ३२८
४- तिलक० पृष्ठ ~~२७३~~ २७३
५- ,, ,, २७४
६- ,, ,, १६७
७-तिलक०पृष्ठ१७२-७३
८- ,, ,,३८०-८२
९- ,, ,,१९४
१०- ,, ,,४०४-०८

इस प्रकार कवि धनपाल ने अपने प्रधान-अप्रधान सभी पात्रों में कोई-न-कोई आदर्श अवश्य रखा है और उसके चित्रण में एकाध स्थलों को छोड़कर उन्हें सफलता मिली है, ऐसा कहा जा सकता है ।

इन पात्रों के अतिरिक्त काव्य में विद्याधर मुनि, वैमानिक तथा वेताल भी आए हैं इन पात्रों से पाठक का परिचय थोड़ी देर के लिए होता है किन्तु वे उस पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं । विद्याधरमुनि अत्यन्त तेजस्वी एवं महान् पुरुष के रूप में उपस्थित होते हैं[1] वैमानिक यद्यपि विद्याधरी होने के कारण दिव्य आभा से युक्त हैं किन्तु दिव्य आयु के क्षीण हो जाने से मनुष्य-लोक में जन्म लेना पड़ेगा इससे उन्हें दु:ख है अत: कवि ने उस समय उसके सौन्दर्य का वर्णन उसी के अनुरूप किया है[2] और वैताल को कवि ने भयानक आकृति के रूप में चित्रित किया है[3] । इन सब पात्रों में कवि को वेताल के चित्रण में सर्वाधिक सफलता मिली है । उसके हड्डी के आभूषण , जीभ घुमा घुमा कर रक्त का पान आदि करना उसके वीभत्स रूप का दृश्य सामने ला देते हैं ।

गद्यचिन्तामणि के पात्र--

ओडयदेव के पात्र धनपाल के पात्र की भांति केवल आदर्श उपस्थित करने वाले नहीं हैं । कवि ने जिन पात्रों में गुणों की अधिकता बताई है उनमें भी मानवोय सुलभ दुर्बलता देखी है । राजा सत्यंधर जो कि जीवंधर का पिता है उसे कवि ने अन्य कवियों की भांति ही विद्वान्,पराक्रमी, परोपकारी, प्रतापी, शास्त्रज्ञ,दानी,नीति-निपुण आदि सब गुणों से युक्त बताया है । किन्तु उसमें उसकी कामुक प्रवृत्ति की अधिकता दिखाकर जो कि भोग-विलास में रत रहने वालों के लिए स्वाभाविक है, कवि ने उसका दोष भी दिखाया है । उसका यह दोष उसके लिए कितना घातक हुआ इसका भी चित्रण करके कवि ने उस दोष को मूर्तिमान कर दिया है । अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए वह अपना सब राज्य काष्ठांगार को दे देता है । वह मंत्रियों की मंत्रणा की अवहेलना करता हुआ भी चित्रित किया गया है । क्योंकि वह उनकी इच्छा के विरुद्ध अपना राज्य काष्ठांगार मंत्री को देता है[4] ।

यद्यपि कवि ने उसकी मृत्यु के पश्चात् काष्ठांगार से त्रस्त होने के पश्चात् प्रजाओं के द्वारा `लोकद्वयहितनिर्वर्तननियतबन्धौ विद्रावितनिद्रोपद्रवनेत्रे, शरीरान्तसंचारिजीवित ....भक्तावबोधिनि मृत्यु,जनापिव्रजप्रजारक्षणदीक्षिते शिक्षाप्रयोजनदण्डविधौ दण्डिता-राति-मण्डले मण्डलेश्वरे` तथा `निष्फलं लोकलोचनविधानम्, नि:सार: संसार:, नीरसा रसिकता, निरास्पदा वीरता`[5] -- आदि कहला कर उसके योग्य शासक होने का उल्लेख किया है किन्तु कवि ने उसे शासन-व्यवस्था में कुछ कार्य करते हुए चित्रित नहीं किया है । एक स्थल पर अवश्य उसके वीर रूप का परिचय होता है जब कवि काष्ठांगार की चढ़ाई अपने ऊपर सुनकर उत्पन्न हुए उसके क्रोध का वर्णन करता है, उस समय कवि ने उसकी शारीरिक आकृति का जो वर्णन किया है वह तो है ही साथ ही `कथं कथं कथय कथय`

१-तिलक० पृष्ठ २३-२५
२- ,, ,, ३५-३६
३- ,, ,, ४६-४६
४- ग०चिं०पृष्ठ ५०
५- ,, ,, ८६-८७
६- ,, ,, २५

शब्दों से अभूतपूर्व घटना होने के कारण उत्पन्न उसके अत्यधिक आश्चर्य एवं क्रोध दोनों की अभिव्यंजना कराई है । उसका युद्ध भी घमासान दिखाया है[1] किन्तु एकाएक प्राप्त होने वाले उसके वैराग्य को दिखा कर कवि ने कोई अच्छा कार्य नहीं किया । इससे सत्यंधर का जो अभी तक वीर रूप देखने को आ रहा था वह विलीन हो जाता है । इससे पाठकों का चित्र उसके चरित्र से हट जाता है ।

कवि ने इस पात्र को विवेकी तथा धीर प्रकृति का बताया है । रानी द्वारा दुष्ट स्वप्न से उसे जहां प्रसन्नता होती है वहां अपने नाश का सोच कर उसे दु:ख भी होता है । इस प्रकार का दु:ख होना स्वाभाविक है किन्तु विवेक उसे तुरन्त शान्त कर देता है वह अपनी व्याकुल पत्नी को सान्त्वना देता है । दूरदर्शी होने के कारण युद्ध के पहले ही उसे मयूर यन्त्र पर बिठा कर अन्यत्र भेज देता है ।

उसका पुत्र जीवंधर इस काव्य का नायक है । श्मशान में उसका जन्म होता है किन्तु उसकी बढ़ती हुई अवस्था के चित्रण में कवि ने उसके राजत्व की ओर निरन्तर ध्यान रक्खा है । नवजात शिशु को वह मार्तण्ड के रूप में देखता है[2]। उसकी बाल क्रीड़ाओं में उसके दीपक के पकड़ने के सम्बन्ध में कवि उसके तेज के समक्ष दीपक की नि:सारता बताता है, मणिस्तम्भ में प्रतिबिम्बित अपने प्रतिबिम्ब को छूने में कवि शत्रु की संभावना करके उसके द्वारा उसके नाश के लिए जाने की कल्पना करता है, इसी प्रकार शरीर में लगी धूल से पृथ्वी के भावी पति होने आदि की कल्पना करता है[3]।

इसी प्रकार की कल्पनाएं कवि उसकी युवावस्था के सौन्दर्य निरूपण में करता है[4]।

राज्य प्राप्त कर लेने के बाद कवि ने उसे एक योग्य शासक के रूप में चित्रित किया है । कवि ने उसके लिए -- 'राजा रात्रिंदिवविभागेषु यदनुष्ठेयमिदमित्यमनिर्बन्ध्यमन्वतिष्ठत् जातमपि सद्य: शमयितुं शक्तोऽपि सदा प्रबुद्धतया प्रतीकारयोग्यं प्रकृतिवैराग्यं नाजीजनत्[5]

इसके अतिरिक्त कवि ने इस नायक को भी साहित्य का ज्ञाता, शब्दशासन को साधने वाला, आयुध व्यापार में निपुण, अश्वारोहण, गजारोहण आदि में निपुण, प्रतिभावान आदि बताया है किन्तु इनमें से कुछ गुणों का केवल कवि-परम्परानुसार उल्लेख भर कर दिया है जिससे उसमें बहुत प्रभाव नहीं आ पाता । इतना जरूर मानना पड़ेगा कि उन्होंने कुछ गुणों का चित्रण अवश्य ही प्रभावोत्पादक ढंग से किया है ।[6] भूखे को अपना परोसा हुआ भोजन देकर[7] उसे अतिथि-सेवी तथा त्यागी बताया गया है, सुदर्शन यक्ष को कुत्ते की योनि से छुड़ाकर तथा उससे दावाग्नि से जलते हाथियों के ऊपर वर्षा करवा कर[8] उसकी दयालु प्रकृति चित्रित की गयी है । हाथी से भयभीत गुणमाला की रक्षा[10] कराकर तथा पद्मा के विष को दूर कराकर उसकी परोपकार की प्रवृत्ति दिखाई गई है । जीवंधर स्वयं काष्ठांगार के दुष्ट हाथी को वश में करके हस्ति-युद्ध विषयक निपुणता का परिचय देता है ;[11] हेमाभपुरी में एक बाण से आम्रफलों को तोड़कर[12] तथा चक्र-यन्त्र में नियंत्रित

१- ग०चिं०पृष्ठ २५	५- ग०चिं०पृष्ठ १५५	९- ग०चिं० पृष्ठ ७६ ७९
२- ,, ,, ३०	६- ,, ,, ३९	१०- ,, ,, ६०
३- ,, ,, ३२	७- ,, ,, ७६-७७	११- ,, ,, ७९
४- ,, ,, ३६	८- ,, ,, ६०	१२ ,, ,, १११

तीन वराहों को एक बाण से भेद कर[1] अपने को जीवंधर लक्ष्य-सिद्धि-धन्वी होना चरितार्थ करता है, गन्धर्वदत्ता के स्वयम्बर में वीणावादन की शर्त पूरी करके अपने को श्रेष्ठ वीणावादक[2] चरितार्थ करता है, गन्धर्वदत्ता की चिट्ठी पाकर अत्यन्त दुखी होने पर भी अपने छोटे भाई के सम्मुख[3] किसी प्रकार[4] के विकारों[5] को न प्रदर्शित करने के कारण वह इन्द्रिय-निग्रही सिद्ध होता है, पुलिन्दों तथा हेमाभपुरी में गौ को चुराने[6] वालों के साथ युद्ध करके उसके गौ-रक्षक, जैनमन्दिरों की पूजा करने से उसके आस्तिक रूप तथा विविध युद्ध करने से उसके वीर रूप का परिचय पाठक से[7] होता है।

उसके वीर रूप के चित्रण में कवि ने कई बार उसका युद्ध कराकर उसकी वीरता का परिचय दिया। उसके इस रूप का उत्कृष्ट चित्रण लक्ष्मणा के विवाह के पश्चात् होने वाले युद्ध के प्रसंग में देखा जा सकता है।[8]

किन्तु इस पात्र के चित्रण में कवि को सर्वत्र सफलता ही मिली है-- ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उसमें गम्भीरता तथा स्थिरता का अभाव है। वह जिसका उपदेश देता है उसका निर्वाह स्वयं नहीं करता। वह दूसरों को माया-मोह में न फंसने के लिए सावधान करता है किन्तु वह स्वयं ही फंस जाता है। वह स्त्रियों की प्रभूत निन्दा करता है, उन्हें छली, कपटी, विश्वासघातिनी आदि की दृष्टि से देखता है किन्तु जब कन्याओं के साथ विवाह करने का अवसर आता है तो उसे वह सहर्ष स्वीकार कर लेता है। सुरमंजरी की प्राप्ति के लिए वह वृद्ध का रूप धारण कर उसके प्रासाद में घुसता है और कामदेव के मन्दिर में जाकर अपने मित्र की सहायता से उसके साथ विवाह कर लेता है।[9]

पद्मा[10] तथा क्षेमश्री[11] को संसार के प्रति विरक्ति हो जाने के कारण छोड़कर चला जाता है किन्तु सुभद्र और दृढ़मित्र के द्वारा रखे गए अपनी कन्याओं के विवाह के प्रस्ताव का अनुमोदन करके वह उनके साथ विवाह कर लेता है। कनकमाला से विवाह करने के पश्चात् उसकी इच्छा विमला से विवाह करने की होती है। वह उसके विषय में सोचता है --" कथमेनां करेण स्पृशन्कमलयोनि: कामुको नासीत्। अपि नामेयमस्माभि: कदाचिल्लभ्येत्[12]।"

कवि ने नायक का इस प्रकार का वर्णन करके उसके चरित्र को गिरा दिया है।

काष्ठांगार इस काव्य का उपनायक है किन्तु दुष्ट प्रकृति का। उसके स्वरूप की विवेचना कवि ने उसके स्वभावानुसार ही की है। कवि ने उसे कृतघ्नता तथा तुच्छता का साक्षात् रूप, कुकर्म का अवतारी, सज्जनाश्रित मार्ग से कोसों दूर रहने वाला और निरन्तर राजा सत्यंधर के विनाश के उपाय को सोचने वाला बताया है।[13]

१- ग० चिं० दशमलम्ब
२- ,, ,, ६८
३- ,, ,, ११७
४- ,, ,, ४८-४६
५- ग०चिं० पृष्ठ ११७
६- ,, ,, १४५
७- ,, ,, ४८-४६,७०-७१,८५,१४२-४४
८- ,, ,, १४२-४४
६- ग०चिं० पृ०१२६-२७
१०- ,, ,, ६६
११- ,, ,, १०६
१२- ,, ,, १२३
१३- ,, ,, २१

अत: उसका राजा सत्यंधर के पुत्र तथा काव्य के नायक के प्रत्येक कार्य में बाधा उपस्थित करना स्वाभाविक ही है । जिस स्वयंबर में जीवंधर को विजय होती है वह उसी में लड़ने को तत्पर हो जाता है । उसकी चालें भी उसके स्वभावानुसार कुटिल ही बताई गई हैं । सत्यंधर से राज्य प्राप्त करके उसको मार डालने के पहले वह स्वप्न की चाल चल कर उसकी बड़ी सुन्दर भूमिका तैयार करता है । उसके अद्यापि लज्जमानमिव मानसमन्तरा-कर्षति रसनाग्र । परिवादपतनभीतैव गलकुहरान्न नि:सरति सरस्वती । पातकपंकपतनातंका दिव कम्पते काय:[1] ... इत्यादि वचनों से उसकी कुटिलता का ही परिचय होता है तथा कात्रप्रतिक्रिया । किंवात्र प्रयुज्यते । यदिहास्माधिर्विधीयते तदभिधीयताम्[2] से उसकी कूटनीतिज्ञता भी परिलक्षित होती है । वह अपने कार्य की सिद्धि भी करना चाहता है और मंत्रियों की दृष्टि में ऊंचा भी रहना चाहता है ।

उसकी कूटनीतिज्ञता का परिचय गोविन्द के पास भेजे गये सन्धिपत्र से भी हो जाता है जिसमें वह पहले उसकी प्रशंसा करता है तत्पश्चात् अपने ऊपर काष्ठांगार का असमय आक्रमण होने की झूठी खबर भेजकर संधि का प्रस्ताव उसके साथ रखता है जिससे कि उसके राजपुरी आने पर उसको मार डाला जाए[3]।

पहली वाली चाल में तो वह सफल हो जाता है किन्तु इस चाल में उसे सफलता नहीं मिल पाती है।

इन अवगुणों के साथ-साथ कवि ने उसे मानी के रूप में भी चित्रित किया है । मान की रक्षा हेतु वह प्राणोत्सर्ग भी करने को तत्पर रहता है । लक्ष्मणा के स्वयंबर के पश्चात् होने वाले युद्ध में एक बार विनम्र होकर वह जीवंधर के पास जाता है किन्तु जीवंधर के यह कहने पर 'क्या डर गए' तो वह तुरन्त लड़ने को तैयार हो जाता है[4]।

उसके दृढ़ निश्चय को कोई भी किसी प्रकार मिटा नहीं सकता है । एक बार जीवंधर को मृत्यु की आज्ञा दे दिये जाने पर भी वह उस आज्ञा को बदलता नहीं है[5]।

कवि ने इसे एक वीर योद्धा के रूप में चित्रित किया है । शबरों द्वारा गायों के चुर लिए जाने पर इसकी सूचना मिलते ही वह युद्ध के लिए निकल पड़ता है और उनसे घमासान युद्ध करता है । उस समय कवि ने उसके क्रोध की मुद्रा का सफल चित्रण किया है । क्रोध में उसका चिल्लाना , नि:श्वासों का तीव्र हो जाना, भ्रुकुटि का टेढ़ा हो जाना, क्रोध में पसीने का आ जाना आदि का चित्रण भी किया है[6]।

इस प्रकार कवि ने नायक की अपेक्षा इस पात्र के चित्रण में अधिक सफलता पाई है । उसके कुटिल रूप के साथ-साथ उसके गुणों का चित्रण उसने सम्यक् प्रकार से किया है ।

गोविन्द विदेह का राजा तथा सत्यंधर का साला बताया गया है । उसके साले के साथ इतनी बड़ी घटना हो गयी किन्तु कवि ने उसको इस घटना के प्रति पहले बिलकुल उदासीन दिखाया है जिसमें कि कवि की दुर्बलता ही कही जायगी । वह राजा को बाद

१- ग० चिं० पृष्ठ २२
२- ,, ,, २२
३- ग०चिं० पृष्ठ १३६-३७
४- ,, ,, १४४
५- ग०चिं०पृष्ठ ८६
६- ,, ,, ४७

में अपनी बहन से तथा अपनी बहन के पुत्र से मिल कर उसको खोए हुए राज्य को पुन: दिलाने की चिन्ता में रत रहता है वह पहले इतना उदासीन क्यों रहा, क्यों नहीं बहन की खोज की ? आदि प्रश्नों का कोई भी समाधान कवि द्वारा निरूपित उसके चित्रण से नहीं होता ।

कवि यद्यपि इस दृष्टि से उसके चित्रण में असफल रहा है किन्तु उसके कूटनीतिज्ञ के रूप के चित्रण में सफल हुआ है --ऐसा कहा जा सकता है । काष्ठांगार के सन्धिप्रस्ताव को स्वीकार करने में उसकी चाल थी । वहां जाकर अपनी पुत्री का स्वयम्बर रच कर तथा स्वयम्बर में सब राजाओं को बुला कर सब के बीच जीवंधर को सत्यंधर का पुत्र बता देता है जिससे सब की सहानुभूति जीवंधर की ओर हो जाती है और युद्ध में सब राजा उसका साथ देते हैं ।

राजाओं में दृढ़-मित्र भी एक पात्र आया है उसके पराक्रम के सम्बन्ध में `पराक्रमणैवो त्पादितम्, साहसैनेव संनिवेशितम्, अवष्टम्भे नैवोत्पादितम्, महासत्वनैव निवर्तितं, दर्पमिव गृहीत देवम्, उत्साहनिव राशिकृतम्` कहा है किन्तु इससे उसके चरित्र का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है ।

गन्धोत्कट एक वैश्य है जो जीवंधर का संरक्षक है । दूसरे का पुत्र होते हुए भी उसका लालन-पालन अपने पुत्र के समान करता है । इस पुत्रप्राप्ति की प्रसन्नता में खूब महोत्सव करता है तथा राजाज्ञा लेकर उस दिन उत्पन्न होने वाले सभी पुत्रों को अपने घर में लाकर उनका पालन करता है । उनके स्वयं के पुत्र हो जाने पर भी वह जीवंधर के प्रति किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखता है । उसकी समुचित शिक्षा-दीक्षा की यही व्यवस्था करता है तथा उसका विवाह करता है ।

जीवंधर के प्रति उसकी पितृवत्सलता का परिचय तब होता है जब वह काष्ठांगार के द्वारा जीवंधर के बध की आज्ञा दे दिए जाने पर काष्ठांगार को मनाने के लिए अपार धनराशि लेकर जाता है तथा उससे कई प्रकार से विनती करता है ।

मुनियों के वचनों पर उसे पूर्ण विश्वास है । जीवंधर के बध की आज्ञा से उसे दु:ख होता है किन्तु ज्योतिषज्ञों की वाणी पर विश्वास करके स्वयं शान्त हो जाता है तथा अपनी पत्नी को शान्त करता है[2]।

इस काव्य में श्रीदत्त भी एक पात्र है जो व्यापारी है । उसकी दृष्टि में धन ही सब कुछ है । कवि ने उसे परोपदेश कुशल बताया है । समुद्र में तूफान आ जाने पर अन्य यात्रियों को तो वह समझाता है किन्तु स्वयं वह उस घटना से दु:खी हो जाता है[3]। `धर` नामक विद्याधर उसकी इस प्रकार की दयनीय स्थिति से आर्द्र होता है[4]।

उसे गरुडवेग का सच्चा मित्र बताया गया है जो उसकी कन्या का विवाह बड़ी धूम धाम से करता है ।

१- ग० चिं० पृष्ठ ११२
२- ,, तृतीय लम्भ
३- ,, पृष्ठ ५८
४- ,, ,, ५८

सुदर्शन नामक यक्ष को कवि ने एक कृतज्ञ व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है जो जीवंधर की कृपा से कुत्ते की योनि से मुक्त होकर सदैव उसके प्रति आभारी बताया गया है। काष्ठांगार द्वारा जीवंधर को वध की आज्ञा दिए जाने पर वही जीवंधर को आकाशमार्ग से अपने प्रासाद में ले जाता है और यथेष्ट स्वागत करता है। कृतज्ञता से ही प्रेरित होकर वह जीवंधर को विष-अपहरण, गान-विद्या तथा यथेच्छा रूप धारण करने की क्षमता सम्बन्धी तीन मंत्र देता है जिससे ज्ञात होता है कि वह यक्ष स्वयं इन सब कलाओं का ज्ञाता था[1]। जीवंधर की विजय होने पर वह आकर उसका अभिषेक अपने हाथों से करता है[2]। प्रवृज्या लेने पर पुन: आकर उसकी स्तुति करता है[3]।

काव्य में यद्यपि स्त्री-पात्र अधिक हैं किन्तु कवि ने सब पात्रों के चित्रण में उत्साह नहीं दिखाया है। पद्मा और क्षेमश्री का विरहिणी रूप कवि ने चित्रित किया है[4], किन्तु दोनों का वर्णन प्राय: एक-सा है, जिससे उनका चित्रण बहुत सामान्य हो गया है। उसमें प्रभावोत्पादकता नहीं है। जीवंधर के रूप-माधुर्य पर मुग्ध होने वाली के रूप में गुणमाला चित्रित की गयी है जो अपना प्रेम-सन्देश जीवंधर के पास क्रीडाशुक द्वारा भेजती है[5]। कवि ने सुरमंजरी को अनन्य प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है जो 'चूर्ण' की शर्त में हार जाने के पश्चात् जीवंधर को छोड़कर और किसी का मुंह नहीं देखना पसन्द करती।

यह अतिथिसेविनी भी बतायी गयी है। वह अतिथि रूप में आए जीवंधर का यथेष्ट सत्कार स्वयं करती है तथा अपनी सखियों से करवाती है[6]।

गन्धर्वदत्ता जीवंधर की महिषी बताई गई है किन्तु उसके चित्रण में भी कवि की एक प्रकार की उपेक्षा दृष्टि ही परिलक्षित होती है। एकाध स्थलों के वृत्तान्तों से ही उसका चरित्रांकन हो जाता है। कनकमाला के प्रासाद में नन्दाढ्य का आना सुनकर जीवंधर के मुख से निकले हुए--'नमश्चराधीशसुतोपदेशेन नन्दाढ्य: विमागत:। सा हि न: समस्तमियमुदन्तं हस्तामलकवत्स्वविद्यामुखेन जानीते' वाक्य से उसकी विद्वत्ता का परिचय मिलता है।

कवि ने उसे कुछ मन्त्रों का ज्ञाता भी बताया है क्योंकि वह मन्त्रों के बल से नन्दाढ्य को जीवंधर के पास पहुंचा देती है।

उसकी स्थिर प्रकृति से पाठक तब अवगत होता है जब सुदर्शन द्वारा जीवंधर के उड़ा लिए जाने की सूचना पाकर भी वह विचलित नहीं होती। इसके विपरीत वह नन्दाढ्य को समझाती है।[7]

विजया सत्यंधर की महिषी, जीवंधर की माता बताई गई है। पति की मृत्यु के पश्चात् पुत्र के होने पर कवि ने उसका करुण विलाप करवाकर उसकी स्थिति का

१- ग०चिं० पृष्ठ ८७-८८ | ४- ग०चिं० पृष्ठ ६६ | ७- ग०चिं०पृष्ठ १२५-२७
२- ,, ,, १४६ | ५- ,, ,, १०६ | ८- ,, ,, ११५
३- ,, ,, १६७ | ६- ,, ,, ८१ | ९- ,, ,, ११६

बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्र चित्रित किया है[१]।

तपोवन में मिली, पति की मृत्यु तथा पुत्र की चिन्ता से ग्रस्त उसकी अवस्था के निरूपण में मुषितामिव मोहेन, क्रीतामिव कृशिम्ना, वशीकृतामिव शुचा, दु:खैरिवोत्खाताम्... तापैरिवआपीडिताम्, चिन्तयेवाक्रान्ताम्,....[२] प्रयुक्त वाक्य एक सजीव चित्र उपस्थित कर देते हैं।

उसके संसार में जब सारी आशा उसके पुत्र से ही थी उसकी माँ वध की आज्ञा दिए जाने की बात सुनकर उसकी क्या दशा हो सकती है, इसका चित्रण भी कवि ने किया है[३]।

वह राजा की महिषी होने के कारण राजनीति से भी यथेष्ट परिचय रखती है। पुत्र को पाकर इस सम्बन्ध में वह उसे शिक्षा देती है[४]।

काव्य में आए हुए पुरुष पात्रों तथा स्त्री पात्रों को यदि चरित्र-चित्रण की दृष्टि से देखा जाय तो कवि को काष्ठांगार के चरित्र चित्रण में विशेष सफलता मिली है, नायक के चित्रण में पूर्णता से इस प्रकार की धारणा नहीं बनाई जा सकती है। स्त्री पात्रों के चित्रण में कवि की विशेष रुचि परिलक्षित नहीं होती है। अत: उनका चित्रण कवि ने सामान्य रूप से कर दिया है।

वेमभूपाल चरित के पात्र--

यद्यपि वामनभट्ट बाण का गद्य-काव्य वेमभूपाल चरित अर्वाचीन गद्य-काव्यों में श्रेष्ठ समझा गया है, उसमें कवि ने काव्य की समस्त सामग्रियों का सम्यक् निर्वाह किया है, बाण की कादम्बरी जैसा रसास्वादन कवि ने कराया है तथा उसने अपने काव्य को वीर रस प्रधान काव्य बनाया है किन्तु कवि सभी पात्रों के चरित्र-चित्रण में सफल हुआ है--ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस काव्य में कवि की गुणानुवाद करने की प्रवृत्ति अधिक मिलती है, पात्रों के चरित्र-चित्रण की नहीं। कामभूपाल, प्रोल्ल के पुत्र वेम, माच, पेदकोमटीन्द्र तथा नायक वेम सभी को कवि ने गुणों में अग्रणी, दानी, पराक्रमी, आलस्यविहीन, रूपवान, योग्य शासक, सत्यव्रती, तेजस्वी, दानी आदि बता दिया है। राजा प्रोल्ल तथा नायक वेम के चित्रण में कवि ने इन दोनों राजाओं का शत्रु राजाओं के साथ सम्बन्ध दिखाकर ~~कवि ने~~ उनके केवल वीर रूप का परिचय दे दिया है। राजा प्रोल्ल को कवि ने मालव कुल के लिए अपमृत्यु स्वरूप, गुर्जर के लिए ज्वर, सिन्धुराज के लिए राजयक्ष्म, वंग के हृदय के लिए बाण, गान्धार रूपी मदमत्त हाथी के लिए वश में करने का अंकुश, कामरूपपति के लिए धूमकेतु, मद्रसेना रूपी समुद्र के लिए वडवाग्नि, शक रूपी बन के लिए दावाग्नि, हैहय रूपी बर्फ को पिघलाने वाला सूर्य, सौमक रूपी चन्द्रमा को ग्रास करने वाला राहु, मगध-वधु के वैधव्य का विधान करने के कारण उनका दुर्भाग्य, दुष्ट तुरुष्क के लिए शुष्काशनि, लाट और कर्णाट के लिए चिन्ता का उत्पादक और भोज तथा कम्बोज के लिए प्रजागर बताया है[५]।

इसी प्रकार काव्य के नायक वेम को कलिंग देश रूपी कीचड़ को सुखाने वाला सूर्य, वंग और अंग रूपी बन को काटने के लिए कुल्हाड़ी, लाट और गौड रूपी पर्वत शिखर को

१- ग०चि० पृष्ठ २७-२६
२- ,, ,, १२०-२१
३- ,, ,, ११६
४- ,, ,, १२१
५- वेमभूपाल०,, १६-१७

नष्ट करने के लिए वज्र, पाण्ड्यरूपी शस्त्र विद्या के मल का खंडन करने वाला, केरलरूपी सरोवर के लिए ग्रीष्म ऋतु, कोसला रूपी समुद्र के लिए अगस्त्य मुनि मागध की स्त्रियों के नेत्र में वर्षा कराने वाले इन्द्र, गान्धार रूपी हाथी के लिए सिंह, सौराष्ट्र रूपी दावाग्नि के लिए वर्षा, काम्बोज रूपी कमल के लिए अग्नि स्वरूप बताया[1]।

कवि की इस प्रकार के चित्रण करने की प्रवृत्ति पैदकोमटीन्द्र के वर्णन में मिलती है किन्तु वहां कवि ने उनका सम्बन्ध केवल यवन, मागध और कम्बोज के साथ दिखाया है[2]।

कवि ने इन राजाओं का अन्य राजाओं के साथ सम्बन्ध अवश्य दिखाया है किन्तु नायक वेम के युद्धों को छोड़कर उनमें से किसी भी राजा का युद्ध-वर्णन कवि ने नहीं किया है जिससे कि उन राजाओं की वीरता का परिचय मिलता । राजा प्रौल्ल के युद्धों का वर्णन न करके कवि ने उसकी मृगया का वर्णन अवश्य किया है जिससे उसकी शूरता, दूसरे के तेज के प्रति असहिष्णुता आदि देखने को मिलती है । वहां पर कवि का उसके लिए 'शरभकुलापमृत्युना, तरक्षुशोकेण, द्वीपिविपदा, मृगराजराज्यदमणा, रूरु जरसा, कुलाय-प्रलयेन'[3] आदि कहना सर्वथा उचित प्रतीत होता है ।

काव्य में आये सभी पात्रों को महान् बनाने के चक्कर में पड़कर कवि उन्हें देवत्व की पदवी पर विभूषित कर देता है तथा जितने भी महान् पुरुष हैं उनकी उपमान की कोटि में लाकर रख देता है । वैसे तो यह पद्धति सभी पात्रों के गुणों के बखान करने में मिलेगी किन्तु उसकी प्रधानता राजा प्रौल्ल के पुत्र वेम के वर्णन में अधिक मिलती है । भीमसेन,धुन्धुमार, भगीरथ,मान्धाता, युधिष्ठिर, बृहस्पति, शम्भु, वरुण, विश्वकर्मा आदि सभी को एक साथ उसके वर्णन में कवि ने स्थान दिया है[4]।

प्रौल्ल के ज्येष्ठ पुत्र माच के वर्णन में कवि ने न उसके अन्य राजाओं की भांति षड्गुण प्रयोक्ता,धार्मिक, दानी आदि गुणों का बखान किया है न उनका अन्य राजाओं के साथ सम्बन्ध दिखाया है और न उसे देवत्व की पदवी से विभूषित किया है अपितु उसके शरीर अवयवों की कठोरता अथवा दृढ़ता जो एक वीर पुरुष में होनी चाहिए उनका निरूपण किया है[5]।

इस प्रकार कवि ने सभी राजाओं को एक योग्य शासक के रूप में देखा है किन्तु केवल वेम को छोड़कर उनके योग्य शासक के रूप को व्यक्त करने में विशेष उत्साह नहीं दिखाया है । अतः इस दृष्टि से उन पात्रों का कोई मूल्य नहीं रह जाता ।

कवि यदि वेम को भी अन्य राजाओं की तरह उसके गुणों का वर्णन करके छोड़ देता तो उसके काव्य का इस दृष्टि से कोई भी महत्व ही न रह जाता । क्योंकि वही इस काव्य का नायक है । अतः उसके चित्रण में कवि ने विशेष उत्साह दिखाया है । कवि ने उसे चारों समुद्र का शासक,चक्रवर्ती लक्षणों से युक्त, ज्ञानी, गुणी, प्रजारंजक, कर्णानुकूल कार्य करने वाला , सामन्तों सहित आनन्द देने वाला, षड्गुण-विदग्ध, साहित्य-प्रेमी, दयालु, दानी, यशस्वी तथा वीर आदि बताया है[6]।

१- वेमभूपाल० पृष्ठ १७६
२- ,, ,, १०४
३- ,, ,, २३
४- वेमभूपाल० पृष्ठ १०२-१०३
५- ,, ,, १०१
६- ,, ,, ११७-११८

कवि ने उसका कलिंग, अंग, वंग कांची, केरल, आसाम, मुरव, गुर्जर, सौराष्ट्र आदि विभिन्न देशों[1] से घमासान युद्ध कराकर उसकी वीरता का परिचय कराया है। इन युद्धों में से कलिंग युद्ध,[2] सामुद्रिक युद्ध,[3] गुर्जरों की लड़ाई तथा पर्वतीय सेना के साथ होने वाली लड़ाई[4] में उसको युद्ध क्रियाओं का एवं उसके द्वारा दी गयी युद्ध भूमि की रूपरेखा का विशेषरूप से वर्णन किया है।

कवि ने जहां उसे महान् योद्धा के रूप में चित्रित किया है वहां उसे परम दयालु भी बताया है। वह वंगमंगाल को जीतने के पश्चात् राजाओं को पुनः उनके पद पर बैठा देता है[5]।

उसके दान का परिचय देवालयों के दान देने एवं प्रसन्न होने पर पारितोषिक वितरण से होता है। भीमेश्वर के मंदिर में उसने वस्त्र, मणिमय भूषण, चंवर, गायें आदि दान के रूप में दिए थे। उसके दान के सम्बन्ध में बताते हुए कवि ने कहा है कि वह निरन्तर दानवारि से कलियुग द्वारा संतप्त धर्म-द्रुम का सिंचन किया करता था तथा विजयोपरान्त ब्राह्मण को दान करने की उसकी आदत थी।

उसकी साहित्यिक प्रियता उसके गान्धर्व विद्या में निपुण गायकों के गानों, वीणा तोद्य आदि के वाद्यों के नादों और सरस कवियों के काव्यों को सुनने में परिलक्षित होती है[6]।

कवि ने इस पात्र का चित्रण काव्य में आर माधव के द्वारा भी कराया है[10]। वह व्यतिरेक मुखेन उसकी प्रशंसा करता है।

इस प्रकार इस काव्य में वीरता एवं योग्य शासक होने की दृष्टि से कवि ने इस पात्र का चित्रण सम्यक् प्रकार से किया है। राजा प्रोल्ल का भी चरित्र-चित्रण कवि ने किया है किन्तु उसकी विशेष रुचि, उसकी शासन-व्यवस्था एवं वीरता के चित्रण में न होकर उसके प्रेमी रूप के वर्णन में रमी है। अतः वह काव्य में तुक्काराघट की कन्या अनन्ता के प्रेमी के रूप में चित्रित हुआ है। वह अनन्ता से प्रेम करता है किन्तु अपने कर्तव्य-मार्ग से च्युत नहीं होता है। राक्षस द्वारा ग्रस्त विदूषक की आर्तनाद सुनकर वह तुरन्त कहता है -- 'सखे न भेतव्यम्। अयमहमागतोऽस्मि। आः कथं मयि वर्तमाने मृत्यु मुखाभिलाषिणी को वा वराको राक्षसस्त्वामाक्रमति[11]।

कवि ने इन पंक्तियों से जहां उसकी मित्र की रक्षा में तत्परता तथा 'मयि वर्तमाने० आदि कहला कर उसकी अहं भावना का परिचय दिया है वहां 'तत्संगतं हृदयमपि बलादादाय, तदवयवलावण्यावलोकनस्पृहां च किंचित्संकोच्य, तादृशीं तस्याः स्थितिमपि चित्ते विलिख्य, तदीक्षणविक्षेप विलासभंगीरपि मनसि संयम्य'[12] से उसकी दयनीय स्थिति का चित्रण करके उसके प्रगाढ़ प्रेम का परिचय दिया है।

कवि ने उसे एक आदर्श प्रेमी के रूप में चित्रित किया है। अनन्ता की सखी से उसका परिचय तथा उसका प्रेम जानकर वह किसी प्रकार की उतावली नहीं दिखाता है यद्यपि उसके विरह वर्णन में कवि ने उसकी कामपीड़ा की अत्यधिक तीव्रता एवं उसके

१- वेमभूपाल ० पृष्ठ १३६-१३८
२- ,, ,, १४१-१४२
३- ,, ,, १५७
४- ,, ,, १६२-६३
५ ,, ,, १४२
६-वेम भूपाल०पृष्ठ १९३
७- ,, ,, २०६
८- ,, ,, १४२
९- वेमभूपाल०पृ० २०६
१०- ,, ,, १३१-३२
११- ,, ,, ३८
१२- ,, ,, ३८

उपचार का वर्णन किया है । वह उस समय स्वयं कुछ बात नहीं करता अपितु उसकी ओर से विदूषक करता है । वह गन्धर्व विवाह को उपयुक्त न समझ कर विधि विधान पूर्वक किए गए विवाह को पसन्द करता है अत: अनन्ता पर अनन्य प्रेम रखते हुए भी तथा उसके अनन्य प्रेम को जानकर भी वह दुष्यन्त की तरह कोई कार्य नहीं करता अपितु उसमें गुरुजनों की अनुमति के साथ पहले कन्या के घर आदमियों को भेजता है तब धूम धाम के साथ विवाह करता है ।

कवि से एक स्थल पर राजा प्रौल्ल के ऐश्वर्य-वर्णन के चक्कर में पड़कर एक बहुत बड़ी असावधानी हो गयी है जिससे उसका चरित्र गिर जाता है । राजा प्रौल्ल के प्रिय राजा प्रथम प्रणाम करने की इच्छा से आगे बढ़ते हैं और प्रतिहारी उन पर दण्ड प्रहार करते हुए बताए गए हैं[१] जिससे राजा प्रौल्ल के शासन की कुव्यवस्था का परिचय होता है और वह एक अयोग्य शासक सा प्रतीत होने लगता है । यद्यपि कवि का प्रयोजन उस रूप में वर्णन करने का नहीं है किन्तु कवि की इस असावधानी से उसका यह रूप चित्रित हो गया ।

कवि ने पुरुष पात्रों में नाटक की भांति अपने काव्य में विदूषक को भी स्थान दिया है किन्तु नाटक के विदूषक की विशेषतायें इसमें परिलक्षित नहीं होती क्योंकि वह हास्यप्रिय अथवा विनोदी नहीं है । काव्य में यह पात्र दो बार आया है । एक बार वह प्रौल्ल का सच्चा मित्र बताया गया है जो कादम्बरी के `कपिंजल` पात्र की भांति अपने मित्र की सदा रक्षा करता रहता है । वह प्रौल्ल को उसकी प्रेमिका से मिलाने में सतत प्रयत्नशील रहता है[३] । कवि ने इस विदूषक को भीरु प्रकृति का अवश्य बताया है जैसा कि नाटक में दिखाया जाता है । क्योंकि वह राक्षस के द्वारा पकड़े जाने पर राजा प्रौल्ल को जोर से पुकारता है[४] ।

वेम का विदूषक माधव नर्मालाप कुशल, समयज्ञ, सतत परिपार्श्ववर्ती रूप में चित्रित हुआ है[५] ।

इस काव्य में विदूषक के अतिरिक्त राक्षस भी आया है जो कालिदास के `अभिज्ञान शाकुन्तलम्` के राक्षस (मातलि) की भांति विदूषक को पकड़ कर प्रेम में आसक्त राजा प्रौल्ल को दूसरी ओर (कर्तव्य मार्ग की ओर) आकृष्ट करता है । क्योंकि उसकी राक्षस योनि से मुक्ति राजा के दर्शन से ही हो सकती थी और उस प्रेम की अवस्था में यदि उसका परम प्रिय मित्र विदूषक करुण होकर न चिल्लाता तो सम्भवत: राजा प्रौल्ल उसकी ओर ध्यान न देता । इसीलिए विदूषक को कस कर पकड़ने का उसने नाटक रचा था ।

कवि ने उसकी आकृति का चित्रण राक्षस जाति के अनुकूल ही लम्बा शरीर, काले शरीरावयव, अंगारमयी आंख, निकला हुआ पेट, गर्म निश्वास फेंकने वाली नाक, धारण की हुई हड्डियों की माला आदि बताकर किया है[६] । और उसे कृतज्ञी बताया है [६] । वह राक्षसयोनि से छूटने के पश्चात् राजा प्रौल्ल को भावी पुत्र के राजत्व की सूचना देकर ही अन्तर्हित हो जाता है[७] ।

१- वेम भूपाल० पृष्ठ ६३
२- ,, ,, ६८-६६
३-वेमभूपाल० पृष्ठ ७०,६०
४- ,, ,, ३८
५-वेमभूपाल० पृष्ठ १६३
६- ,, ,, ३६
७- ,, ,, ४०

यह पात्र कथावस्तु की दृष्टि से कोई भी महत्व नहीं रखता । स्त्री पात्रों में केवल कवि ने तुक्खारघट की कन्या अनन्ता, उसकी सखी सौगन्धिक तथा पैदकोमटीन्द्र की पत्नी अनन्ताम्बा को स्थान दिया है । अनन्ता तथा अनन्ताम्बा को ही सौन्दर्य में अद्वितीय बताया है किन्तु चरित्र-चित्रण की दृष्टि से महत्वपूर्ण पात्र प्रोल्ल की प्रेमिका तथा तुक्खारघट की कन्या अनन्ता ही है । यह बड़ी सुशील स्वं सच्चरित्र चित्रित की गई है । झूले पर झूलते समय वह राजा प्रोल्ल को देखकर उसपर मोहित होती है किन्तु लज्जावश उसके पास वह नहीं पहुंच पाती । इस समय कवि ने जो उसके अनुभावों, इच्छाओं स्वं उसमें बाधा डालने वाली लज्जा का चित्रण किया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है । इस सम्बन्ध में कुछ पंक्तियां देखी जा सकती हैं अपसर्पतान्य कन्यकाजनसहजया व्रीडया पश्चादिव

"..... पुर: प्रसूते न डोलापीठे न तदन्तिकमनुरागेण वाकृष्यमाणा नीयमाना, तत्पादतलसंभाविता स्थलीमपि बहुमन्यमाना,..... मुहु: सहकारकलिकया ताम्बूल करंकवाहिकां प्रहरन्ती, मुहु: संवाहिकाया: स्कन्धे करं विन्यस्यन्ती..... स्थितवती ।"[1]

वह लज्जालु होने के कारण ही राजा प्रोल्ल को तिरछी दृष्टि से देखती है । किन्तु कवि ने उसकी सखियों के समक्ष उसकी लज्जा का वर्णन नहीं किया है । वह सखियों के समक्ष स्पष्ट रूप से अपने विरह का कारण बता देती है[2] । उसके ये वाक्य कथमपि घटते

में "मन्दभाग्यायास्तादृशस्य पुंस: पुरार्जितसुकृतशतलभ्यं पुनर्दर्शनमिति चिन्तयन्ती लज्जया तथापि निवेदयितुमसहा,..... बाष्पमुत्सृजामि"[3] सहृदय की सहानुभूति के विषय नहीं हो पाते हैं । यह कवि की चित्रण विषयक दुर्बलता ही कही जायगी ।

कवि ने इसका विरहिणी रूप ही अधिक चित्रित किया है । यद्यपि धनपाल ने भी तिलकमंजरी तथा मलयसुन्दरी के विरहिणी रूप का चित्रण किया है किन्तु धनपाल तथा वामनभट्ट बाण ने जिस ढंग से उनका चित्रण किया है उसमें महदन्तर है । धनपाल को अपने इन पात्रों के चित्रण में सफलता मिली है किन्तु वामनभट्ट बाण के सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा सर्वत्र नहीं बनाई जा सकती है ।

अनन्ता की सखी सौगन्धिक का चित्रण भी बहुत अधिक प्रभावोत्पादक नहीं है । यद्यपि कवि ने उसका दु:ख के समय अनन्ता को सान्त्वना देना, उसका शीतोपचार करना उसे कन्यान्त:पुर में ले जाना, उसके लिए फूलों की शय्या बनाना, चित्रफलक में चित्र चित्रित करने के लिए सामग्री को एकत्रित करना, छूटे चित्रफलक को लेने के लिए अकेले निकलना और राजा को उसका परिचय देकर तथा उससे शुभ समाचार लेकर अपनी सखी अनन्ता को सुनाकर उसे शान्त करना आदि उसके कार्य-काव्य में वर्णित हैं किन्तु उन कार्यों में कवि ने उसको इस ढंग से नहीं चित्रित किया है जिससे उसका प्रगाढ़ प्रेम अनन्ता के प्रति फलकता हो ।

१- वेमभूपाल० पृष्ठ ३५

२- ,, ,, ७६

३- ,, ,, ७७

जो सत्ता के लिए व्याकुलता अर्वाचीन गद्य-काव्यों में तिलकमंजरी की बन्धुसुन्दरी में मिलती है, वह इस काव्य की सौगन्धिक में नहीं मिलती। भोज की भांति इनके काव्य में वेश्यायें आयी हैं किन्तु वामनभट्ट बाण ने उन्हें पात्रों के रूप में अपने काव्य में स्थान नहीं दिया है, अपितु वेश्या जाति, गणिका जाति एवं कुट्टनियों का चित्रण किया है। अनन्ता, अनन्ताम्बा तथा सौगन्धिक की अपेक्षा कवि इनके स्वभाव के चित्रण में अधिक सफल हुआ है। उनका अपने शरीर को अलंकृत करना, धन लेकर व्यक्ति को निकाल देना कृत्रिम प्रेम प्रकट करना, विवेकियों के ज्ञान को नष्ट कर देना आदि का वर्णन करके उस दृश्य को कवि ने सजीव बना दिया है। उनके स्वभाव के सजीव चित्रण का अनुमान कुछ अधोलिखित पंक्तियों से लगाया जा सकता है --

इन्द्रजालपिच्छिकेव असतो भावान्प्रकाश्य भुवं व्यामोहयन्ती, गुञ्जाशिलाशिलेव अन्तः कठिनापि बाह्ये स्नेहे शमावहन्ती,.... भूमिरिव भुजंगभोगसंगिनी,.... स्फटिक-शिलेव प्रतिपुरुषं रुचिं दधाना,... प्रव्रज्या इव आत्मानुरक्तानां कौपीनदायिनी... विज्ञानभुनिर्कुंठीनाम्....आकरः कपटानाम् ... गणिका जातिः।[1]

कवि ने उनकी माताओं का वर्णन दुष्टा एवं लड़ाका के रूप में अधिक किया है[2]।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि को वेश्याओं के स्वभाव के निरूपण को छोड़कर जहां तक स्त्री पात्रों के चित्रण का प्रश्न है, उसमें कवि को एक प्रकार से असफलता ही मिली है, ऐसा ही कहा जायगा। पुरुष पात्रों के सम्बन्ध में भी कुछ पात्रों को छोड़कर इसी प्रकार की धारणा बनानी पड़ती है। अतः यह कहना पड़ जाता है कि यह कवि इस दृष्टि से अर्वाचीन गद्य-कवियों में अग्रिम स्थान नहीं प्राप्त कर पाया है।

रामकथा के पात्र--

पात्रों के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से वासुदेव की रामकथा भी अधिक प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती। यद्यपि इस काव्य की कथावस्तु ऐसी है जिसमें पात्रों की बहुलता है किन्तु कवि ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में विशेष रुचि न दिखाकर उनका सामान्यरूप से वर्णन कर दिया है। इस काव्य के नायक राम का चित्रण भी संतोषप्रद नहीं है। कवि ने राम को ईश्वर का अवतार माना है-- विश्वानुजिघृक्षया गृहीतमानुषवेषो भगवानरविन्दनाभः[3] किन्तु स्वर्णिम मृग को देखते ही उनके विवेक को नष्ट होने का वर्णन कर दिया। यद्यपि कवि ने इस सम्बन्ध में 'नियति' का आश्रय लिया है --' स च विमलविवेकघनोऽपि नियतिपाशयन्त्रितः... मृगमन्वयासीत्[4], किन्तु इससे राम सहृदय की सहानुभूति के पात्र नहीं हो पाते। क्योंकि कवि ने इसके पहले मृग को देखकर सीता का मृग को लाने के लिए कहना वर्णित किया है और तत्पश्चात् राम के द्वारा उसके अनुसरण किये जाने का वर्णन हुआ है।

कवि ने सीता के लिए ऐसा विशेषण रखा है जिससे राम के गुणों के बदले दोषों की उद्भावना होती है। राम के वियोग में अत्यन्त दुःखी पतिव्रता सीता के लिए

१-वेमभूपाल० पृष्ठ २००-२०१
२- ,, ,, २०१-२०२
३- रामकथा पृष्ठ ५२
४- २२

'पुरूषादारविविताता' कहा है जिससे प्रतीत होता है कि राम ने उनसे कठोर वचन कहकर अग्नि परीक्षा करवायी थी[१]।

राम के चरित्र-चित्रण में कवि की सबसे बड़ी असावधानी यह है कि उसने उनके गुणों के वर्णन में परिस्थिति की ओर ध्यान नहीं दिया है। भाई-बन्धुओं के मर जाने के पश्चात् रावण राम से युद्ध करने के लिए आता है। वहां पर कवि ने केवल रावण को लुभाने वाली रूप-माधुरी का ही वर्णन कर दिया[२]। उनके वीर रूप का किंचिदपि वर्णन नहीं किया। वहां पर कवि को रावण की दृष्टि से राम के सौन्दर्य के अतिरिक्त उसके वीर रूप का भी वर्णन करना चाहिए था जिससे कि बाद में होने वाले युद्ध के वर्णन में सौन्दर्य आ जाता।

इसी कारण रावण का चरित्र-चित्रण भी असफल हो जाता है। क्योंकि कवि ने उसकी मनोवृत्ति को समाप्ति रूप-माधुरी के मुग्ध होने में ही कर दी और उसमें राम को देख कर उनके प्रति उठने वाले क्रोध,घृणा आदि किसी भी भावों का चित्रण नहीं किया है जिससे अस्वाभाविकता आ गयी है।

कवि इन्द्रजित् की मृत्यु पर उसका विलाप कराकर उसके पितृ-हृदय का परिचय कराकर पाठकों की सहानुभूति का विषय उसे बनाना चाहता है किन्तु एक वीर योद्धा के लिए यह विलाप संगत नहीं बैठता। फिर जिस ढंग से उसके विलाप का वर्णन किया है वह हास्य का विषय बन जाता है --

'प्रियसुतनिधनव्याकुलीकृतचेतसस्तस्य, युगपदेव विस्पष्टवर्णाविला: विलापवाचो विविधा: प्रादुरासन्।'[३]

इस काव्य की नायिका सीता है किन्तु पाठक उनसे चार स्थलों पर मिलता है। पहली बार बन जाते हुए राम का अनुसरण करने से पतिव्रता का आदर्श उपस्थित करती हुई[४] दूसरी बार स्वर्णिम मृग की याचना करती हुई,[५] तीसरी बार निशाचर के गृह में रह कर चरित्र की रक्षा करती हुई[६] और चौथी बार अग्निपरीक्षा देकर अपने को शुद्ध करती हुई पाठक के सम्मुख आती है[७]।

अयोध्या-नरेश दशरथ के चित्रण में कवि ने संस्कृत गद्य-कवियों की परम्परा[८] का पालन करते हुए केवल एक पंक्ति में उनकी विजय-प्राप्ति का वर्णन कर दिया है। इसी प्रकार उनकी रानियों के एक-एक गुण का वर्णन एक पंक्ति में कर दिया है[९]।

इन पात्रों का चित्रण आकर्षक नहीं है किन्तु काव्य में कुछ ऐसे पात्र हैं जिनका चित्रण संक्षेप में होने पर भी कुछ अधिक प्रभावोत्पादक एवं कुछ सफल कहा जा सकता है। कवि ने शूर्पणखा का चित्रण कुछ शब्दों में किया है। किन्तु उसकी राक्षस योनि के अनुरूप हुआ है। कवि ने उसे पापों तथा दु:खों का साक्षात् मूर्ति, संसार के लिए कष्टदायिनी तथा मायावी बताया है[१०]।

उसकी अभिमानी प्रकृति उसकी हंसी उड़ाये जाने पर मिलती है। राम के पास जाने के लिए पहले वह रमणीय रूप धारण करती है किन्तु बार बार कभी राम और कभी लक्ष्मण के पास आने-जाने के कारण सीता के हंस देने पर वह अपने असली रूप में आ जाती है। इस रूप का चित्रण कवि ने उसकी आकृति तथा उसकी कठोर आवाज को

१-रामकथा पृष्ठ ५० ४-रामकथा पृष्ठ १४ ७-रामकथा पृष्ठ ५०
२- ,, ,, ४६ ५- ,, ,, २१ ८- ,, ,, २-३
३- ,, ,, ४८ ६- ,, ,, ३३-३४ ९- ,, ,, ३

लेकर एक पंक्ति में कर दिया है[1]।

कवि ने खर को एक वीर योद्धा के रूप में चित्रित किया है । बहन की इस दुर्गति को देखकर वह उत्तेजित हो जाता है, आवाज भयंकर हो जाती है, संसार के जीतने की इच्छा उसमें उमड़ने लगती है और वह युद्ध के लिए आगे बढ़ जाता है[2]।

कवि ने कुम्भकर्ण को एक वीर योद्धा के रूप में चित्रित किया है । युद्ध क्षेत्र में उनके आते ही बानर सेना में खलबली मच जाती है । शरीर के अंग भंग हो जाने पर भी वह साहस को छोड़ता हुआ नहीं बताया गया है । बहुत से योद्धा पहले वीर बनते हैं और बाद में प्राण की रक्षा के लिए भागते हैं किन्तु कुम्भकर्ण शत्रुओं को मार कर मरता है । कवि ने उसकी उपमा[3] विशालपर्वत से देकर उसका चित्रण सम्यक ढंग से किया है ।

चूंकि यह एक राक्षस था अत: कवि ने उसके नि:श्वासों का उसी योनि के अनुसार वर्णन किया है --

बहुमूलवल्कन्दराविरत विवृततदीर्घवदनघोणाकुहरोदराहमहमिकानिर्गिलाननि:-श्वासानिल कल्लोलजालबूलोलानुविधायिन: तेऽपि कथमपि निद्रागारं प्रविष्टा महता प्रयत्नेनैनं गलितमुषिष्टसंवेशमुद्रं व्यधिबत[4]।

कवि ने इन्द्रजीत को भी वीर योद्धा बताया है किन्तु उसके युद्ध-वर्णन में प्रयुक्त 'तयोश्च युध्यमानयोरिक्षमानयोर्व्यतिरसमानयो: काकुत्स्थपुलस्त्यान्वयवीरयोरविश्रान्त-योरहस्त्रितयमत्यगाव । तथा संप्रहरन्तं संप्रहारशौण्डं मण्डोदरीसुतं समिति सुमित्रापुत्रो रघुवरानुभावसंधुक्षितौजसा वैडौजसास्त्रेण विगतजीवितमतनोत्[5] उसकी वीरता का विशेष परिचय नहीं देती है ।

इन पात्रों के अतिरिक्त काव्य में सुग्रीव, हनुमान, विभीषण , लक्ष्मण आदि भी आए हैं । किन्तु कवि ने उनके चित्रण में कोई रुचि नहीं दिखायी है । सुग्रीव और हनुमान सेवक के रूप में बताए गए हैं । एक स्थल पर हनुमान को राम का शरीरधारी मनोरथ कहा गया है । विभीषण को यहां भी शत्रुपक्ष में जाने के पहिले भाई को समझाते हुए तथा वहां से तिरस्कार मिलने पर राम के परम मित्र बनते हुए तथा भाई-बन्धुओं का नाश करते हुए बताया गया है ।

इन पात्रों की अपेक्षा लक्ष्मण के चित्रण में कवि की कुछ रुचि परिलक्षित होती है किन्तु वह उसको सम्यक् रूप नहीं दे पाए हैं ।

कवि ने राज्य पाकर प्रतिज्ञा भूल जाने वाले सुग्रीव का कर्तव्य की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए धनुष को लेकर सुग्रीव के भवन में जाते समय उनके क्रोध का अवश्य वर्णन किया है किन्तु उससे उनकी उग्र प्रकृति परिलक्षित नहीं होती है --

'स हि रोषकलुषितनयनकमलावलोकजनितभयकम्पिताङ्गै: प्रतीहारैर्विरचितांजलिबन्ध-मपसरद्भिरनिवारितस्तरसा राजभवनमेवाविक्षत्[6]।'

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि काव्य में आए हुए कुछ ही पात्रों का उपयुक्त चित्रण कवि कर सका है किन्तु उसमें प्राप्त उसकी सफलता अन्य गद्य-कवियों की अपेक्षा अत्यन्त कम है । इस काव्य के रचयिता ने तो अन्य कवियों की भांति गुणानुवाद भी नहीं किया ।

१-रामकथा पृष्ठ १६
२- ,, ,, १६
३- ,, ,, ४५
४- ,, ,, ४५
५- रामकथा पृष्ठ ४७
६- ,, ,, ३६
७- ,, ,, २६

आसफविलास के पात्र--

पंडितराज जगन्नाथ का `आसफविलास` भी चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सफल काव्य नहीं कहा जा सकता है । कवि ने इस काव्य में एक प्रकार से कथावस्तु का अभाव ही रक्खा है। यद्यपि जैसा कि कहा जाता है कि कवि ने इस काव्य की रचना आसफ की मृत्यु पर उसके गुणों का वर्णन करने के लिए की थी किन्तु कवि ने उसके और न शाहजहां के ही किन्हीं कार्यों का वर्णन किया है जिससे पाठक उसके कार्यों से मुग्ध होकर उनकी प्रशंसा करे । केवल उन दोनों राजाओं के गुणों की संख्या गिना दी है । शाहजहां को दानी तथा प्रतापी बता दिया[1] और आसफखां को ब्राह्मणों का हितैषी, सब के मन को प्रसन्न करने वाला, युद्धप्रिय, देवताओं से पूजित, सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता बताया है[2]। चूंकि आसफखां इस काव्य का नायक है अत: कवि ने उसके गुणों की संख्या कुछ अधिक बढ़ा दी है ।

कवि ने यद्यपि मुगलपात्रों को काव्य में स्थान दिया है किन्तु मुगलों के रहन-सहन, खान-पान, ठाट-बाट आदि से सम्बन्धित किसी भी विशेषताओं का चित्रण उन पात्रों में नहीं किया है । हिन्दू राजाओं के रूप में ही उनको चित्रित किया है । अन्य कवियों की भांति यद्यपि इनमें भी केवल गुणों के गिनाने की प्रवृत्ति मिलती है किन्तु विस्तर के साथ नहीं । इन्होंने अन्य कवियों की भांति इन राजाओं के सौन्दर्य, शासन-व्यवस्था आदि का भी चित्रण नहीं किया है ।

इस प्रकार समस्त अर्वाचीन गद्य-काव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गद्य-कवियों में पात्रों के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भोज तथा धनपाल श्रेष्ठ कवि कहे जा सकते हैं । ओडयदेव ने अपने काव्य के नायक को एक योग्य और महान् व्यक्ति के रूप में चित्रित करना चाहा है किन्तु उसमें दृढ़ व्यक्तित्व न दिखाने के कारण उसको उस रूप में चित्रित नहीं कर सके हैं । इसके विपरीत काष्ठांगार को खल रूप में चित्रित करने में उन्होंने अपनी चरित्र-चित्रण विषयक शक्ति का सुन्दर परिचय दिया है । वामनभट्ट बाण ने काव्य में कई राजाओं के चित्रण के प्रति उपेक्षा दृष्टि रक्खी है किन्तु राजा वेम तथा राजा प्रौढ़ के चित्रण में उन्होंने इस शक्ति का परिचय दिया है । वासुदेव नायक-नायिका तथा उपनायक के चित्रण में इस प्रकार से असफल रहे हैं । इन पात्रों की अपेक्षा कवि राक्षसीय पात्रों में शूर्पणखा, कुम्भकर्ण तथा खर के चित्रण में अधिक सफल हो गया है-- ऐसा कहा जा सकता है । पंडितराज जगन्नाथ ने पात्रों के चरित्र-चित्रण की तो सर्वथा उपेक्षा ही की है ।

-०-

१- आसफविलास श्लोक संख्या २, ३

२- ,, पृष्ठ ,, ८३

सप्तम अध्याय

—0—

सांस्कृतिक अध्ययन

—0—

सप्तम अध्याय

सांस्कृतिक अध्ययन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज से पृथक् अपनी स्थिति की कल्पना एक क्षण के लिए भी नहीं कर सकता । व्यक्तियों का समूह ही समाज होता है । अतः व्यक्ति को समाज के प्रत्येक नियम एवं रीति-रिवाजों को मानने पड़ते हैं । उसके प्रत्येक कार्य में उसके समाज का हाथ रहता है । यही कारण है कि लोग उसके क्रिया-कलापों से उसके समाज की स्थिति का अनुमान लगा लिया करते हैं । कवि भी समाज का एक अंग है । यद्यपि उसका कार्य काव्य की रचना करना होता है किन्तु वह समाज की, अपने आस पास के वातावरण की उपेक्षा नहीं कर सकता । इसीलिए उसका साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है । उसके काव्य से विभिन्न स्थितियों का ज्ञान होता है । बाण का हर्षचरित, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस तथा अन्य बहुत से काव्य ऐतिहासिकों के लिए बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत कराने में सहायक बनते हैं ।

संस्कृत-कवि किसी-न-किसी राजा के आश्रित रहे हैं अतः उनके काव्यों में अनायास रूप से वर्णित विभिन्न परिस्थितियों की विवेचना मिलेगी । जिन संस्कृत कवियों ने अपने आश्रयदाता का जीवन चरित्र न वर्णन करके पौराणिक राम आदि की कथा को लिया है उन कवियों ने भी काव्य के नायक के समय में होने वाली सामाजिक आदि दशाओं का अनभिज्ञता में निरूपण किया है । यह दूसरी बात है कि उन काव्यों से विशेष जानकारी न मिल पाए और इस दृष्टि से वे महत्वहीन सिद्ध हों । रामकथा इसी प्रकार का गद्य-काव्य है । कुछ ऐसे भी गद्य-कवि हैं जिन्होंने अपने काव्य का नायक आश्रयदाता राजा को बनाकर भी उस समय की स्थितियों के विषय में विशेष परिचय नहीं कराया है । इस विषय में पंडितराज जगन्नाथ का `आसफविलास` नामक गद्य-काव्य अवलोकनीय है । अतः यह भी काव्य इस दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं रखता है । ओडयदेव ने अपने गद्य-काव्य `गद्य चिन्तामणि` का नायक यद्यपि अपने आश्रयदाता को न बनाकर पौराणिक नायक जीवंधर को बनाया है किन्तु उस काव्य से कवि के समय की अवस्थाओं के विषय में पर्याप्त सूचना मिल जाती है । इसी प्रकार धनपाल के काव्य `तिलकमंजरी` में आश्रयदाता के नायक न होने पर भी उसके समय की स्थितियों से पाठक पर्याप्त मात्रा में परिचित हो जाता है । इस काव्य के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि इसको पढ़कर कवि के आश्रयदाता भोज ने अपने को इस काव्य का नायक बनाने के लिए कवि से कहा था, कवि ने यह कहकर कि इस नायक तथा राजा भोज में बहुत अन्तर है, इस बात को अस्वीकृत कर दिया था जिससे रुष्ट होकर भोज ने अग्नि में उसकी कृति को डाल दिया था । यह बात कहां तक सत्य है, कुछ कहा नहीं जा सकता किन्तु उपर्युक्त किंवदन्ती से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि उसके काव्य में उसके समय की

सभी परिस्थितियों का प्रभाव है ।

राजा भोज की 'शृंगारमंजरी कथा' नामक काव्य में किसी आश्रयदाता को नायक बनाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है किन्तु एक राजा की कृति होने से तथा उसमें अपनी राजधानी धारा आदि का चित्रण करने से उस समय की अवस्थाओं पर विशेष प्रकाश पड़ता है ।

वामनभट्ट बाण ने तो अपने काव्य का नायक अपने आश्रयदाता वीरनारायण या वेमभूपाल को ही बनाकर उसकी वंशावली बताई है एवं उसका गुणगान गाया है । यह काव्य उस समय की विविध परिस्थितियों के ज्ञान कराने में उसी प्रकार का महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिस प्रकार बाण का हर्षचरित, जो हर्षकालीन इतिहास को प्रस्तुत करता है ।

यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इन कवियों के वर्णन में अतिशयोक्ति की मात्रा अधिक रहती है । सभी संस्कृत के कवि राजाओं को सामान्यरूप से सर्वगुण सम्पन्न, योग्य शासक बना देते हैं, उन्हें 'चक्रवर्ती' की पदवी से विभूषित कर देते हैं, उनकी नगरी, बाजार आदि को विविध रत्नों का आगार एवं सभी समृद्धियों से परिपूर्ण चित्रित करते हैं । प्रासादों की ऊँचाईमें चन्द्र-सूर्य की गति को भी शिथिल कर देते हैं किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे अपने काव्य में सत्य को सर्वथा उपेक्षा की दृष्टि से देखा करते हैं । इस प्रकार के वर्णन करने की तो एक प्रकार से यह कवियों की परम्परा बन गई है । इसका कारण है -- कवियों का राजाओं के आश्रय में रहना तथा उनमें आत्म संतोष वृत्ति की प्रधानता होने के कारण उनका सुख तथा शान्तमय राज्य की कल्पना करना ।

वर्णन की प्रणाली में समता होते हुए भी उनके काव्यों में व्यक्तिगत दृष्टिकोण, तथा उनमें वर्णित सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों के कारण पर्याप्त मात्रा में भिन्नता परिलक्षित होती है ।

शृंगारमंजरी कथा--

राजा भोज की शृंगारमंजरी-कथा से उस समय की सामाजिक स्थिति में विशेष प्रकाश पड़ता है । इस काव्य में वेश्याओं की स्थिति की विवेचना में कवि ने विशेष रुचि रखी है । इस काव्य की नायिका स्वयं वेश्या है । उसकी माँ अपनी वृत्ति के अनुकूल उसे शिक्षा देती हुई पुरुषों के विविध रागों एवं व्यक्तित्व की चर्चा करती है । इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय वेश्यायें अपने सौन्दर्य के आकर्षण्य बनाये रखने के लिए उसी के अनुरूप वेश धारण करती थी, मृदुभाषी वाग्पटु, चौंसठ कलाओं की ज्ञाता तथा कामसूत्र आदि में विचक्षण समझी जाती थी । प्रश्नोत्तर, प्रहेलिका आदि में प्रगल्भता प्रदर्शित करती थी, प्रभावशाली व्याख्यानों (वाकोवाक्) के प्रति कौतुकिनी होती थी, लास्य नृत्य में दक्षता रखती थी, समस्यापूर्ति में निपुणता का प्रदर्शन करती थी, प्रबन्ध-रचना तथा गाथा-निर्माण में अपनी शक्ति का परिचय देती थी क्रीड़ाओं को प्रेमी समयानुसार वचनभंगिमा में परिवर्तन लाने वाली एवं गायन और वाद्य-वादन में पटुता

दिखाने वाली होती थी[१]।

वे शराब, मांस आदि खाने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करती थीं[२]। दूसरे के धन का अपहरण करके अपना कोष भरना तथा चाणक्य नीति आदि का अपनाना उनके कार्य थे[३]। ये दूसरों को ठगने में निपुण, दूसरों की चित्तवृत्ति जानने में दक्ष तथा वैशिक आलाप और रहस्यपूर्ण अभिनयों में प्रगल्भ होती थी। असत्यता, दम्भ, धूर्तता, निकृष्ट चरित्रता, कपट-विनम्रता उनके गुण थे। इनके अतिरिक्त वे दुर्घटना की निर्मात्री तथा दुर्घटना की विनाशिनी होती थीं[४]। वे अपनी चालों से अत्यन्त विदग्ध तथा स्थिर प्रकृति वाले व्यक्तियों को भी धोखा देती, उन्हें अस्थिर और मूर्ख बनाती, बाहर से देखने, बोलने एवं चेष्टाओं में अत्यन्त भोली-भाली एवं सरल प्रतीत होती किन्तु अन्दर से उनका मन कुटिल होता। बनावटीपन अत्यधिक मात्रा में होने के कारण अर्थप्राप्ति के लिए रोना, हंसना, लड़ना, पुत्री को डांटना, आदि भी उनके कार्य होते। वे धनविहीन का कभी भी सत्कार नहीं करती, धनी का आदर करके उनके धन प्राप्ति के साधन को जानकर उन्हें दुत्कार देती[५]। उनके सामने ऐन्द्रजालिक भी कुछ नहीं ठहरते[६]।

बारह प्रकार के रागों जिन्हें कवि ने चार वर्गों में बांटा है उनसे परिचय रखना उनके लिए आवश्यक था। किस प्रकार से नीली राग वाले व्यक्ति से सब कुछ लेकर उसे निकाल दिया जाता है, किस प्रकार मंजिष्ठ राग वाले से अपनी इच्छानुसार ले लिया जाता है किन्तु उन्हें कष्ट नहीं दिया जाता है, किस प्रकार कुसुम्भ राग वाले से बिना चाटुकारिता के (क्योंकि वह चाटुकारिता पसन्द नहीं करता है) उसे अनुकूल बनाकर ले लिया जाता है तथा किस प्रकार शीघ्र ही विरक्त हो जाने वाले हरद्रागी से शीघ्र धन ले लिया जाता है -- इत्यादि के विषय में ये पटु होती[७]। इसकी शिक्षा उन्हें माता की गोद में ही मिल जाती थी।

सभी वेश्यायें एक-सी नहीं होती थीं। कुछ व्यसनों से पराङ्मुखी, भावुक, मृदुभाषिणी, त्यागिनी, निर्लोभी एवं साहित्यिक रचना की प्रेमी होती थीं। काव्य की नायिका 'शृंगारमंजरी' इसी प्रकार की है। सच्चा प्रेम करने वाली वेश्यायें भी होती थीं[८]। यह दूसरी बात है कि परिस्थितियां उनके सच्चे प्रेम को स्थिर नहीं रहने देती थीं।

वृद्धावस्था प्राप्त हो जाने पर वेश्याओं का काम धनिकों को अपनी पुत्री के माध्यम से बुलाना, अपने को उस अवस्था में भी अलंकृत रखना तथा उनसे प्राप्त धन को अपने पास रखना होता था। यदि कभी कोई युवती वेश्या अपने मार्ग से विचलित होती थी तो वह उसको सावधान करती थी तथा उनसे धनप्राप्ति के मूल की खोज करवा कर उसके पाने के लिए घृणित से घृणित कार्य करती थी[९]।

आभूषणों में ये दन्तपत्र, कुण्डल, रत्नजटित हार, फूलों की माला, वलय, कंकण,

---

१- शृंगार० पृष्ठ १२
२- ,, ,, १५
३- ,, ,, १५
४- शृंगार० पृष्ठ १५-१६
५- ,, ,, १६
६- ,, ,, १६-१७
७- शृंगार० पृष्ठ १६
८- छठी कथा, और आठवीं कथा०
९- सातवीं कथा०

केयूर और नूपुर धारण करती थीं तथा चन्दन,कुंकुम और रोध्र का लेपन करती थीं । समाज में इन लोगों की स्थिति प्रशंसनीय नहीं थी । उनकी माताओं को अवगुणों की खान ही अधिकांशत: समझा जाता था[१]।

वेश्याओं से अच्छी स्थिति गणिका की समझी जाती थी । वे सम्पूर्ण कलाओं से परिचित रहती थीं । ये राजा की प्रिय पात्र भी बन सकती थीं इस काव्य की नायिका शृंगारमंजरी गणिका ही है[२] ।

गणिका के घर की व्यवस्था उसकी मां या कुट्टिनी करती थी[३] ।

समाज में कुट्टनियों एवं वेश्याओं की अकल को ठीक लाने वाले कुछ धूर्त हुआ करते थे जो उन्हें उनकी करनी का फल चखाया करते थे[४] ।

राजा भोज के समय वर्ण-व्यवस्था भी था । ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य,कायस्थ तथा अन्य पेशे वाले लोग हुआ करते थे । ब्राह्मण अधिकांशत: धनी और शिक्षित होते थे तथा छोटी-सी उम्र में ही शिक्षा पा लेते थे[६]। रत्नदत्त ने सोलह साल की उम्र में सम्पूर्ण शिक्षा पा ली थी । राजा और राजकुमार क्षत्रिय होते थे । वैश्य गजशास्त्र,अश्वविद्या, वणिक् कला, कूट रहस्य, वैशिकोपनिषद्, चित्र, पत्रच्छेद्य और पुस्तककला में निपुण होते थे । उनके लिए आवश्यक न था कि वे पुश्तैनी नौकरी करें ही । रत्नदत्त पढ़-लिख कर अपने पिता की नौकरी न करके मालवेश के राजा की नौकरी करने जाता है[७]।

कायस्थ अधिकांशत: शूद्रकीय कार्य करते थे । पंचाल के कान्यकुब्ज के महासामन्त प्रतापसिंह[५] तथा उत्पलपुर के अमरसिंह ऐसा ही कार्य करने वाले कहे गए हैं[८] ।

इनके अतिरिक्त समाज में शाकुनिक,ऐन्द्रजालिक एवं मोहन विद्या को जानने वाले[९] भी कुछ लोग हुआ करते थे । काव्य में तैलिक,तन्तुवाय(जुलाहा) तथा सभिक का भी उल्लेख आया है जिससे ज्ञात होता है कि उस समय इस प्रकार के पेशे थे[१०] ।

शहर के बाहर कार्व्वट होता था जहां कैलाकुल लोग रहते थे[११]। जंगलों में शबर रहते थे जो काले, चिपटी नाक वाले, घुंघराले बाल वाले तथा दाढ़ी रखने वाले होते थे । वे धनुष बाण को निरन्तर अपने साथ रखते थे भीरु प्रकृति के होने के कारण वे यात्रियों एवं जंगली जानवरों से डरा करते थे और समूह में निकलते थे ।[१२]

इस काव्य में मदन यात्रा महोत्सव का उल्लेख आया है जिससे उस समय के होने वाले पर्व के विषय में ज्ञात होता है ।[१३]

देवी-देवताओं में आशापुरा देवी[१४] तथा विन्ध्यवासिनी देवी[१५] की पूजा होती थी । महाकाल नाथ के भी मन्दिर होते थे[१६] ।

मंदिरों का केवल उल्लेख मात्र होने से उनसे उस समय की 'धारा' की समृद्धता का नहीं पता चल पाता है किन्तु कवि ने जो प्रासाद सरोवर आदि का वर्णन अपनी राजधानी के वर्णन में किया है उससे उस समय की आर्थिक सम्पन्नता के साथ-साथ प्रस्तर कला की उन्नति देखी जा सकती है । यद्यपि मणिमय खचित ऊंचे-ऊंचे प्रासादों

१-शृंगार० पृष्ठ १६
२-,, ३,७,१०कथा०
३-,, प्रथम कथा०
४-,, आठवीं कथा०
५- शृंगार०पृष्ठ ७८
६- ,, ,, ६६
७- ,, ,, ८०
८- ,, छठीं कथा०
९-शृंगार०पृ०४३
१०- ,, ,,६१
११- ,, ,,६६
१२- ,, ,,५२-५३
१३-शृंगार०पृ०७६
१४- ,, ,,६६,७२
१५- ,, ,,८६
१६- ,, ,,३२

के वर्णन में कवि की अतिशयोक्ति तथा अन्य कवियों की अनुकृति मात्र है किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि राजा भोज साहित्यिक प्रेमी होने के साथ-साथ सुयोग्य शासक थे। अतः उन्होंने आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाकर अपनी राज्य-व्यवस्था को भी दृढ़ बनाया था।

उनके राज्यकाल में नगरी की रक्षा हेतु श्वेत,ऊंचा,मणिमयखचित तथा मण्डलाकार प्राकार होता था। वह प्राकार चार प्रतोलियों से युक्त होता था। रक्षा के लिए नगरी के चारों ओर परिखा होती थी। सरोवरों का यथेष्ट प्रबन्ध रहता था। वे गहरे,कमल आदि पुष्पों से युक्त,स्वच्छ जल वाले तथा पक्षियों से भूषित होते थे[2]।

कवि ने अपनी नगरी के यंत्रधारा गृह का सविस्तर वर्णन करके भी उसकी समृद्धता एवं कला की उन्नति को दिखाया है। यंत्रधारा गृह के चारों ओर स्वच्छमणियों से जटित भित्तियां होती थीं जिन पर छोटे छोटे वृक्षों का प्रतिबिम्ब पड़ा करता था, विटंक की वेदिका के चारों ओर मरकत मणि होती थी जो लोगों को सघन मेघों की प्रान्ति कराया करती थी, वहां पर क्रियाशील मणिमय यन्त्रपुत्रिका होती थी, चन्द्रमणि खचित जल यंत्रपुत्रिका से फव्वारा निकला करता था उससे निकलते हुए पानी की आवाज मृदंग जैसी सुनाई पड़ती थी, कहीं-कहीं पर कृत्रिम कमिलिनी भी होती थी जिसके बीच में मणिमय मरालिकाएं होती थीं जिनके मुख के अन्दर धारा यंत्र का जल जाता था, कहीं पर हाथ को ऊपर उठाये हुए मणियंत्र पुत्रिका नृत्य करती हुई-सी प्रतीत होती थी, कहीं पर विकसित कर्णिका के अन्दर काली मणियों से निर्मित मधुकर होते थे और उसके अन्दर से निकली हुई पानी की ध्वनि से ऐसा लगता था कि मानो मधुकर मिथुन गा रहे हों, कहीं पर पंख वाली कन्यका के नेत्रों से, कहीं पर नीचा मुख किए हुए मयूरी के मुख से, कहीं पर मणिमय यंत्र पुत्रिका के वक्षःस्थल से, कहीं पर मणिमय स्त्रियों के नाखूनों से, कहीं पर बन्दर के मुख से, कहीं पर स्तम्भों एवं स्तम्भ-शीर्षकों से पानी गिरता था[3]।

उस यंत्रधारा गृह के आंगन में वापिका और पुष्करिणी (बावलियां) भी होती थीं वहां पर मछलियां उतराती रहती थीं, उसके समीप कृत्रिम बगुले होते थे जो ऐसे प्रतीत होते थे मानो मछलियां उन्हें ठग रही हों और वे बगुले किंकर्तव्यविमूढ़ खड़े रह गए हों। कहीं-कहीं पर यांत्रिक कमठ और कहीं-कहीं पर यांत्रिक मकर भी होते थे[4]।

इस प्रकार यंत्रधारागृह लोगों को कृत्रिम रूप के होने पर भी प्राकृतिक सौन्दर्य की सी अनुभूति कराया करता था।

यहां पर वर्णित प्रस्तर कला से स्पष्ट है कि उनके कलाकार इतना सजीव रूप सामने रख देते थे कि कृत्रिमता और प्राकृत रूप में अन्तर करना दुष्कर हो जाया करता था।

आश्चर्य की बात यह है कि इस काव्य के रचयिता राजा के होने पर भी उसमें राजनीतिक स्थिति का चित्रण अधिक नहीं हुआ है। यह अवश्य है कि काव्य के अन्तर्गत

१- शृंगार० पृष्ठ ४
२- ,, ,, ४
३- शृंगार० पृष्ठ ६
४- ,, ,, ६-७

आयी छोटी-छोटी कहानियों में कुछ नगरों के नाम मिल जाते हैं । जैसे कुण्डिनपुर,[1] ताम्रलिप्त,[2] विदिशा, हस्तिग्राम, उज्जैनी, अहिच्छत्र, मगध, पुण्ड्रवर्धन, भाण्डव्यामिदेवपुर, उरगपुर,[10] बोठे,[11] वत्सगुल्म,[12] कर्णा,[13] कौशाम्बी,[14] गांधार,[15] का कान्यकुब्ज, हस्तिनागपुर,[16] कांची,[17] मान्यखेट,[18] पूर्णपत्तक,[19] कुन्तल,[20] लाट एवं कुम्भ जाति का उल्लेख है ।[21] इसी प्रकार नायिका के सौन्दर्य-वर्णन में उद्यान, प्राग्ज्योतिष,[23] मिथिला तथा कुक्कुटी के लिए विख्यात नेपाल[22] भूमि की कुछ भूमि और द्वीपों में सिंहल द्वीप, रत्नद्वीप और सुवर्णद्वीप का भी उल्लेख[24] है ।

कुछ नगरों के राजाओं के नाम तथा कुछ राजाओं के गुणों की चर्चा हुई है । ताम्रलिप्ति का राजा प्रताप मुकुट बताया गया है । उज्जैनी के राजा का नाम विक्रमसिंह साहसांक, विक्रमार्क और विक्रमादित्य आया है । ये नाम सम्भवत: एक ही राजा के प्रतीत होते हैं । अहिच्छत्र नगर का राजा वज्रमुकुट तथा उरगपुर का राजा अमरसिंह बताया गया है । कवि ने अमरसिंह के अधिकार क्षेत्र के विषय में थोड़ा-सा बताया है जिससे ज्ञात होता है कि उसने ८४ सामन्तों पर, १२ मण्डलेश्वर पर, ३६ राजकुलों पर, ७२ वन के राजाओं पर, २४ कर्वट पर, २१ कोंकण पर और ३६ वेलाकुलों पर अधिकार कर लिया था ।[26] हस्तिनागपुर का राजा कुमारक तथा मान्यखेटाधिपति वज्रमुकुट बताया गया है ।

इस प्रकार केवल उरगपुर के राजा के वर्णन से ही उस समय की राजनीतिक स्थिति पर कुछ प्रकाश पड़ जाता है । उस राजा के वर्णन से पता चलता है कि भोज के समय कुछ चक्रवर्ती राजा होते थे जो राज्य के राजा हुआ करते थे । राज्य मण्डलों में विभाजित होता था जिसके शासक मण्डलेश्वर हुआ करते थे । कुछ पत्तनक होते थे । काव्य में आया हुआ पूर्णपत्तक पत्तनक ही था ।

उज्जैनी के राजा विक्रमार्क के वर्णन से राजाओं के कार्यों के विषय में कुछ ज्ञान उपलब्ध होता है । उसमें बताया गया है कि राजाओं का समय शस्त्राभ्यास, गजायुद्ध, अश्वारोहण, युद्धावलोकन, शस्त्रों में विशेषकर धनुष का अभ्यास करने के साथ-साथ उद्यान-विहार, मृगया जल-क्रीड़ा,[27] प्रणयिनी-समागम, मित्र-गोष्ठी तथा नाट्य-प्रेक्षण में व्यतीत हुआ करता था । इस काव्य का प्रारम्भिक अंश भोज तथा सामन्तों की साहित्यिक प्रियता का परिचय देता है ।

कुछ नगरों के वर्णनों से भौगोलिक स्थिति का भी थोड़ा सा ज्ञान हो जाता है । जैसे उज्जैनी के विषय में कवि ने उसे अवन्ति का[28] शहर बताया है । 'अस्त्यवन्तिषु श्रीमदुज्जयनी नाम नगरी ।'

१- शृंगार०पृष्ठ १६	८- शृंगार०पृ०५६	१५- शृंगार०पृ०७८	२२- शृंगार०पृष्ठ १३
२- ,, ,, २६	९- ,, ,,५७	१६- ,, ,,८२	२३- ,, ,, २८
३- ,, ,, २८	१०- ,, ,,६६	१७- ,, ,,५४	२४- ,, ,, ७६
४- ,, ,, ३०	११- ,, ,,७४	१८- ,, ,,६३	२५- ,, ,, २५
५- ,, ,, ३२,३५,४२,८८	१२- ,, ,, ८२	१९- ,, ,,६२	२६- ,, ,, ६५
६- ,, ,, ४१	१३- ,, ,,२८	२०- ,, ,,७४	२७- ,, ,, ३६
७- ,, ,, ५४	१४- ,, ,,७३	२१- ,, ,,७५	२८- ,, ,, ८४

पांचाल में कान्यकुब्ज की स्थिति बताई गई है[1]। हस्तिग्राम को गंगातट पर बसा हुआ ग्राम बताया गया है[2]।

आठवीं कहानी में आया है कि उस कहानी का नायक रत्नकर पुण्ड्रवर्द्धन में था उसने मान्यखेट के राजा के यहां नौकरी करने की इच्छा की। वहां से सबसे पहले विदिशा, फिर माडलवामिदेवपुर फिर पूर्णपत्तनक और अन्त में मान्यखेट पहुंचा।

इस प्रकार इस काव्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने अपने काव्य में समाज के निम्नस्तर का चित्रण अधिक किया है जिससे सामाजिक स्थिति का निरूपण अधिक हुआ है। राजा की कृति होने के कारण काव्य में आए नगरों के नाम काल्पनिक नहीं हैं। उनसे नगरों एवं वहां के राजाओं की स्थिति में बहुत नहीं किन्तु थोड़ा-सा प्रकाश पड़ जाता है तथा धारा नगरी की भव्यता से उस समय की आर्थिक सम्पन्नता एवं प्रस्तर कला की उन्नति के विषय में भी पाठक अवगत हो जाता है।

तिलकमंजरी--

धनपाल के काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि की रचना पर तात्कालिक स्थितियों का बहुत प्रभाव पड़ा है। अत: उनके काव्य से उस समय के लोगों की धारणा, रहन-सहन, सम्पन्नता, राजनीतिक व्यवस्था आदि के विषय में परिचय पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है।

अयोध्या नगरी के वर्णन से स्पष्ट है कि उस समय वर्ण-व्यवस्था थी[3]। लोग सुशील विद्वान, कला-प्रेमी, सर्वभाषा-सर्वज्ञ, न्याय-विशेषज्ञ, एवं धार्मिक हुआ करते थे। ब्राह्मणों को आदर की दृष्टि से देखते थे। एक स्थल पर कवि ने उस नगरी की उपमा 'स्वर्लोकैव द्विजन्माजैः' कह कर स्वर्लोक से दी है। लोगों को किसी प्रकार का भय नहीं रहता था। क्योंकि न वे राजमार्गों का उल्लंघन करते थे और न दण्ड के मार्गी बनते थे। उनका जीवन शान्तिमय था। चोरियां आदि नहीं हुआ करती थीं, न मृत्यु का भय रहता था, समाज में व्यभिचार प्राय: नहीं के बराबर था। बहुत पीड़ा, गलग्रह-रोग, पैर-विच्छेद आदि कष्टों का पूर्णत: अभाव था[4]। समाज में कुछ गुण्डे, विट अवश्य थे जो स्त्रियों को देखकर गाने या कुछ पढ़ने लगते थे[5]।

दक्षिण सागर में स्थित अपरथनकनक संज्ञा नामक नगरी के निवासियों की भी धार्मिक प्रवृत्ति वर्णित हुई है। उन्हें सर्वदेश-भाषा-भाषी, दयालु, दानी, सत्यवादी, सदाचारी, शास्त्रप्रिय और विवेकी बताया गया है[6]।

इन दोनों नगरों के निवासियों की विद्वत्ता का वर्णन कवि ने जो किया है उससे उस समय समाज में विद्याओं एवं शास्त्रों का क्या महत्त्व था, स्पष्ट हो जाता है। केवल प्रजा की धार्मिक प्रवृत्ति ही नहीं हुआ करती थी अपितु राजा भी हुआ करते थे। राजकुलों में भी कुलदेवताओं का पूजन, मुनिजन की आराधना, गुरुभक्ति का ध्यान, पूजन, अनाथ, दीनों के कष्टों का निवारण, मन्त्रों का उच्चारण, पौराणिक कथाओं का

१- शृंगार० पृष्ठ ७८
२- ,, चतुर्थी कथा०
३- तिलकमंजरी पृ०७-११
४- तिलकमंजरी पृष्ठ ११
५- ,, ,, ८
६- ,, ,, २६०

वचन, सम्बन्धियों एवं ब्राह्मणों के घर में फल-फूलों का भेजना, उन्हें दान देना, पुरोहितों का स्वर्णिम कलश तथा हरितकुश को लेकर शान्ति-जल को छिटका कर राजकुल को पवित्र करना आदि कार्य होते थे[1]।

लोग दानप्रिय हुआ करते थे। ये बछड़ों सहित गायों का दान ब्राह्मणों को करते थे, पंचमी श्राद्ध करते थे[2] तथा बलिकर्मों में देवतावों के प्रसन्न होने की कल्पना करते थे[3]। यज्ञ भी हुआ करते थे। काम की पूर्ति के लिए लोग देव-देवतावों की शरण में जा कर उनकी आराधना से उन्हें प्रसन्न करने के लिए कठोर तप भी करते थे। राजा मेघवाहन ने पुत्र प्राप्ति के लिए राजलक्ष्मी की उपासना की थी जिसमें वह अपना शिर तक काटने के लिए तैयार हो गया था[4]। हरिवाहन ने विद्याधर राज्य की प्राप्ति के लिए अरण्य में जाकर घोर तपस्या की थी[5]।

फल के इच्छुक को सर्वप्रथम आराध्य देव के सेवक को प्रसन्न करना आवश्यक[6] समझा जाता था। मेघवाहन को वैताल को अपना शिर काट कर प्रसन्न करना पड़ा था[7]।

काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तपस्याएं कई प्रकार से की जाती थीं। कुछ वासनाओं से रहित होकर कन्द मूल फल खाकर पंचतप करते थे, कुछ गले तक पानी में रह कर, कुछ अधोमुख होकर धूम्रपान करके तथा कुछ सूर्य को अपलक देखकर कठोर तप करते थे[8]। उनके वस्त्रों में मृगछाल होता था। जैनी भी अक्षमाला आदि लेकर कठोर तप करते थे।

तपस्याएं अरण्यों में तो हुआ ही करती थीं साथ ही गृहस्थ जीवन में भी तप हो सकते थे। मेघवाहन ने प्रासाद में रहकर ही तप किया था[9]।

मूर्तियों का भी पूजन हुआ करता था। मेघवाहन श्री की मूर्ति की स्थापना करके उसको पूजा किया करता था। मूर्तियों के लिए मन्दिरों का निर्माण[10] भी होता था। पुराने मन्दिरों का उद्धार किया जाता था। मंदिर दुर्गा, शिव और राजलक्ष्मी[12] के साथ-साथ जैनियों के भी होते थे। कवि ने इन मन्दिरों के वर्णन में विशेष उत्साह दिखाया है। इन मन्दिरों में जिनों की मूर्तियां होती थीं। इन मन्दिरों में निरन्तर दीपक जलता था, इक्षुकाण्ड से उनके तोरण तथा पल्लवों से बन्दनवार बनाये जाते थे[13]। स्थान-स्थान पर शालि और चावल के स्तूप होते थे[14]।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि उस समय शाक्त, शैव तथा जैनी लोग थे और एक वर्ग वैष्णव धर्म को भी मानने वाला था[15]।

इन मन्दिरों के अतिरिक्त कामदेव के भी मन्दिर होते थे[16]। ये मन्दिर युवतियों के उपास्य स्थल हुआ करते थे।

स्त्रियां मन्दिरों में जाकर देवताओं को दण्डवत् करती थीं[17]। उनकी पूजा शिर झुककर की जाती थी[18]। मन्दिरों में बलि भी होती थी[19] किन्तु मनुष्य की हत्या करना पाप समझा जाता था। क्योंकि उन लोगों का विश्वास था कि ऐसे व्यक्ति को कई जन्मों तक कष्ट उठाने पड़ते हैं[20]। आत्महत्या करना भी पाप समझा जाता था[21]।

पुत्रहीन व्यक्ति को 'पुन्नाम' नरक के कष्ट उठाने पड़ते हैं[22] ऐसा लोगों का विश्वास था।

१- तिलक०पृ० ६३
२- ,, ६४
३- ,, ११
४- ,, ५२
५- ,, ३६८-४००
६- ,, ४६
७- तिलक०पृ० २३५-३६
८- ,, ३६६,३४५
९- ,, ६६
१०- ,, २३५
११- ,, २३५
१२- ,, ३४
१३- तिलक०पृ० ३०४
१४- ,, ३०५
१५- ,, १२
१६- ,, ३०५
१७- ,, २०५
१८- तिलक०पृ० ३५३
१९- ,, ३०३
२०- ,, २८८
२१- ,, ३०७
२२- ,, २१

इन लोगों ने विशेष वस्त्रों के सम्बन्ध में धारणा बना रखी थी कि अमुक वस्त्र से व्यक्ति शाप आदि से मुक्त हो सकता है। "निशीथ" नामक वस्त्र इसी प्रकार का था[1]।

लोग मंत्र-तंत्र में भी विश्वास करते थे और उसे रोगों के मुक्त करने का साधन मानते थे[2]। पुनर्जन्म में भी उनका विश्वास था[3]।

विद्याधर-योनि लोगों की दृष्टि में स्वर्ग सदृश समझी जाती थी। इन लोगों का उद्देश्य एक प्रकार से मुक्ति प्राप्त कराना होता था[4]।

वेताल न पक्षी, न पशु न मानव ही समझे जाते थे।[5] ये राक्षस कहलाते थे जिनका आहार मांस आदि होता था। आभूषण हड्डी आदि के होते थे।

लोग शकुन अपशकुन पर भी विचार करते थे। अंगों के फड़कने के अतिरिक्त १२ सूर्यों का एक साथ उदय होना अपशकुन माना जाता था क्योंकि वह विनाश का सूचक होता था[6]। स्वप्न में पारिजात वृक्ष का देखना शुभ माना जाता था। समरकेतु ने उस स्वप्न से हरिवाहन से मिलने की आशा बांध ली थी। लड़ाई में जाने के पहले शुभ मुहूर्त निकलवाया जाता था[8], समुद्र की पूजा की जाती थी[9]। मंगल विधान के लिए दधि, कुसुम, दूर्वांकुर वस्तुएं शुभ समझी जाती थीं। सप्तच्छद के प्रवाल से आच्छादित घड़े का सामने दिखाया देना भी शुभ समझा जाता था[10]।

समाज में अन्तर्जातीय विवाह मान्य न थे किन्तु राजा की अनुमति से यह विवाह हो सकता था। तारक और प्रियदर्शना का विवाह इसी प्रकार का था[11]। गन्धर्व विवाह राजाओं के बीच था[12]। कुसुमशेखर और गन्धर्वदत्ता का विवाह इसी प्रकार का था। राजकन्याओं के विवाह में स्वयंवर होते थे[13]।

इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विवाह आजकल की भांति उस समय भी था। शुभ लग्न में विवाह होता था, निमंत्रण जाता था, नगर को शोभित किया जाता था तथा भोज आदि होते थे[14]।

राजाओं के यहां पुत्र जन्मोत्सव बड़ी धूम-धाम से होता था। लोग प्रसूति-गृह में हाथ-पैर धोकर अन्दर घुसते थे, स्थान-स्थान पर स्वस्तिक बनाये जाते थे, द्वार पर आम्र पत्ते लटकाये जाते थे, षष्ठी होती थी, पलंग के किनारे पर अभिमंत्रित रक्षा-सूत्र की रेखा खींच दी जाती थी। दसवें दिन नामकरण संस्कार होता था, नगर के सभी देवताओं की पूजा होती थी, गुरु का विशेष सत्कार होता था, ब्राह्मणों को भूषणों से अलंकृत गाय बछड़े के साथ दान में दी जाती थी, पुरोहित अन्नप्राशन करता था तथा समग्र मंगलोपकरण के साथ बालक को चलना सिखाया जाता था। छठे वर्ष विद्या का आरम्भ कराया जाता था। राजकुमारों की शिक्षा की व्यवस्था राजकुल के अन्दर ही होती थी[15]। राजा के घर में पुत्र-जन्म के उपलक्ष्य में प्रत्येक दुकान, घर चौराहे पर तरह-तरह के चीनांशुक की ध्वजाएं लहराती थीं, तुरही रव तथा नृत्य

१- तिलक०पृ० ३७६ । ५- तिलक०पृ० ५०-५१ । ९-तिलक०पृ०१३१ । १३-तिलक०पृ०१४२
२- ,, १३३ । ६- ,, ३५ । १०- ,, ११५ । १४- ,, ४२५
३- ,, ४०५-१० । ७- ,, २०८ । ११- ,, १२६ । १५- ,, [illegible]
४- ,, २६ । ८- ,, ३६४ । १२- ,, २४३ ।

स्त्री और पुरुषों की शिक्षा भिन्न थी । राजकुमारियों को राजकन्योपयुक्त शिक्षा दी जाती थी । उन्हें उपनिषद,नाट्य, वेद, गीत, वादन तथा नृत्य आदि कलाएं सिखाई जाती थीं[1] ।

उस समय पत्र आदि गेरू से लिखे जाते थे । कागज के स्थान पर ताड़ी वृक्ष के पत्ते होते थे[2] । काव्य में ताड़पत्र पर कर्णाटादि लिपि में लिखी पुस्तकों का उल्लेख आया है[3] । सम्भवत: उस समय शब्दों के ऊपर लाइन खींचने की प्रथा न थी -- 'निराकृतस्वामिनिर-माम्बरतलोत्कीर्णाभिरिव.... वर्णपंक्तिभि रुद्भासितां प्रशस्तिमिव[4] ।'

चित्रकला का विकास उच्चकोटि में था । चित्र चित्र न रहकर सजीव प्रतीत हुआ करते थे[5] । राजमहलों में भी इस कला को प्रोत्साहन मिला था[6] । नृत्य कला भी अपनी चरम सीमा पर थी । ये नृत्य उच्च कोटि के हुआ करते थे[7] । नर्तकी तथा पुरुष शैलूष कहलाते थे[8] । नाट्य शालाएं हुआ करती थीं[9] । देवमूर्तियों से उस समय की मूर्ति-कला का भी परिचय होता है ।

संगीत तथा वाद्य-वादन को भी राजाओं की ओर से प्रोत्साहन मिला था । वीणा राजाओं का प्रिय वादन था[10] । वाद्यों को सुरक्षित रखने के लिए 'गलाफ' भी थे -- मरकतगुप्तैर्निचुलकाकृष्टप्रकृष्टवेण वीणा)[11] ।

वाद्यों में शंख, झल्लरी, मुरज, नगाड़ा, मृदंग, तुरही तथा अन्य कुछ बाजे थे । 'आतोद्य' भी एक प्रकार का बाजा उस समय था ।[12]

शिष्टा के प्रचार से समाज सभ्य था । पान आदि को देने के लिए एक विशेष पात्र होता था जिसमें रखकर दिया जाता था ।[13]

नगर में फव्वारे[14] और वापियों के[15] समुचित प्रबन्ध की ओर ध्यान रखा जाता था

शस्त्र-विषयक उन्नति उस समय परिलक्षित नहीं होती है । युद्ध में बाणों का प्रयोग होता था, अग्नि से तपे बाण फेंके जाते थे तथा पाषाणों की वर्षा होती थी । कुठार आदि से प्राचीरें तोड़ी जाती थीं । उस समय एक विशेष प्रकार का भाला होता था जिसमें सात हाथ की लम्बी बांस की छड़ लगायी जाती थी और उसकी एक नोक पर लोहे का नुकीला फल रहता था । फल के ऊपर लाक्षा चढ़ा रहता था । गदा-प्रहार होता था । इसके अतिरिक्त कील के सदृश भयंकर चक्र युद्ध में छोड़े जाते थे । 'शक्ति' नामक अस्त्र विशेष का लोग प्रयोग करते थे । शरीर रक्षा के लिए अपने पास कवच, ढाल तथा तलवार रखते थे ।

सामुद्रिक युद्ध के लिए जाते समय नाव में (संभवत: जहाज होता होगा) खाने-पीने ईंधन आदि सभी का प्रबन्ध रखा जाता था[16] ।

इस काव्य में दो प्रकार के पेशे का भी उल्लेख है[17] -- रंगा करने वाले (रंजक) और कारीगर(कारूकार) ।

१- तिलक० पृ० २२०	६- तिलक० पृष्ठ १८	११-तिलक०पृ० २६६	१६-तिलक०पृ०१३१
२- ,, ३५६	७- ,, १८	१२- ,, १५७	१७- ,, १२१
३- ,, १३४	८- ,, ३७२	१३- ,, ३६३	
४- ,, ३११	९- ,, ४१, ३७२	१४- ,, १७२	
५- ,, १६६	१०- ,, ७०	१५- ,, ११७	

इस काव्य में चूंकि कथावस्तु काल्पनिक है अत: काव्य में आए राजाओं एवं उनके नगरों की सत्यता के विषय में कुछ भी प्रमाणित रूप से नहीं कहा जा सकता है । कवि ने काव्य के प्रारम्भ में अपने आश्रयदाता की वंशावली वर्णित की है जिससे ऐतिहासिक भोज के विषय में थोड़ा-सा मालूम हो जाता है । इस काव्य के अनुसार उसकी वंशावली का क्रम--परमार-- श्री वैरसिंह--सीयकदेव - सिन्धुराज-वाक्पति राज मुंज तथा श्री भोज है ।

काव्य में अयोध्या का नरेश मेघवाहन, सिंहलद्वीप की रंगशाला नगरी का राजा चन्द्रकेतु तथा कांची का राजा कुसुमशेखर बताया गया है । ये राजा चाहे काल्पनिक हों किन्तु उनके राज्य काल्पनिक नहीं हैं, वे इतिहास में मिलते हैं । इनकी शासन-व्यवस्था से उस समय की राजनीतिक स्थिति का ज्ञान हो जाता है । कवि ने राजा मेघवाहन के गुणों को बताकर एक योग्य शासक के गुणों की ओर संकेत किया है । प्रजा में हर प्रकार से शान्ति रखना राजा का कर्तव्य समझा जाता था, स्वयं राजा अपनी नगरी का यदा कदा निरीक्षण करता था, कुछ चर हुआ करते थे जो राजा को शासन की गति की सूचना दिया करते थे । राजा के आराम का समय प्राय: दोपहर का ही हुआ करता था। उस समय वह खाना खाने के पश्चात् 'दन्तवलभिका' में बैठकर विनोद करता था, वहीं पर दूतों की बातालाप को सुनता था तथा उनके द्वारा लाई भेंटों को स्वीकार करता था[2] ।

योग्य शासक मंत्रि परिषद् भी रखता था, जिसके सदस्य प्रधानमंत्री, अमात्य वृद्ध, मूर्धाभिषिक्त नृपति, महासामन्त रत्नाध्यक्ष, महादण्डनायक, न्यायाध्यक्ष जो अक्षपाटलिक कहलाता था, महामात्य, धर्मसचिव तथा कोषाध्यक्ष हुआ करते थे ।

इनमें से कुछ मंत्री दिशाओं के अधिपति भी हो जाते थे । काव्य में वज्रायुध दक्षिण दिशा का सेनापति था । इसे महादण्डाधिपति भी कहा गया है । उत्तर दिशा का दण्डनायक नीतिकर्मा बताया गया है जिसने हूणपति को हराया था[11] ।

इन मंत्रियों को पूरी स्वतन्त्रता रहती थी । ये बिना राजा से पूछे युद्ध आदि छेड़ दिया करते थे और विजय होने के पश्चात् उसकी सूचना राजा के पास भेज दिया करते थे[12]

काव्य में कई विद्याधर राज्यों का उल्लेख आया है । जैसे विजयार्धगिरि शिखर पर विद्यमान गगनवल्लभ नामक नगर जहाँ का राजा विक्रमबाहु था, वैताढ्यगिरि के दक्षिण में विद्यमान रथनूपुर चक्रवाल जिसका राजा वज्रसेन था, पंचशैल द्वीप जिसका राजा विचित्रवीर्य था तथा अन्य कई राज्य आए हैं । इनकी ऐतिहासिकता में सन्देह किया जा सकता है किन्तु उन राज्यों के अध्ययन से ही उस समय मंत्रियों में नर्मसचिव तथा रत्न कोशाध्यक्ष भी होता था -- ऐसा ज्ञात होता है । साथ ही यह भी पता चलता है कि उस समय स्त्रियाँ भी अंगरक्षा के अधिकार में नियुक्त हुआ करती थीं --'अंगरक्षाधिकारनियुक्ताभिरंगनाभि राजन्यधारिणा ।'[13]

इन राज्यों से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय राजा विद्याधर तथा शबर जाति के भी हुआ करते थे । विद्याधर विदेशी समझे जाते थे ।[14] पंचशैल द्वीप का राजा

१-तिलक०पृ० १३-२०
२- ,, ६६-७१
३- ,, ६२
४- ,, ६३
५- ,, ७१
६- तिलक०पृ० १०३
७- ,, १८४
८- ,, २३२
९- ,, ८२,१०१,३६५
१०- ,, ८१
११-तिलक०पृ० १८२
१२- ,, ८९-१००
१३- ,, ३५१
१४- ,, १६२,३५८

चित्ररथीयें शबर जाति का राजा बताया गया है[१]। उसके आधीन राज्यों में कुशस्थल के राजा प्रतापशील, मगधेश्वर सुरकेतु, सौराष्ट्र मण्डल के महाबल तथा कलिंग, अंग,बंग, कौशल, कुरुत आदि के राजा बताए गए हैं,[२] क्योंकि उनकी कन्याएं उनका विनोद करने के लिए आयी थीं । इन राज्यों के नाम प्रसिद्ध हैं किन्तु उनके राजाओं के नाम के विषय में सन्देहात्मक दृष्टि ही रखनी पड़ती है ।

कलिंग राज्य का उल्लेख अयोध्या नरेश के राज्यक्षेत्र के वर्णन में भी मिलता है जिसके राजा का तो नाम नहीं किन्तु उसके पुत्र कमलगुप्त का उल्लेख आया है किन्तु उसका भी कोई राजनीतिक स्थिति के चित्रण की दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है ।

उस समय सेनाओं में अश्व,गज,पदाति[३] सेना तो थी ही साथ ही स्त्री सेना भी हुआ करती थी जो कवच धारण किया करती थी ।सेना के सामान ऊंट आदि पर चला करते थे और बैल भी साथ चलते थे[४]।

युद्ध की आशंका होने पर सबसे पहले नगरी की रक्षा करना राजा अपना कर्तव्य समझता था । दुर्ग की सर्वप्रथम व्यवस्था की जाती थी,विपत्तिकाल के लिए उसमें प्रचुर मात्रा में भोज्य पदार्थ रखा जाता था, खाई पर ध्यान दिया जाता था, दुर्ग को हर प्रकार से अजाध्य बनाया जाता था, हाथ से फेंकने के लिए पत्थर एकत्रित किए जाते थे तथा प्रतोली ब की रक्षा के लिए आप्त पुरुषों को नियुक्त किया जाता था[५]।

युद्ध के समय योद्धा अपनी रक्षा के हेतु टोप रखा करते थे --"शिरस्थितफारक-फारकप्राग्भमान.... ।[६] उनके एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में ढाल रहती तथा वक्ष:स्थल पर कवच रहता ।

युद्ध के शास्त्रों में गदा,शक्ति,[७]चक्र[८] प्रास, भल्ल,[९] धनुष,[१०] कुन्त,[११] छुरिर,[१२] पट्टिश आदि होते थे ।

युद्ध के समय बाजों में तुरही,[१३] काहल, पटह[१४] तथा नगाड़े[१५] बजा करते थे । पिंजड़ों में शेर भी लाया करते थे[१६]। उस समय गांव के गांव जला दिए जाया करते थे, प्रतोली तोड़ दी जाती थी । किन्तु योद्धा विश्वासघात नहीं करते थे । चेतनावस्था में लौट आने पर समरकेतु ने सामने खड़े नि:शस्त्र शत्रु पर प्रहार नहीं किया था[१७]।

युद्ध में विभिन्न देश के राजा अपना विशेष चिह्न रखकर चलते थे[१८]।

युद्ध की समाप्ति पर संग्राम में मरे योद्धाओं को तिलोदक सहित निवापांजलि दी जाती थी , घायलों का यथासाध्य औषधियों से उपचार होता था । शत्रु का भी उपचार होता था[१९]। युद्ध के उपरान्त योद्धा शराब भी पीते थे[२०]।

१- तिलक०पृ०	२६६	६- तिलक०पृ०	८३	११- तिलक०पृ०	१३३	१६-तिलक०पृ०	८४
२- ,,	२६७	७- ,,	८७	१२- ,,	३७०	१७- ,,	६६
३- ,,	३६१	८- ,,	८८	१३- ,,	८३	१८- ,,	११६
४- ,,	११८	९- ,,	८५	१४- ,,	८४	१९- ,,	६७
५- ,,	८२-८३	१०- ,,	१२४	१५- ,,	८६	२०- ,,	८४

युद्ध-शान्ति, सन्धि-प्रस्ताव से हुआ करती थी । इस सन्धि में राजा अपनी कन्या तक को दे दिया करता था । कुसुमशेखर ने यही करने को सोचा था[1]। इसके अतिरिक्त अपने राज्य का कुछ भाग दे देने से, गजादि की सम्पत्ति देने से या पण-बंधन से भी हो जाया करती थी ।[2]

युद्ध यात्रा में राजा छावनियां डाला करते थे । जहां आवश्यकता पड़ती तम्बू आदि गाड़ अथवा उखाड़ लिया करते थे ।

इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय दण्ड- व्यवस्था कठोर थी । हाथ-पैर का काटना, देश-निष्कासन, गदहे पर चढ़ाना आदि सजा के रूप थे[3]।

राजमहलों[4] में कंचुकी, किरात, कुब्ज, मूक, तथा वामन और कन्यान्तःपुर में किरात, वर्षवरक और कंचुकी[5] होते थे ।

इस काव्य में कुछ नगरों तथा द्वीपों की भौगोलिक स्थिति का भी उल्लेख हुआ है । जैसे अयोध्या के दक्षिण में चम्पा[6], कांची[7], द्वीपों में सिंहल द्वीप[8], नन्दीश्वर द्वीप[9], जम्बू-द्वीप[10] और पंचशैल[11] द्वीप तथा पर्वतों में रत्नकूट[12] तथा सुवेल[13] पर्वत का उल्लेख मिलता है । कांची में अपरधनवनकांचना नगरी, सिंहलद्वीप में रंगशाला और नन्दीश्वर द्वीप में रतिविशाला नामक नगरी बताई गई है ।

अयोध्या के उत्तर में वैताढ्य पर्वत बताया गया है[14]। अयोध्या से उस ओर जाते समय बहुत से जंगल पड़ते थे तत्पश्चात् उसके पश्चिम में एक शृंग चोटी थी वहां पर अदृष्ट पार सरोवर[15] था। उस पर्वत के दक्षिण में रथनूपुर चक्रवाल[16] तथा उत्तर-दक्षिण में गगनवल्लभ[17] नामक नगर का होना बताया गया है।

लेकिन इन नगरों की वास्तविकता का पता न चलने के कारण इस भौगोलिक स्थिति का भी कोई विशेष मूल्य नहीं रह जाता है ।

नगरी आदि के वर्णन से कवि के समय की सभ्यता का परिचय मिलता है । कवि का समय भोज का था उस समय आर्थिक अवस्था उन्नत थी । उसी के अनुरूप उसने अयोध्या का वर्णन किया है । उसकी सभ्यता के विषय में बताते हुए कहा है कि वह विशाल वप्र वाले प्राकारों से वेष्टित थी, वहां उतरने में सुविधा जनक सीढ़ियों से युक्त वापियां थीं, सागर की विडम्बना करने वाली खाइयां थीं, चारों ओर गोपुरों पर ध्वजाएं लहराया करती थीं, देवमन्दिर श्वेत होते थे, उनके शिखर पर स्वर्णिम कलश की आभा शेषनाग का उपहास किया करती थीं । सिंचाई के लिए पानी निकालने के यन्त्र थे, विविध मणियों की कान्ति से दिन रात का भेद मिटाने वाले प्रासाद थे । इत्यादि[18]।

राजा जब चलता तो सेवक उसके पीछे दूध, घी, दही से भरे सोने के घड़े, चन्दन, केसर, आदि से सुगन्धित पात्रों एवं बहुमूल्य वस्त्रों को लेकर चलते थे[19]। राजा का पर्यंक रत्नों से खचित रहता था और उसमें मसनद लगी रहती थी[20]।

राजा अथवा उसके प्रासादों में ही समृद्धि की चरम सीमा नहीं थी अपितु बाजार के दोनों ओर के मकान भी भव्य होते थे[21]। गगनचुम्बी प्रतोली, ऊंचे-ऊंचे तोरण एवं

१- तिलक०पृ० ३२७, २-३२८, ३-११४, ४- ७६, ५- ३८६, ६- ४२४, ७- ८२, ८-२७, ११४
९- ,, ४०, ४०६, ~~१०- ...~~ १०- ३३, ११- २६६, १२- १३७-१३८,
१३- ,, १३४-३६, १४- १९८, २०२, २१०, २४२, ३६१-६२, १५- २०२-२०४, १६- २४१
१७- ,, ४०१, १८- ७-११, १९- ६६, २०- ७०, २१- ८ ।

वन्दन मालाओं से सुशोभित आंगन की वेदी होती थी ।

सिंहल द्वीप लोगों की दृष्टि में रत्नों की खान समझी जाती थी -- 'सिंहलद्वीप-भूमिरिव रत्ननिवहस्य'[1]।' अपरधनकनकवंशा के वर्णन में कवि ने उसे नारंगी, कटहल, केला, नारियल, मुक्ताफल आदि से सम्पन्न बताया है ।[2]

सिंहल द्वीप के समान विद्याधर भी धनाढ्य माने जाते थे । इसीलिए उस राज्य का अधिकार चक्रवर्तित्व का सूचक समझा जाता था[3]।

सिंहल द्वीप के वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय गृह पर विमान-आकृति के हुआ करते थे ।[4] तिलकमंजरी के प्रासाद वर्णन से ज्ञात होता है कि प्रासादों में पताकाएं फहराती थीं उनमें अनेक शालायें हुआ करती थीं जो सम्भवतः कक्ष अथवा कमरे हुआ करते थे । इन कमरों में छत्र चामर, सिंहासन आदि रखे रहते थे । प्रासाद में गोपुर द्वार भी होता जो गरुड़, सिंह, मयूर के आकार वाले वाहनों से अलंकृत रहता था[5]।

नगर प्रासादों के अतिरिक्त मन्दिर भी विविध मणियों की कान्ति से सुशोभित बताए गए हैं । आयतनों में गोपुर, मणिमय स्तम्भ-तोरण से युक्त बड़े-बड़े द्वार, प्राकार, प्रतोलिका एवं छोटे द्वार होते थे ।[6] ये आयतन बहुत ऊंचे हुआ करते थे । उसके अन्दर कमरे होते थे[7]। कुछ मन्दिरों के द्वार[8] में यक्ष-देवता की प्रतिमा रहती थी तथा कालागुरु धूप से वातावरण सुगन्धित रहता था । सिंहासन गृह-चक्र एवं विविध पशुओं के चित्रों से सुशोभित रहता था -- 'गृहचक्रालंकृतमृगभाजि सिंहोद्भासिते नभस्तल इवालयोपरि सिंहासने[9]।' मुख्य प्रतिमा के आस पास बहुत से सुरों के चित्र भी बने रहा करते थे[10]।

कुछ मन्दिरों में मणिमय सीढ़ियाँ, मणिमय कलश, मणिमय शलाकाओं, मणिमय शालभंजिकाओं का भी वर्णन कवि ने किया है जो कवि के लिए साधारण-सी बात है[11]। मन्दिरों में वृत्ती और जगती हुआ करती थीं । बैठने के लिए रजत वेदिका बनाई जाती थी और मण्डप भी हुआ करते थे ।[12]

काव्य में कुछ पर्वतों को रत्नों का आगार माना गया है[13]। सुवेल पर्वत के वर्णन में कवि ने उसे मणि, सोने और चांदी की खान बताई है[14]। रत्नकूट के पर्वत के वर्णन में बालू तक को रत्नमय बताया है जिसमें अतिशयोक्ति स्पष्ट है किन्तु उस वर्णन से ऐसा प्रतीत होता था कि लोग कुछ शिखरों पर रत्नों की सम्भावना किया करते थे । कुछ बहुमूल्य प्रस्तरों का भी उल्लेख वैताढ्य पर्वत के वर्णन प्रसंग में मिलता है । जैसे सोने को पैदा करने वाले, दिव्याभा वाले, कांसा को उत्पन्न करने वाले, मणियों को जनने वाले तथा इसी प्रकार के कुछ प्रस्तर काव्य में आए हैं जिनसे ज्ञात होता है कि लोग इस प्रकार के पत्थरों से परिचय रखते थे[15]।

उस समय लोगों को जड़ी बूटियों की भी जानकारी थी । दृष्टि-दोष, जरारोग, मृत्यु के भय तथा विष[16] को दूर करने में समर्थ कुछ औषधियां भी थीं जो प्रायः पर्वतों पर मिला करती थीं ।

१– तिलक०पृ०२७
२– ,, २६०
३– ,, १६७
४– ,, ११४
५– ,, ३७०
६– तिलक०पृष्ठ १५७
७– ,, २१४–२१५
८– ,, २१६
९– ,, २१७
१०– ,, २१७
११– तिलक०पृष्ठ १५५
१२– ,, ३५२
१३– ,, १३२–३४
१४– ,, १३७
१५– ,, २३४
१६– तिलक०पृ० [illegible] २३[illegible]

काव्य में आभूषणों में मणि जटित नूपुर, कर्णाभूषण, सोने के वलय, रत्नजटित अंगूठी का तो वर्णन है ही साथ ही इसमें पद्मराग से जटित पेटी का उल्लेख भी आया है, जिसे पुरुष बांधा करते थे --

~~उज्ज्वलदनेक~~ उज्ज्वलदनेकपद्मरागशकलया तानवप्रकर्षादतिकष्टदृष्टमुदरदेशमा-विष्कुर्वत्पुपसंगृहीत प्रचुरदीप्त्येव तानां पट्टिकया गाढावनद्धकुक्षिरितपट्टांशुकनिवसन: ।[1]

यह पेटी सम्भवत: आजकल की चपरास रही होगी जिसे चपरासी अपने कमर में बांधते हैं।

काव्य में कवच भी मुक्ताफल से खचित और सोने से निर्मित बताये गये हैं[2]। इनों में बड़ा-बड़ा मोतियां लटका करती थीं[3]। हाथियों के आभूषणों में "नक्षत्रमाला" का उल्लेख आया है[4]।

राजाओं के उगालदान भी मणिमय हुआ करते थे[5]।

वाद्यों में मृदंग, पटह, वल्लकी,[7] शंख,[8] मुरज, वीणा, वेणु[9], काहल, फल्लरी,[10] कांस्यताल (करताल),[11] आतोद्य,[12] तुरही[13] और मार्दल[14] थे। दन्तवीणा का भी उल्लेख काव्य में आया है[15]।

इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वाहन, हाथी, घोड़ा, सिंह, महिष, अजगर, मयूर एवं हंस की आकृति के होते थे[16]। विमानों में वातायन हुआ करते थे[17]।

सामुद्रिक यात्राएं होती थीं। यह यात्रा नाव तथा पोत से होती थी[18]। ये पोत सम्भवत: जहाज ही होते थे। इसमें खाने के लिए भोज्य पदार्थ, पीने के लिए पानी, ईंधन, घी, तेल, कम्बल, औषधि एवं द्वीपान्तरों में दुष्प्राप्य सभी वस्तुओं का प्रबन्ध रखा जाता था[19]।

इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय पत्थर काटने की छैनी हुआ करती थी-- ~~तीक्ष्णकोटिभि~~ टंकिकाभिस्त...[20]। आरा थे -- "क्रकचकृत्तानि..."[21], जलयंत्र[22] (रहट) तथा धारागृह होते थे[23]। धारागृहों में फव्वारों का प्रबन्ध रहता था[24]।

इस प्रकार धनपाल की तिलकमंजरी से उस समय की परिस्थितियों के विषय में पर्याप्त सामग्री मिल जाती है।

१- तिलक०पृष्ठ १६४
२- ,, ३६१
३- ,, १५६
४- ,, ११५, ३६१
५- ,, ६१
६- ,, ३४
७- ,, ४१
८- ,, ५४
९- ,, ५७
११- तिलक०पृष्ठ १४१
१२- ,, १४७
१३- ,, २३६
१४- ,, २००
१५- ,, ३५८
१६- ,, ४२६
१७- ,, ५७
१८- ,, १४०
१९- ,, १३०
२१- तिलक०पृष्ठ ३५०
२२- ,, १७८
२३- ,, १७६
२४- ,, ४१८

गद्य चिन्तामणि--

जिस प्रकार तिलकमंजरी से सभी परिस्थितियों से सम्बन्धित विषयों का ज्ञान मिल जाता है उसी प्रकार गद्यचिन्तामणि से भी मिलता है । दोनों काव्यों के रचयिता जैनी कवि हैं किन्तु धनपाल ने अपने धर्म के समक्ष किसी धर्म को निरादर की दृष्टि से नहीं देखा है किन्तु ओडयदेव ने अन्य धर्मों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है । इसका कारण हो सकता है कि कवि कट्टर जैनी रहा हो या उस समय तक धर्म की दृष्टि से परिस्थितियों में अन्तर आ गया हो । यद्यपि काव्य में ब्राह्मण के लिए `धरणीसुर` , `क्षितिसुर` आया है किन्तु कवि ने उनके धर्म की निन्दा की है । कवि के इस प्रकार के विचारों से जैन धर्म तथा ब्राह्मण धर्मावलम्बियों के वैमनस्य का पता चलता है । जैनी ब्राह्मणों की तपस्याओं को `अहो देहीनां मोहनीयकर्मेदं दुर्मोचप्रसरं यत्तपस्या अपी मुधा क्लिश्यन्ते` इति... न हिंस्यात्सर्व भूतानि` इति विश्रुतां श्रुतिं विजानतोऽपि किं हिंसा-निदाने तपस्यैकतानता भवन्ति`[1] आदि कह कर निन्दा किया करते थे । किन्तु वे स्वयं कठोर तप किया करते थे । उनके यहां बाह्याडम्बर कभी थे । मन्दिर में जाकर देव के सम्मुख प्रव्रज्या लेकर वे सिर मुंड़वा लेते थे, आभरण, वस्त्र एवं सुगन्धित द्रव्यों को छोड़ देते थे तथा उन्हें राग,द्वेष,मोह आदि विकारों को भी छोड़ना पड़ता था । तत्पश्चात् वे तप करने के अधिकारी होते थे । उन्हें यम-नियम के साथ रहना पड़ता था, अन्न का खाना तथा शय्या पर लेटना त्यागना पड़ता था । जिस प्रकार ब्राह्मण कठोर तप करके मुक्ति पाता था उसी प्रकार जैनी अन्त में क्षपणक की स्थिति प्राप्त करता था[2] । जिस प्रकार ब्राह्मण मोह से छूट जाते थे उसी प्रकार जैनी शुक्लध्यान से छूट जाते थे । तपस्या करने के पश्चात् जो स्थिति ब्राह्मण की होती थी वही जैनी की भी होती थी । क्योंकि जैनी सप्त प्रकृति से रहित चतुष्टय को नष्ट करके मुक्ति प्राप्त करता था[3] । जैन धर्म का श्रवण, ग्रहण, धारण और अनुस्मरण ब्राह्मण धर्म का श्रवण, मनन और निदिध्यासन का द्योतक था । जैनी इन शास्त्रों की जानकारी करके पुरुषार्थ की सिद्धि करके मोक्ष की प्राप्ति करते थे और ब्राह्मण धर्म में भी उन्हीं से ज्ञान प्राप्त करके लोग मोक्ष प्राप्त करते थे ।

जैन धर्म में भी मूर्तिपूजा एवं उनकी प्रदक्षिणा होती थी[4] । ब्राह्मण देवताओं की भांति उनके भी देवताओं का स्वरूप था --

यदीयपादामृतसेवनेन तरति संसारसरं मुनीन्द्रा: ।
स एष संतोषिततुर्विनीन: संसार तापं शमनो करोतु ।।`[5]

१- ग०चि० पृष्ठ ६६
२- ,, १६८
३- ,, ४०
४- ,, १०३
५- ,, १००

इनके धर्म में भी तीर्थ स्थान थे --सर्वलोकप्रार्थ्यानि तीर्थानि च तत्रदर्शितातिशयानि पश्यन् ।[1]

इस काव्य के अध्ययन से पता चलता है कि ब्राह्मण और जैन धर्म में समान विशेषता होते हुए भी काफी वैमनस्य था । ब्राह्मण धर्म में यज्ञ होते थे किन्तु जैन धर्म में उसका कुछ भी महत्व नहीं था । केवल सम्यकत्व, रत्नत्रय कर्माष्टक (ज्ञानावरणीय,दर्शनावरणीय मोहनीय, वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय) तथा गुणाष्टक (अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख, अव्याबाधत्व, अगुरु लघुत्व, अतिसूक्ष्मत्व और अवगाहनत्व) पर बल दिया जाता था ।

जिनालयों का स्वरूप मन्दिरों से भिन्न होता था । जिनालयों में स्तूपिका और गोपुर होते थे ।[2] उनमें सिंह बने रहते थे[3] । ये आकार में वृक्ष तथा सन्यासियों से भरे रहते थे ।[4] उनमें जैन महोत्सव हुआ करते थे ।[5]

इस काव्य से पता चलता है कि जैन धर्म में कोई भी नि:संकोच सर्वत्र आ-जा सकता था -- ' जैनजनसर्वस्वतया नि:शंकं प्रविशन्[6] ।'

इस काव्य में वर्णित नगर निवासियों के प्रसंग से पता चलता है कि धार्मिक वैमनस्य होते हुए भी लोग कुटिल स्वभाव के प्राय: नहीं हुआ करते थे । कवि ने उन्हें दयालु, पराक्रमी, क्षमाशील, इन्द्रिय-निग्रही आदि बताया है । नगर के दक्षिण[7] के निर्माणलोक वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय कुछ मन्त्रसिद्ध लोग भी हुआ करते थे ।

हेमांगद जनपद के वर्णन में कवि ने जैन धर्म के प्रचार की अधिकता दिखाई है । जिनालयों में निरन्तर इसी धर्म के उपदेशों के होने का ही उल्लेख किया है ।

इस काव्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि वर्ण-व्यवस्था कवि के समय में थी । ब्राह्मणों का कार्य अध्ययन-पूजा आदि करना था[8] । वैश्य का काम व्यापार करना था । काव्य में श्रीदत्त नामक वैश्य एक बहुत बड़ा व्यापारी बताया है[9] । क्षत्रिय पृथ्वी की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे ।[10]

एक शबर जाति भी थी जो अपने केश को चमरी मृग से गूंथते थे, सिर पर मयूर के पंख रखते थे, व्याघ्र चर्म से शरीर के नीचे का हिस्सा ढकते थे, कौड़ियों के आभूषण से अपने को अलंकृत करते थे, पैरों में चप्पल पहनते थे, धनुष को लेते थे, चण्डी देवी की उपासना करते थे तथा मधुपान करते थे ।[11]

१- ग०चिं०पृष्ठ १०८
२- ,, ३३
३- ,, ५
४- ,, १५६
५- ,, १०
६- ,, ३८
७- ग०चिं० पृष्ठ १६१
८- ,, ३५
९- ,, तृतीय लम्ब
१०- ,, १५५
११- ,, ४८

जैनियों की दृष्टि में स्त्रियों की दशा शोचनीय थी । उन्हें छलों, कपटी, विश्वासघातिनी आदि समझा जाता था[१]।

इस काव्य के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि अन्तःपुर में युवतियां पहरेदार हुआ करती थीं जो बायें हाथ में बेंत लेतीं और दूसरे हाथ में तलवार लेती थीं तथा ऊपर से नीचे तक लाबादा पहने रहती थीं[२]।

उस समय लोग रिश्वत दिया करते थे । गन्धोत्कट काष्ठांगार को प्रसन्न करने के लिए उसके पास अपार धनराशि लेकर गया था[३]।

उस समय पशु चिकित्सक भी हुआ करते थे । काष्ठांगार के हाथी का इलाज करने में एक पशु चिकित्सक का उल्लेख आया है[४]।

कुछ लोग विष के निवारण के मन्त्र से भी परिचित थे -- प्रवर्तमान तुमुलव्यतिलवविषधरनिवारणमन्त्रणम्[५]।

शकुन-अपशकुन में अंग परिस्पन्दन के अतिरिक्त स्वप्न में विशाल वृक्ष का गिरना अपशकुन, कनक मुकुट का दिखायी देना पुत्रोत्पत्ति का सूचक तथा अशोक वृक्ष पर लटकती हुई माला वधू की सूचक समझी जाती थी[६]। जल से भरा घड़ा देखना शुभ माना जाता था किसी भी मंगल कामना के लिए उसके आगमन के समय घर पर अथवा सड़क पर जलपूर्ण घड़े रखे जाया करते थे । जीवंधर जब अपने घर लौट रहे थे तब राजमार्ग में जलपूर्ण घड़े रखे गए थे[७]।

विवाह के समय कुछ वस्तुएं शकुन की मानी जाती थीं । जैसे मुहूर्त निकलवा कर विवाह करना[८], बेलें से घर की सजावट करना[९], आठ मंगल द्रव्यों का बनाना[१०], विवाह के समय कन्याओं का लाल वस्त्र पहनना[११], वर का इन्द्र की दिशा की ओर मुख करना[१२], गोबर से भूमि को लीपना, दीवारों पर स्त्रियों के हाथों के लाल छापे होना, दूध, दही, घी से भूमि का प्रक्षालित होना एवं अग्नि का होना लोग आवश्यक समझते थे । पुत्री को ला कर पिता वर के हाथ में जल डालता और वर प्रतिज्ञा करते हुए उस जल को ले लेता था और अग्नि की प्रदक्षिणा करता था[१३]।

उस समय कुलीनों में अन्तर्जातीय विवाह मान्य न थे । लोकपाल नामक राजा अपनी कन्या के विवाह के सम्बन्ध में जीवक स्वामी के लिए वैदेशिक होने का सन्देह करता है । सन्देह के दूर होने पर ही उसके साथ विवाह करता है ।[१४]

वैसे इस काव्य में इस प्रकार के विवाह का उल्लेख मिलता है । जीवंधर ने नन्दगोप की कन्या गोविन्दा[१५] तथा वैश्य कन्या सुरमंजरी[१६] से विवाह किया था -- ऐसा काव्य में

१- ग०चिं०पृष्ठ ११०-११
२- ,, १२६
३- ,, ८६
४- ,, ८५
५- ग०चिं०पृ० ६२
६- ,, १८
७- ,, ७१
८- ,, ८३
९- ग०चिं०पृष्ठ १०४
१०- ,, १५०
११- ,, ८३
१२- ,, ७२
१३- ग०चिं०पृ०५४-५[illegible]
१४- ,, ६३
१५- ,, ५४
१६- ,, नवम लम्ब

आया है ।

उस समय विवाह मामा की लड़की से भी हो सकता था । जैसा कि विदेह के राजा गोविन्द की कन्या का विवाह उसके भान्जे जीवंधर से हुआ था[1] ।

विवाह एक से अधिक भी हो सकते थे । क्योंकि जीवंधर के आठ विवाहों का काव्य में उल्लेख है । इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि समाज में बहु विवाह की प्रथा का प्रारम्भ हो गया था । किन्तु गन्धर्व विवाह समाज में मान्य न था विवाह करने के पूर्व माता-पिता से अनुमति ली जाती थी । जीवंधर के सब विवाह इसी प्रकार से हुए थे ।

विवाह करने में लोग कुटिल चालें चला करते थे जीवंधर ने वृद्ध का रूप धारण कर सुरमंजरी को ठगा था[2] ।

स्वयम्बर की प्रथा राजाओं के बीच में ही नहीं जनसाधारण के बीच में भी उस समय तक हो गयी थी-- जैसा इस काव्य से पता चलता है । क्योंकि श्रीदत्त नामक व्यापारी ने गन्धर्वदत्ता के विवाह में इस प्रथा को अपनाया था[3] ।

स्वयम्बर प्रथा में शर्त रहती थी । कन्या सखियों के साथ मण्डप में जाती थी । उस समय सखियां हाथ में शुक और मणिदर्पण को लिए रहती थीं[4] ।

पुत्रोत्सव में कैदी छोड़ दिए जाया करते थे । धात्रियां राजाओं से पुरस्कार पाती थीं, कुब्ज वामन आदि आभूषण लेते थे, वैश्य कुण्डलियां बनाते थे, मंगलाचार एवं दान आदि होते थे[5] । सातवें दिन नामकरण संस्कार होता था[6] । इस प्रकार का महोत्सव साधारण जनता के बीच भी होता था । गन्धोत्कट ने इसी प्रकार का पुत्र -महोत्सव मनाया था[7] ।

बच्चों का विद्या संस्कार किसी पवित्र स्थान पर होता था । अधिकांशत: लोग जिनालय को ही उपयुक्त समझते थे । उसके लिए विद्या-मण्डप बनाया जाता था जो गोबर से लीपा हुआ, विविध कुसुम हारों से अलंकृत एवं सुरभित तथा मणियों की कांति से दीप्त हुआ करता था । दीवारों पर पाप के भयंकर परिणामों के चित्र बने रहते थे भूमि पर लाल-कुसुम छिटकाये जाते थे, वंदनवार लटकाये जाते थे तथा कालागुरु धूप के धुएं से वातावरण पवित्र किया जाता था । तरह-तरह के बाजों से मंगल पाठ हुआ करता था । विद्या-संस्कार के पहले अभिषेक होता था । तत्पश्चात् पुरोहित देव या 'जिन' की आराधना करके सरस्वती की पूजा करा कर विद्या संस्कार कराता था[8] ।

१-ग०चिं० नवम-लम्ब पृ०१५०
२- ,, पृ०-२८ नवम लम्ब
३- ,, ०६६ २८
४- ,, ६६
५- ग०चिं० पृष्ठ २८
६- ,, ३२
७- ,, प्रथम लम्ब
८- ,, पृष्ठ ३४

विद्या मण्डप में स्वच्छ वितान, सरस्वती की प्रतिमा से युक्त चित्रपट, सम्पूर्ण ग्रन्थ कोश तथा सब प्रकार के शस्त्र आदि रक्खे जाते थे[1]।

विद्याओं में व्याकरण, तर्कशास्त्र, सिद्धि-उपाय के सिद्धान्त, साहित्य, काव्य-विस्तार शब्द-ज्ञान, प्रमाण-निपुणता, नीतिशास्त्र, लक्ष्यभेद, शस्त्र शिक्षा, अश्वारोहण विद्या दृष्टि विद्या, वीणा, वेणु आदि का वादन-प्रयोग तथा नृत्य आदि कलाएं थीं जो उस समय की सांस्कृतिक उन्नति की ओर संकेत करती हैं[2]। उस समय पाठशालाएं खुले स्थानों पर होती थीं[3]।

इस काव्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उस समय चित्र देवताओं के ही नहीं होते थे अपितु पूर्ववर्ती राजाओं[4] के भी हुआ करते थे। अपने प्रासाद में पहुंच कर जीवंधर ने सत्यंधर का चित्र देखा था।

तिलकमंजरी की भाँति इस काव्य में भी कई छोटे-छोटे राज्यों एवं वहां के राजाओं का उल्लेख हुआ है। जैसे पल्लव के राजा लोकपाल, क्षेमपुरी के राजा नरपति है हेमाभपुरी के दृढ़मित्र आदि। तिलकमंजरी के राज्यों एवं राजाओं की भाँति इस काव्य में आए राज्यों एवं राजाओं के विषय में भी कवि के कल्पना तत्व की प्रधानता परिलक्षित होती है। यत्र तत्र ही राजनीतिक स्थिति का ज्ञान हो पाता है। जैसे हेमाभपुरी के राजा की शासन-व्यवस्था के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि लोग कुछ राजाओं से खाली हाथ नहीं मिल सकते थे। क्योंकि दृढ़मित्र से कष्ट निवेदन करने के लिए प्रजा पुष्प लेकर आयी थी।--

गदापल्लव गुच्छप्रण यिपाणि सल्लवा पल्लवा।
भूयं धरावल्लभस्य द्वारि स्थिताश्चक्षुः।"[5]

इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है कि पराजित राजा विजित राजा के सामने शस्त्रों को रख दिया करता था[6]।

राजा सत्यंधर के राज्य के वर्णन से ज्ञात होता है कि राजा से किसी बात के निवेदन करने के पूर्व लोग उसके गुणों का बखान किया करते थे। प्रतिहारी सत्यंधर से काष्ठांगार के घेरे डालने की बात कहने के पूर्व गुणों का ही गान करती है[7]।

राजा सत्यंधर के राज्य वर्णन से उस समय की मंत्रि-परिषद् के विषय में भी ज्ञात होता है। उस समय इसके सदस्य राजनीति कुशल, छल-कपट से रहित, विवेकी और प्रौढ़ होते थे। इनमें से कुछ मंत्री कुलागत होते थे। ये राजाओं को उपदेश भी

१- ग०चि० पृष्ठ ३५
२- ,, ३५-३६
३- ,, १११
४- ,, १४८
५- ग०चि० पृष्ठ ११७
६- ,, ११८
७- ,, २५

दे सकते थे । वे सलाह देते थे किन्तु राजा को अधिकार था कि उस सलाह को माने अथवा न माने । सत्यंधर ने उनकी सलाह की अवहेलना करके अपना राज्य काष्ठांगार को दे दिया था ।

इसके पदों में राजश्रेष्ठिपद, युवराज पद, महामात्र पद, तथा कर पद थे[2]। काष्ठांगार के राज्यकाल में चौरिकाध्यक्ष अथवा चौराध्यक्ष पद का भी उल्लेख हुआ है । चौराध्यक्ष का कार्य सम्भवत: चोरों को पकड़ने अथवा उनके दण्ड देने का हुआ करता होगा किन्तु काव्य ग्रन्थ से कुछ स्पष्ट नहीं हो पाता है । लेकिन इतना तो स्पष्ट ही है कि उस समय लोगों की चोरों आदि से रक्षा करने का प्रबन्ध था । राज-प्रासाद में गुरु, पुरोहित तथा कवच और वेत्र को धारण करने वाले द्वारपाल हुआ करते थे[4]। घोषणा करने वाला चाण्डाल होता था[5]। गोपालों का स्वामी ग्रामणी होता था । नन्दगोप इसी पद पर था[6]।

इस काव्य में जेल की भी समुचित व्यवस्था थी -- ऐसा ज्ञात होता है क्योंकि काव्य में उसके अधिकारी का भी उल्लेख आया है[7]। काव्य से उस समय की दण्ड व्यवस्था का भी परिचय होता है । पैरों को लोहे की जंजीर से बांध कर डाल दिया जाता था काष्ठांगार ने कुछ मंत्रियों को इसी प्रकार कैद किया था[8]। किन्तु नए राजा के गद्दी पर बैठने की खुशी में कैदियों को छोड़ दिया जाता था[9]।

कर की व्यवस्था के लिए एक 'करपद' बना था[10]। इस पद का अधिकारी सम्भवत: करों का ब्यौरा रखता रहा होगा । प्रजा तो कर देती ही थी साथ ही पराजित राजा भी विजित राजा को 'कर' के रूप में सोना अथवा बहुमूल्य प्रस्तर दिया करते थे[12] 'कर' रूप में हाथी भी दिए जाते थे[13]।

इस काव्य से यह भी ज्ञात होता है कि राजा अपनी कन्याओं का विवाह करके मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिया करते थे । पल्लव नरेश, हेमाभपुरी तथा क्षेमपुरी के राजा ने सत्यंधर के पुत्र जीवंधर से इसी प्रकार मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया था ।

इस काव्य में हेमांगद का सम्बन्ध मालव, चोल, केरल, पाण्ड्य, पारसीक, कलिंग, कश्मीर, अम्भोज, आदि देशों से बताया गया है[14]। इसके अतिरिक्त यहां का राजा

१- ग०चिं०पृष्ठ १४८-४६
२- ,, १०८
३- ,, १६५
४- ,, १३८
५- ,, १४६
६- ,, ५०-५१
७- ,, १४८
८- ग०चिं०पृष्ठ २४
९- ,, १४८
१०- ,, १४८-४६
११- ,, १५५
१२- ,, १५१
१३- ,, ६
१४- ,, दशम लम्भ

सत्यंधर काश्यपीपति भी कहा गया है[1], जिससे ज्ञात होता है कि उसका अधिकार काश्यप में भी था । इसका सम्बन्ध विदेह से भी था । वहां का राजा गोविन्द उसका साला बताया गया है ।

काव्य में आया है कि विदेह का राजा गोविन्द सत्यंधर का साला था, उसी की कूट चाल से जीवंधर ने पुन: अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर लिया था ।

काव्य में यह भी आया है कि काष्ठांगार ने गोविन्द को मरवाने के लिए षड्यन्त्र रचा था किन्तु उसमें वह सफल नहीं हो पाया ।

किन्तु ये घटनाएं सत्य हैं कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है ।

काव्य से यह भी ज्ञात होता है कि गायों के चुरा लिए जाने पर अथवा स्वयंम्बर के कारण राजाओं के बीच युद्ध हुआ करते थे । उस समय गाय परम सम्पत्ति समझी जाती थी अत: राजा उसके लिए हमेशा प्राण देने को तत्पर रहता था ।

सेनाओं में कोई विशेष सेना न थी । वही हाथी, घोड़े , रथ, पैदल और धनुर्धारियों की सेना थी । हेमांगद में अवश्य कुन्तधारी[2] सेना का उल्लेख हुआ है ।

सेना के युद्ध प्रस्थान करने पर हाथी, घोड़े, तुरग, खर, करभ, महिष, मेष,[3] शाक्वर(बैल), रथांग तथा बैलगाड़ियों पर आवश्यक सामग्री रख ली जाया करती थी ।

योद्धा सिर की रक्षा का भी प्रबन्ध करते थे -- पिनिद्धाधौरुके रुशीर्षके[4] ।

युद्ध के लिए जाते समय राह चलते लोगों के लिए धन लुटाया जाता था[5] । युद्धोपरान्त विजय मिलने पर प्रजा को सोना, कपड़ा, कंबल, कड़े आदि दिये जाते थे[6] ।

राजा जब एक देश से दूसरे देश जाता तो बीच में पड़ने वाले अरण्यों को कण्टकविहीन किया जाता था । बीच-बीच में कुओं की सुव्यवस्था की जाती थी और महिष मेष आदि वाहक पशुओं पर यथेष्ट सामग्री रख ली जाया करती थी[7] ।

इसके अतिरिक्त कवि ने अपने काव्य में अपने राजनीतिक विचार भी प्रस्तुत किये हैं कवि का कहना है कि योग्य राजा को कभी भी अपने हृदय पर विश्वास एकदम से नहीं कर लेना चाहिए । अत: उसके लिए दूसरों की बातों पर विश्वास करना दूर रहता है । यह मंत्रियों के लिए नट का-सा कार्य करता है । ऊपर से तो दिखाता है कि वह उनकी बातों को मान रहा है तथा विश्वास कर रहा है किन्तु उन पर वह विश्वास नहीं कर लेता है । क्योंकि बहुत विश्वास प्रकट करने पर वे ही विश्वासघात करके उसे विपत्ति में

१- ग०चिं० पृष्ठ १४-२७
२- ,, १७
३- ,, दशम लम्ब
४- ,, पृष्ठ १४२
५- ग०चिं० पृष्ठ १३७
६- ,, १४८
७- ,, १३८

गल देते हैं[१]।

. कवि का कहना है कि राजा के प्रति उत्पन्न विरोध अनेक विपत्तियों के आने का कारण बन जाता है --

'अनयापि वैपरीत्ये राजनि निक्षिप्तां विन्यासमनभाविनी विपदिति नैतदाश्चर्यम् । यदेकपद एव सह सकलसंपदा संपतापत्ती प्रभुः स्वकुलस्यापि । परत्रापि पापोपार्जनाद्योगिरिति भवितेति शंसन्ति शास्त्राणि[२]।'

अन्य कवियों की भाँति ओडयदेव ने भी अपने काव्य में ऊंचे प्रासाद, गंभीर नींव वाले ऊंचे प्राकार और खाई आदि का वर्णन किया है । दीर्घिकाओं के मणिमय तट एवं मणिमय बावड़ियों का वर्णन करना भी कवि भूला नहीं है । किन्तु हेमांगद के वर्णन में कवि ने वहां की कुछ विशेषताओं को भी बताया है । उसे धान के खेतों से सम्पन्न आम्र चम्पक आदि विशेष वृक्षों से सुशोभित उद्यानों से युक्त बताया है । वहां की उर्वरा भूमि का उल्लेख किया है तथा कूँए की अधिकता बताई है । उस प्रसंग के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लोगों का सफाई की ओर विशेष ध्यान था । आधुनिक ढंग की भाँति कुंएं का मुख भाग दीवारों से आच्छादित रहता था[३]।

कवि ने मन्दिरों के ऊपरी भाग, स्तूपिका और स्तम्भ को मणिमय, बलिवेदिका को स्फटिक शिला से निर्मित और द्वार को चांदी से मढ़े हुए बताया है[४]। इस वर्णन से इतना स्पष्ट हो जाता है कि मन्दिर भी उस समय विविध रत्नों एवं मणियों से संपन्न हुआ करते थे । वह मन्दिर चार गोपुरों से अधिष्ठित होता था, पताकाएं लहराया करती थीं और उसके अन्दर मूर्तियां हुआ करती थीं[५]। इन मन्दिरों में सिंह की मूर्ति भी रहती थी[६]।

राजा ही धन-धान्य से सम्पन्न न थे वैश्य भी हुआ करते थे । उन्हें कई बार कुबेर से बढ़कर बताया गया है । उसके घर में भी पताकाएं लहराया करती थीं । वे सामुद्रिक व्यापार करके अपनी धनराशि नित्य बढ़ाया करते थे[७]। उसके यहां भी स्वयम्बर मण्डप की शोभा राजाओं के स्वयम्बर मण्डप से कम नहीं थी । जैसे उसके स्तम्भों में मणियां लटकतीं, ध्वजाएं लहरातीं, मालाएं शोभा को द्विगुणित करतीं । इत्यादि ।

इनके यहां भी कन्याओं के अन्तःपुर हुआ करते थे जो विविध मणियों से अलंकृत रहते थे ।[८]

१- ग०चिं०पृष्ठ १४-१५
२- ,, २३
३- ,, ५
४- ,, ३३
६- ग०चिं०पृष्ठ ५
७- ,, १०१
८- ,, ८२-८३
९- ,, १२६

धनाढ्य वैश्यों के 'भोजनस्थान मण्डप' की भूमि पर स्वर्ण फैले रहते थे,[1] [illegible]मय पात्र होते थे, वहां हाथ धुलाने के लिए गुराओ या लोटा सोने का होता था।[2]
वैश्यों के अतिरिक्त गोपालक भी धनाढ्य हुआ करते थे। नन्दगोप ऐसा ही बताया [illegible]ा है[2]।

जनसाधारण भी विवाह के उपलक्ष्य में दूध, घी, दही से भूमि को पिच्छिलित [illegible]या करते थे[3]।

राजा के सिंहासन में शेर चिह्नित रहता था[4]। कुछ सिंहासनों का पदपीठ सिंह की [illegible]ति के समान होती थी[5]। उस पर पड़ी चादर के किनारे मुक्ताफल की झूलें होती [illegible][6]। मणिमय दण्ड से सुशोभित उसका छत्र होता था[7]। छत्र के बीच एक महान मोती [illegible]ता था और छत्र के चारों ओर बड़ी-बड़ी मोतियां लटकती रहती थीं। छत्र श्वेत [illegible]ा करता था[8]।

राजा के बैठने का हाथी स्वर्ण से अलंकृत होता था। उसपर बैठने का ओहदा [illegible]ने का ही होता था जिस पर हंस और रुई के समान क्रमशः श्वेत और कोमल वस्त्र पड़ा [illegible]ता था उसके प्रान्त भाग में विचित्र रत्न खचित रहते थे[9]।

प्रासादों में अनेक कक्ष हुआ करते थे जिनको पार करने के पश्चात ही राजा के दर्शन [illegible] पाते थे[10]। उसमें एक धारागृह भी हुआ करता था[11]।

उस समय बाजों में पटह, शंख, काहिल, वीणा, बांसुरी, ढक्का, झल्लरी, मृदंग, [illegible]ी, मर्दल, कांस्यताल, डिण्डिम, शृंग (भैंस की सींग का बाजा) तथा शस्त्रों में तलवार, [illegible]ष, कुन्त, बाण, प्रास, तोमर, भिण्डिपाल, हेति, शक्ति, आदि वैभव को सूचित [illegible]ते हैं। एक स्थल पर कवि ने इन शस्त्रों का वर्णन करते हुए कहा है कि ये सब इतनी [illegible]धिक मात्रा में थे कि शस्त्र रखने की जगह में कुछ भी जगह नहीं रह गयी थी —

"... प्रासतोमरभिण्डिपालप्रमुखनिखिलायुधनिलका[illegible]कोपदेशे।"[12]

पशुओं में कुछ पशु सामान ढोने के काम में आते थे, जैसे — हाथी, घोड़े, खर, करभ, [illegible]ष, मेष, शक्वर(बैल) तथा बैलगाड़ी[13]। सवारियों में ऊंट का भी उल्लेख आया है। [illegible]व्य में एक ऐसा ऊंट वर्णित है जो उड़ा कर लोगों को ले जाता है था। धर नामक [illegible]चर श्रीपाल को इसी पर बैठा कर ले गया था[14]। वानायुज नाम घोड़े का भी उल्लेख [illegible]व्य में है[15] जो सम्भवतः पारसीक घोड़ा हुआ करता था।

[illegible] ग० चिं० पृ० ३८
[illegible] ,, ५५
[illegible] ,, ५४
[illegible] ,, १३५
[illegible] ,, १५१
६- ग० चिं० पृ० १५१
७- ,, ६५
८- ,, १४७
९- ,, १४७
१०- ,, ११२
११- ग० चिं० पृ० ६५
१२- ,, ३५
१३- ,, १३६
१४- ,, ५८
१५- ,, ६५

युद्ध का एक विशेष रथ होता था जो शतांग कहलाता था[1]। स्वयम्बर का रथ 'मयूरन्त्रयान'[2] कहलाता था जिस पर कन्या चढ़कर आती थी।

इस काव्य से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय शिल्प कला उन्नत पर थी। इसकी सत्यता मन्दिरों, प्रासादों, स्वयंबर मण्डप आदि के निर्माण में प्रमाणित होती है। उस समय कृत्रिम मयूर यन्त्र बनते थे जो आकाश मार्ग से जाया करते थे। सत्यंधर ने विजया को उसी पर बैठा कर अन्यत्र भेज दिया था। यह सम्भवत: आजकल के हवाई जहाज जैसा कोई वाहन रहा होगा।

इस कला के साथ-साथ संगीत कला भी विकसित थी। संगीत शालाओं का प्रबन्ध रहता था[3]। भरत मार्ग से अनुसरित गीत हुआ करते थे[4]।

वीणा वादन भी अपनी चरम सीमा पर था। कन्याएं भी इसे बजाया करती थीं। गन्धर्वदत्ता के स्वयम्बर में वीणा वादन की शर्त रखी गयी थी[5]।

इस काव्य से चित्रकला के विषय में यह ज्ञात होता है कि कौतुकागार में विविध चित्र रहा करते थे[6] और राजमहलों में पूर्व राजा का चित्र रहा करता था[7]। जिनालयों के मन्दिर में भी पाप के भयंकर परिणामों के चित्र बने रहा करते थे[8]।

बाजारें सम्पूर्ण सामग्रियों से भरी रहती थीं। वहां सब प्रकार के फल, चन्दन काले कम्बल, स्वच्छ अनुकूल तथा स्पर्श में सुख देने वाले रेशमी वस्त्र, मणियां, कांसा, कपूर आदि मिला करते थे[9]।

काव्य में कई प्रकार के पेशों का उल्लेख आया है। शिल्पी[10], तक्षक[11], व्यापारी[12], माली, मालिन[13], धोबी, स्वर्णकार, चित्रकार[14] आदि के नामोल्लेख से उस समय की धनाढ्यता का परिचय होता है।

इस प्रकार तिलकमंजरी के समान गद्यचिन्तामणि से भी विभिन्न परिस्थितियों के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो जाती है।

वैमभूपालचरित--

वैमभूपाल चरित में चूंकि कवि के आश्रयदाता के गुणों का तथा उनके वंश का वर्णन है अत: इस काव्य से कवि के समय की दशा का रूप उसी प्रकार ज्ञात होता है जिस प्रकार बाण के हर्षचरित से। इस दृष्टि से वैमभूपालचरित तथा हर्षचरित दोनों समान हैं। उन दोनों काव्यों के काव्यात्मक वर्णन में ऐतिहासिकता भी परिलक्षित होती है

१- ग०चिं०पृ० ६५
२- ,, ६६,७५
३- ,, १२
४- ,, ६
५- ,, द्वितीय लम्ब
६-ग०चिं०पृ० ७४
७- ,, १४८
८- ,, ३४
९- ,, ७-८
१०- ,, १३८
११- ग०चिं०पृ० १३८
१२- ,, १३६
१३- ,, ७
१४- ,, १५०

इस काव्य के अध्ययन से अदंकि के राज्य तथा वीर नारायण के वंश के विषय में पर्याप्त सूचना मिल जाती है । यह वीरनारायण काव्य के नायक वेमभूप ही हैं । काव्य के अनुसार उनकी वंशावली क्योलिखित है -- ।
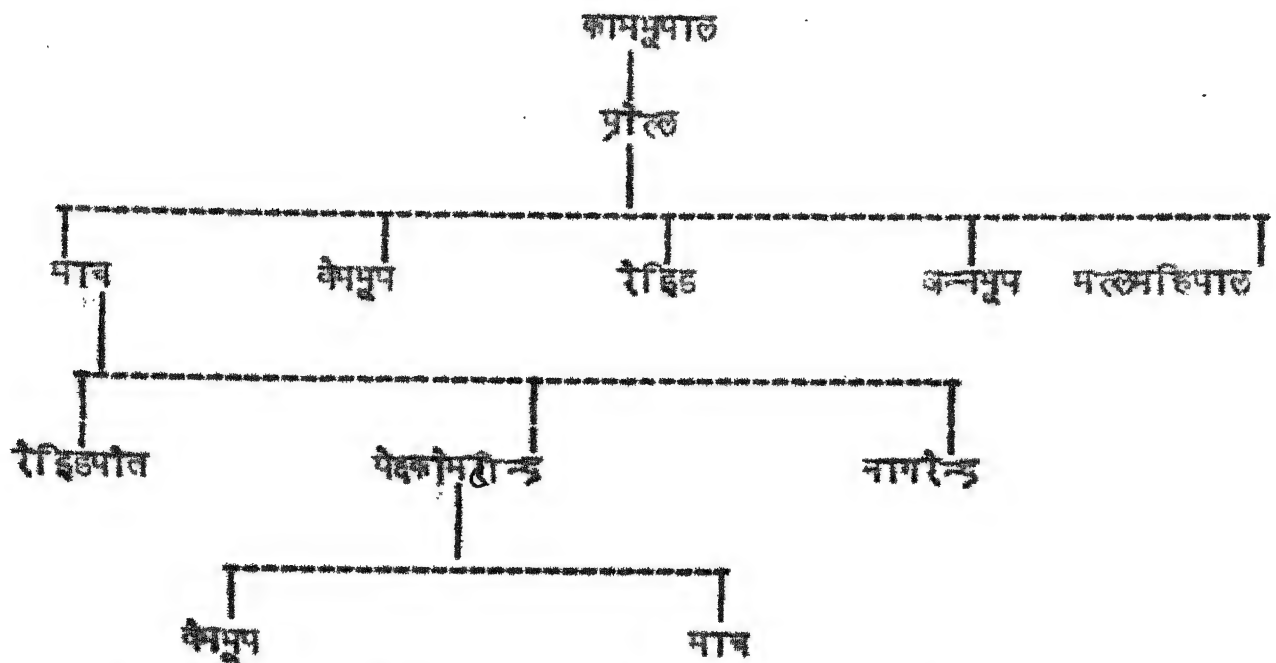
ये सभी राजा वीरों में अग्रणी बताये गये हैं । राजा प्रौल्ल का शासन मुख्य रूप से त्रिलिंगी नामक जनपद की राजधानी अदंकि में था किन्तु उसने कई देशों के शत्रुओं को जीत करके अपने अधीन कर लिया था । गान्धार, मालव, गुर्जर, सिन्धुराज, बंग, उत्कलकुल, कामरूपपति, मद्र, शक, हैहय, मगध, तुरुष्क, लाट, कर्णाटक, भोज, काम्बोज पर इसने विजय प्राप्त की थी ।[१] इसके अतिरिक्त पाण्ड्य, नेपाल, केरल, बारट्ट, पारसीक और सिंहल के राजा भी इसके अधीन थे[२]। प्रौल्ल जम्बूद्वीपेश्वर भी कहलाता था[३]। कुछ राजाओं के साथ उसका मैत्री सम्बन्ध हो गया था । काव्य में आया है कि राजा प्रौल्ल ने विवाह के समय उठते हुए मालव के राजा का सहारा लिया था[४]।

राजा प्रौल्ल ने वैवाहिक सम्बन्ध दक्षिण की विक्रम सिंह नामक नगरी के राजा कुमार भट्ट की कन्या से स्थापित करके उस राज्य में भी अपना अधिकार कर लिया था[५]।

प्रौल्ल के बाद उसके पुत्र वेम ने मुसलमानों से आक्रान्त कुछ भूमि भाग को अपने अधीन कर लिया था -- 'यवनमहाप्रलयार्णवमध्यपतितामुद्धृत्य वसुन्धराम् ।'[६] कवि ने इसके राज्य

१- वेम० पृष्ठ १६-१७
२- ,, ६३
३- ,, ६३
४- वेम० पृष्ठ ६५
५- ,, ७२
६- ,, १०३

का क्षेत्र "श्री शैलशिखरात् पातालगंगावतरणसोपानपर्यन्तं"[१] बतलाया है जिसमें अतिशयोक्ति स्पष्ट है किन्तु इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि इन लोगों का राज्य क्षेत्र काफी बड़ा था ।

प्रोल्ल के दूसरे पुत्र को काव्य में सार्वभौम की पदवी से विभूषित किया गया है और उसे यवन-कुल के लिए महाकाल स्वरूप बताया गया है[२] ।

इस प्रकार पेद्दकोमटीन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र वेम को, जो कवि का आश्रयदाता तथा काव्य का नायक है, विस्तृत पैतृक राज्य मिला था[३] ।

इसने भी कई युद्ध लड़े थे और सब में विजय पायी थी । वेमभूपाल का दिग्विजय के लिए सर्वप्रथम प्रस्थान कलिंग की ओर हुआ था । कलिंग नरेश के पास सेना उद्दण्ड थी[४] वह वेम से लड़ने आया था[५] । उसे जीत कर वेम ने वहां से मतवाले हाथी लिए थे ।

वेम ने अंग पर भी विजय प्राप्त की थी[६] । सामुद्रिक युद्ध वंग बंगाल को जीतने के प्रसंग में किए थे जिसमें वह विजयी हुआ था[७] । दक्षिण दिशा में कांची[८] पर आक्रमण करता हुआ वह पाण्ड्य की ओर बढ़ गया था[९] । वहां पर उसने आसानी से विजय पा ली थी । उसने केरल पर भी चढ़ाई की थी[१०] । मुरल पर आक्रमण करके वह मलय पर्वत की ओर बढ़ गया था[११] ।

पश्चिम दिशा में उसने गुर्जर पर आक्रमण किया था उसकी सेना समृद्ध थी । वहां का राजा भव्य सेना के साथ युद्ध करने आया था । यह युद्ध बहुत भयंकर था किन्तु विजय वेमभूपाल के हाथ ही लगी थी[१२] ।

उसकी सौराष्ट्र के साथ लड़ाई नहीं हुई थी । वहां के राजाओं ने वेम के सामने अपने को आत्मसमर्पण कर दिया था । इस समर्पण करने में वहां के राजाओं ने शीघ्रगामी घोड़े, विमान सदृश, स्वर्णिम, छोटी घंटियों की आवाज से मुखरित रथ तथा अपार धनराशि वेम को दी थी[१३] ।

यवनों पर विजय पाने के लिए वह पारसीक गया था वहां पर उसने तुरकों से लड़ाई की थी और वह उसमें विजयी हुआ था[१४] ।

उत्तर दिशा में उसने सिन्धुराज को पराजित किया था[१५] । काम्भोज में आक्रमण करके वहां से उसने तेजस्वी घोड़ों को प्राप्त किया था[१६] । कश्मीर, कोशल, कैकय, शक, मद्र तथा बाह्लीक ने हाथी, घोड़ा, सोना, मणि, कुंकुम, कस्तूरिका, चंवर आदि देकर उसके

१– वेम० पृष्ठ १०३
२– ,, १०४–१०५
३– ,, ११७
४– ,, १३६
५– ,, १४०
६– वेम० पृ० १४१
७– ,, १४१
८– ,, १४४
९– ,, १५०
१०– ,, १५४
११– वेम० पृ० १५४
१२– ,, १५७
१३– ,, १५७
१४– ,, १५८
१५– ,, १५८
१६– वेम० पृ०

सम्मुख अपने को आत्मसमर्पण किया था[१]। हिमालय की ओर किंपुरुष देश था उस पर आक्रमण करके उसने वहां से दिव्य आभा वाले चंवर, गज, मुक्ता, कस्तूरी और हरिण प्राप्त थे[२]। उसने हूणों को भी हराया था[३]।

इस प्रकार इस काव्य से ज्ञात होता है कि वैम ने कई युद्ध करके अपनी राज्य सीमा को बहुत बढ़ा लिया था।

युद्ध में धनुष, चाप, चक्र, मुसल, खड्ग, भिण्डिपाल, मुद्गर, लगुड, छुरिका, यष्टि, कुठार[४], प्रास, असि[५], पिनाक[६], भाला[७], वज्र[८], तोमर[९], पत्थर[१०], शतघ्नि, तलवार[११], कुन्तक, प्रीत, खट्वांग[१२], खिंखिर[१३], फलक, पारश्वध तथा विष बुझे बाणों[१४] का प्रयोग होता था इन शस्त्रों की तालिका से ज्ञात होता है कि उस समय तक कई नवीन शस्त्रों के निर्माण हो चुके थे।

युद्ध हाथी पर बैठ कर होते थे[१५]। युद्ध प्रस्थान के समय भेरी, पटह, दुन्दुभी[१६] तथा तुरही[१७] बजा करती थी। गवय की सींग के बने बाजे का भी उल्लेख काव्य में आया है जो युद्ध प्रस्थान कालीन बाजा हुआ करता था[१८]।

कुछ पराजित राजा विजित राजा के प्रासाद तक जाया करते थे। वहां विजयी राजा उनकी सम्पत्ति लौटा कर पुन: उन्हें उसी पद पर प्रतिष्ठित कर देते थे[१९]।

विजयोपरान्त राजा ब्राह्मणों को दान देता था[२०] तथा शिविर में वेश्याओं के नृत्य करवाता था[२१]। वैम ने विजय के पश्चात् ऐसा ही किया था।

इस काव्य से केवल राजा वैम की वंशावली तथा उसके युद्धों के अतिरिक्त और कुछ भी ज्ञात नहीं हो पाता है। मंत्रि-परिषद आदि की व्यवस्था के विषय में भी कुछ नहीं पता चलता है। केवल एक स्थल पर महामात्य[२२] शब्द का प्रयोग हुआ है।

वामनभट बाण के इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि धर्म एवं समाज की दृष्टि से पूर्ववर्ती अर्वाचीन गद्य-कवियों से पर्याप्त मात्रा में भिन्नता कवि के समय तक आ चुकी थी। धनपाल तथा ओडयदेव के समय जैन धर्म का अधिक मात्रा में प्रचार था, बौद्ध, चार्वाक आदि धर्मों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था--- ऐसा उनके काव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है किन्तु इस काव्य के रचयिता के समय चार्वाक बौद्ध एवं जैन धर्म

१- वैम० पृ०	१५६	७- वैम०पृ०	१३६	१३- वैम०पृ०	१५४	१९- वैम० पृष्ठ	२०६
२- ,,	१६३	८- ,,	१४२	१४- ,,	१६२	२०- ,,	१४२
३- ,,	१५६	९- ,,	४	१५- ,,	१२८	२१- ,,	२०५
४- ,,	२१	१०- ,,	१४२	१६- ,,	१२३	२२- ,,	१२४
५- ,,	१२८	११- ,,	२४	१७- ,,	१२६		
६- ,,	१२६	१२- ,,	१३८	१८- ,,	१६१		

आदि गिर रहा था, हिन्दू धर्म उन्नत का शिला पर था -- ऐसा उस काव्य से प्रतीत होता है । उस कवि के समय विविध देवताओं एवं देवियों का उपासना हुआ करती थी किन्तु आपस में कोई विरोध न था । नारायण, शिव, कार्तिकेय, गणेश, स्कन्द, व भगवती, दुर्गा, सभी लोगों की दृष्टि में श्रद्धा के विषय थे । देवी के उपासक शाक्त कहलाते थे । इन सभी देवताओं के मन्दिर हुआ करते थे । इन मन्दिरों में गरुड़ चिह्नित ध्वजाएं लहराया करती थीं । दीपदण्ड होता था, वेदिका नाभांगुली से सुशोभित होती थीं[1], पहले द्वार की भित्तियों पर दशावतार के वृत्तान्त चित्रित रहते थे, वहां पर बैठकर वैखानस सूक्तों का उच्चारण करते थे, वहां तुलसीदल रहता था तथा वातावरण सुगंधि द्रव्यों से सुगन्धित रहता था, लोहे के निर्मित शालवलय पर ध्वजाएं लहराती थीं[2]।

राजा-महाराजाओं की ओर से मन्दिरों को दान भी मिला करता था[3]।

मन्दिरों में यज्ञ हुआ करते थे । यज्ञों में यूप गाड़ा जाता था, वहां हरिण-चर्म बिछता था, अग्नि प्रज्ज्वलित करके विविध वेदों के मंत्रों का उच्चारण होता था और होम चढ़ाया जाता था । उस समय यज्ञ करने का अधिकार ब्राह्मणों को था[4]। ये यज्ञ में नरबलि चढ़ाया करते थे[5]। देवी को पूजा मांस और मधु से हुआ करती थी । चौर यां ये उपास्य देवी होती थीं । उनकी दृष्टि में यही सर्वशक्तिमान हुआ करती थीं -- "अस्यास्तु शक्तिरध्यास्य विरंचिमुदंचयति प्रपंचसंचय । सत्वगुणवर्तिष्णुं विष्णुमाश्रित्य पुष्णाति भुवन रक्षाय । हरणाय जातामास्थाय रुद्रमुन्निद्राति[6]।"

मदिरा चढ़ाने के साथ-साथ व्यक्ति देवी की पूजा करके स्वयं मदिरा भी पी लिया करते थे और सुध-बुध खो बैठते थे[7]। स्त्रियां भी आसवपान करती थीं[8]। उस समय मदिरा को चोरी बताने वाला दण्डनीय समझा जाता था[9]। इन मन्दिरों में भी ऋग्, यजुर्, साम तथा अथर्व आदि का पाठ हुआ करता था[10]।

इन मन्दिरों में भगवती का स्वरूप कानों में कुंडल, माथे में तिलक, मुण्डमाला तथा मुक्ताफलों की माला, बाहुओं में केयूर, एवं मणिमय रत्नों से खचित चण्डातक आभूषणों से अलंकृत रहता था[11]। उन देवी के समीप ही भयंकर शूल पर दानव का शिर रखा रहता था[12]। इन मन्दिरों में अनेक गवाक्ष हुआ करते थे, श्वेत ध्वजा लहराया

१- वैम० पृ० ५६
२- ,, ८
३- ,, १६३
४- ,, १३
५- वैम० पृष्ठ १८७
६- ,, १०६
७- ,, १८७-६०
८- ,, १६०-६१
६- वैम० पृष्ठ १६६
१०- ,, १८५
११- ,, १८५-१८६
१२- ,, १८३

करती थी, हाथी के दांत का बहिर्द्वार होता था और अन्तर्द्वार रत्नों से भरा होता था[१]।

विष्णु की मूर्ति चार भुजाओं से युक्त हुआ करती थी जिनमें शंख, चक्र, गदा और पद्म होते थे वक्ष:स्थल पर कौस्तुभ मणि, वनमाला तथा उनका तेज दिखाया जाता था। चारों बाहुओं में केयूर तथा प्रकोष्ठों पर शार्ङ्गधनु के चिह्न दिखाए जाते थे[२]।

शिव के मन्दिरों में पत्थरों के नन्दी बैल, महाकाल, भृंगरीटि, निकुम्भ, कुम्भोदर आदि शिव के प्रमुख गण तथा पास में गणेश और कार्तिकेय की मूर्तियाँ भी रहती थी[३]।

उस समय उन मन्दिरों में कहीं-कहीं शिव की मूर्ति ताण्डव नृत्य करती हुई भी होती थी। इस काव्य में उस मूर्ति के सम्बन्ध में आया है कि वह नरमुण्ड माला, इधर-उधर लिपटे सर्प, जटा में चन्द्र, त्रिशूल, तथा खट्वांग शस्त्र को धारण किए हुए, डमरू बजाते हुए तथा तीन नेत्र को धारण किए हुए निर्मित की गयी थी। लोगों की दृष्टि में यह देवता जनक, रक्षक और संहारक थे[४]।

इन्द्र के मन्दिर में हाथी पर चढ़े हुए इन्द्राणी सहित इन्द्र की मूर्ति सोने की होती थी, जिसके ऊपर रम्भा, उर्वशी आदि अप्सराएं चंवर हिलाती हुई तथा जिनके पास वज्र रखा हुआ दिखाया जाता था। इन्द्र की मूर्ति के कान में कल्याण मंजरी का कर्णाभूषण रहता था तथा धनुष भी समीप में रखा हुआ दिखाया जाता था[५]।

इन देवताओं के अतिरिक्त लोग कामदेव की भी आराधना किया करते थे[६]।

इन मन्दिरों के वर्णन से स्पष्ट है कि उस समय लोग दुर्गा, शिव, विष्णु की तो पूजा करते ही थे, साथ ही गणेश, कार्तिकेय और इन्द्र की मूर्तियां भी बनाई जाती थीं जिनकी लोग पूजा किया करते थे। इन मन्दिरों के वर्णन से उस समय की मूर्ति निर्माण की कला के विषय में भी पता चलता है कि यह कला कितनी उन्नति पर थी।

इस काव्य से मूर्ति निर्माण कला के अतिरिक्त चित्रकला की उन्नति का भी पता चलता है। ब्रह्मारामपुरी के वर्णन में आया है कि पिछले द्वार पर मिथुन चित्रित रहते थे[७]।

ब्रह्मारामपुरी के वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय समाज शिक्षित था[८]। लोग गद्य, पद्य और चम्पू काव्यों का अध्ययन किया करते थे। वेदों का अध्ययन मंदिरों में होता था। इसके अतिरिक्त शास्त्रों का पर्यालोचन, छन्दोविचिति, निरुक्त, शिल्प,

---

१- वैम०पृ० १९५
२- ,, १४६
३- ,, ८
४- ,, १४७-१४८
५- वैम० पृष्ठ ११०-११
६- ,, १६५
७- ,, १६४
८- ,, १६५

ज्योतिष, भट्ट प्रभाकर के मतों की विवेचना करने वाले, वेदान्त, वैशेषिक, नैयायिक मत को जानने वाले एवं अनुसरण करने वाले लोग हुआ करते थे। धर्मशास्त्र, सांख्य सिद्धांतों दापणक (बौद्ध) चार्वाक सिद्धान्तों एवं साहित्य से भी लोग अनभिज्ञ न थे।[1] अदंकि की राजधानी सरस्वती का केन्द्र बताई गई है[2]।

इस काव्य में हिमालय के किंपुरुष के लोग असभ्य बताए गए हैं। वहां की सेना का वर्णन करते हुए कवि ने बताया है कि सेनानी गोकर्ण पशु के चर्म का कवच और भालू के चमड़े का टोप पहनते थे तथा कटि में कुटज वृक्ष का वल्कल और शिर पर मयूर पंख धारण करते थे। आभूषणों में मुक्ता फलों से युक्त गुंजाफल की माला होती थी और इनके शस्त्र शक्ति, शंकु, भिण्डिपाल और तोमर थे।[3]

इस काव्य के अध्ययन से लोगों के पद्मासन लगाने का भी पता चलता है। वर्णों की समुचित व्यवस्था थी। अधिकांश व्यक्ति धनाढ्य, पुण्यकर्ता, साधु एवं धर्म के पालक हुआ करते थे। कुछ विट भी हुआ करते थे।[4] कुछ कामुक, तापस आदि का वेश रख कर लोगों के घर घुस जाया करते थे[5]। जुआरी के लिए द्यूत स्थान हुआ करते थे।[6]

उस समय के स्वर्णकार, नाई, धोबी, दर्जी, जुलाहा, दुकानदार, शराब, मांस, माला आदि बेचने वाले हुआ करते थे। इससे उस समय के पेशों के विषय में ज्ञात होता है[7]।

जनता के मनोरंजनों के साधनों में एक साधन मेष, कुक्कुट और कपिंजल की लड़ाई भी थी[8]।

लोगों की दृष्टि में पुत्र-जन्म, पितृ-ऋण से मुक्त होना समझा जाता था। अत: जिनके पुत्र नहीं होते थे वे देवाराधना से प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। पुत्र का नामकरण संस्कार धर्मज्ञ एवं वैदज्ञ के सम्मुख हुआ करता था।[9] उस समय पुत्र की रक्षा हेतु 'रक्षावलय' आभूषण उसे पहना दिया जाता था[10]। तीन वर्ष की अवस्था में विद्यारम्भ होता था[11]। लोगों की दृष्टि में इस समय तक भी गन्धर्व विवाह मान्य नहीं था। राजा प्रौल्ल 'अनन्ता' के साथ विवाह शास्त्रोक्त विधि से करता है[12]। उसमें मुहूर्त निकाला जाता था। काव्य में वर्णित इस विवाह के प्रसंग से ज्ञात होता है कि उस समय मार्ग में चन्दन का छिड़काव किया जाता था, गवैये गान गाते थे, जामातृ के मित्रों एवं साथ आने वाले सभी लोगों को मणिमय भूषण और वस्त्र दिए जाते थे[13]। इस वर्णन से स्पष्ट है कि जिस प्रकार आजकल बरातियों का स्वागत किया जाता था उसी प्रकार उस समय भी हुआ करता था।

इस काव्य के अध्ययन से कुछ शहरों की आर्थिक सम्पन्नता के विषय में पता चलता है। त्रिलिंगी जनपद उसकी राजधानी अदंकि और द्राक्षारामपुरी में तो काव्य के नायक वेम का तथा उनके वंशजों का राज्य था। अत: उसकी समृद्धता बताना कवि के लिए आवश्यक था। त्रिलिंगी जनपद में पनसफल, सरल, अशोक, तिलक, कदली, ताल, सहकार,

---

१-वैम०पु० ६	६- वैम० पु० १०९	१०- वैम०पु० ११५
२- ,, १४	७- ,, ११७	११- ,, ११६
३- ,, १६१	८- ,, ११५	१२- ,, ६१-६२
४- ,, १५	९- ,, ११५	१३- ,, ६४-६७
५- ,, ११५		

ाग , लिकुच, नारंगी, लवंग, शृंगवेर, जीरक, दाडिम,कारवेल्ल कोशातकी, पटोल, ालाबु का उल्लेख हुआ है । [1] इससे वहां पर इन वृक्षों की अधिकता थी-- ऐसा ज्ञात ोता है । वहां पर मसूर, कुलत्थ, सफेद तिल, छोटी मटर एवं तिलों के खेतों का भी ल्लेख हुआ है [2] जो वहां की विशेषता प्रतीत होती है ।

वहां बादलों पर खेती अधिकांशत: निर्भर रहती थी एवं जुताई हुआ करती थी [3]। [4] मि उपजाऊ थी, धान्य की बहुलता थी, लोहा भी अधिक मात्रा में उपलब्ध होता था । अच्छे घोड़े तथा गौ भी अधिक वहां थे [5]।

काव्य में अवंति की बाजारें बहुत समृद्ध तथा बड़ी बताई गई हैं जो मुक्ताफल, पद्मराग, इन्द्रनील तथा गरुत्मणियों से, अनन्त शंखों से तथा सुगन्धित द्रव्यों से भरी रहती थीं । सुगन्धित द्रव्यों में केसर की मात्रा अधिक थी [7]।

वहां ऊंचे-ऊंचे मत्तवारण तथा पराक्रमी हाथी होते थे । विविध प्रकार के वस्त्र हुआ करते थे । काव्य में ऊनी, नेत्र, क्षौम, चीनांशुक कपड़ों का उल्लेख हुआ है -- नेहारांशुशुचिभिरुणनामतन्तुजालैः, निर्मोक निभैर्नेत्रैः, कदलीगर्भदलकोमलैः क्षौमैः, नैःश्वासहार्यैश्चीनांशुकैः । [8]

काव्य में कपड़ों का रंग नीला, श्वेत, भूरा, लाल,ईषत्पीत (कर्णिकारकेसरगौरैः), तित्तिर वैह की कान्ति के सदृश तथा काला हुआ करता था [9]।

आभूषणों में मणिमय नूपुर, करधनी, [10] मोतियों के हार,पद्मराग मणि के कर्णाभूषण, [11] कंगन, [12] वलय [13] तथा नाक के आभूषण [14] हुआ करते थे । पूर्ववर्ती काव्यों की भांति इस काव्य में भी हाथी के आभूषणों में नक्षत्रमाला का उल्लेख आया है । [15] शिकारी कुत्ते के गले में सोने की जंजीर तथा बड़ी-बड़ी मोतियों की माला पड़ी रहती थी [16]।

राजाओं के घोड़े की लगाम सोने की हुआ करती थी [17]। पर्याणक भी सोने का हुआ करता था । सोने के कलश से राजमार्गों पर छिड़काव हुआ करता था [18]। काव्य में कनकमय घटीयन्त्र का भी उल्लेख है जिससे ज्ञात होता है कि उस समय घटीयंत्र हुआ करते थे [19]।

सौध भी विविध वैभवों से सम्पन्न बताए गए हैं । दक्षिण की विक्रमसिंह नगरी के वर्णन से ज्ञात होता है कि वहां के प्राकार ऊंचे तथा स्वर्णिम थे । सीढ़ियां स्फटिक मणि मय होती थीं, वहां की पालकी इन्द्रनील मणि खचित थी । श्वेत आतपत्र होते थे जिनके दण्ड पर विद्रुम लगे रहते थे [20]।

१- वैम०पू० ६-७ ६- वैम०पू० १४ ११- वैम० पू०१७३ १६-वैम० पू० २०
२- ,, ७ ७- ,, १२ १२- ,, १७७ १७- ,, २०७
३- ,, ७ ८- ,, ४६ १३- ,, ३० १८- ,, २०८
४- ,, ६-१० ६- ,, ४६ १४- ,, ४४ १६- ,, ६३
५- ,, १० १०- ,, ८१ १५- ,, १२५ २०- ,, ८०

वहां के कौतुकागार के वर्णन से भी वहां की समृद्धता का पता चलता है । सोने के स्तम्भों में निर्मित अप्सरा सदृश सुन्दर शालभंजिकायें तो थीं ही साथ ही कवि ने वहां सोने के वृक्ष की भी कल्पना की है -- क्वचित्कनकमयमहीरुह प्राकृतिः[1]।

इस काव्य में कांची की भी समृद्धता का वर्णन है । वहां के ऊंचे-ऊंचे प्रासाद, स्फटिक मणि निर्मित ऊंचे साल, इन्द्रनील मणिमय भवन, पद्मरागमणि खचित तोरण मुक्तामय सौध, महानीलमणियों से खचित कनकमय क्रीडापर्वत, लहराती हुई ध्वजाएं वर्णित हैं[2] । इस वर्णन में यद्यपि अतिशयोक्ति की मात्रा अधिक है किन्तु इससे इतना स्पष्ट हो जाता है कि लोगों की दृष्टि में कांची एक समृद्ध देश समझा जाता था ।

वेम के राज्य में स्थित द्राक्षारामपुरी के वैभव वर्णन में भी अतिशयोक्ति की मात्रा अधिक है किन्तु उस शक्तिशाली राजा के राज्य की समृद्धता के विषय में कोई सन्देह नहीं कर सकता । वहां ऊंचे-ऊंचे गोपुरों में मणियां खचित होती थीं, वैदूर्य की साल होती थी, ध्वजाएं लहराती थीं, तथा स्फटिकमणिमय प्रासाद होते जिनमें निरन्तर काला गुग्गुल धूप जलता था । वहां क्रीडापर्वत भी हुआ करते[3]।

राजाओं के स्थान मण्डपों में मणिमय सोपान होते थे, अश्वशाला, कंचुकियों एवं वेत्रधारियों से अधिष्ठित राजभवन हुआ करते थे[4]।

राजकुमारियों के सौध में वातायन के समीप वेदिका में चन्द्रकान्त मणि खचित रहती थी ।[5]

राजसी ठाट के अतिरिक्त इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय सामुद्रिक यात्राएं होती थीं[6] । यानपात्रों में सोना, मणि, घुसृण, कर्पूर, कस्तूरिका, चंवर, चन्दन, धन आदि रखकर अन्य राजा उपहार के स्वरूप में भेजा करते थे[7]।

इस काव्य में वाद्यों[8] में काहल, भेरी, पटह[9] आदि का नामोल्लेख तो है ही साथ ही पर्वतीय[10] सेना के बीच युद्ध के समय बजने वाले गवय की सींग से निर्मित बाजे का भी उल्लेख है[11]।

इस प्रकार वामनभट्ट बाण के इस काव्य में उस समय की तात्कालिक स्थिति एवं अन्य देशों के विषय में होने वाली लोगों की धारणाओं का पता चल जाता है । उस समय पर्वतीय सेना किस प्रकार लड़ती थी तथा किस प्रकार सामुद्रिक युद्ध हुआ करते थे, युद्ध के लिए जाते समय मार्ग में किस प्रकार की बाधाएं पड़ती थीं, धर्म का स्वरूप क्या था, विद्या किस कोटि पर थी, आर्थिक सम्पन्नता किस सीमा पर थी -- सभी का परिचय होता है ।

१- वेम० पृ० ६६
२- ,, १५४
३- ,, १६२
४- ,, १५०
५- ,, ७४
६- ,, १३५
७- वेम० पृ० १३६
८- ,, ३७
९- ,, १२३
१०- ,, ११५
११- ,, १६१

रामकथा--

अब तक के गद्य-काव्यों से पाठक को कवि के समय की विविध स्थितियों के विषय में ज्ञान मिल जाता था किन्तु रामकथा तथा आनन्दविलास जैसे गद्य-काव्यों से इस प्रकार का ज्ञान नहीं हो पाता है । इन दोनों के रचयिताओं की प्रवृत्ति विविध परिस्थितियों के निरूपण करने की ओर नहीं परिलक्षित होती है ।

रामकथा में वासुदेव ने लोक प्रसिद्ध राम की कथा ली है किन्तु उससे न कवि के समय की किसी प्रकार की परिस्थिति का और न नायक राम के ही समय की स्थिति का परिचय मिल पाता है । केवल प्रारम्भिक एवं अन्तिम श्लोकों से कवि के आश्रयदाता एवं कवि के विषय में थोड़ा-सा ज्ञान हो जाता है । इसमें कवि का आश्रयदाता आदित्यवर्मा बताया गया है जो सज्जनों का रक्षक, विद्वान, शत्रुविजयी, यशस्वी था । उसके लिए 'नरलोकवीर' शब्द का प्रयोग हुआ है । ऐतिहासिकों का कहना है कि यह 'नरलोक-वीर' आदित्यवर्मा की उपाधि थी --

सतां परित्राणपरः सुमेधा
जितारिवर्गस्तथा महीयान् ।
विभ्राजते विश्रुतविक्रमश्री-
रादित्यवर्मा नरलोकवीरः ।।२।।
चिराय रक्षोपगमेन कुर्वन्
गुर्वीं मुदं यः सुमनोजनानाम् ।
महीजयोदंचितपुण्यकीर्ति-
रामोदते राम इव प्रकामम् ।। ३।।[१]

कवि ने स्वयं कहा है कि उसने इस काव्य की रचना इसी राजा की आज्ञा से की थी ।[२]

'आदित्यवर्मनृपतेः कृतिनो निदेशाद्'[३] वाक्य से पता चलता है कि आदित्य वर्मा साहित्य प्रेमी भी था ।

कथा में यत्र तत्र परिवर्तन से ज्ञात होता है कि केरल में प्रचलित रामकथा इधर की रामकथा से कुछ भिन्न हुआ करती थी । क्योंकि इस काव्य में लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक कान तब काटे जब सीता ने शूर्पणखा के बार - बार एक बार राम के पास और एक बार लक्ष्मण के पास जाने से उसकी हँसी उड़ायी थी और शूर्पणखा अपना असली रूप दिखा कर उस पर झपटी थी ।[४]

अयोध्या नगरी अथवा लंकापुरी का वर्णन कवि ने किया अवश्य है किन्तु उससे न उन दोनों नगरों का और न उस समय की आर्थिक सम्पन्नता का पता चल पाता है ।

१- रामकथा पृष्ठ १
२- ,, २
३- ,, ५२
४- ,, १६

इस प्रकार इस काव्य से किसी भी स्थिति की विशेष जानकारी नहीं हो पाती है ।

आसफविलास--

आसफविलास नामक गद्य-काव्य से भी उस समय की किसी भी प्रकार की परिस्थिति के विषय में पाठक अवगत नहीं हो पाता । काव्य में केवल दो राजा आसफखां और शाहजहां हैं । कवि ने उनके गुण भी जो बताए हैं वे केवल कवियों की परम्परा का अनुसरण करते हैं । काव्य के अध्ययन से केवल इतना ही पता चलता है कि शाहजहां आसफखां से कश्मीर मिलने गया और शाहजहां ने अपने आश्रित तथा इस काव्य के रचयिता को `राय` तथा पंडितराज की पदवी से विभूषित किया था ।

इस काव्य में हस्ति और अश्व सेना का वर्णन अवश्य हुआ है किन्तु उसका भी कवि परम्परानुसार ही वर्णन है ।

इस काव्य से किसी नगरी आदि का वर्णन न होने के कारण आर्थिक सम्पन्नता का भी परिचय नहीं मिल पाता है । कश्मीर का वर्णन अवश्य है किन्तु उस वर्णन में वहां की किसी भी ऐसी बात का वर्णन नहीं हुआ है जिससे उस देश की विशेषता के सम्बन्ध में कुछ मालूम हो सके ।

इस प्रकार इस काव्य का भी सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से कोई भी मूल्य नहीं रह जाता है ।

इस प्रकार इन समस्त अर्वाचीन गद्य-काव्यों का सांस्कृतिक दृष्टि से पर्यालोचन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि प्राय: सभी कवियों ने अपने काव्य में राजाओं को एक योग्य शासक के रूप में चित्रित किया है , उनकी प्रजाओं को धार्मिक, [illegible] , सहिष्णु तथा उदार आदि बताया है और उनके नगरों को धन धान्य की दृष्टि से कुबेर नगरी से समता करते हुए वर्णित किया है । इसीलिए सभी काव्यों में इन सब का वर्णन एक-सा मिलता है । अत: ऐसे वर्णन उस समय की सांस्कृतिक स्थिति के विषय में ज्ञान कराने में विशेष सहायक नहीं बन पाते हैं । किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कवि एक सामाजिक प्राणी है और वह अपने समाज और आसपास के वातावरण से किसी प्रकार से अलग नहीं रह सकता है अत: उसके काव्य में उन सब का प्रभाव पड़ना स्वभाविक है । यही कारण है कि इन काव्यों में एक से वर्णन मिलते हुए भी पाठक उस समय की स्थितियों का अनुमान लगा लेता है ।

इन कवियों के काव्य में यद्यपि कई काल्पनिक राजा तथा उनके राज्यों के वर्णन मिलते हैं , उदाहरणार्थ तिलकमंजरी में ही विजयार्धगिरि का गगनवल्लभ, वैताढ्य पर्वत का रथनूपुर चक्रवाल तथा इसी प्रकार के न जाने कितने राज्य आए हैं किन्तु उनसे भी राजनीतिक स्थिति के विषय में थोड़ा-सा प्रकाश पड़ जाता है । युद्ध किस प्रकार होते थे , शस्त्र एवं अन्य विविध कलाओं की उन्नति [illegible] शिखर पर थी, रीति रिवाज आदि क्या थे आदि की भी थोड़ी-बहुत जानकारी उनके काव्यों से हो जाती है ।

अर्वाचीन गद्य-काव्यों में कुछ ऐसे भी गद्य-काव्य हैं जो इस प्रकार की सामग्री प्रस्तुत नहीं करते । इसके उदाहरण जैसा कि देखा जा चुका है, वासुदेवकृत रामकथा तथा जगन्नाथकृत आनन्दविलास हैं । वासुदेव के काव्य से तो फिर भी उसके आश्रयदाता राजा के सम्बन्ध में पता चल जाता है किन्तु पंडितराज के काव्य से वह भी नहीं ज्ञात हो पाता किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इस दृष्टि से उनको काव्य न माना जाय क्योंकि कवि कोई ऐतिहासिक तो होता नहीं है जो अपने समय की समस्त स्थितियों की विवेचना करे अपितु उसका कार्य काव्य-रचना करना तथा उसको इस ढंग से पाठक के समक्ष उपस्थित करना होता है कि पाठक उसी के अध्ययन में रम जाय, उसी में विभोर हो जाय और ये समस्त विशेषताएं इन दोनों काव्यों में उपलब्ध हैं ।

--0--

अष्टम अध्याय

उपसंहार

--०--

उपसंहार

प्रस्तुत शोध को दो भागों में विभाजित करके पहले उसमें काव्य के स्वरूप का निर्धारण किया गया है तत्पश्चात् गद्य-काव्य के स्वरूप की विवेचना की गयी है । चूंकि हमारे गद्य-काव्य का विषय 'अर्वाचीन गद्य-काव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन' है अतः उन गद्य-काव्यों का विशेष अध्ययन किया गया है । इन कृतियों के साहित्यिक मूल्यांकन के लिए प्राप्त प्राचीन गद्य-कृतियाँ जो काव्य के नाम से अभिहित हैं--- वासवदत्ता, कादम्बरी, हर्षचरित तथा दशकुमारचरित, उनसे ~~-- के कलात्मक सौन्दर्य पर भी प्रकाश डाला गया है ।~~ अर्वाचीन गद्य-कवि ~~उनके~~ कितने प्रभावित हुए हैं उसकी यथासम्भव विवेचना विविध अध्यायों में हुई है ।

इसमें सन्देह नहीं कि गद्य-काव्य की रचना सब कवि नहीं कर सकते, कोई विरले ही कवि हुआ करते हैं । क्योंकि इसकी रचना पद्य-रचना से अत्यन्त दुष्कर होती है । पद्य-कवि छन्दों के नियमों से बंधा रहता है उससे यदि कोई त्रुटि हो जाती है तो वह छन्दों पर डाल दी जाती है किन्तु गद्य-कवि के लिए ऐसा सम्भव नहीं होता । उसकी एक भी त्रुटि क्षम्य नहीं होती । तभी तो पं० बलदेव उपाध्याय ने पद्य-कवि को पिंजर बद्ध शुक से और गद्य-कवि को उन्मुक्त वातावरण में विचरण करने वाले पक्षी से उपमा दी है । गद्य-कवि के लिए छन्दों के नियमों का अभाव होने से उसे काव्य के प्रांगण में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने तथा काव्य-प्रतिभा के निखार करने के अधिक अवकाश प्राप्त होते हैं किन्तु सभी कवि इस क्षेत्र में प्रवेश करने का साहस नहीं रखते हैं । यही कारण है कि संस्कृत-साहित्य जगत् में गद्य कृतियां तो अनेक मिल जायंगी किन्तु गद्य-काव्य के नाम से अभिहित होने वाली संख्या अत्यन्त अल्प है ।

यद्यपि पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत-साहित्य के इतिहास लिख कर संस्कृत-साहित्य को महती देन दी है किन्तु एक प्रकार से उनकी प्रवृत्ति ग्रीक साहित्य को अत्यधिक उन्नत-पूर्ण स्थिति में दिखाने की रही है । जिस प्रकार उन्होंने नाटक आदि को ग्रीक साहित्य से प्रभावित होना तथा भारतीयों का ग्रीक-साहित्य से नक्षत्रविद्या (ज्योतिष-विद्या) को सीखना बताया है, उसी प्रकार से उन्होंने गद्य-काव्य को भी बताया है । उनके इस प्रकार के भ्रम का कारण संस्कृत तथा ग्रीक दोनों गद्य-काव्यों में स्वप्न देख कर प्रेम उत्पन्न होना, स्वयम्वर, प्रेमियों का पत्र-प्रेषण, मूर्च्छा, लम्बे विलाप, उपकथा, प्रकृति-वर्णन, अनुप्रास आदि अलंकारों के प्रयोग तथा प्राचीन विद्वानों का निर्देशन आदि मिलना है । किन्तु इस प्रकार के विचारों का खण्डन उन्हीं विद्वानों ने दोनों की सभ्यता तथा साहित्यिक रूप में पर्याप्त अन्तर मान कर कर दिया । एफ० लोकेटे जैसे विद्वानों ने तो यहां तक

कहना शुरू कर दिया था कि ग्रीक गद्य-काव्य भारतीय बृहत्कथा से प्रभावित है । इस विषय में उन्होंने दोनों की समानताएं दिखायीं ।

वस्तुत: यदि देखा जाय तो दोनों गद्य-काव्यों के साहित्यिक रूप में पर्याप्त अन्तर है । भारतीय गद्य-काव्यों में विशेष रूप से `वर्णन` को प्रधानता मिली हुई है जब कि ग्रीक गद्यों में `कथा` को । यही कारण है कि यहां पर गद्य-काव्यों का आकार बृहद हो जाता है ।

यद्यपि कथा-साहित्य में भी एक कहानी के अन्दर कई कहानी कहने की प्रवृत्ति होती है, रसास्वादन होता है, यत्र तत्र काव्य की सम्पत्तियों का सम्यक् निर्वाह मिलता है किन्तु कथा-साहित्य और गद्य-काव्य इस दृष्टि से एक नहीं हो जाते क्योंकि कथाकार और कवि होने के कारण दोनों के उद्देश्य भिन्न हो जाते हैं । कथाकार का मुख्य उद्देश्य केवल कहानियां लिखकर उपदेश देना होता है और गद्य-कवि का मुख्य उद्देश्य सहृदय को रसास्वादन कराना और गौण उद्देश्य उपदेश देना होता है । क्योंकि काव्य-रचना के उद्देश्यों से `कान्तासंमितितयोपदेशयुजे` भी माना गया है ।

गद्य-काव्य के वर्ण्य-विषय एवं शैली चम्पू-साहित्य से भी मिलती है किन्तु दोनों में पद्यों के प्रयोग की दृष्टि से महदन्तर है । गद्य-काव्य में केवल मुख्य रूप से वक्त्र,अपरवक्त्र और आर्या छन्दों को ही स्थान मिला हुआ है और किसी प्रकार के छन्द ग्राह्य नहीं हैं पं० अम्बिकादत्त व्यास ने अवश्य इन छन्दों के अतिरिक्त अनुष्टुप, सार, चर्चरी, त्रिभंगी, पादाकुलक, रोला और उल्लाला आदि छन्दों को भी गद्य-काव्य में ग्राह्य बताया है । किन्तु संस्कृत आचार्यों ने गद्य-काव्य में तीन ही प्रकार के छन्दों को ग्राह्य बताया है । चम्पू में पद्यों का रूप निश्चित नहीं रहता है । इसमें गद्य-पद्य दोनों का समान स्थान रहता है, दोनों ही कथावस्तु में सहायक होते हैं, एक के अभाव में कथावस्तु का समझना दुष्कर हो जाता है । अत: चम्पू कवि जो उत्साह गद्य के प्रयोग में दिखाता है वही उत्साह पद्य के प्रयोग में भी दिखाता है ।

इन गद्य-कवियों की कृतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों से बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं । विशेष रूप से इन कवियों ने अपना आदर्श बाण को ही बनाया । उनकी कथावस्तु के विकास में बाण का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है ।

जिस प्रकार बाण ने प्रारम्भ में देव स्तुति,साधु की प्रशंसा आदि का उल्लेख किया है वैसी ही प्रवृत्ति धनपाल, ओडयदेव और वामनभट्टबाण में मिलती है । राजधानी, राजा, राजाओं की महिषी, उनकी शासन-व्यवस्था का चित्रण , प्रकृति दृश्यों के निरूपण के प्रति उत्साह आदि प्रवृत्तियों की भांति यहां भी देखने को मिलता है । पुत्राभाव भी कभी नायक-नायिका के जन्म में दैवी कृपा, उनकी शिक्षा की व्यवस्था, दिग्विजय के लिए प्रस्थान करना, नगरवासियों का राजाओं अथवा राजकुमारों को देखने के लिए उत्सुक होकर दौड़ना एवं उस समय होने वाली उनकी अवस्थाओं का चित्रण भी

हुआ है । ये कवि द्वारा दृष्ट महाश्वेता तथा महाश्वेता द्वारा दृष्ट पुण्डरीक की घटना से बहुत अधिक प्रभावित हैं । धनपाल ने अपने काव्य में प्रथम घटना को स्थान दिया है । हरिवाहन अदृष्टपारा नामक सरोवर में पहुंचकर प्रिय समरकेतु के वियोग में तपस्विनी वेश धारण करके तपस्या करती हुई मलयसुन्दरी को देखता है । और वामनभट्ट बाण ने बाण की दूसरी घटना को राजा प्रोल्ल और अनन्ता के एक-दूसरे के दर्शन कराने में स्थान दिया है । पान के बीड़ा देने की घटना से भी धनपाल प्रभावित हुए हैं ।

ये कवि बाण के अतिरिक्त सुबन्धु से भी प्रभावित हैं । जिस प्रकार वासवदत्ता में कोई शुक संदेश ले जाता है तथा उसमें आत्महत्या का प्रसंग आया है उसी प्रकार गद्यचिन्तामणि तथा तिलकमंजरी में आया है । गद्य चिन्तामणि में शुक गुणमाला के सन्देश को ले जाता है और तिलकमंजरी में शुक हरिवाहन का संदेश उसके पास ले जाता है । तिलकमंजरी में भी आत्महत्या का प्रसंग आया है और वह भी तीन बार । किन्तु कवि ने यहां सुबन्धु की भांति आकाशवाणी नहीं करवाई है । अपितु समरकेतु की चिट्ठी पाकर मलयसुन्दरी को इस कुकर्म से बचाया है । कवि का यह प्रसंग वासवदत्ता के इस प्रसंग से कहीं अधिक आकर्षक हो गया है । सुबन्धु की आकाशवाणी का ग्रहण वामनभट्ट बाण ने किया है किन्तु आत्महत्या के प्रसंग से बचाने के लिए न करके राजा प्रोल्ल की भावी संतति के लिए किया है ।

दण्डी के काव्य में जैसे अद्भुत घटनाओं का वर्णन है वैसे तिलकमंजरी में न जाने कितनी आश्चर्यजनक घटनाएं घटित हुई हैं । वह एक जादू की पिटारी-सी लगने लगती है दशकुमार चरित में दस राजकुमारों की अलग-अलग घटनाएं हैं और वे उलझी हुई नहीं हैं किन्तु तिलकमंजरी की सारी कहानियां एक-दूसरे में उलझ गयी हैं । बाण की भांति इसमें एक जन्म की कथा नहीं है ।

शृंगारमंजरी कथा में वेश्याओं से सम्बन्धित अलग-अलग कहानियां होने के कारण तथा गद्यचिन्तामणि में जीवंधर के विवाह से सम्बन्धित अलग-अलग आठ कहानियां होने के कारण ये दोनों कृतियां दण्डी के दशकुमारचरित से अधिक समता रखती हैं । भोज की शृंगारमंजरी कथा तो विशेषरूप से दण्डी से ही प्रभावित है ।

इन अर्वाचीन गद्य-कवियों पर पूर्ववर्ती गद्य-कवियों के अतिरिक्त पूर्व महाकवियों का भी प्रभाव परिलक्षित होता है उनमें महाकवि कालिदास तथा भवभूति हैं ।

यद्यपि ये कवि पूर्ववर्ती गद्य-कवियों एवं पद्य-कवियों से प्रभावित हुए हैं किन्तु उनके काव्यों के अध्ययन से उनकी मौलिकता का भी पता चलता है । कहीं-कहीं पर उन्हीं वर्ण्य-विषयों को अद्वितीय रूप से प्रस्तुत करके कवियों ने अपनी काव्य-प्रतिभा का

परिचय दिया है, वर्णन-प्रसंग को सरस बनाया है ।

इन गद्य-काव्यों के अध्ययन से यह भी ज्ञात हो जाता है कि इनमें से कुछ काव्यों के कथानक काल्पनिक हैं, कुछ के ऐतिहासिक और कुछ के रामायण एवं पुराणों से गृहीत होने के कारण उनसे भी सम्बन्धित हैं । तिलकमंजरी की पूरी कथा काल्पनिक तथा विद्याधर लोक से सम्बन्धित है । शृंगारमंजरी कथा में वेश्याओं की कहानियां काल्पनिक हैं किन्तु नगर तथा राजाओं के नाम ऐतिहासिक प्रतीत होते हैं । वेमभूपाल चरित की कथावस्तु ऐतिहासिक ही है । अर्वाचीन गद्य-काव्यों में उसका वही स्थान है जो प्राचीन गद्य-काव्यों में बाण के हर्षचरित का । पंडितराज जगन्नाथ ने यद्यपि एक प्रकार से कथावस्तु के प्रति उपेक्षा भाव रखा है किन्तु उन्होंने भी जो कुछ कथा रखी है वह अपने आश्रयदाता से सम्बन्धित करके । रामकथा की कथावस्तु से जैसा कि स्पष्ट है वह रामायण से ली गयी है । गद्यचिन्तामणि की कथा पौराणिक है ।

अर्वाचीन गद्य-कवि कथावस्तु के विन्यास करने में बाण से तो प्रभावित हैं ही साथ ही उनकी शैली से भी बहुत प्रभावित हैं । विस्तृत वर्णन करने की प्रवृत्ति, विशेषण विशिष्ट, दीर्घसमासाच्छन्न वाक्यों की कमी यहां किसी भी प्रकार नहीं है । बाण ने अपनी शैली में संतुलन रखा है । अर्थात् जहां उन्होंने दीर्घ वाक्य रखे हैं वहां मस्तिष्क को आराम देने के लिए लघुकाय वाक्यों का प्रयोग किया है । यही कारण है कि उनके वर्णन के प्रारम्भ में दीर्घ समासाच्छन्न वाक्य मिलते हैं, मध्य में उतने समास नहीं रह जाते हैं और अन्त तक समासों का प्राय: अभाव ही हो जाता है । किन्तु इन गद्य-कवियों में ऐसी विशेषता प्राय: बहुत कम देखने को मिलती है । वे आदि से अन्त तक समासाच्छन्न दीर्घ वाक्यों का ही प्रयोग करते हैं जिससे वर्णन-प्रसंग अत्यन्त क्लिष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार की शैली युद्ध-वर्णन बीभत्स आदि के वर्णन के लिए तो उपयुक्त हो सकती है किन्तु सर्वत्र नहीं । किन्तु इन कवियों ने गद्य-काव्य का प्राण तत्व ओजगुण तथा समास मान कर इसका एक प्रकार से दुर्पयोग ही किया है । कहीं-कहीं पर उनकी इस प्रकार की शैली रस के आस्वादन कराने में भी बाधक बन गई है । उदाहरणार्थ करुण प्रसंग में यह शैली प्रशंसनीय नहीं मानी गई है किन्तु इन कवियों ने वहां पर भी इसका प्रयोग किया है । बाण की इस समासाच्छन्न शैली ने इन कवियों को इतना अधिक प्रभावित किया है कि वे इसके अपनाने के मोह को किसी प्रकार छोड़ नहीं सके हैं । धनपाल वैदर्भी रीति को श्रेष्ठ मानते हैं किन्तु उनके काव्य में प्रथम शैली का रूप ही अधिक दिखायी देता है । यह

अवश्य है कि श्लेष की क्लिष्टता को उन्होंने अपने काव्य में स्थान नहीं दिया है ।

कवियों ने उपर्युक्त शैली का अधिकांशत: प्रयोग वर्णन प्रधान स्थलों में किया है किन्तु जहां उपदेश देना अथवा भावों की अभिव्यंजना करानी हुई है वहां उन्होंने वैदर्भी रीति एवं उसके प्रसादगुण को स्थान दिया है । समासाश्रित शैली की अपेक्षा कवि इस शैली के प्रयोग में अधिक सफल हुए हैं । यत्र तत्र मध्यमसमासा शैली भी मिलती है । अर्वाचीन गद्य-कवियों में वासुदेव ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपना पूरा काव्य वैदर्भी शैली में ही रचा है, कतिपय स्थलों पर ही समासयुक्त दीर्घ वाक्य मिलते हैं ।

बाण जो एक प्रकार से गद्य-काव्य के जन्मदाता हैं उन्होंने गद्य-काव्य का समासा, असमासा और अल्पसमासा शैली को ही श्रेष्ठ माना है, श्लोकसमन्वित शैली को नहीं । किन्तु जैसा कि इन अर्वाचीन गद्य-कवियों की शैली के अन्तर्गत देखा जा चुका है कि इन कवियों ने अपने काव्य में इस शैली का भी बहुत प्रयोग किया है । इन काव्यों में यद्यपि पद्यों की बहुलता है किन्तु उन्हें चम्पू काव्य नहीं कहा जा सकता है । क्योंकि यहां पद्य कथावस्तु के विकास के सहायक न होकर भावों की अभिव्यंजना अथवा सौन्दर्य निरूपण में हुए हैं जब कि चम्पू में जैसा कि देखा जा चुका है कि पद्यों का प्रयोग इन स्थलों के अतिरिक्त कथावस्तु के विकास में भी होता है ।

बाण की भांति अपनी शैली को अलंकृत बनाये रखने के लिए इन कवियों ने अलंकारों का भी प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में किया है । इसके अपवाद रूप केवल वासुदेव कवि ही कहे जा सकते हैं । अलंकारों में वही उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, विरोधाभास, व्यतिरेक, संदेह, समासोक्ति, श्लेष, यमक, अनुप्रास, विशेषोक्ति आदि कुछ विशिष्ट अलंकारों का प्रयोग हुआ है । उत्प्रेक्षा और उपमा अलंकारों के प्रति सभी कवियों का मोह परिलक्षित होता है । कुछ ही स्थलों को छोड़कर इनके अलंकारों में आयी कल्पनाओं में नवीनता मिलती है । श्लिष्टोपमा और रूपक अलंकारों के प्रति अत्यधिक मोह वामनभट्ट बाण की रचना में मिलता है । परिसंख्या अलंकार का प्रयोग कवियों ने किया है किन्तु अधिक नहीं । अर्वाचीन गद्य-कवियों में केवल धनपाल की तिलकमंजरी में ही इस अलंकार की अधिकता मिलती है । इन कवियों ने इन अलंकारों का प्रयोग प्राकृतिक दृश्यों के निरूपण, पात्रों के सौन्दर्य एवं स्वभाव चित्रण तथा रसों की अभिव्यक्ति कराने में किया है और जैसा कि पीछे देखा जा चुका है कि उन्हें इस विषय में पर्याप्त मात्रा में सफलता भी मिली है ।

रसों के निरूपण में भी इन कवियों को कम सफलता नहीं मिली है । काव्य का प्राणतत्व `रस` होने के कारण इन कवियों ने इसकी चर्वणा कराने में विशेष उत्साह दिखाया है । इन काव्यों के अध्ययन से स्पष्ट है कि उनके काव्यों में शृंगार, वीर, अद्भुत,

बीभत्स, भयानक, रौद्र -- आदि सभी रस हैं किन्तु कवियों की विशेष रुचि शृंगार रस के निरूपण में रही है । जिन गद्य-कवियों ने वीर रस को अपने काव्य का प्रमुख रस बनाया है उन्होंने भी इस रस का विस्तार के साथ सम्यक् निरूपण किया है । बीभत्स रस की चर्वणा वीर रस के आस्वादन तथा भयानक रस के आस्वादन के समय अधिकांशत: होती है । रौद्ररस भी वीररस का अंग बनकर आया है । रसों के अतिरिक्त इन काव्यों में भावों की उत्कृष्ट अभिव्यंजना हुई है । इस दृष्टि से ये गद्य-काव्य बाण आदि पूर्व गद्य-कवियों से किसी प्रकार कम नहीं कहे जा सकते । यह बात अवश्य है कि इन गद्य-कवियों में रस की असफलता के यत्र तत्र क्वाप उदाहरण मिलते हैं । 'आलकविलास' में अवश्य केवल सुन्दरवर्ण योजना की ही ओर कवि का ध्यान है, वहां पर इस तत्व की सामान्यत: उपेक्षा हुई है । रामकथा में इस तत्व की उपेक्षा नहीं कही जा सकती किन्तु उसमें कवि को क्वाच स्थल छोड़कर असफलता मिली है -- ऐसा ही कहा जायेगा ।

इन गद्य-काव्यों में प्राकृतिक दृश्यों की भी सघनता मिलती है । उपवन, वन, सरोवर, समुद्र, सूर्यास्त, चन्द्रोदय आदि का वर्णन यहां भी मिलता है और कवियों ने उनके वर्णन में अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है । महाकाव्यों की भांति प्राकृतिक दृश्यों का अत्यधिक मात्रा में निरूपण यहां भी मिलता है । इन कवियों ने प्रकृति को स्वतंत्र तथा उद्दीपन दोनों रूप में लिया है । उद्दीपन रूप का ग्रहण रस की भूमिका के रूप में अधिक किया गया है । इसके अतिरिक्त इन काव्यों में प्रकृति कभी शिक्षिका के रूप में कभी सहचरी के रूप में, कभी सेविका के रूप में, कभी दण्ड-विधातृ के रूप में तथा मानव की भांति अन्य कार्य करती हुई आई है । प्रकृति की विविध-रूपता से इनके काव्य में सौन्दर्य आ गया है । शैली के कारण यद्यपि इन कवियों के इस प्रकार के स्थल क्लिष्ट अवश्य हो गए हैं किन्तु उससे कवि का प्रकृति-विषयक प्रेम तथा प्रकृति की विविध रूपता से उत्पन्न सहज आकर्षण में किसी प्रकार की कमी नहीं परिलक्षित होती ।

पात्रों के चरित्र-चित्रण में ये कवि अधिक सफल नहीं कहे जा सकते । कुछ ही कवि सफल हुए हैं । क्योंकि इन कवियों में गुणानुवाद करने की प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती है और उन गुणों को क्रियान्वित रूप देने में कम, जिससे उनके चरित्रों का मूल्यांकन किया जा सके । वामनभट्ट बाण के इतने बड़े गद्य-काव्य में केवल राजा प्रोल्ल, नायक वेम तथा प्रोल्ल की महिषी का ही चित्रण सम्यक् प्रकार से हुआ है । अधिकांशत: इन गद्य-कवियों ने पात्रों में आदर्श गुणों की कल्पना की है और उनके आचरणों का तदनुकूल वर्णन किया है । सब पात्रों को रखकर नायक के चरित्र को

ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया गया है तथा अधर्म पर धर्म की विजय बताई गई है। शृंगारमंजरी कथा में इस प्रकार के पात्र नहीं मिलते हैं। उसका विषयक्षेत्र ही भिन्न है। उसमें कवि ने व्यतिरेक-मुखेन वेश्याओं से सावधान होने का संकेत किया है। उन्होंने अपने काव्य में वेश्याओं, उनकी माताओं एवं उनके सम्पर्क में आने वाले पात्रों को लेकर निम्नकोटि के समाज का सजीव चित्र खींचा है। चरित्र-चित्रण विषयक सफलता भोज तथा धनपाल को अधिक मिली है। ओडयदेव नायक की अपेक्षा खलनायक के चित्रण में अधिक सफल हुए हैं।

अर्वाचीन गद्य-काव्यों में कुछ गद्य-काव्य सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। उनसे देश की स्थिति, समाज की स्थिति तथा उस समय की आर्थिक सम्पन्नता के विषय में पर्याप्त सामग्री उपस्थित हो जाती है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इन काव्यों में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तीनों स्थितियों का एक साथ निरूपण हुआ हो। भोज की शृंगारमंजरी कथा में समाज के निम्नस्तर की स्थिति का अधिक चित्रण हुआ है। यद्यपि यह धारा नरेश भोज की रचना है किन्तु उनकी इस रचना से केवल कुछ नगरों एवं कुछ राजाओं के नाम ही ज्ञात हो पाते हैं। तिलकमंजरी में काल्पनिक कथावस्तु है अत: पात्र भी अधिकांशत: काल्पनिक हैं। उनके भी काव्य से राजनीतिक स्थिति के विषय में इतना ज्ञान नहीं हो पाता जितना सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में। गद्यचिन्तामणि में अवश्य सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितियों की विवेचना अपेक्षाकृत अधिक हुई है।

आर्थिक स्थिति का विवेचन सभी गद्य-काव्यों में प्राय: एक-सा हुआ है। इसका कारण सम्भवत: भारतीय कवियों का आदर्शवादी दृष्टिकोण तथा अधिकांशत: राजाओं के आश्रय में रहने के कारण आत्मसंतोष की भावना अथवा उनकी चाटुकारिता है। अत इस स्थिति के वर्णन में यदि अतिशयोक्ति मिलती है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है किन्तु कवियों की इस अतिशयोक्ति में भी सत्य का अंश रहता है। अत: उनके काव्यों से उस समय की सम्पन्नता का भी कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

इस दृष्टि से यदि कोई गद्य-काव्य महत्व नहीं रखते हैं तो केवल वासुदेव की रामकथा और जगन्नाथ का आसफविलास ही। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इस दृष्टि से उनके गद्य-काव्य को काव्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि कवि का कार्य ऐतिहासिक की भाँति समस्त स्थितियों का निरूपण करना नहीं होता, उसका कार्य काव्य में एक ऐसा सहज आकर्षण लाना रहता है जिसमें पाठक लीन हो जाय और

वह विशेषता इन काव्यों में परिलक्षित होता है ।

इस प्रकार सभी दृष्टियों से इन अर्वाचीन गद्य-काव्यों का विवेचना करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि भोज, धनपाल, ओड्यदेव तथा अभिनव भट्ट बाण की गद्य-कृतियां ऐसी हैं जिनमें बाण की-सी गद्य-कृतियों का आनन्द मिलता है । यह अवश्य है कि कहीं-कहीं उनकी समानल-धुविष्ठ शैली यत्र तत्र उनके वर्णन-सौन्दर्य में बाधक हो जाती है । समासधुमिष्ट शैली के जो दोष भोज और धनपाल की रचना में मिलते हैं वह वामनभट्टबाण की शैली में अपेक्षाकृत कम हैं । उन्होंने अपने काव्य में अलंकृत शैली को प्रधानता दी है । उनके काव्य में इस प्रकार की शैली अधिकांशतः युद्ध आदि के प्रसंग में आयी है । वामनभट्ट बाण की यह कृति अन्य अर्वाचीन गद्य-कवियों की अपेक्षा उत्कृष्टतर कही जा सकती है । अर्वाचीन गद्य कवियों में वासुदेव और पंडितराज जगन्नाथ का स्थान सबसे भिन्न है । वासुदेव की रचना में बाण का किंचिदपि प्रभाव नहीं है । उन्होंने सरल-सीधी शैली में राम की वृहद् कथा को संक्षिप्त रूप में रचना है और पंडितराज जगन्नाथ ने आसफविलास जैसी कुछ पंक्तियों की अत्यन्त लघुकाय गद्य-काव्य कृति को प्रस्तुत करके अत्यन्त प्राचीन काल से अपने समय तक चली आने वाली गद्य-काव्यों की परम्परा को एक नया मोड़ दिया है, एक नई दिशा दिखाई है जिसका प्रभाव परवर्ती गद्य-काव्य कृतियों पर यत्र-तत्र सूक्ष्म आलोचक को भी बिना परिलक्षित हुए नहीं रहेगा ।

-0-

परिशिष्ट

उदयसुन्दरी कथा-- गद्यकाव्य अथवा चम्पू

अर्वाचीन गद्य-काव्यों में पद्यों की बहुलता को देखकर बहुत से विद्वान उदयसुन्दरी कथा को चम्पू काव्य होते हुए भी गद्य-काव्य मानते हैं। डा० डे ने धनपाल का तिलकमंज के आधार पर ही उदयसुन्दरी कथा को गद्य-काव्य बताया है[1]। किन्तु गद्य-काव्य और चम्पू काव्य में शैली एवं विषय की दृष्टि से प्रभूत समानता होते हुए भी दोनों में अन्तर है। गद्य-काव्य में गद्य की प्रधानता रहती है, पद्य रहते भी हैं तो सीमित रूप में और वे कथा-विकास में सहायक नहीं होते हैं। अतः तिलकमंजरी को यदि देखा जाय तो उसमें पद्यों को उस प्रकार का स्थान नहीं मिला है जिस प्रकार का स्थान चम्पू-काव्य में होता है। तिलकमंजरी में आये हुए पद्यों से उसका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। प्रारम्भ में जिन स्तुति,साधु-असाधु की विवेचना, कवि-प्रशंसा, अपना परिचय आदि तो श्लोक में है ही इनके अतिरिक्त भी पद्यों के अधोलिखित रूप मिलते हैं --

चरित्रचित्रणात्मक पद्य-- राजा मेघवाहन की वीरता-वर्णन में चार श्लोक (पृष्ठ १६) तथा विक्रमबाहु के वर्णन में एक श्लोक (पृष्ठ ४०१) का प्रयोग हुआ है।

सौन्दर्य-वर्णन में प्रयुक्त पद्य-- राजा मेघवाहन की महिषी मदिरावती के नखशिख वर्णन में एक श्लोक (पृष्ठ २३) हरिवाहन के द्वारा दृष्ट तिलकमंजरी के सौन्दर्य-वर्णन में दो श्लोकों (पृष्ठ २४८), मलयसुन्दरी के नखशिख वर्णन में दो श्लोकों (पृष्ठ २५५),गन्धर्व के सौन्दर्य-वर्णन में तीन श्लोकों (पृष्ठ २६२) का प्रयोग है।

चारणों द्वारा उच्चारित पद्य-- बन्दी अपरवक्त्र छन्द से मेघवाहन को पुत्र प्राप्ति के लिए ईश्वर की आराधना की ओर संकेत करता है (पृष्ठ २८) तथा साथ-साथ बैठे हुए तिलकमंजरी और हरिवाहन को अलग-अलग करने के लिए चारण आर्या का पाठ करता है। (पृष्ठ २३२)

दृश्यों के वर्णन में प्रयुक्त पद्य-- प्रकृति - वर्णन में एक पद्य(पृष्ठ २१२), एक स्थल पर रा का अन्त और सूर्य का उदय दिखाने के लिए छः वृत्तकुलकों का (पृष्ठ २३७) तथा दूसरे स्थ पर सात वृत्तकुलकों (पृष्ठ ३५८-३५६) का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त एक श्लोक में

होमाग्नि का वर्णन हुआ है । (पृष्ठ ३२६-३३०)

शुभकामना में प्रयुक्त पद्य-- एक श्लोक में नगनागरी शुभकामना प्रकट करता है ।(पृ०२४०)

भावों की अभिव्यंजना में प्रयुक्त पद्य-- तिलकमंजरी की वियोगावस्था का वर्णन दो श्लोकों में हुआ है । (पृष्ठ ३६१)

सन्देश भेजने में प्रयुक्त पद्य-- मलयसुन्दरी को मिले समरकेतु के पत्र में एक श्लोक आया है । (पृष्ठ ३३६) तथा तिलकमंजरी द्वारा भेजा गया सन्देश एक श्लोक में है ।(पृ०३६६)

इस प्रकार तिलकमंजरी में पद्यों की बहुलता है किन्तु इनमें से कोई भी ऐसा पद्य नहीं है जो कथावस्तु में सहायक हो । इनमें से कोई भी पद्य यदि हटा दिया जाय तो कथा के विकास में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती है । इसमें भावों की अभिव्यंजना के लिए केवल एक श्लोक का प्रयोग हुआ है । इस प्रकार कवि का लक्ष्य गद्य के प्रयोग में अधिक है यत्र तत्र ही श्लोकों के प्रति कवि की रुचि परिलक्षित हो जाती है ।

किन्तु ऐसा हम उदयसुन्दरी कथा में नहीं देखते हैं । इसमें पद्य को छोड़ देने पर उसके कथा-भाग को नहीं समझा जा सकता है । यहां कथा में सहायक होने वाले कतिपय पद्य नहीं अपितु कई हैं । शुक के रूप के अतिरिक्त शुक की बोली जो पद्य में कही गई है उसे सुनकर वसन्तशील नामक वनपाल को कौतूहल होता है और उसको पकड़ने के लिए वह प्रयत्नशील होता है । वही शुक राजा मलयवाहन को उदयसुन्दरी के विषय में बताता है जो काव्य का मुख्य विषय है । (पृष्ठ २८)

पामर के द्वारा पकड़े जाने पर शुक भाग्य की विडम्बना को दो आर्या छन्दों में कहता है । जिसको सुनकर पामर भयभीत हो जाता है और जिस कार्य के लिए उसे पकड़ा था उस पर ध्यान न देकर उसे छोड़कर चल देता है । वह शुक वसन्तशील के हाथ में पड़ता है और राजा के पास पहुंच कर समुचित सत्कार पाता है एवं कथा आगे बढ़ती है । यदि भाग्य की विडम्बना से सम्बन्धित श्लोक न कहलाए जाते तो पामर उस शुक को घर ले जाकर मार डालता और अपनी पत्नी को खिलाता और उसके बिना फिर उदयसुन्दरी का पता न चलता और कथा आगे नहीं बढ़ पाती । (पृष्ठ ३४)

शुक द्वारा की गयी राजा की स्तुति को सुनकर राजा को आश्चर्य होता है । कौतूहल के कारण राजा शुक से उसकी जीवनी पूछता है । शुक पूरी कहानी बताता है जो आगे चलकर नायक में नायिका के प्रति अनुराग पैदा करने का कारण होती है ।पृ०३६

मृगया प्रसंग का आरम्भ शुक के प्रस्ताव से होता है जो श्लोक में कहा गया है ।पृ०४

कुमारवाहन स्वप्न में पक्षी की आवाज़ सुनता है । वह उसकी बातें कहने के लिए प्रेरित करती है जिससे उसको नायिका उदयसुन्दरी के बारे में पता चलता है । पृष्ठ ५८

उदयसुन्दरी अपनी मनोव्यथा पद्य में कहती है जिसको सुनकर उसकी प्रिय सखी तारावली को दु:ख होता है और वह अपनी सखी के दु:ख के निवारणार्थ प्रयत्नशील होती है । पृष्ठ १०२

उदयसुन्दरी के वियोग में विह्वल राजा को प्रोत्साहित करने के लिए पद्य का प्रयोग हुआ है । पृष्ठ ११७

कपि का वर्णन कथावस्तु में सहायक है । उसका वर्णन केवल पद्य में हुआ है । उसको कुरूप में देखकर तथा उद्यान को नष्ट करते हुए देखकर (यह गद्य में) उसके पीछे मलयवाहन दौड़ता है और अकस्मात् उसका अनुसरण करने से दैव वश उदयसुन्दरी को प्राप्त कर लेता है । पृष्ठ १२७

बन्दर के मनुष्यरूप में आने का उल्लेख पद्य में हुआ है । मनुष्य रूप आने पर राजा उसके बारे में पूछता है । उस पर वह अपनी कहानी कहते हुए बताता है कि उदयसुन्दरी की वह बराबर रक्षा करता रहा । पृष्ठ १३६

इसके अतिरिक्त उदयसुन्दरी कथा में कवि का उद्देश्य गद्य-काव्य का समान रूप से प्रयोग करना भी परिलक्षित होता है । क्योंकि उसने कई स्थलों पर जिस उत्साह से गद्य वर्णन किया है उसी उत्साह से पद्य में किया है ।

पृष्ठ ५ पर अग्रज[1] कालादित्य के युद्ध का वर्णन जिस उत्साह से गद्य में हुआ है उसी उत्साह से अनुज कालादित्य का युद्ध-वर्णन पृष्ठ ७ पर पद्य में हुआ ।

प्रतिष्ठान नगर का वर्णन गद्य-पद्य दोनों में है । पृष्ठ १२

इसी प्रकार राजा मलयवाहन की तलवार का वर्णन दोनों में है ।(पृष्ठ ४१)शुक के माध्यम से कवि ने अपनी राजभक्ति गद्य-पद्य में प्रदर्शित की है जब शुक उसकी वीरता से शत्रु के बीच होने वाली दशा का वर्णन करता है । पृष्ठ ४१-४२

मृगया के लिए तत्पर बाण चढ़ाये राजा का वर्णन कवि ने गद्य-पद्य दोनों में किया है । मृगया के समय जानवरों की स्थिति का वर्णन गद्य में तथा उनके वध का वर्णन पद्य में किया गया है । पृष्ठ ४३

१- दो कालादित्य भाई-भाई हैं । अत: दोनों का भेद बताने के लिए अग्रज और अनुज प्रयोग किया गया है । यद्यपि युद्ध-वर्णन के प्रसंग में अग्रज अनुज नहीं प्रयुक्त हुआ है परन्तु वर्णन से पता चलता है कि पहले अग्रज धर्मपाल से लड़ने गया था, फिर अनुज उसी से लड़ने

रात्रि का वर्णन गद्य-पद्य दोनों में समान रूप से हुआ है और दोनों में काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है । पृष्ठ ७२-७३

नवीन कल्पना के साथ चन्द्रोदय का वर्णन गद्य-पद्य में है (पृष्ठ७३) युद्ध में राजा औरराक्षस के संवाद (पृष्ठ ८०) श्मशान का वर्णन (पृष्ठ ९०-९१),पाताल लोक एवं उसके इन्दीवर नामक नगर का वर्णन (पृष्ठ ९३-९४) और उदयसुन्दरी के काम-विकारों का वर्णन (पृष्ठ ९९-१०१) दोनों में ही हुआ है । वर्षाकाल का उद्दीपन रूप दोनों में वर्णित है किन्तु गद्य में कवि का उत्साह अधिक परिलक्षित होता है अपेक्षाकृत पद्य के । पद्य की दो पंक्तियों में गद्य में वर्णित विषयों की पुनरावृत्ति और दो पंक्तियों में वर्षाकालीन वायु का वर्णन है । पृष्ठ १०३

अकस्मात् उदयसुन्दरी के गायब हो जाने पर तारावली वितर्क करती है उसको गद्य-पद्य दोनों से वर्णित किया गया है दोनों रूप एक दूसरे से बढ़कर हैं । पृष्ठ १०६

राम-रावण युद्ध के प्रसंग गद्य-पद्य में हैं । गद्य की पुनरावृत्ति पद्य में नहीं है ।पृ०११

प्रभातकालीन कार्यों एवं वायु का वर्णन गद्य के माध्यम से पृष्ठ ११४ में और चन्द्रास्त और सूर्योदय का वर्णन पद्य के माध्यम से पृष्ठ ११५ में हुआ है ।

इसी प्रकार वसन्तर्तु का उद्दीपन रूप (पृष्ठ १२१-१२२) , तड़ाग का सौन्दर्य वर्णन (पृष्ठ १२९-३०), उदयसुन्दरी का वर्णन (पृष्ठ १३३-३४) दोनों में है ।

मूर्च्छित उदयसुन्दरी को राजा अपने हाथ से पकड़ता है यह गद्य में और उसकी मूर्च्छा के दूर होने का वर्णन पद्य में है । यह वर्णन बड़ा नाटकीय एवं भावपूर्ण है —

"तथापि पुनरसौ मणिर्यथा कायपरिवर्तनविकारमपहरति तथा मूर्च्छामिदिव्यापहरोऽपि जायत इत्यार्द्रतात्त्वरमुत्थाय गृहीत्वा च तं मणिं तद्गर्भितेन पाणिना मुहुरुदयसुन्दरीं करे जग्राह ।

अत्रान्तरेऽभ्यगिति तस्य मणेः प्रभा-
    द्विच्छिन्नमूर्च्छामयमुग्धविलोचनाऽसौ ।
कैरोत्थिताभूतकराग्रमनंगरूप-
    मग्रे नरेन्द्रमवनितिलकं ददर्श ।। पृष्ठ १३७

राज्य में पहुंचने पर स्त्रियों की दशा का एवं उनके सत्कार का वर्णन गद्य में है तो राजधानी के उत्सव का वर्णन गद्य-पद्य दोनों में समानरूप से है ।पृष्ठ१४६-१४७

प्रकृति-वर्णन में पद्य-- प्रकृति के साथ मानवीय सम्बन्ध दिखाने में पद्य का प्रयोग हुआ है । सन्ध्या के समय आकाश में लालिमा उदित होती है और इधर राजा के हृदय में अनुराग उदित होता है । पृष्ठ ७१

फैलती हुई अन्धकार का वर्णन (पृष्ठ ७२) रात्रि का वर्णन, उसके अंधकार में वृक्षों का अनुमान, संकेत स्थलों पर अभिसारिकाओं का जाना(पृष्ठ ७२-७३), चन्द्रोदय (पृष्ठ ७३), चन्द्रास्त तथा सूर्योदय का वर्णन(पृष्ठ ११५) , वर्षा ऋतु(पृष्ठ १०३),वसन्त ऋतु का उद्दीपन रूप (पृष्ठ २६,१२१-१२३) तथा तड़ाग का वर्णन पद्य में ही है ।

इस काव्य में पद्यों में गद्य की पुनरावृत्ति मिलती है । रावण के मरने की बात गद्य में कही जा चुकी है उसी को पुन: पद्य में कहा गया है । विभीषण का प्रसंग भी पुन: पद्य में आया है । पृष्ठ(८४) वर्षा ऋतु के उद्दीपन वर्णन में आई पद्य की दो पंक्तियों में गद्य की पुनरावृत्ति है ।(पृष्ठ १०३)

गद्य में वर्णित वसन्तकालीन वायु की पुनरावृत्ति पद्य में है । (पृष्ठ १२२)

उदयसुन्दरी के कार्यक्रम को पुन: संक्षेप में पद्य में कहा गया है ।(पृष्ठ १३५)

इसके अतिरिक्त इस काव्य में चरित्र-चित्रणात्मक पद्य,स्तुतिपरक पद्य,वर्णनात्मक पद्य, सौन्दर्य-वर्णन में प्रयुक्त पद्य तथा भावों की अभिव्यंजना में भी पद्यों का प्रयोग मिलता है ।

चरित्रचित्रणात्मक पद्य-- बन्दी ने राजा का गुणगान जो गद्य में गाया है उसको स्तुति भी कहा जा सकता है, राजा के चरित्र-चित्रण में सहायक है । उसको सुनकर राजा करुणार्द्र होकर बन्दी धर्मपाल (कवि) को छोड़ देता है । पृष्ठ ७

राजा के प्रति शुक का जो भक्ति भाव वर्णित हुआ है वह राजा के पराक्रमी स्वरूप को बताता है । पृष्ठ ५१

कलिङ्गकेतु का यश एवं तलवार का वर्णन पद्य में अलंकार के साथ सुन्दर ढंग से हुआ है । पृष्ठ ५५मलयवाहन के पराक्रम एवं उसकी विद्वता,वीरता एवं यश का वर्णन(पृ०२३-२१ एवं मन्त्री विभूतिवर्द्धन के गुणों का वर्णन पद्य में हुआ है । (पृष्ठ २५)

स्तुतिपरक पद्य--शंकर एवं पूर्ववर्ती कवियों की स्तुति(पृष्ठ १-३) सरस्वती (पृष्ठ १४,१६), कात्यायिनी (पृष्ठ ६१) शंकर(पृष्ठ ६५), तथा दुर्गा (पृष्ठ ६२) की स्तुति पद्य में है ।

भाग्य की विडम्बना में प्रयुक्त पद्य-- शुक का कहना जिसको सुनकर वसन्तशील आश्चर्यान्वित होकर पकड़ने के लिए प्रयत्नशील होता है । (पृष्ठ २८)

नियति पर शुक की बोली को सुनकर पामर भयभीत होकर उसे छोड़ देता है ।पृ०३

कुमारकेसरी को शुक होने का शाप मिलने पर कुमारकेसरी का भागने को उत्सुकता का वर्णन देता पद्य में है ।(पृष्ठ ६६)

वर्णनात्मक पद्य-- प्रतिष्ठान नगरी(पृष्ठ २१), नन्दावर्त नगर के उपवन(पृष्ठ २७),मृगया (पृष्ठ ४३-४४),श्मशान वर्णन(पृष्ठ ६०-६१), पाताल लोक एवं उसके कुन्दीवर नामक नगर का (पृष्ठ ६३-६४) तथा उदयसुन्दरी के वियोग में दुःखित राजधानी का वर्णन(पृ०१०७) में पद्य का प्रयोग हुआ है ।

सौन्दर्य-वर्णन में प्रयुक्त पद्य-- उदयसुन्दरी का वर्णन (पृष्ठ५३,६६,१३३-३४, ~~तथा~~ १४०-१४१) पद्यों में है ।

भावों की अभिव्यंजना में प्रयुक्त पद्य-- राजा के प्रति शुक का भक्तिभाव(पृष्ठ५१) तथा उदयसुन्दरी के काम-विकारों का वर्णन(पृष्ठ ६६,१०१) पद्यों में है । मायाबल नामक राक्षस अपनी वीरता का परिचय ओजयुक्त वक्तव्य के साथ प्रभावमयी शैली में देता है (पृष्ठ ८६) । अकस्मात् उदयसुन्दरी के गायब हो जाने पर तारावली के मनोभावों की अभिव्यंजना में पद्य का प्रयोग हुआ है ।(पृष्ठ १०६) इसी प्रकार उदयसुन्दरी के दुःख में दुःखित राजधानी की दशा का वर्णन (पृष्ठ १०७), राक्षसों का शोक(पृष्ठ१११), राजा मलयवाहन उदयसुन्दरी के बारे में जो कुछ सोचता है उसका वर्णन(पृष्ठ११६) चित्र दर्शन के पश्चात् अकस्मात आपस में मिलने से उत्पन्न होने वाले नायक-नायिका के मनोभावों की सुन्दर अभिव्यंजना (पृष्ठ १३७) तथा विद्याधर ताराकिरीट के मन में उदयसुन्दरी को देखकर उठे हुए विचारों का वर्णन (पृष्ठ १४०) पद्यों में ही है ।

उदयसुन्दरी में जहां पद्यों की इतनी बहुलता है वहां उसमें गद्यों के उत्कृष्ट नमूनों की कमी नहीं है । कवि ने काव्य-प्रतिभा एवं अलंकार प्रयोग से उसे ललित रूप दिया है । इस प्रकार इस काव्य में पद्य और गद्य दोनों का ही सुन्दर रूप देखने को मिलता है और दोनों ही कथावस्तु में सहायक है । पद्यों की इतनी बहुलता तथा कथावस्तु में सहायक होने वाले पद्यों का प्रयोग तिलकमंजरी में नहीं है । अतः डा० दे उदयसुन्दरी कथा को गद्य-काव्य मानने का जो तर्क देते हैं कि इसमें पद्य का वैसा स्वतन्त्र एवं अधिक प्रयोग नहीं है जैसा चम्पू में देखा जाता है -- ठीक नहीं प्रतीत होता ।

डा० दे ही नहीं, कई विद्वान इसे गद्य-काव्य मानने के पक्षपाती हैं किन्तु वे इसके ऐसा मानने में कोई समुचित प्रमाण नहीं देते । एम०कृष्णमाचार्य सौष्ठव के सुन्दर विचार कल्पना एवं भावों की अभिव्यक्ति के कारण उन्हें गद्य-काव्यकारों में प्रथम स्थान देते हैं[१] ।

१- ए० हि० आफ सं०लिट०-- एम० कृष्णमाचार्य पृष्ठ ४७६

सुधीरकुमार गुप्त कवि के लक्ष्य के आधार पर उसे गद्य-काव्य बताते हैं । उनका कहना है कि इसमें पद्यों का प्रचुर प्रयोग हुआ है किन्तु अन्य गद्य-काव्यों के समान इसमें भी रचना का प्रमुख लक्ष्य गद्य है, पद्य नहीं[१] । लेकिन जैसा कि अभी देखा जा चुका है कि उदयसुन्दरी कथा में कवि का लक्ष्य गद्य और पद्य दोनों के प्रयोग में है क्योंकि दोनों ही कथावस्तु में सहायक हैं ।

`उदयनचरितम्` की भूमिका में पं० कालीप्रसाद शास्त्री ने इसे आख्यायिका कोटि में रखा है किन्तु ऐसा मानने में उन्होंने कोई कारण नहीं दिया --

" अनेन उदयसुन्दरी नाम्ना गद्याख्यायिका लिखिता । अत्र कतिचित्पद्यान्यपि सन्ति .... सोड्ढलस्य गद्यं सहृदयहृदयहारि चमत्कारजनकम् ।"[२]

पं० बलदेव उपाध्याय इसे गद्यपद्यात्मिका मानते हुए भी गद्य-काव्य बताते हैं --"सोड्ढल (११वीं श०) की `उदयसुन्दरी` कथा गद्य-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है । . . . — यह कथा गद्यपद्यात्मिका है ।"[३]

पं० बलदेव उपाध्याय जब उसको गद्य पद्यात्मिका मानते हैं तो उसे संस्कृत आचार्यों के मत से ही चम्पू काव्य मान लेना चाहिए क्योंकि उन्होंने गद्यपद्यमयी को चम्पू बताया है[४]

डा० योगेश्वर पाण्डेय उसके समासभूयिष्ठ एवं अलंकृत प्रधान गद्य तथा प्रयुक्त वर्णन, पद तथा वाक्यों के कलात्मक रूपों[५] के आधार पर इसे गद्य-काव्य बताते हैं --किन्तु इसे गद्य-काव्य मानने का यह कारण कोई समुचित नहीं प्रतीत होता । क्योंकि बाण की शैली ने न केवल गद्य-कवियों को अपितु चम्पू कवियों को भी प्रभावित किया है[७] ।

इन विद्वानों के अतिरिक्त प्रो० द्वारिकाप्रसाद[६] तथा एस०वी० दीक्षित ने बिना कोई कारण दिए ही गद्य-काव्य इसे मान लिया । वाचस्पति गैरोला ने तो एक बार चम्पूकाव्य[८] और दूसरी बार गद्य-काव्य[९] बताया है ।

उदयसुन्दरी कथा को गद्य-काव्य मानने का भ्रम अधिकांशतः विद्वानों को उसके `शीर्षक` के कारण ही हुआ है । क्योंकि यदि उसमें प्रयुक्त पद्यों के स्वरूप को देखा जाय तो `उदयसुन्दरी कथा` चम्पू काव्य ही प्रतीत होता है । इसके अतिरिक्त स्वयं कवि ने अपने काव्य को चम्पू काव्य बताया है । कवि ने उदयसुन्दरी कथा के प्रथम उच्छ्वास में

१- संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास -- ~~डा० कृष्णचन्द्र~~ सुधीरकुमार गुप्त पृष्ठ ~~४०६~~ २६२ अ
२- उदयनचरितम्--वी० अनन्ताचार्य--भूमिका पृष्ठ ६ की
३- संस्कृत साहित्य का इतिहास--पं० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३६७
४- सं०ग०का० वि०--डा०योगेश्वर पाण्डेय पृष्ठ ३६७
५- ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ३६८
६- संस्कृत साहित्य का इतिहास--प्रश्नोत्तर रूप में --प्रो०द्वारिकाप्रसाद पृष्ठ१४४
७- दशकुमारचरित(उच्छ्वास६,७,८ सं०एस०वी०दीक्षित पृष्ठ२
८- सं०सा०का इतिहास --वाचस्पति गैरोला पृष्ठ ६११
९- ,, ,, ,, पृष्ठ ६३५

अपनी जीवनी एवं लिखने की प्रेरणा का उल्लेख किया है । वत्सराज द्वारा कथित आर्या को सुनकर कवि 'चम्पू' काव्य की रचना करने के लिए सोचता है --

"..... करोमि स्वशक्तिविस्तरपरीक्षार्णं विना कुतूहलेन सुरिणा च कार्यैरभिलाषिण आश्चर्यतापूर्वकंविधानंकमनेकरसानुबन्धपरं प्रबन्धम् । प्रकृते तु रमणीयं न नाम केवलं गद्यं नापि केवलं पद्यमुभयानुबन्धिनी चम्पूरेव श्रेयसी, यस्मादन्यैव रत्नैर्विरचितस्य शोभा कनकभूषणस्य अन्यदेवपाटलामिश्रितस्य सौरभं विचकिलकुसुमस्य, अन्य एव वंशध्वनिगर्भितस्य मनोहारिमा गीतस्य, अन्यदेव कर्पूरमिश्रितस्य शैत्यं मलयजद्रवस्य, अन्यैव च सूक्ता पद्यानुषंगिणी गद्यस्येति चेतसि विचिन्त्य चम्पूमेव कथां कर्तुमुपजनितनिश्चयस्तद्दिनमतिवाहयांचक्रे ।"[1]

प्रथम उच्छ्वास में पत्थर मूर्ति से मनुष्य का रूप धारण करने वाले तिलक तालक नामक युवकों से कवि ने स्वयं कहलवाया है --

कुतूहलेन संभूतगर्भायां गुणदरिद्रायां महाकवि जातेयमात्मजा चम्पूः ।"[2] --

तालक जब अपने मित्र तिलक के (जो पूर्व में बाण था) शाप से उद्धार की कहानी सोड्ढल को सुनाता है तो इस रचना के विषय में चम्पू ही कहता है --

"यदा हि कवेः सोड्ढलस्य कृतिरपूर्वं उदयसुन्दरीति चम्पूप्रबन्धस्तत्समर्पितः श्रुत्वावधारि-ष्यति तदाऽस्य शापान्त इति ।"[3]

मधुरगाकार नामक भट्ट कवि सोड्ढल के पास जाकर कहता है --

"भोः कवीन्द्र । भवता समुत्प्रेक्ष्य कृता चम्पूरुदयसुन्दरीति कथा ।"[4]

काव्य के अन्त में भी कवि ने इसे चम्पू ही कहा है --

"जयति जयति यावावत्र चम्पूकथायां"

शिवस्तुतिमपूर्(र्णा) रूमा सारस्वतश्रीः ।"

और पुष्पिका में स्पष्ट शब्दों में कवि ने कह दिया है --

।।काव्यमुदयसुन्दरीकथाचम्पूः ।।"[5]

अतः कवि ने अपने इस काव्य में जो बीच-बीच में 'कथा'[6] शब्द का प्रयोग किया है वह गद्य-काव्य के एक भेद 'कथा' से सम्बन्धित न होकर कहानी से ही है । अतः इस

१- उदयसुन्दरी कथा पृष्ठ १३
२- ,, ,, पृष्ठ १८
३- ,, ,, पृष्ठ १५१
४- ,, ,, पृष्ठ १५५
५- ,, ,, पृष्ठ १५८
६- ,, ,, पृष्ठ १३,२०,१५४ ।

काव्य को चम्पू काव्य मानना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । 'उदयसुन्दरी कथा' की भूमिका लिखने वाले पं० कृष्णमाचार्य ने इसे 'चम्पू' काव्य ही माना है -- 'अस्य गद्यपद्यप्रथितस्य चम्पूप्रबन्धस्य प्रणेता कविः सोड्ढलो नाम्ना[1] ।' अयं च चम्पूप्रबन्धः परिशील्यमानः पुराऽयं गुर्जरदेशे... महाकवीनामास्पदमभूदित्यवगम्यते[2] ।'

पं० कृष्णमाचार्य के अतिरिक्त श्री वी० वरदाचार्य[3], पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय, डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास[4], तथा रामबिहारीलाल शास्त्री[5] ने इसमें गद्य-पद्य दोनों का समान रूप मिलने के कारण इसे चम्पू काव्य बताया है ।

हंसराज अग्रवाल ने भी इसे चम्पू काव्य माना है । यद्यपि उन्होंने स्पष्ट रूप से ऐसा मानने का कोई कारण नहीं दिया है किन्तु चम्पू के स्वरूप का विवेचना करते समय जो उन्होंने गद्य-पद्य का कथावस्तु में सहायक होना बताया है, सम्भवतः वही आधार प्रतीत होता है[6] ।

गिरीन्द्रनाथ शास्त्री[7], राम जी उपाध्याय[8] तथा पाश्चात्य विद्वानों में ए०बी० कीथ[9] ने भी इसे चम्पू काव्य ही बताया है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बहुत से विद्वान जहां इस काव्य को गद्य-काव्य मानने के पक्षपाती हैं वहां उसे चम्पू-काव्य मानने के भी पक्षपाती हैं । किन्तु इस काव्य को गद्य-काव्य मानने की अपेक्षा चम्पू काव्य मानना अधिक संगत बैठता है ।

-०-

१- उदयसुन्दरी कथा--भूमिका-- पं० कृष्णमाचार्य पृष्ठ १

२- ,, ,, ,, पृष्ठ ८

३- ए० हि०आफ सं० लि०-- वी० वरदाचार्य पृष्ठ ११६

४- संस्कृत सा० की रूपरेखा-- पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय और डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास पृष्ठ ३५०

५- सं०सा०का सुबोध इति०रामबिहारीलाल शास्त्री,वैदतीर्थ पृष्ठ १६२

६- संस्कृतसाहित्येतिहास: द्वितीयोभाग: पृष्ठ २५

७- सं०सा० विमर्श-- गिरीन्द्रनाथ शास्त्री पृष्ठ ६२१

८- सं०सा० का आलोचनात्मक इति०--रामजी उपाध्याय पृष्ठ १०६

९- हि०आफ सं०लि०-- ए०बी० कीथ पृष्ठ ३३६

संक्षिप्त नामावली

अभि० भा० -- अभिनव भारती

अग्नि० का०शा०भा० -- अग्निपुराण काव्य शास्त्रीय भाग

अ० उ० — अष्टम उल्लास

का०सू० वृ० -- काव्यसूत्रवृत्ति

का० प्र० -- काव्यप्रकाश

काव्या० -- काव्यालंकार

क्ला०सं०लिट० -- क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर

ग० का० मी० -- गद्य काव्य मीमांसा

ग० का० का वि० -- गद्य काव्य का विकास

ग०चिं० -- गद्यचिन्तामणि

तिलक० -- तिलकमंजरी

दशकुमार० -- दशकुमारचरितम्

ध्वन्या० -- ध्वन्यालोक

नि०सा० प्रे० -- निर्णय सागर प्रेस

पं०का०सं० -- पंडितराज काव्य संग्रह

प्र० परि० — प्रथम परिच्छेद

प्र०लं० -- प्रथम लम्ब

प्र० उ० — प्रथम उद्योत

भा०का०शा०भू० -- भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका

व०जी० -- वक्रोक्ति जीवितम्

वेम० -- वेमभूपालचरितम्

श्लो०सं० -- श्लोक संख्या

शृंगार० -- शृंगारमंजरी कथा

सं०सा० का इति० -- संस्कृत साहित्य का इतिहास

सं०सा० वि० -- संस्कृत साहित्य विमर्श

सं० ग० शै० का वि० -- संस्कृत गद्य शैली का विकास

सं०लिट० -- संस्कृत लिटरेचर

सं०हि०टी० -- संस्कृत हिन्दी टीका

सं० नाटककार -- संस्कृत नाटककार

सा० द०	-- साहित्य दर्पण
हि० आफ सं०लिट०	-- हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर
हि० आफ क्ला०सं०लिट०	-- हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर
हि०आफ सं० पोयटिक्स	-- हिस्ट्री आफ संस्कृत पोयटिक्स

-0-

ग्रन्थ - सूची

(क) शास्त्रीय ग्रन्थ - सूची

अलंकार सर्वस्व — टीका- जयरथ सं०पं० दुर्गाप्रसाद, बम्बई १८९३

अलंकार संग्रह — अमृतानन्दयोगिन् आधार पुस्तकालय १९४९

अलंकारशेखर — केशवमिश्र,काव्यमाला ५० बम्बई १९२६

अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग— अनु० रामलाल वर्मा शास्त्री, नेशनल पब्लिशिंगहाउस दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९५९ ।

काव्यलक्षण(काव्यादर्श) रत्न श्री टीका, मिथिलाविद्यापीठ प्रधानेन प्रकाशितम् १९५७

काव्यादर्श — प्रेमचन्द्रतर्कवागीश विरचित टीका,सं० कुसुदरंजन राय,प्रकाशक संतोषकुमार सेन, बेलियाटोला स्ट्रीट, कलकत्ता-६, १९५६ ।

काव्यप्रदीप — प्रकाशक- पाण्डुरंग जीवा जी , निर्णयसागर प्रेस,बम्बई १९३३ तृतीय संस्करण काव्यमाला २४ ।

काव्यानुशासन — हेमचन्द्र वॉल्यूम १ श्री महावीरजैन विद्यालय , बम्बई,प्रथमावृत्ति वि० १९९४ ख्रिस्ताब्दा १९३८ ।

काव्यालंकार — भामह- चौखम्बा सिरीज नम्बर ५४ सन् १९५६

काव्यमीमांसा — राजशेखर, अनु० पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत,बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना,प्रथम संस्करण सन् १९५४ ।

काव्यालंकार सूत्रवृत्ति — वामन, व्या०आ० विश्वेश्वर, सं०डा० नगेन्द्र,आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली ६, १९५४ ।

काव्यालंकार सारसंग्रह — उद्भट-इन्दुराज विरचित लघुवृत्तिटीका, प्रथमांकनावृत्ति १९२५ ।

काव्यालंकार- रुद्रट -नमिसाधु बम्बई काव्यमाला २, १९२८ ।

काव्यानुशासन — के०एम० वाग्भट्ट बम्बई १८९४ ।

काव्य प्रकाश — मम्मट-झलकीकर टीका षष्ठीयांकनावृत्ति, ख्रिस्ताब्दा १९५०

काव्य प्रकाश — शशिकलाशिखा व्याख्योपेत: टीकाकार, डा०सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस-१, १९५५ ।

चन्द्रालोक — जयदेव, टीकाकार प्रेमचन्द

दशरूपक सावलोकम् — चन्द्रकला हिन्दी व्याख्या सहित,व्या०डा० भोलाशंकर व्यास चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी-१, सं० २०११

ध्वन्यालोक लोचन सहित --बालप्रिया टीका, काशी संस्कृत सिरीज़ ग्रन्थमाला १३५ चौखम्भा, संस्कृत सिरीज़ आफिस, बनारस सन् १९४० ।

ध्वन्यालोक काव्यमाला २५ -- सं०पं० दुर्गाप्रसाद , निर्णय सागर प्रेस बम्बई १९११ ।

हिन्दी ध्वन्यालोक -- व्याख्याकार आ० विश्वेश्वर सं० डा० नगेन्द्र, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९५२ ।

शृंगार प्रकाश -- सं०वी० आर० योसायर, प्र० जी०स्स० योसायर कोरोनेशन प्रेस, १०० फीट रोड, मैसूर १९५५ ।

रस गंगाधर -- पंडितराज जगन्नाथ, चन्द्रिका संस्कृत हिन्दी व्याख्योपेतः, चौखम्भा विद्याभवन, चौक, बनारस१ सन् १९५५ ।

वाग्भटालंकार -- वाग्भट्ट-ईश्वरदत्त और दयाल सिंह की प्राज्ञ मनोरंजनी टीका, लाहौर ।

सरस्वतीकण्ठाभरण -- भोज- रत्नदर्पण टीका सहित जैन प्रभाकर नामक मुद्रणालय सं० १९४३ , काशी ।

साहित्य दर्पण -- विश्वनाथ, विमला व्याख्या, द्वितीयावृत्ति

हिन्दी अभिनव भारती -- अभिनवगुप्त- सं० डा० नगेन्द्र, व्या०आ० विश्वेश्वर, प्रथम संस्करण १९६० ।

हिन्दी वक्रोक्तिजीवितम् -- व्या०आ० विश्वेश्वर, सं० डा० नगेन्द्र , काश्मीरी गेट , दिल्ली ६, सन् १९५५ ।

(ख) सामान्य ग्रन्थ

संस्कृत साहित्य विमर्श -- द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री, भारती प्रतिष्ठान, मेरठ १९५६

संस्कृत साहित्य की रूपरेखा -- पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय और डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास, चतुर्थ संस्करण १९५५ ।

संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास-- रामबिहारीलाल शास्त्री, वेदतीर्थ, प्रथम संस्करण

संस्कृत साहित्येतिहासः द्वितीयोभागः-- हंसराज अग्रवाल - शक्ति प्रकाशन, माडलटाउन, लुधियाना १९५१

संस्कृत साहित्य का इतिहास -- वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा, विद्याभवन,बनारस१ १९६० ।

संस्कृत साहित्य का इतिहास -- पं० बलदेव उपाध्याय, १९५८

संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास -- राम जी उपाध्याय,विक्रमाब्द२०